हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव

(१८७० - १९२०)

(प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फिल० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० विश्वनाथ मिश्र

एम० ए०, डी० फिल०, डी० लिट्०

अध्यक्ष हिन्दी विभाग

सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर

साहित्य सदन देहरादून

प्रकाशक
सुरेन्द्रनाथ
साहित्य सदन, देहरादून

प्रथम संस्करण
१९६३
मूल्य १२ ५०

मुद्रक .
सुरेन्द्रनाथ, सरस्वती प्रेस, देहरादून।

पूज्य पिता जी

स्वर्गीय प० दामोदर जी मिश्र

की

पावन स्मृति में

निवेदन

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, सन् १८७० से लेकर १९२० तक, अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन का, यह विनम्र प्रयास है। हिन्दी भाषा और उसके साहित्य ने, पचास वर्षो के इस थोडे समय मे, अपने अन्तर और बाह्य दोनो ही स्वरूपो को परिवर्तित कर लिया है, और यह समस्त परिवर्तन, अग्रेजी शासन के युग मे, तथा जैसा इस अध्ययन से स्पष्ट हो जायगा, अग्रेजी प्रभाव के प्रसार के फलस्वरूप सम्भव हुआ है। हिन्दी भाषा एव उसके साहित्य के आधुनिक स्वरूपो के सम्यक अनुशीलन के लिए, इस प्रकार अग्रेजी प्रभाव का समुचित विश्लेषण अपेक्षित है। यह प्रवन्ध इसी आवश्यकता को, दृष्टि मे रख कर, सन् १९५० मे, प्रयाग विश्वविद्यालय के समक्ष उपस्थित किया गया था, और उसी वर्ष डी०फिल० की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ।

हिन्दी भाषा पर अग्रेजी प्रभाव के अध्ययन का विचार, मेरे मन मे, सन् १९४२-४३ मे, प्रयाग विश्वविद्यालय मे एम०ए० उत्तरार्ध की कक्षा मे, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के निवन्ध सग्रह 'रसज्ञ रजन' के 'कवि कर्त्तव्य' शीर्षक निवन्ध को पढते हुए उत्पन्न हुआ था। आचार्य द्विवेदी ने, अपने इस निबन्ध मे, हिन्दी कविता के नवसस्कार के लिए, जो योजना उपस्थित की थी, वह वर्डस्वर्थ के काव्य-सग्रह 'लिरिकल वैलेड्स' की प्रसिद्ध भूमिका मे प्रतिपादित काव्य-सिद्धान्तो से पर्याप्त मिलती जुलती थी। उन

दिनो छायावाद को सामान्यत, रहस्यवाद का आधुनिक स्वरूप समझा जाता था, किन्तु आचार्य द्विवेदी की उस संयोजना को देखकर, मुझे यह लगा था, कि उन्होंने हिन्दी कविता को रीतिकालीन बंधनों से मुक्त कर, स्वच्छन्दतावाद की दिशा मे अग्रसर करना चाहा था, और छायावाद का अभ्युदय उन्हीं के प्रयास का परिणाम रहा होगा। छायावाद इस प्रकार मुझे रहस्यवाद नहीं, वरन् पश्चिम की स्वच्छन्दतावादी काव्य-धारा का समकक्ष प्रतीत हुआ था। इसी प्रतीति के साथ-साथ, मेरी यह भी धारणा बनी थी, कि छायावाद का उद्भव तो हिन्दी-प्रदेश की अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को लेकर हुआ था, किन्तु उसके विकास मे अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावाद के पुनरुत्थान के कवियों—वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि—के भी अध्ययन का विशेष योग रहा होगा। अपनी इस धारणा के सम्यक परीक्षण के लिए, मैंने अनुसन्धान के लिए, यही विषय लेने का विचार किया। प्रारम्भ मे मुझे कुछ झिझक रही, कि अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के अपने सीमित ज्ञान के कारण, शायद मै इस विषय के साथ पूर्ण न्याय न कर सकूं। किन्तु डॉ० अमरनाथ झा के प्रोत्साहन पर, जो उन दिनो प्रयाग विश्वविद्यालय के उपकुलपति थे, मैंने यह विषय खोज कार्य के लिए ले लिया।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के सम्यक अनुशीलन के लिए, अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के अध्ययन का प्रश्न उठा, और उसमे प्रयाग विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग के अध्यक्ष प्रोफेसर एस० सी० देव ने, मुझे विशेष सहायता दी। उनका कहना था कि अंग्रेजी के अधिकांश मे उन्हीं साहित्यकारो एवं रचनाओं ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य को प्रभावित किया होगा, जो हिन्दी-प्रदेश की शिक्षा-संस्थाओं के विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे, स्वीकृत रहे थे। उनके इसी परामर्श को लेकर मैंने, दसवीं से लेकर एम० ए० कक्षाओ तक के सन् १८७० से लेकर १९२० तक के विभिन्न पाठ्य-क्रमों मे स्वीकृत अंग्रेजी साहित्यकारो एवं उनकी रचनाओं की सूची बनायी, और फिर उनका अध्ययन प्रारम्भ किया। अपने इस अध्ययन मे, डॉ० अमरनाथ झा और प्रो० एस० सी० देव के अतिरिक्त, प्रो० प्रकाशचन्द्र गुप्त ने भी समय समय पर मुझे विशेष सहायता दी। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण मे गुरुवर डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने मेरा निर्देशन किया। हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपो पर अंग्रेजी प्रभाव के अनुशीलन मे, डॉ० फ्रेडरिक ए० उपहम के ग्रन्थ 'दि फॉरेन डेट ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर', डॉ० सैयद अब्दुल लतीफ के प्रबन्ध 'दि इन्फ्लुएंस ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर ऑन उर्दू लिट्रेचर', और डॉ० प्रियरञ्जन सेन के अध्ययन 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली लिट्रेचर' ने मेरे लिए आदर्श का कार्य किया है। इस प्रबन्ध की संयोजना इन्हीं ग्रन्थों के आधार पर निर्मित हुई है। सम्पूर्ण मन से मैं इन सभी विद्वानों का

आभार स्वीकार करता हूँ ।

इस प्रबन्ध के प्रारम्भिक चार अध्याय, भूमिका स्वरूप है प्रथम मे विषय के महत्व, अध्ययन की दिशा और प्रस्तुत प्रबन्ध की सयोजना का निरुपण है, द्वितीय मे अँग्रेजी प्रभाव के पूर्व हि दी भाषा एव साहि य का पर्यक्षण, उनके विकास मे सहायक विभिन्न प्रभावो का विश्लेषण, एव उनकी सीमाओ का निर्धारण है, तृतीय मे, अग्रेजी प्रभाव के आगमन का इतिवृत्त है, और चतुर्थ मे, अग्रेजी प्रभाव की भिभि न धाराओ का अनुशीलन उपस्थित किया गया है। इन प्रारम्भिक अध्यायो के अनन्तर, पचम अध्याय मे, अग्रेजी प्रभाव की छाया मे, हिन्दी के भाषा सवधी तथा साहित्यिक आदर्शो के निर्माण का अनुक्रम है। यह अध्याय एक प्रकार से, प्रस्तावना स्वरूप प्रारम्भिक अध्यायो के अनन्तर, अर्थोपक्षेपक है, और उसके बाद प्रबन्ध के मूल अध्याय, जिनमे हिन्दी-भाषा एव हिन्दा साहित्य की विभिन्न विधाओ पर अग्रेजी प्रभाव का विश्लेपण प्रस्तुन किया गया है, प्रारम्भ होते है। अन्तिम अध्याय, निष्कर्ष मे, अग्रेजी प्रभाव की हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे विभिन्न उपलब्धियो की विवेचना की गयी है। इस स्थल पर, मैं यह भी स्वीकार करना चाहूगा, कि इस अध्ययन मे हिन्दी भाषा पर अग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण से अधिक, हिन्दी साहित्य की विभिन्न विधाओ—कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि—पर, इस प्रभाव के अध्ययन को महत्व दिया गया है। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन, एक स्वतन्त्र प्रबन्ध की अपेक्षा करता है, आशा है, शीघ्र ही कोई शोधार्थी इस दिशा मे अग्रसर होगा।

हिन्दी भाषा तथा उसके साहित्य की विभिन्न विधाओ पर अंगेजी प्रभाव का यह अध्ययन निश्चित रूप से, एक महत्वाकाक्षा पूर्ण प्रयास रहा है। अग्रेजी भाषा, ससार की अत्यधिक उन्नत भाषाओ मे से है, उसका शब्द-भण्डार विशाल है, और उसमे अभिव्यञ्जना की असख्य भगिमाओ का विकास हुआ है। हिन्दी भाषा पर उसके प्रभाव का विश्लेषण, महान पाडित्य की अपेक्षा करता है। मुझ मे वह नही है। मैं तो जो कुछ कर सका हू, वह सब गुरुजनो के सद्परामर्शो और निर्देशो से सम्भव हुआ है। अँग्रेजी साहित्य भी विश्व के उन्नततम साहित्यो मे है, और उसकी अपार राशि का अवगाहन तथा हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपो पर उसके प्रभाव का विश्लेषण भी, विद्वज्जनो की अनुकम्पा से सम्पन्न हुआ है। गुरुजनो के आशीर्वाद तथा, विद्वज्जनो के सद्परामर्शो के फलस्वरूप इस प्रबन्ध की कुछ उपलब्धियाँ है

(१) हिन्दी भाषा एव साहित्य के आधुनिकीकरण की मूल प्रेरणा—अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराओ का विश्लेषण।

(२) हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन।

(३) साहित्यिक विधान मे परिवर्तन के आधारभूत कारण—साहित्य निर्माण के केन्द्रो मे परिवर्तन—का विवेचन ।

(४) अँग्रेजी प्रभाव की छाया मे, हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक आदर्शो मे परिवर्तन का अध्ययन ।

(५) हिन्दी कविता पर ऑलिवर गोल्डस्मिथ, टॉमसन, पोप, मेकॉले, वर्ड्सवर्थ, सर वाल्टर स्कॉट, बायरन आदि के प्रभाव का विश्लेषण ।

(६) हिन्दी नाटक के विकास मे शेक्सपियर, अंग्रेजी की आचार प्रधान नाटकीय रचनाओ और मोलियर के प्रभाव का अध्ययन ।

(७) हिन्दी उपन्यास के उद्भव और प्रारम्भिक विकास मे, जॉर्ज डब्ल्यू० ऐस० रेनाल्ड, जॉर्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो, विल्की कॉलिन्स, आर्थर कॉनन डॉयल आदि के प्रभाव का अनुशीलन ।

(८) हिन्दी कहानी के प्रारम्भ और विकास मे, अँग्रेजी की गद्य एव पद्य कथाओ के योग का अन्वेषण ।

(९) हिन्दी निबन्ध, आलोचना, जीवनी आदि के विकास मे, अँग्रेजी प्रभाव के साहाय्य का अनुसधान ।

[१०] हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावो का तुलनात्मक अध्ययन ।

[११] अंग्रेजी प्रभाव के मूलभूत महत्व का निर्धारण ।

इन उपलब्धियो के सबध मे, मैं पुन यह कहना चाहूँगा, कि ये गुरुजनो के शुभाशीष का ही सुफल है, मेरा अपना इनमे कुछ भी नही है ।

यह अनुसधान कार्य, मैंने दिसम्बर १९४३ मे आरम्भ किया था, और जनवरी १९५० मे पूरा कर सका । इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन के लिए, इतना समय उपयुक्त ही रहा है । इस प्रबन्ध का सामग्री-सकलन एव लेखन, प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालय मे सम्पन्न हुआ, और इस सम्बन्ध मे मैं, उसके उप-पुस्तकाध्यक्ष श्री त्रिवेदी के प्रति विशेष कृतज्ञता अनुभव करता हूँ । प्रयाग के 'भारती भवन', और 'काशी नागरी प्रचारिणी-सभा' के 'आर्य भाषा पुस्तकालय' के अधिकारियो के प्रति भी, मैं विशेष आभारी हूँ, जो दोपहर मे मुझे, महान साहित्यकारो के साथ विचार-विमर्श का अवसर प्रदान कर, बाहर से ताला लगा कर, चले जाया करते थे । किन्तु इस प्रबन्ध की रचना का सबसे अधिक आभार, मैं डा० रामकुमार वर्मा का मानता हूँ, जिनके परम स्नेहमय एव निरन्तर उत्साहवर्धक निर्देशन मे, मैं अपने उस महत्वाकांक्षापूर्ण प्रयास को सफल रूप मे सम्पन्न कर सका ।

प्रयाग विश्वविद्यालय के नियमानुसार, मुझे अपना यह प्रबन्ध, अंग्रेजी मे उपस्थित करना पडा था। हिन्दी भाषा एव साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन का यह पहला प्रयास था, अन्य प्रबन्ध, जिनमे से एक दो प्रकाशित भी हो चुके हैं, इसके बाद उपस्थित किये गये। मैं इसके प्रकाशन की इसलिए व्यवस्था नही कर सका, क्योकि अंग्रजी का प्रकाशक तो मैं खोज नही पाया, और इसे हिन्दी रूप दे पाने के पूर्व, मैं अन्य अनुसधान कार्य मे सलग्न हो गया। सन् १९६० मे मै उससे मुक्त होने के बाद, इस प्रबन्ध के अनुवाद मे तत्पर हुआ। इस अनुवादित रूप के अधिकाश अध्याय, मेरे सर्वाधिक प्रिय छात्र श्री स्वराज्य कृष्ण के लिखे हुए हैं, और शेष अनुवादो के लेखन मे मुझे अपने छात्रो श्री निरज्जन सिह, श्री श्यामलाल गर्ग और श्री चन्द्रपाल सिह से विशेष सहायता मिली है। इन सभी को धन्यवाद क्या, अगर दे सका तो कुछ और ही दूगा। अन्त मे मैं अपने इस प्रबन्ध के प्रकाशक श्री सुरेन्द्रनाथ के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना चाहता हू, जिन्होंने सर्वप्रथम सन् १९५४ मे, मुझसे, इसके प्रकाशन की इच्छा ज्ञापित की थी, किन्तु मैं तो उन्हे सन् १९६२ के जून मास मे, इस प्रबन्ध के प्रकाशन का भार दे सका, और पाडुलिपि तो और भी विलम्ब से, धीरे-धीरे देता रहा। मेरे मदगतिक प्रयास की तुलना मे, वास्तव मे उन्होने जेट की त्वरा के साथ काय किया है, और इसके लिए मैं उनका परम आभारी हूँ।

—विश्वनाथ मिश्र

गुरुवार, ६ दिसम्बर १९६२

संयोजना

प्रथम अध्याय

अध्ययन की दिशा एव सीमाए

द्वितीय अध्याय

अग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा और साहित्य

तृतीय अध्याय

अंग्रेजी प्रभाव का आगमन

चतुर्थ अध्याय

अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराएं

पञ्चम अध्याय

अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे हिन्दी के भाषा संबंधी एवं साहित्यिक आदर्शों का निर्माण

षष्टम अध्याय

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव

सप्तम अध्याय

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव

अष्टम अध्याय

हिन्दी नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव

नवम अध्याय

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव

दशम अध्याय

हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव

एकादश अध्याय

हिन्दी निबन्ध, आलोचना आदि पर अंग्रेजी प्रभाव

द्वादश अध्याय

निष्कर्ष अंग्रेजी प्रभाव की मुख्य उपलब्धिया

परिशिष्ट

· १ ·

अध्ययन की दिशा एवं सीमाएं

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकासक्रम मे आधुनिक युग का विशेष महत्त्व है; उसका सर्वतोमुखी विकास तो वस्तुत इसी काल मे सम्भव हुआ है। जर्मनी मे गेटे के युग के अतिरिक्त, जब साहित्यिक प्रतिभा का व्यापक और द्रुतगति पूर्ण विकास देखने को मिला था, साहित्य के इतिहास मे कोई दूसरा युग नही हुआ है, जिसकी तुलना इस छोटे से युग से की जा सके, जिसमे हिन्दी ने, अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओ के साथ, असाधारण साहित्यिक प्रगति उपस्थित की है।[1] हिन्दी गद्य और उसके विभिन्न रूपो का विकास तो इसी युग में हुआ है। आधुनिक युग मे ही हिन्दी साहित्य मे उपन्यास, कहानी, निबध, आलोचना, जीवनी, इतिहास आदि साहित्यिक विधाओ का सूत्रपात हुआ है। हिन्दी मे नाटक रचना का प्रारम्भ भी, समुचित रूप मे, वर्तमान काल में ही हुआ है। हिन्दी कविता ने भी, इस युग मे, अपने अन्तर और वाह्य दोनो रूपो को परिवर्तित कर दिया है। हिन्दी भाषा ने भी इसी काल मे जीवन के विभिन्न पक्षो और ज्ञान की अनेक धाराओ को अभिव्यक्त करने की शक्ति अर्जित की। हिन्दी भाषा और साहित्य के वाह्य-रूप और अन्तर्धारा मे यह समस्त

---

१ डा० अमरनाथ झा 'भारतीय साहित्य के सौ वर्ष', 'हिन्दुस्तानी', खण्ड आठ, (१९३७), पृष्ठ २२०

परिवर्तन अंग्रेजी शासन के युग मे ही हुआ है, इसलिये यह तो निश्चित-सा प्रतीत होता है कि अंग्रेजी प्रभाव ने उसमे सक्रिय योग दिया हो, नही तो इतना व्यापक विकास सम्भव ही न हो पाता। इस अध्ययन मे इसी प्रभाव के मूल्याकन का प्रयास किया जा रहा है।

किसी भी देश के भाषा एव साहित्य के विकास-क्रम का अनुशीलन किया जाये तो उनकी प्रगति मे योग देने वाले तीन प्रधान स्रोत मिलते है—उसकी अपनी भाषागत एव साहित्यिक परम्पराए, नवीन प्रभाव और युग-विशेष की अनुभूतिया। हिन्दी भाषा और साहित्य की आधुनिक प्रगति मे भी, इन सभी स्रोतो का योग रहा है। इस काल के प्रारम्भ मे हम, अपने देश के प्राचीन साहित्य एव भाषा के प्रति, अनुराग का पुनर्जागरण देखते हैं। नवीन प्रभाव, अंग्रेजी भाषा एव साहित्य के सम्पर्क के रूप मे, नवस्फूर्ति एव नव चेतना का सचार करता रहा है। युग की नयी अनुभूति, अंग्रेजी राज्य के ऊपर के सुख शान्ति के वातावरण मे, भीतर ही भीतर, धन-धान्य सम्पन्न देश का आर्थिक शोषण, रही है, जिसने हिन्दी ही नही समस्त भारतीय साहित्य मे बडी प्रबल विद्रोह की भावना का सचार किया है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य को गति प्रदान करने वाले इन तीनो ही स्रोतो के मूल मे अंग्रेजी प्रभाव विशेष रूप से सक्रिय दृष्टिगत होता है। आधुनिक काल मे, देश के प्राचीन साहित्य और सस्कृति के प्रति अनुराग का जो पुनर्जागरण हुआ है, उसके मूल मे भी अंग्रेजी प्रभाव है। पश्चिम मे पुनरुत्थान की भावना का सूत्रपात तुर्कों द्वारा कुस्तुनतुनिया की विजय (१४५३) के अनन्तर हुआ था: जब यूनान के प्राचीन साहित्यिक और वैज्ञानिक ग्रन्थ शरणार्थियो के साथ समस्त योरप मे फैल गए थे और उनका अध्ययन-अनुशीलन प्रारम्भ हुआ था। हमारे देश मे भी अंग्रेजो की विजय और राज्य-स्थापन के अनन्तर ही, प्राचीन भाषा और साहित्य के अध्ययन के प्रति, अनुराग बढा; और इस क्षेत्र मे कुछ उदारमना पाश्चात्य विद्वानो ने ही कार्यारम्भ भी किया था। इस प्रसग मे मैक्स मूलर, विन्टरनिटज, ग्रियर्सन आदि के नाम सदा स्मरणीय रहेंगे। सन् १७८४ मे सर विलियम जोन्स ने बगाल की एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना करके, तथा कर्नल कनिंघम ने सन् १८५७ मे पुरातत्त्व विभाग की व्यवस्था द्वारा, नव शिक्षित भारतीयो के मन मे अपने देश की प्राचीन कला और साहित्य के प्रति रुचि जगाई थी।

आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रेरणा का दूसरा स्रोत, नया प्रभाव, विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव ही रहा है। अंग्रेजी भाषा और साहित्य का अध्ययन, तथा उसी के माध्यम से, अन्य यूरोपीय देशो के साहित्य से परिचय, आधुनिक युग में

हिन्दी एव अन्य भारतीय भाषाओ के साहित्य मे वैज्ञानिक, आलोचनात्मक और मानवतावादी जीवन-दृष्टियो के विकास की मूल प्रेरणा रहे हैं । हिन्दी भाषा ने अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क से पर्याप्त शक्ति अर्जित की है । उसका शब्द-भडार बढा है, अभिव्यजना की नयी भगिमाए विकसित हुई है और अभिव्यक्ति की क्षमता का अभूतपूर्व विस्तार हुआ है । हिन्दी साहित्य ने अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से उपन्यास, कहानी आदि नये साहित्यिक रूपों को ग्रहण किया है, तथा प्राचीन एव नवीन दोनो प्रकार की साहित्यिक विधाओ के लिये विषय-वस्तु, विचार, तत्व, भाव-भगिमा और रचना-कौशल की दृष्टि से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की है ।

अंग्रेजी शासन का अनुभव, भारतीय जनसाधारण के लिए पूर्णत नया रहा है । मध्य युग मे उसने, अनेक विदेशियो को अपने यहा आकर, विजय प्राप्त करने के अनन्तर, यही बसते हुये देखा था । उन विदेशियो ने एक प्रकार से इस देश को ही अपना देश स्वीकार कर लिया था । इस प्रकार के मध्ययुगीन शासको मे से कुछ बडे नृशस, निरकुश और स्वेच्छाचारी भी थे, किन्तु वे प्रजा के हितो की भी समुचित रक्षा करते थे । कम से कम, भारतीय धनराशि को तो बाहर नही भेजते थे, और न राजकीय आय की अभिवृद्धि मे ही बाधक होते थे । इस प्रकार मध्ययुगीन विदेशी शासन, धार्मिक असहिष्णुता को छोडकर, जो कभी कभी बडी असह्य हो उठती थी, प्राचीन युग के स्वदेशी शासन से भिन्न न था, किन्तु अंग्रेजी शासन का अनुभव मूलत दूसरे ही प्रकार का था । भारतवर्ष के जनसाधारण ने पहली बार, अपने देश के धन-धान्य को अबाध गति से, सात समुद्र पार, अपने शासको के देश मे जाते हुए, और अपने को निर्धन एव दरिद्र होते हुये देखा । अंग्रेजी शासन की इस शोषण-नीति ने, हमारे शताब्दियो के आध्यात्मिक, भावुक और कल्पनाशील दृष्टिकोण को, सहसा एक झटके के साथ, भौतिक, यथार्थोन्मुख और वस्तुवादी बना दिया ।

अंग्रेजी प्रभाव का इतना व्यापक स्वरूप, प्रस्तुत अध्ययन को विशेष महत्वपूर्ण बना देता है । इस प्रभाव के सम्बन्ध मे विद्वानो ने अब तक तीन धारणाएँ प्रकट की हैं (१) अंग्रेजो का सम्पर्क हिन्दी साहित्य मे शृगारिक परम्परा को बाधित करने और आधुनिक प्रवृत्तियो के सूत्रपात का मूल कारण रहा है ,[1] (२) अंग्रेजी सस्कृति के सम्पर्क से ही आज हिन्दी साहित्य प्रगति कर रहा है, किन्तु जनसाधारण ने प्राचीन परम्पराओ को छोड दिया है, इसलिए यह गतिशीलता सदा उचित दिशा की ओर ही नही है,[2] (३) अंग्रेजी प्रभाव ने कुछ समय के लिए हमे अधा-सा कर दिया, जैसे

१ डॉ० श्यामसुन्दर दास 'हिन्दी साहित्य' (१९४४), पृ० १६१-६२
२. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी . 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' (१९४०), पृ० १३५

उसके पीछे आँखे मूँद कर चलने के अतिरिक्त हमारे लिए कोई मार्ग ही न हो।[1] इन तीनो ही धारणाओ मे, इतना समान रूप से स्वीकृत हे, कि अंग्रेजी प्रभाव का आगमन एक जीवनमय शक्ति के रूप मे हुआ था। यह सम्पर्क, हिन्दी भाषा एव साहित्य के लिए किस सीमा तक लाभप्रद रहा है, इसका निर्णय तो इस अध्ययन के अत मे ही सम्भव होगा।

अंग्रेजी प्रभाव ने, हिंदी ही नही अन्य भारतीय भाषाओ एव साहित्यो के विकास मे भी, योग दिया है, और अब तक इस प्रभाव के कुछ अध्ययन भी प्रस्तुत किये जा चुके हैं। इस क्षेत्र मे, प्रमथनाथ वसु का 'हिंदू सिविलाइजेशन अण्डर दि ब्रिटिश रूल' (१८८७) सर्व प्रथम प्रयास था, और उसमे आधुनिक काल के प्रारम्भिक दिनो मे पाश्चात्य प्रभाव से ओतप्रोत भारतीय सभ्यता का वडा गहरा विश्लेषण उपस्थित किया गया था। इसके अनन्तर डा० सय्यद अब्दुल लतीफ ने सन् १९२० मे लदन विश्वविद्यालय मे, एक प्रबन्ध प्रस्तुत किया, 'दि इन्फ्लुयेन्स ऑफ इगलिश लिट्रेचर ऑन उर्दू लिट्रेचर' और उस पर उन्हे पी-एच० डी० की उपाधि मिली। इस प्रवन्ध की योजना, वडी वैज्ञानिक है, और उसके तृतीय एव अतिम अध्याय, जिनमे प्रारम्भिक प्रभावो एव उर्दू साहित्य की अतर्धारा तथा विषय-वस्तु पर प्रभाव का विश्लेषण है, वडी विद्वत्ता के साथ लिखे गये है। सन् १९३३ मे डॉ० प्रिय रजन सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे 'वैस्टर्न इन्फ्लुयेन्स इन वगाली लिट्रेचर' शीर्षक प्रवन्ध प्रस्तुत किया। इस प्रवन्ध मे, पाश्चात्य प्रभाव की विभिन्न भावधाराओ का अच्छा विवेचन है। वगला उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव की विवेचना करते हुए, डॉ० सेन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'जनल ऑफ डिपाटमेट ऑफ लेटर्स' मे एक विस्तृत निवन्ध प्रकाशित किया था, जिसमे इस प्रभाव का वहुत गहरा विवेचन है। सन् १९३५ मे हरेन्द्र मोहन दास गुप्त ने 'स्टडीज इन वैस्टर्न इन्फ्लुयेन्स ऑन नाइन्टीन्थ सेन्चुरीज वगाली पोएट्री' नामक ग्रथ प्रकाशित किया। इसमे, पिछली शताब्दी के चार वडे वगला कवियो—माइकल मधुसूदन दत्त, हेमचद्र, नवीन चन्द्र तथा विहारी लाल की रचनाओं के, पाश्चात्य प्रभाव को दृष्टि मे रखते हुए, विस्तृत अध्ययन, उपस्थित किये गये। हिन्दी साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन अब तक नहीं हो सका है और प्रस्तुत प्रबन्ध मे इसी आवश्यकता की पूर्ति है। पूर्णता की दृष्टि से यहाँ हिंदी भाषा तथा साहित्य दोनो पर ही अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन उपस्थित किया जा रहा है।

यह अध्ययन सन् १८७० से प्रारम्भ हो रहा है। सन् १८५७ के अनन्तर ही

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा 'विचारधारा' (१९४३) पृ० २०६

अंग्रेजी शासन हिन्दी प्रदेश में अपने को दृढ कर सका था, तेरह वर्षों का समय उसकी पूर्णत स्थापना तथा हिन्दी भाषा एव साहित्य पर उसके प्रभाव के प्रारम्भ के लिए पर्याप्त सिद्ध हुआ। सन् १८७० से ही, इलाहाबाद मे, एक कॉलेज की स्थापना के लिए प्रयत्न प्रारम्भ हुए, जो आगे चलकर विश्वविद्यालय मे परिणत हो गया, और इस प्रकार उसने हिन्दी भाषा तथा साहित्य को अंग्रेजी प्रभाव प्रदान करने मे विशेष योग दिया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जी का जन्म सन् १८५० में हुआ था। सन् १८७० के लगभग ही उनकी साहित्यिक प्रतिभा का अभ्युदय हुआ, और आधुनिक युग, विशेष रूप से उनकी रचनाओ से ही प्रारम्भ होता है। यह अध्ययन सन् १९२० तक ही जाता है, क्योंकि इसी समय से प्रथम विश्व युद्ध के बाद के प्रभावो का क्रम प्रारम्भ होता है। सन् १९२० से ही, अंग्रेजी प्रभाव, उस व्यापक प्रभाव का रूप ग्रहण कर लेता है, जिसे हम पाश्चात्य प्रभाव की सज्ञा देते है। इस प्रकार प्रस्तुत प्रबन्ध मे कोई ५० वर्ष के हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन किया गया है।

इस अध्ययन को प्रारम्भ करते हुए अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रधान प्रवृत्तियो का विवेचन आवश्यक है, उसके बिना यह सम्भावना है कि उनकी कुछ अपनी वृत्तियो को अंगरेजी प्रभाव से प्रसूत समझ लिया जाय। इसी लिए, दूसरे अध्याय मे हम, अंगरेजी प्रभाव के आगमन के पूर्व, हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रमुख विशेषताओ का विवेचन कर रहे है। साथ ही, उन प्रभावो का भी अनुशीलन उपस्थित किया जा रहा है, जिन्होने उनके निर्माण मे योग दिया है। इसके अनन्तर ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप मे हिन्दी प्रदेश मे अंग्रेजी प्रभाव के आगमन का प्रकरण है। अंग्रेजी प्रभाव ने विभिन्न धाराओ मे होकर कार्य किया है। उसने हिन्दी के साहित्यिक आदर्शों को ही नही, साहित्य निर्माण के केन्द्रो को भी परिवर्तित कर दिया है। अंगरेजी शासन के द्वारा उत्पन्न परिवर्तित वातावरण मे अंगरेजो द्वारा स्थापित नवीन शिक्षा सस्थाओ ने, साहित्यिक-केन्द्रो के लिये भूमि का निर्माण किया। अंगरेजी शिक्षा द्वारा उत्पन्न नवीन आलोक मे ही, हमारी राजनीतिक, धार्मिक—सभी प्रकार की मान्यताए, अधिक बुद्धि-ग्राह्य हो गई, जिसके फलस्वरूप हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे नवीन प्रवृत्तियो के विकास को प्रेरणा मिली। अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे ईसाई प्रचारको ने भी बड़ा योग दिया। अंगरेजो द्वारा मुद्रण-कला के प्रचार और प्रसार ने हमारी सामाजिक, सास्कृतिक तथा साहित्यिक मान्यताओ मे पूर्णत. नवीन प्रवृत्तियो का समावेश कर दिया। अंगरेजी प्रभाव की इन विभिन्न धाराओ ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे, आधुनिक प्रवृत्तियो के

सूत्रपात में कहा तक योग दिया है, इसका भी पर्याप्त विवेचन होगा।

अंग्रेजी प्रभाव की इन धाराओ मे, परिवर्तित वातावरण तथा नवीन शिक्षा-सस्थाओ का, सबसे महत्वपूर्ण योग रहा है, और जहा तक प्रस्तुत अध्ययन का प्रश्न है, शिक्षा-सस्थाओ का योग सर्वाधिक रहा है। अंगरेजी प्रभाव द्वारा परिवर्तित वातावरण ने, हिन्दी लेखको को एक नयी जीवन-दृष्टि प्रदान की थी। शिक्षा-सस्थाओ ने हमे यह बताया, कि साहित्य जगत मे आज पवन की गति किस दिशा की ओर है। अंग्रेजी प्रभाव से ओतप्रोत नवीन वातावरण मे ही, राजाओ और नवाबो कि सभाओ तथा दरबारो का, जो अब तक साहित्यनिर्माण का केन्द्र रहे थे, लोप हो गया। साहित्यनिर्माण की दृष्टि से इस रिक्तता मे अंगरेजी शिक्षा ने नवीन साहित्यिक केन्द्रो के निर्माण मे योग दिया। अंगरेजी भाषा तथा साहित्य के सम्पर्क ने नवीन भाषागत और साहित्यिक आदर्शों के निर्माण मे बड़ी सहायता दी। हिन्दी के साहित्यकार इन परिवर्तित परिस्थितियो मे ही, अंगरेजी ग्रथो को आदर्श मानकर लिखने लगे, उनकीर चनाओ पर अंगरेजी भाषा का भी प्रभाव दिखाई देने लगा। प्रस्तुत अध्ययन मे इस प्रकार, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, अंगरेजी भाषा तथा साहित्य के प्रभावो की विवेचना होगी, यदा कदा अंगरेजी-सस्कृति के प्रभाव का उल्लेख भी कर दिया जायेगा।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंगरेजी प्रभाव के अनुशीलन के लिये, अंगरेजी भाषा तथा साहित्य का सम्यक् अध्ययन भी अपेक्षित है। इस सम्यक् अध्ययन के लिये अनेक वर्ष चाहिए और तब भी शायद वह पूर्ण न हो। प्रस्तुत अध्ययन के लिए यह सगत भी नही है। इसीलिए यहा अंगरेजी भाषा और साहित्य की उन्हीं कृतियो का अनुशीलन किया जायगा, जो विभिन्न पाठ्यक्रमो मे स्वीकृति रही है। हिन्दी प्रदेश मे, अधिकाश मे वही रचनायें पढ़ी गई हैं, जो किसी न किसी पाठ्यक्रम मे स्वीकृति रही हैं। इस अध्ययन मे, अंगरेजी के उन साहित्यकारो तथा कृतियो पर भी विचार किया जायगा, जिनका उल्लेख हिन्दी रचनाओ में यदा कदा मिलता है। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि अंगरेजी के कौन से लेखक तथा कौन-कौन रचनायें हिन्दी-प्रदेश में लोक प्रिय हो गयी थी।

सामान्यत अमरीका के लेखको तथा कवियो की कृतिया अंगरेजी साहित्य के अंतर्गत आती हैं, इसलिए उनके प्रभाव का भी विश्लेषण अंगरेजी प्रभाव के अंतर्गत ही किया जायेगा। कुछ यूरोपीय साहित्यकारों ने भी, विशेष रूप से, फ्रास के हास्य-नाट्यकार मोलियर ने भी हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है। यह प्रभाव अंगरेजी अनुवादों के माध्यम से ही आया है, इसलिये, प्रस्तुत अध्ययन मे, इस प्रभाव को भी

स्थान मिलेगा।

हिन्दी भाषा पर अग्रेजी प्रभाव की विवेचना करते हुए, विषय प्रवेश के अनन्तर अग्रेजी भाषा की प्रमुख प्रवृत्तियो को स्पष्ट किया जायगा, उसके अनन्तर यह विवेचना की जायगी कि वे प्रवृत्तिया अंग्रेजी प्रभाव के माध्यम से कहाँ तक हिन्दी भाषा मे आ गयी। हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपो पर इस प्रभाव की विवेचना करते हुए प्रारम्भ मे उन अंग्रेजी लेखको तथा कृतियो की चर्चा होगी जो हिन्दी प्रदेश मे पढे गये थे, इसके अनन्तर, उन प्रभावों का विश्लेषण किया जायगा, जो अंग्रेजी प्रभाव के साथ-साथ कार्य करते रहे। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा, कि अंग्रेजो के सम्पर्क के विना भी, हिन्दी भाषा और साहित्य ने, किन प्रवृत्तियो को, आधुनिक काल मे विकसित कर लिया होता। इस अध्ययन से अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न प्रवृत्तियाँ और भी स्पष्ट हो जायेगी। हिन्दी के विभिन्न साहित्यकारो और उनकी कृतियो पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण उसके वाद किया जायगा।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर जितना कुछ अंग्रेजी प्रभाव है, वह सभी अंग्रेजो, उनकी भाषा तथा साहित्य के सीधे सम्पर्क से ही नही आया है। अंग्रेजी प्रभाव ने जैसा हम पहले कह आए है, हिन्दी प्रदेश मे आने के पूर्व ही, भारत वर्ष के कुछ अन्य प्रदेशो मे कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था। अंग्रेजो ने सर्वप्रथम, भारत वर्ष के समुद्रतट के वडे-वडे नगरो—वम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि मे अपने व्यापारिक-केन्द्र स्थापित किये थे। उनका सास्कृतिक एव साहित्यिक प्रभाव भी सर्व प्रथम इन्ही नगरो मे प्रकट हुआ। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का प्रवेश भी, सर्वप्रथम कलकत्ता नगर से ही आरम्भ हुआ। उत्तर भारत मे अंग्रेजी प्रभाव ने, इसी नगर से कार्य करना प्रारम्भ किया था, इसीलिए भारत के इस क्षेत्र की विभिन्न भाषाओ और साहित्यों मे अंग्रेजी प्रभाव सर्वप्रथम वगला भाषा तथा साहित्य पर देखने को मिला। वगाल का प्रमुख नगर कलकत्ता, उन दिनो भी भारत का एक वहुत वडा व्यापारिक-केन्द्र था, और हिन्दी प्रदेश के भी वहुत से लोग वहाँ विभिन्न प्रकार के व्यवसायो मे सलग्न थे। उन लोगो ने यह भली प्रकार देखा, कि अंग्रेजी प्रभाव को लेकर वगला भाषा तथा साहित्य मे कैसी प्रगति हो रही है। उनके मन मे तभी यह इच्छा उत्पन्न हुई कि वे हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास-क्रम को नयी दिशा प्रदान करें। इसी उद्देश्य को लेकर अंग्रेजी प्रभाव को आत्मसात् करते हुए उन्होने हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन आरम्भ किया। कुछ दिनो वाद, जव हिन्दी प्रदेश स्वय अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत आगया, तो इस प्रभाव को लेकर वगला भाषा और साहित्य की जो उन्नति हो रही थी, उसकी ओर लोगो का और भी ध्यान गया।

हिन्दी के साहित्यकारो ने जब अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करना प्रारम्भ किया, तो उन्हे इस प्रभाव से ओतप्रोत बगला साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों को अपनाना अधिक युक्ति सगत लगा, क्योकि बगला साहित्य उन्हे अंग्रेजी की अपेक्षा अधिक अपना प्रतीत हुआ। इसीलिये अंग्रेजी प्रभाव बगला भाषा और साहित्य के माध्यम से भी, हिन्दी मे पर्याप्त रूप मे आया है। मराठी और उर्दू साहित्य के माध्यम से भी, हिन्दी के साहित्यकारों ने थोडा बहुत अंग्रेजी प्रभाव ग्रहण किया है, किन्तु प्रकारान्तर से आने वाले प्रभाव मे, बगला भाषा और साहित्य का सबसे अधिक योग रहा है। यह प्रकारान्तर से आने वाला प्रभाव भी, उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के सम्पर्क से सीधे आया हुआ प्रभाव।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के इस अध्ययन मे, हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का विवेचन, पहले किया जायगा। अंग्रेजी प्रभाव ने, सर्व प्रथम, हिन्दी भाषा पर कार्य करना प्रारम्भ किया था। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन, एक स्वतत्र प्रबन्ध का विषय हो सकता है, प्रस्तुत अध्ययन मे हम उसकी विस्तृत रूपरेखा मात्र उपस्थित कर रहे हैं। हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपो पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए, अधिक विस्तार के साथ विचार किया जायगा। इस अध्ययन को समाप्त करते हुए हम कोष्ठबद्ध रूप मे भी, अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख प्रवृत्तियो को स्पष्ट कर रहे हैं।

———

२ ·

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा और साहित्य

इस प्रकरण मे, अग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य की विशेषताओ का अध्ययन होगा। इस सम्बन्ध मे हम सर्व प्रथम हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास की एक सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करेगे। उसके अनन्तर, उन प्रमुख प्रभावो का विश्लेषण होगा, जिन्होने इस विकास मे योग दिया है, और तब हिन्दी भाषा तथा साहित्य की प्रमुख विशेषताएं प्रस्तुत की जायेंगी। अन्त मे हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सीमाओं का विश्लेषण होगा। यह समस्त अध्ययन अग्रेजी प्रभाव को और अधिक स्पष्टता प्रदान करने मे सहायक होगा।

१—अग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा तथा साहित्य

अग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास की हमे कई अवस्थाए देखने को मिलती हैं। उनका प्रारम्भिक रूप, हम बौद्ध-सिद्धो तथा जैनाचार्यो की रचनाओं मे देखते हैं। इन रचनाओं मे हमे, हिन्दी भाषा, अपभ्रंश के कुछ रूपो से विकसित होती हुई, अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे मिलती है। बौद्ध-सिद्धो की रचनाएं उस भाषा मे है, जो मागधी अपभ्रंश से उत्पन्न हो रही थी। सिद्ध कवियो की रचनाए हमे दोहा चौपाई तथा पदों के रूपो मे प्राप्त होती हैं। इन रचनाओ मे हमे, पुरातन सामाजिक व्यवस्था तथा समाज के अन्ध-विश्वासो के प्रति, तीव्र आक्रोश

देखने को मिलता है। सिद्ध कवियो मे से अधिकाश, समाज के निम्न वर्ग मे उत्पन्न हुए थे। इस कारण उन्होंने समाज के उच्चवर्गो द्वारा व्यवहार मे लायी जाने वाली दमन-नीति का स्वय अनुभव किया था। इसीलिये उन्होने वर्ण व्यवस्था का बडा तीव्र विरोध किया था। अपनी इस विचारधारा के प्रचार के लिये उन्होने जिस भाषा का उपयोग किया, वह उस समय की जन-भाषा थी। यह क्रातिकारी भावना हमे जैनाचार्यो की कृतियो मे नही मिलती। जैन मतावलम्वियो ने, उस समय तक अपनी क्रान्तिवादी मनोवृत्ति को छोड दिया था और समाज के उच्चवर्गो के साथ एक समझौता-सा कर लिया था। जैनाचार्यो को राजाश्रय भी प्राप्त होने लगा था, और वे अपनी साहित्यिक प्रतिभा का उपयोग अपने आश्रय-दाताओ की प्रशसा के लिए करने लगे थे। जैनाचार्यो की कृतियो मे, जैन विचारधारा से सम्बन्धित रचनाओ की सख्या भी पर्याप्त है, किन्तु उनका महत्व विशेष नही है, वे युग की भावधारा को ध्यान मे रखते हुए, लिखी ही नही गई थी। इन रचनाओ मे, हिन्दी भाषा का वह रूप देखने को मिलता है, जो नागर अपभ्र श से विकसित हो रहा था। बौद्ध तथा जैन आन्दोलनो ने, सस्कृत के महत्व को, राजसभाओ की भाषा के रूप मे भी, इस समय तक, बहुत कम कर दिया था।

जब हिन्दी की ये दोनो प्रारम्भिक धाराए, अपने को अपभ्र श के प्रभाव से मुक्त करती हुई, नाथ-पथी योगियो तथा राजस्थान के भाटो एव चारणो की कृतियो मे हिन्दी भाषा के वास्तविक रूप के निर्माण का प्रयत्न कर रही थी, उस समय एक घटना घटी, जिसका हिन्दी भाषा तथा साहित्य के लिए विशेष महत्व है। वह थी, भारतवर्ष मे इस्लाम का प्रवेश। उसने हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास की धारा ही बदल दी। राजस्थान के भाटो एव चारणो की कृतियो मे, उसने देश-भक्ति की भावना का सचार किया, और नाथ-पथी योगियो की कृतियो को, जो आगे चल कर सन्त-काव्य के रूप मे विकसित हुई, उसने कुछ और व्यापक मानवतावादी दृष्टिकोण प्रदान किया। हिन्दी भाषा ने इस्लाम के सम्पर्क से कुछ नयी ध्वनिया प्राप्त की, बहुत से शब्द तथा कुछ शब्दावलिया और प्रयोग ग्रहण किये। मुसलमानी शासन की स्थापना के अनन्तर, यह प्रभाव, एक विस्तृत समय तक, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर कार्य करता रहा।

राजस्थान के भाटो एव चारणो की कृतिया, विस्तृत कथा-काव्य तथा वीर-गीत, दो रूपों मे प्राप्त होती हैं। इन दोनों के विषय एक ही है—आश्रयदाता की प्रशसा। इस प्रशस्ति के माध्यम से ही ये, अपने सरक्षको से, अपनी जीविका अर्जित करते थे। अपने कथन को और अधिक आकर्षक बनाने के लिये, इस प्रशसा को वे बडी सजीवता

के साथ साहसिकता तथा प्रेम की भावनाओ के आवरण पहना कर प्रस्तुत करते थे। भाटो एव चारणो की रचनाए, अधिकाश मे राजसभाओ के लिए लिखी जाती थी। कभी-कभी, किसी योद्धा विशेष की वीरता, उसकी प्रेम-क्रीडाए, सामान्य जनता के हृदय मे अपना स्थान बना लेती थी, और फिर कवि उन्हे लेकर ही कथा-काव्य की सृष्टि कर डालते थे। साहसिकता तथा प्रेम, इस युग के समाज के, उच्च तथा निम्न दोनो ही वर्गो की, प्रमुख प्रवृत्तिया थी। इस युग की भाषा पर भी अपभ्रंश का काफी प्रभाव था। मुसलमानो के आक्रमण से भारतीय शासको के मस्तिष्क मे एक दुश्चिन्ता-सी उत्पन्न हो गई थी। इस दुश्चिन्ता ने, राजसभाओ के कवियो के हृदयो मे, देश भक्ति की भावना उत्पन्न कर दी थी। इसी प्रेरणा से, उनकी रचनाओ मे भी, देशभक्ति की भावना का सचार हो गया था। किन्तु यह नवीन साहित्य भी मुसलमानी आक्रमण की तीव्रता को रोकने मे असफल हुआ। भारतीय शासक, भारतीय जीवन की एकता को, अपने पारस्परिक झगडो से पूर्णत नष्ट कर चुके थे। देश के शासको की पराजय से उनकी राजसभाओ मे निर्मित होने वाले साहित्य की प्रगति भी अवरुद्ध हो गयी।

मुसलमानी शासन की स्थापना तथा इस्लामी सभ्यता के प्रवेश ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे, सन्त-साहित्य के रूप मे एक नई भावधारा उत्पन्न की। बौद्ध-सिद्धो तथा नाथ-पन्थी योगियो ने, पुरातन सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपना विरोध अभिव्यक्त किया था, किन्तु अब एक नया प्रश्न खडा था विदेश से आई हुई धार्मिक भावना का, भारतीय धर्म भावना के साथ तीव्र सघर्ष चल रहा था। इस नवीन परिस्थिति मे, समाज मे क्रातिकारी परिवर्तन उपस्थित करने का पुराना स्वर, विशेष सफल नही हो सकता था। इसीलिये मनुष्य की मूलभूत एकता पर बल देने वाले सन्तो का प्राधान्य हुआ। इस भावना की प्रथम अभिव्यक्ति कबीर ने की। दादू, रैदास तथा अन्य सन्त कवियो ने उन्ही का अनुसरण किया। ये सभी कवि प्रचारक थे, और जनता मे अपनी भावधारा के प्रचार के लिये, उन्होने देश के एक भाग से दूसरे भाग तक की यात्राएँ की। यही कारण है कि हमें सन्त कवियो की रचनाओ मे, उत्तर भारत की उन सभी भाषाओ के शब्द मिलते हैं, जो उनके समय मे प्रचलित थी। इन कवियो से हिन्दी भाषा की, अन्य प्रभावो के ग्रहण करने की शक्ति को, विशेष बल मिला।

जनसाधारण मे मनुष्य की मूलभूत एकता की भावना के प्रचार के लिये हिन्दू तथा इस्लाम धर्म की समान मान्यताओं पर बल देना आवश्यक था। सन्त कवियो की रचनाओ मे, इसी प्रेरणा से हम अद्वैतवाद का ग्रहण देखते है। इस्लाम के अनुयायियो मे, इसी सिद्धान्त से मिलती-जुलती, सूफी भावधारा का प्रचार बढा।

सूफी कवियो ने अपनी विचारधारा के प्रचार के लिए छोटे तथा बडे कथा-काव्य लिखे, और उनमे उन्होने अपने सिद्धान्तो को जीवन मे चरितार्थ करने का प्रयत्न किया। पार्थिव सौन्दर्य मे उन्होंने दिव्य आभा प्रकट की, और मानवीय प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम का आभास दिया। ये कवि भी, जनता के बीच, अपनी विचारधारा को प्रचलित करना चाहते थे, इसीलिये इन्होने भी, 'अपनी रचनाओ मे, जनभाषा का प्रयोग किया। सूफी कवियो की सभी रचनाए, उनके युग की अवधी भाषा मे मिलती हैं।

मुसलमानी शासन की स्थापना के अनन्तर, भारतवर्ष मे एक सामाजिक तथा सास्कृतिक पुनरुत्थान की प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ। इस प्रवृत्ति ने, नवीन आदर्शो की स्थापना का नही, वरन् पुराने आदर्शो को पुन लाने का प्रयास किया। मुसलमान भारतवर्ष मे, एक पिछडी हुई सामाजिक व्यवस्था को लेकर आये थे, इसीलिये उनके आगमन से भारतीय समाज के विकास को कोई विशेष योग नही मिला। उनकी विजय ने, एक प्रत्यावर्तन की प्रवृत्ति उत्पन्न कर दी। यही कारण था कि नये सामाजिक तथा सास्कृतिक आदर्शो की खोज के स्थान पर, शास्त्रो मे बताये गये पथ को ही ग्रहण करना, श्रेयस्कर समझा गया। साहित्य के क्षेत्र मे भी, इस प्रवृत्ति ने, पुराने आदर्शो को पुन स्थापित करने का प्रयत्न किया। हिन्दी के प्रमुख कवि सूरदास, नन्ददास आदि सभी की कृतिया, सस्कृत के ग्रथो को आदर्श मानकर लिखी गयी। तुलसीदास जी ने भी, इसीलिये अपनी भक्ति भावना के माध्यम से विश्वजनीनता की भावना का प्रचार करते हुये भी, अनेक स्थलो पर, वर्ण और जाति-भेद की पुष्टि की। वे भी विनष्ट सामाजिक व्यवस्था को, पुनर्जीवित करना चाहते थे।

इन कवियो की रचनाओ मे हम, भक्ति या उपासना की भावना को, अन्तर्निहित देखते हैं। भक्ति से तात्पर्य, इष्टदेव के प्रति आत्मनिवेदन या आत्मसमर्पण से है। इस व्याख्या के अनुसार हम भक्ति-भावना को एक व्यक्ति के जीवन मे ही, अभिव्यक्त देख सकते हैं, किन्तु हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे उसने, सामूहिक चेतना उत्पन्न की थी। इस युग की किसी भी कृति मे हमे, सचेष्ट साहित्य निर्माण की प्रवृत्ति नहीं मिलती। ये रचनाएँ, इष्टदेव के प्रति, उनके रचयिताओं के प्रगाढ अनुराग को, अभिव्यक्त करने के लिए लिखी गयी थी। किन्तु अपने निर्माण के समय ही वे जन-कल्याण की भावना से ओतप्रोत होने के कारण, जनसाधारण मे मान्य हो गयीं। यह इन मध्ययुगीन धार्मिक आदोलनो का प्रभाव ही था, कि हिन्दी साहित्य मे साहित्यिक गुणो का आविर्भाव हुआ। भक्तकवियो ने हिन्दी भाषा को साहित्यिक माधुर्य भी प्रदान किया।

मध्ययुगीन भक्ति-काव्य की दो प्रमुख धाराएँ, राम-काव्य तथा कृष्ण-काव्य थी। राम-काव्य के प्रमुख निर्माता तुलसीदास थे। अपने 'रामचरित मानस' तथा राम के जीवन से सम्बन्धित अन्य कृतियो मे उन्होने, अपने युग के आदर्श को स्पष्ट किया। उन्होने यह दिखाने का प्रयत्न किया, कि आदर्श शासक किस प्रकार का होना चाहिए, तथा समाज के सबसे छोटे अंग—परिवार की एकता किन आदर्शों पर निर्मित होनी चाहिए। 'विनय-पत्रिका' मे उन्होने अपने इष्टदेव मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति, अपने हृदय के आन्तरिक भावो को अभिव्यक्त किया। उन्होने इष्टदेव तथा अपने बीच जिस सम्बन्ध की स्थापना की थी, वह स्वामी और सेवक का था। उनके अनुसार, सेवक, अपने स्वामी के आदर्श जीवन का चिन्तन तथा अनुसरण करता हुआ ही, अपनी मनोकामना को पूर्ण कर सकता है। तुलसीदास जी ने भी अपनी रचनाएँ, अपने समय की प्रचलित जनभाषाओ, अवधी तथा ब्रजभाषा मे प्रस्तुत की थी।

भक्ति काव्य की दूसरी धारा, कृष्ण-काव्य का निर्माण अधिकाश मे वल्लभ सम्प्रदाय के पुष्टिमार्गीय भक्तो ने किया। इस सम्प्रदाय के मुख्य कवि सूरदास और नन्ददास थे। सूरदास जी ने, श्री नाथ जी के चरणो मे बैठकर, उनकी दिनचर्या का वर्णन करते हुए अपने पदो की रचना की। उन्होने कृष्ण की बाल-लीलाओ तथा प्रेम-क्रीडाओ को, अपनी रचनाओ मे प्रमुख स्थान दिया था। नन्ददास जी की रचनाओ के भी यही विषय थे, किन्तु वे सस्कृत काव्य-शास्त्र के पडित थे, इसलिये उनकी रचनाओ मे कविता की शास्त्रीय विशेषताएँ भी मिलती है। इनकी रचनाओ को हम सचेष्ट साहित्यिक कृतिया कह सकते है। सूरदास, नन्ददास तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियो की रचनाएँ हमे ब्रज भाषा मे मिलती है। वल्लभ सप्रदाय के अतिरिक्त राधावल्लभी, टट्टी, गौडीय आदि सप्रदायो के भक्तो ने भी कृष्ण काव्य का निर्माण किया था, उनकी रचनाओ की भाव-धारा, अभिव्यञ्जना प्रणाली तथा कला-पक्ष भी सूरदास, नन्ददास आदि की भाँति ही है।

हिन्दी के कृष्ण-काव्य का अध्ययन करते हुये विद्यापति और मीरा का उल्लेख भी आवश्यक है। विद्यापति ने, वल्लभ एव अन्य कृष्ण-भक्ति सम्प्रदायो की स्थापना के पूर्व ही, राधाकृष्ण की प्रेम-लीला को लेकर बहुत से पदो की रचना की थी। उनकी रचनाओ मे लौकिक प्रेम की भावना भी अभिव्यक्त हुई है। मीरा ने, वल्लभ सम्प्रदाय को स्थापना के अनन्तर अपने पदो की रचना की थो, किन्तु उन्होने, अपनी रचनाएँ इस सम्प्रदाय से सम्बन्धित होकर नही, वरन स्वतन्त्र रूप से लिखी। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी साहित्य मे अपनी व्यक्तिगत भावनाओ को अभिव्यक्त करने वाली मीरा अकेली कवयित्री हैं। उन्होने अपनी समस्त रचनाएँ राजस्थानी

मे लिखी थी।

हिन्दी प्रदेश मे, मुस्लिम-शासन ने अपने को दृढ करने के लिए, शेष हिन्दू शासको के साथ सन्धि करने तथा उन्हे अपनी राज-सभाओं मे सम्मानित पद प्रदान करने की नीति अपनायी। हिन्दू कलाकारो तथा साहित्यिको को भी, मुसलमान शासको के यहाँ आदर और सम्मान मिलने लगा। मुसलमानी राजसभा मे, सबसे पहले सम्मानित होने वाले हिन्दू कलाकार, तानसेन थे, और साहित्यिको मे, सर्व प्रथम गग कवि। मुसलमान शासको ने सभी हिंदू राज्यो को नष्ट नही किया, इसलिये, शेष रही हिन्दू राजसभाओ मे भी हिन्दी कवियो को आश्रय प्राप्त होता रहा। हिन्दू राजसभाओ मे पोषण प्राप्त करने वाले कवियो मे, केशव, विहारी, मतिराम, पद्माकर आदि विशेष महत्व के कहे जा सकते हैं।

इन हिन्दू तथा मुसलमान राजसभाओ मे लिखे जाने वाले साहित्य मे काव्य के वास्तविक सौन्दर्य के स्थान पर वाह्य-कलात्मकता को अधिक महत्व दिया गया है। इस युग के कवियो का मुख्य उद्देश्य, अपने आश्रयदाता अथवा सरक्षको को प्रसन्न करके, उनसे वडे-वडे पुरस्कार प्राप्त करना था। इन पुरस्कारो की प्राप्ति के लिए कवियो को दो वातो की ओर, विशेष ध्यान देना पडता था एक तो उन्हे अपने सरक्षको की मनोवृत्ति के अनुकूल काव्य रचना करनी होती थी, दूसरे, राज-सभाओ मे सम्मानित पण्डितो तथा शास्त्रज्ञो से भी प्रशसा प्राप्त करनी होती थी। पण्डितो तथा शास्त्रज्ञो से प्रशसा प्राप्त करके, वे अपने पुरस्कारो को और अधिक वढवा लेते थे। इन्हीं कारणो से, इस युग के साहित्य मे शृगारिक भावना तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की वृत्ति का प्राधान्य है। शृंगारिक भावना को, उस युग के कवियो ने, अपने आश्रयदाताओ मे विशेष रूप से पाकर युग की मूल मनोभावना के रूप मे, ग्रहण किया था, और पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये उन्होंने, सस्कृत काव्य-शास्त्र को आधार बनाया था।

सस्कृत साहित्य मे काव्य के मर्म का अनुसधान करते हुए, अलकार, रीति, वक्रोक्ति, रस, ध्वनि, आदि सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। इस युग के साहित्य मे, काव्य के सम्बन्ध मे, यही विभिन्न मत उद्धृत किये गये हैं। अलकार सिद्धान्त को, जो कि केवल काव्य-शरीर का अध्ययन करता है, विशेष रूप से, आचार्य केशव ने ग्रहण किया था। विभिन्न अलकारो की परिभाषा तथा उदाहरण देने के साथ-साथ उन्होंने छन्दो के अनेक प्रकारो के भी उदाहरण प्रस्तुत किये थे। रीति-सिद्धान्त, जिसकी व्याख्या विशिष्ट पद-रचना के रूप मे की गई है, इस युग के समस्त साहित्य में अन्तर्धारा के रूप में परिव्याप्त है। रस-सिद्धान्त, जिसमे काव्य रचना की भावात्मकता को विशेष महत्व दिया गया है, मतिराम आदि

कवियो ने ग्रहण किया था। ध्वनि-सिद्धांत का विवेचन हमे भिखारीदास के 'काव्य-निर्णय' मे मिलता है। इस प्रकार यद्यपि हमे आचार्य शुक्ल के शब्दो मे रीति युग म सस्कृत साहित्य-शास्त्र की सक्षिप्त उद्धरणी मिल जाती है, किन्तु इस युग के कवि सब से अधिक अलकार-सिद्धान्त की ओर आकर्षित थे। इस प्रसग मे यदि यह नहीं कहा जा सकता कि यही उस युग का मूल सिद्धान्त था, तो यह तो कहा ही जा सकता है कि इस काल की अधिकाश रचनाओ का सबन्ध अलकार-सिद्धा त से है। इस युग की रचनाओ के अध्ययन से, यह स्पष्ट हो जाता है, कि प्रारम्भ मे एक अलकार की एक दोहे मे परिभाषा देकर, उसके अनन्तर कवित्त तथा सवैया मे, उसका उदाहरण प्रस्तुत करने की, एक निश्चित परम्परा सी प्रारम्भ हो गई थी, और वह इतनी सुदृढ थी, कि भूषण जैसा हिन्दू पुनरुत्थान की भावना से ओत-प्रोत कवि भी अपने को उससे अलग नही रख सका।

युग की शृगार भावना ने, नायक-नायिका-भेद, नखशिख-वर्णन, षट्-ऋतु-वर्णन, बारहमासा आदि विषयो मे, अपने को अभिव्यक्त किया था। इस युग मे कुछ अष्टयाम भी लिखे गये थे, जिनमे शृ गार भावना से ओत-प्रोत नायक की एक दिन के विभिन्न यामो की विलास-क्रीडा के विवरण है। इस शृ गारिक साहित्य के पीछे, सस्कृत के शृगारिक ग्रन्थो, विशेष रूप से भर्तृहरि के 'शृगार शतक' तथा वात्सायन के 'कामसूत्र' की प्रेरणा, देखी जा सकती है। हिन्दी के इस शृगारिक साहित्य मे एक नवीनता भी है कवियो ने सामान्यत विभिन्न प्रकार की शृगारिक चेष्टाओ के वर्णन के लिये, राधा तथा कृष्ण के स्नेह सम्बन्ध को माध्यम बनाया है।

इस युग की कुछ रचनाए, जैसे केशवदास का 'वीर सिंह देव चरित्', सूदन का 'सुजान चरित्,' पद्माकर की 'हिम्मत बहादुर विरुदावली', गोरेलाल का 'छत्र प्रकाश' आदि चारण काव्यो की परम्परा मे लिखित प्रतीत होती है। इस प्रकार की रचनाओं की सख्या बहुत थोडी है, और यद्यपि उनमे से कुछ, जैसे 'छत्र प्रकाश सामयिक इतिहास को बडी वास्तविकता के साथ प्रस्तुत करती है, तथापि अधिकाश रचनाएँ अतिरञ्जना तथा अतिशयोक्ति की भावना से अनुप्राणित है। इस युग मे कुछ नीति सम्बन्धी रचनाएँ भी लिखी गई थी, जिनमे रहीम के नीति परक दोहे, गिरिधर राय की कुण्डलिया और वृन्द के दोहे विशेप रूप से उल्लेखनीय है।

इस काल की भाषा मे भी कलात्मकता के प्रदर्शन की वृत्ति है। यद्यपि कवियो ने ग्रामीण शब्दो के साथ, सस्कृत और फारसी शब्दो का, बडी स्वतन्त्रता के साथ उपयोग किया है, तथापि इस युग की काव्य-भाषा की कुछ निश्चित सीमाएँ हैं। कवियो ने नायक अथवा नायिका की आखो का वर्णन करते हुए, उन्हे मृग, कमल,

मीन, खञ्जन या चकोर के समान बताया है। मुख की उपमा उन्होंने चन्द्रमा या कमल अथवा दर्पण से दी है। इसी प्रकार विभिन्न वर्णनीयों के लिए, उस युग में, कवियो द्वारा निश्चित उपमानो का प्रयोग किया गया है। अभिव्यञ्जना की यह प्रणाली, पूर्णत, उस काव्य-परिपाटी के अनुरूप थी, जो सस्कृत कवियो की परम्परा से चली आ रही थी। उस युग के काव्य-रूपो, छन्दो की सख्या भी सीमित थी, अधिकाश कवियो ने दोहा, कवित्त, तथा सवैय्या ही लिखे थे।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य का यह ऐतिहासिक अनुशीलन, अपूर्ण ही रह जायगा, यदि समय समय पर किये गये गद्य के प्रयोगो को छोड दिया जाय। अग्रेजी प्रभाव के बाद हिन्दी मे, विशेष रूप से गद्य साहित्य का विकास हुआ है, इसलिए यदि हम उसके पूर्व होने वाले गद्य के प्रयोगो को छोड़ दे, तो हो सकता है, हमारे निर्णय सही न हो। हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास मे, गद्य का प्रयोग, हमे सर्व प्रथम, नाथपन्थी योगियो द्वारा मिलता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखको ने, सामान्यत अपनी रचनाओ मे, नाथपन्थी लेखको की कृतियो से गद्य का जो उद्धरण प्रस्तुत किया है, वह वार्त्तालाप के रूप मे है, और आध्यात्मिक ज्ञान का विश्लेषण करता है। उसके अनन्तर मिथिला के ज्योतिरीश्वर ठाकुर की गद्य रचनाएँ आती हैं, जिनमे काव्य का भावात्मक सौन्दर्य है। यह गद्य मैथिली भाषा मे है। राजस्थानी मे, गद्य का प्रयोग हमे ख्यातो मे मिलता है, जिनमे विभिन्न राजवशो के इतिहास का वर्णन है। ब्रज भाषा मे गद्य रचनाएँ सर्व प्रथम वल्लभ सम्प्रदाय द्वारा प्रस्तुत की गई। इस सम्प्रदाय का सर्व प्रथम गद्य ग्रथ, विट्ठलनाथ का 'शृगार रस मन्डन' है, जिसमें शृगार भावना का भक्ति की दृष्टि से विवेचन है। इस सम्प्रदाय की अन्य गद्य रचनाएँ, यद्यपि उनकी प्रामाणिकता के विषय मे सन्देह है, 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' तथा 'दोसौ बावन वैष्णवन की वार्त्ता' हैं। इन दोनो ग्रन्थो मे पुष्टिमाग के भक्तो की छोटी-छोटी जीवन-कथायें दी हुई हैं। ब्रज भाषा गद्य की अन्य महत्वपूण रचनाएं नाभादास कृत 'अष्टयाम', वैकुण्ठमणि शुक्ल कृत 'अगहन माहात्म्य' तथा 'वैशाख माहात्म्य', सुरति मिश्र कृत 'आइने अकबरी की भाषा वचनिका' आदि हैं। खडी बोली का प्रथम गद्य-ग्रन्थ गग कवि का 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' माना जाता है

इन विभिन्न रचनाओ मे, गद्य का रूप मिथिला के ज्योतिरीश्वर ठाकुर की रचनाओ को छोड कर, अत्यन्त शिथिल तथा अव्यवस्थित है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर की गद्य रचना का एक उद्धरण आगे प्रस्तुत किया जाता है।

अधकारक ललित वर्णन

मर्णन पाताल अइमन दु प्रवेश, स्त्रीक चरित्र अइसन दुर्लक्ष्य,

कालिन्दिक कल्लोल अइसन मासल, काजरक पर्वत अइसन निविड, ·· ····· भानकक नगर अइसन भयानक, कुम्भव अइसन निफल, अज्ञान अइसन सम्मोहक, मन अइसन सर्वतोगामी, अहकार अइसन उन्मत्त, परद्रोह अइसन अभव्य, पाप अइमन मलिन एव विधि अति व्यापक दु सचर, दृष्टि बन्धक, भयानक गम्भीर, शुचि भेद अ धकार देपु ।"[१]

इन पक्तियो का काव्य-सौन्दर्य बडा सम्मोहक है । सन् १७६१ मे लिखित रामप्रसाद निरञ्जनी के 'भाषा योगवाशिष्ठ' की निम्नलिखित पक्तियो मे भी, हिन्दी गद्य का रूप हमे बहुत व्यवस्थित और परिमार्जित मिलता है

"हे राम जी ! जो पुरुष अभिमानी नही है वह शरीर के इष्ट अनिष्ट मे रागद्वेष नही करता क्योकि उसकी शुद्ध वासना है।·· ' मलीन वासना जन्मो का कारण है । ऐसी वासना को छोड कर जब तुम स्थित होगे, तब तुम कर्त्ता हुए भी निर्लेप होगे । और हर्ष शोक आदि विकारो से जब तुम अलग रहोगे, तब वीतराग, भयक्रोध से रहित, रहोगे । जिसने आत्मतत्व पाया है वह जैसे स्थित है वैसे ही तुम भी स्थित हो । इसी दृष्टि को पाकर आत्म तत्व को देखो तब विगत ज्वर होगे और आत्म पद को पाकर फिर जन्म मरण के बन्धन मे न आओगे ।"[२]

इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अग्रेजी प्रभाव के आगमन के पूर्व ही हिन्दी मे गद्य के विभिन्न रूपो का जन्म हो चुका था । यद्यपि उनके विकास की गति बहुत मन्द रही थी और कभी कभी तो उसमे व्याघात भी पड गया था, फिर भी कई साहित्यिक रूपो, आध्यात्मिक विश्लेषण, इतिहास, जीवन-वृत, काव्य-शास्त्रीय निरूपण आदि मे उसका प्रयोग हो चुका था ।

२— इस विकास मे योग देने वाले विभिन्न प्रभाव

अग्रेजी प्रभाव के आगमन के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास का जो अध्ययन हमने अभी समाप्त किया है, उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि इस विकास मे, अपभ्र श, सस्कृत तथा फारसी भाषाओ तथा साहित्यो के प्रभाव ने विशेष योग दिया था । इन विभिन्न प्रभावो का अनुशीलन, अग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य की विशेषताओ तथा सीमाओ के विश्लेषण मे, सहायक होगा । साथ ही इस अध्ययन की समाप्ति पर, अग्रेजी प्रभाव के वास्तविक मूल्य का निर्धारण करते हुए, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावो

१—डॉक्टर जयकात मिश्र के 'हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिट्रेचर', प्रथम भाग, पृष्ठ १२५ से उद्धृत ।

२—रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', (१६४२), पृष्ठ ४११ ।

के तुलनात्मक अध्ययन मे भी सुविधा रहेगी। इन विभिन्न प्रभावो मे, अपभ्रंश भाषा तथा साहित्य के प्रभाव ने, सर्व प्रथम कार्य किया था, इसलिए प्रारम्भ मे उसी का अध्ययन उपस्थित किया जा रहा है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध मे, जो नवीनतम खोजें हुई हैं, उनसे प्रमाणित हो चुका है, कि हिन्दी का विकास अपभ्रंश से हुआ है। हिन्दी भाषा के विकास के पूर्व, विभिन्न अपभ्रंश भाषाए सामाजिक व्यवहार मे प्रयोग मे आती थी, और कुछ समय बाद, साहित्य मे भी उनका उपयोग होने लगा था। अपभ्रंश साहित्य, जहाँ तक हिन्दी से उसका सम्बन्ध है, दो भाषाओ मे, प्राप्त होता है, अर्धमागधी और शौरसेनी। अर्धमागधी का प्रयोग बौद्ध-सिद्धो ने अपनी रचनाओ मे किया था, और शौरसैनी का जैन श्रावको, आचार्यो तथा कवियो ने। बौद्ध-सिद्धो सरहपा सवरपा, लुइपा आदि की रचनाए, दोहा तथा गीतियो के रूपो मे हैं, और उनके विषय, जीवन की रहस्यात्मकता के प्रति आकर्षण उत्पन्न करना, तथा सहज जीवन यापन की वृत्ति जागरूक करना है। उनमे एक वर्गहीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का सदेश भी है। जैन साहित्य, बौद्ध साहित्य की अपेक्षा अधिक विस्तृत है, और उसमे हमे दोहा, चौपाई, कवित्त आदि बहुत से छन्दो का प्रयोग मिलता है। जैन कवियो की रचनाओ मे शृगार, वीर, तथा शान्त रसो की अभिव्यक्ति विशेष रूप से हुई है। उनमे वीर आख्यानो, प्रेम कथाओ तथा नैतिक प्रसगो का उपयोग किया गया है। प्रमुख कवि चतुर्मुख, स्वयभू, हेमचन्द्र, पुष्पदत्त, सोमप्रभु सूरि आदि है। इन कवियो की प्रतिनिधि रचनाएँ, जहा तक हिन्दी साहित्य का सम्बन्ध है 'रामायण', 'महापुराण', 'नागकुमार चरित', 'यशोधर चरित', 'कुमारपाल प्रतिबोध', आदि हैं। पुष्पदत्त ने अपने 'महापुराण' मे, ६२ जैन श्रावको के जीवन-चरित्रो का वर्णन किया है, और उसके 'हरिवंश' खण्ड मे कृष्ण के प्रारम्भिक जीवन तथा उनकी यौवन क्रीडाओ के वर्णन हैं। शेष रचनाओ के विषय स्वय ही स्पष्ट है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अपभ्रंश प्रभाव तीन रूपो में मिलता है : (१) भाषा, (२) छन्द-विधान तथा (३) वस्तु-विन्यास।

(१) हिन्दी भाषा का विकास, अर्धमागधी तथा शौरसैनी अपभ्रंशो से माना जाता है। अपभ्रंश भाषा अपने इन दोनो ही रूपो मे, अधिकाश मे, सयोगावस्था मे थी, यद्यपि वियोगावस्था की प्रवृत्ति भी प्रारम्भ हो गयी थी, जो आगे चल कर हिन्दी मे विशेष रूप से विकसित हुई। अपभ्रंश के अर्धमागधी रूप का प्रभाव नाथ-पन्थी योगियो की रचनाओ मे है, क्योकि ये कवि बौद्ध-सिद्धो की परम्परा मे आते हैं। शौरसैनी अपभ्रंश का प्रभाव चारण कवियो की रचनाओ मे है। हिन्दी भाषा

का अधिकांश शब्द-समूह, विशेष रूप से वे शब्द जिन्हे हम तद्भव कहते हैं, अपभ्रंश से ही आये हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा ने, अपनी प्रारम्भिक अवस्था मे, अपभ्रंश प्रभाव को व्यापक रूप मे ग्रहण किया था। इस प्रभाव के चिह्न अभी तक विद्यमान है।

(२) हिन्दी के छन्द-विन्यास पर भी, पर्याप्त अपभ्रंश प्रभाव है। हिन्दी के अधिकांश छन्द, अपभ्रंश साहित्य से ही ग्रहण किये गये हैं। बौद्ध-सिद्धो की रचनाए, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, दोहा तथा गीतियो के रूपो मे हैं। कबीर आदि संत कवियो ने उन्हे, इन्ही की परम्परा से ग्रहण किया था। सूफी कवियो तथा तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त, दोहा, चौपाई छन्द अपभ्रंश के कवियो स्वयभू तथा पुष्पदन्त की रचनाओ मे प्राप्त होते हैं। हिन्दी के कवियो ने इन्हे जैन कवियो की परम्परा से ही प्राप्त किया होगा। रीतियुग के कवियो द्वारा, विशेष रूप से व्यवहार मे लाये जाने वाले, कवित्त और सवैय्या छन्द भी शौरसैनी अपभ्रंश की रचनाओ मे मिलते है। इस प्रकार केशवदास की 'राम चन्द्रिका' में प्रयुक्त विभिन्न छन्दो को छोड़ कर, जिनमे प्रयोग की भावना परिव्याप्त है, हिन्दी के अधिकांश छन्द अपभ्रंश से ही ग्रहण किये गये है।

(३) अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी कवियो की रचनाओ मे हमे जिन विषयो का उपयोग देखने को मिलता है, अपभ्रंश साहित्य मे वे पहले ही उपयोग मे लाये जा चुके थे। कबीर, दादू तथा अन्य सन्त कवियो की रचनाओ मे, सामाजिक व्यवस्था मे क्रांतिकारी परिवर्तन का जो सन्देश है, वह वास्तव मे, बौद्ध-सिद्धो ने इस सम्बन्ध मे जो कुछ कहा था, उसी की प्रतिध्वनि है। राजस्थान की डिंगल भाषा मे लिखे जाने वाले चारण काव्य, जिनमे आश्रयदाताओ तथा संरक्षको के साहसिक कार्यो तथा प्रेमाख्यानो के वर्णन हैं, हेमचन्द्र के 'विजयपाल रासो' की परम्परा मे लिखित कहे जा सकते हैं। सूफी कवियो के प्रेमाख्यानक काव्य भी कुछ अपभ्रंश रचनाओ—'जसहर' चरिउ, 'सुन्दर-चरिउ' आदि की परम्परा मे ही आते हैं। नवीनतम खोजो ने यह भी प्रमाणित कर दिया है, कि कृष्ण और राम-काव्य, जो अब तक, सीधे संस्कृत साहित्य से आये हुए समझे जाते थे, अपभ्रंश साहित्य से ही होकर आये हैं। उत्तर-भक्तिकाल तथा रीतियुग में लिखी जाने वाली नीति सम्बन्धी रचनाए भी अपभ्रंश साहित्य की ही परम्परा मे हैं।

समय के अनुक्रम मे, अपभ्रंश प्रभाव के अनन्तर, संस्कृत प्रभाव आता है। संस्कृत ने केवल हिन्दी ही नही, वरन् अधिकांश आधुनिक भारतीय भाषाओ को प्रभावित किया है। यही कारण है कि संस्कृत के बहुत से शब्द, इन सभी भाषाओ मे

प्राप्त होते हैं। सस्कृत का प्रभाव इन भाषाओ के साहित्यो पर भी है। सस्कृत साहित्य का प्रारम्भ वेदो से है। उनके अनन्तर उपनिषद्, ब्राह्मण, महाकाव्य, पुराण, प्रबन्ध काव्य, नाटक, नाट्यशास्त्र, काव्यशास्त्र और गद्य की कथात्मक रचनाए आती हे। इनमे हिन्दी साहित्य की दृष्टि से सब से अधिक महत्वपूर्ण, दो महाकाव्य 'रामायण' और 'महाभारत', दो पुराण 'हरिवश' और 'भागवत', और भामह, दण्डिन वामन, विश्वनाथ, मम्मट आदि के काव्यशास्त्र के ग्रन्थ है। अन्य साहित्यकार, जिन्होने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है, कालिदास, भवभूति तथा बाणभट्ट है। सस्कृत की दो नाटकीय रचनाएँ 'प्रसन्न राघव' तथा 'हनुमन् नाटक' भी हिन्दी साहित्य पर अपना प्रभाव छोड गयी हैं। जयदेव के 'गीत गोविन्द' का भी, हिन्दी के कृष्ण साहित्य पर पर्याप्त प्रभाव है। सस्कृत कवियो ने वर्णिक छन्दो का ही प्रयोग किया है, केवल जयदेव ने ही पद लिखे थे। बाणभट्ट की गद्य रचनाओ मे हमे काव्य का कलात्मक सौन्दर्य मुग्ध करता है, उनके वाक्यो का विस्तार बहुत अधिक है।

हिन्दी भाषा पर सस्कृत का प्रभाव, बडा स्पष्ट और व्यापक है। उन शब्दो को छोडकर, जो अरबी, फारसी, आदि बाहरी भाषाओ से ग्रहण किये गये है अथवा ग्रामीण भाषाओ से आये हैं, हिन्दी का शेष शब्द-समूह, सीधे अथवा घूम फिर कर सस्कृत से ही आया है। सस्कृत से सीधे लिये गये शब्द वे है, जिन्हे हम तत्सम कहते है। तद्भव रूप भी सस्कृत से ही आये हैं, किन्तु प्राकृत तथा अपभ्रश भाषाओ मे होकर आने के कारण, उनमे ध्वनि-विकार हो गये है। हिन्दी साहित्य के विकास मे कृष्ण-काव्य के युग से, सस्कृत शब्दो को सीधे ग्रहण करने की वृत्ति प्रारम्भ हुई थी, राम-काव्य के साथ वह और अधिक विकसित हुई, और रीतियुग के कवियो—केशव, मतिराम, पद्माकर आदि ने तो उसे अतिम शिखर तक पहुचा दिया। हिन्दी काव्य-शास्त्र तथा नायक-नायिका-भेद के ग्रन्थो के पारिभाषिक शब्द तो, सीधे सस्कृत से ही ग्रहण किये गये हैं।

(२) सस्कृत के छन्द-विन्यास ने, आधुनिक काल के पूर्व, हिन्दी कवियो को विशेष आकर्षित नही किया था, फिर भी केशव तथा उनकी विचारधारा के अन्य कवियो ने, सस्कृत छन्दो का उपयोग किया है। तुलसीदास ने भी, सस्कृत के वर्णिक छन्दो में से अनुष्टुप, मालिनी, तोटक, भुजग-प्रयात्, वसन्त-तिलका आदि का उपयोग किया है।

(३) हिन्दी साहित्य पर भी सस्कृत प्रभाव कृष्ण-काव्य मे ही प्रारम्भ होता है। मध्य युग मे, मुसलमानी आक्रमणो तथा उनके साम्राज्य की स्थापना के कारण, भारतीय जन समुदाय मे, एक आत्मरक्षा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। इसी

भावना ने, सस्कृत प्रभाव को भी जन्म दिया तथा व्यापक बनाया था। हिन्दी का कृष्ण-काव्य वस्तुत 'श्रीमद्भागवत' पर आधारित है। यही वल्लभ सम्प्रदाय का मान्य ग्रथ था और इसी सम्प्रदाय के कवियो द्वारा लिखित ग्रन्थो पर इसका प्रभाव विशेष रूप से है। वल्लभ सम्प्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण कवि, सूरदास जी ने अपने 'सूरसागर' की रूप रेखा, 'श्रीमद्भागवत' जैसी ही रक्खी है। उसका वस्तु-विन्यास भी, इस ग्रन्थ से प्रभावित है, किन्तु उन्होंने उसे युग की भावना से अनुप्राणित कर दिया है। जिस प्रकार 'श्रीमद्भागवत' मे भगवान के दशावतारो की कथा है, उसी प्रकार, वह 'सूरसागर' मे भी है, किन्तु सूर के ग्रथ में कृष्ण लीला को विशेष महत्व तथा विस्तार दिया गया है। कृष्ण चरित्र के वर्णन मे भी सूरदास जी ने, उनके बाल्य-काल तथा युवावस्था मे राधा तथा गोपियो के साथ उनके प्रणय सम्बन्ध पर विशेष बल दिया है। 'श्रीमद्भागवत' के कृष्ण चरित्र मे, लोकोत्तरता की भावना परि-व्याप्त है। सूरदास जी ने उसी कथा-सूत्र को बडे स्वाभाविक वातावरण मे उपस्थित किया है। उन्होंने कृष्ण चरित्र को, लीला गान की भावना से, गेय पदो मे प्रस्तुत किया है। 'श्रीमद्भागवत' एक पौराणिक आख्यान है, इसलिये वह वर्णनात्मक छदो मे है। सूरदास के बाद, वल्लभ सम्प्रदाय के कवियो मे, नन्ददास, का नाम आता है। उनकी रचना 'रास पञ्चाध्यायी' पर 'श्रीमद्भागवत' का प्रभाव स्पष्ट है। अनेक स्थलो पर तो उन्होने 'भागवत' का अनुवाद ही कर दिया है, किन्तु अपनी दूसरी रचना, 'भवर गीत' मे उन्होने, युग की भावना को अभिव्यक्त किया है। 'भागवत' मे गोपियो ने उद्धव के साथ तर्क-वितर्क करने के अनन्तर, निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना को स्वीकार कर लिया है, किन्तु हिन्दी कृष्ण-काव्य मे गोपियो ने उद्धव के तर्को को छिन्न-भिन्न करके, कृष्ण के मानवीय चरित्र के प्रति, अपनी आस्था बनाये रक्खी है। अन्य सस्कृत ग्रथ, जिन्होने हिन्दी कृष्ण-काव्य को प्रभावित किया है, 'देवी भागवत' और 'हरिवश' हैं। राधा का चरित्र हिन्दी कवियो ने 'देवी भागवत', से लिया है।

राम-काव्य मे, तुलसीदास जी के 'राम चरित मानस' पर, 'वाल्मीकीय रामायण', 'अध्यात्म रामायण', 'प्रसन्न राघव', 'हनुमन-नाटक', आदि सस्कृत ग्रथो का प्रभाव है। 'विनय पत्रिका' के कुछ पदो मे, सस्कृत स्तोत्रो की प्रणाली का अनुसरण किया गया है।

रीतियुग के साहित्य पर, सस्कृत प्रभाव का अध्ययन, पहले ही किया जा चुका है, इस स्थल पर इतना कह देना ही पर्याप्त होगा, कि उस युग के कवियो ने काव्य-भाषा तथा विषय-वस्तु दोनों ही दृष्टियो से, सस्कृत साहित्य की परम्परा का ही अनुसरण

किया था।

फारसी प्रभाव ने जिसे इस्लामी प्रभाव कहना अधिक उपयुक्त होगा, विद्वानो का ध्यान, अपनी ओर अधिक आकर्षित किया है। मध्ययुग मे उत्तर भारत मे मुसलमानों का राज्य स्थापित हो गया था, इसलिये फारसी भाषा तथा साहित्य का प्रभाव उस युग की, उत्तर भारत की, सभी भाषाओ पर है। हिन्दी प्रदेश, सब से अधिक, मुसलमान शासको का कार्य-क्षेत्र रहा था, इसीलिए, इस प्रदेश के साहित्य पर इस्लाम का प्रभाव विशेष स्पष्ट और व्यापक है। फारसी साहित्य के मसनवी लेखको मे सानाई, निजामी, फरीदुद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी, शेखसादी, जामी, फिरदौसी आदि ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है। इन कवियो की रचनाएँ, जिन्होने हिन्दी साहित्य को प्रभावित किया है—'लैला मजनू', 'यूसुफ जुलेखा' आदि प्रेमाख्यानक काव्य हैं। ये सभी सूफी धर्म के प्रमुख तत्वो को स्पष्ट करने के लिए लिखे गये, रूपक की भावना से अनुप्राणित काव्य हैं। ये रचनाए मसनवी छन्द मे है, इसी आधार पर इन को भी मसनवी कहा गया है।

(१) हिन्दी भाषा पर फारसी का प्रभाव बहुत व्यापक है। मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना के साथ ही, फारसी को राजभाषा का महत्व प्राप्त हो गया था। इसी कारण जनसाधारण मे भी उसके बहुत से शब्द प्रचलित हो गये थे। हिन्दी के मध्य युग के कवियो ने, वे चाहे किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बंधित रहे हो, अथवा किसी राजदरबार से, अरबी, फारसी के प्रचलित शब्दो का उन्होने बडी स्वतन्त्रता के साथ प्रयोग किया है। कबीर, दादू आदि संत कवियो की रचनाओ मे, सूफी धर्म के कुछ विशिष्ट शब्द भी देखने को मिलते हैं। सूफी कवियो के प्रेमाख्यानक काव्यो मे तो उनका प्रयोग और भी अधिक है। हिन्दी भाषा ने फारसी प्रभाव से कुछ नई ध्वनिया भी ग्रहण की हैं। फारसी से ग्रहण किये गये मुहावरो अथवा प्रयोगो की संख्या भी बहुत अधिक है।

संस्कृत की भाति, फारसी छन्द-विन्यास ने भी, हिन्दी को विशेष प्रभावित नही किया है। प्रारम्भिक युग मे, अमीर खुसरो तथा कबीर ने, कुछ गजले अवश्य लिखी थी, किन्तु उनके बाद, अन्य किसी कवि ने इस काव्य-रूप का प्रयोग नही किया। केवल आधुनिक काल मे आकर ही, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, 'प्रेमघन' आदि ने फिर इस काव्य-शैली को ग्रहण किया। हिन्दी के सूफी कवियो के प्रेमाख्यानक काव्यो मे, जिस मसनवी शैली के उपयोग की बात कही जाती है, उनमे भी, छन्द-विन्यास हिन्दी का ही है, केवल कथा का विकास-क्रम फारसी मसनवियो की भाति है। हिन्दी मे सूफी कवियो मे कथा काव्य, दोहा, चौपाई छन्दो मे हैं, जो शौरसैनी

अपभ्रंश में लिखित जैनाचार्यों की रचनाओं से लिए गये थे।

(३) हिन्दी साहित्य पर फारसी प्रभाव, सूफी विचारधारा के रूप मे आया है। उन विद्वानो का, जिन्होने इस विषय पर विशेष रूप से कार्य किया है, मत है, कि यह दो धाराओ मे होकर आया था। प्रथम धारा उन मुसलमानो के साथ आयी थी जो कि व्यापार और वाणिज्य के लिए अपना देश छोड कर दक्षिण भारत मे आकर बस गये थे। इस प्रकार की बस्तिया सातवी शताब्दी के लगभग प्रारम्भ हुई थी, और उसके बहुत समय बाद तक चलती रही। इस युग मे सूफी विचारधारा का प्रभाव, सूफी साहित्य के अध्ययन से नही, वरन् सूफी सतो के सम्पर्क और उपदेश, तथा उनके साधारण और पवित्र जीवन के अवलोकन से आया था। उनके उपदेश के प्रमुख तत्व एकेश्वरवाद, आध्यात्मिक साधना, भगवान के प्रति आत्म-समर्पण, तथा गुरु के प्रति आदर और श्रद्धा थे। साथ ही उन्होने अपने उपदेशो से, वर्ण-भेद अथवा जातिभेद से प्रेरित असमानता की उपेक्षा, तथा धार्मिक कर्म-काण्ड के प्रति अविश्वास की भावना का प्रचार किया था। दक्षिण के आडवर सतो की रचनाओ मे ये सभी तत्व मिलते हैं। दक्षिण से भक्ति भावना का प्रसार जब उत्तर की ओर हुआ तो ये सभी तत्व उत्तर भारत के साहित्य मे कबीर आदि सन्त कवियो की रचनाओ मे, दिखाई देने लगे। इस स्थल पर यह उल्लेख भी आवश्यक है, कि जहाँ तक सामाजिक व्यवस्था को बदलने, तथा जाति-भेद, वर्ण-भेद आदि से उत्पन्न असमानताओ को दूर करने की प्रवृत्ति है, सत कवियो ने इसे दक्षिण के इस्लामी प्रभाव से अधिक उत्तर के ही बौद्ध-सिद्धो तथा नाथपन्थी कवियो से ग्रहण किया था।

सूफी प्रभाव की द्वितीय धारा उत्तर भारत मे मुसलमानी साम्राज्य की स्थापना के साथ आयी थी, जब हम कबीर, दादू, रैदास आदि को सूफी धर्म के विशिष्ट शब्दो का प्रयोग प्रचुर सख्या मे करते हुए पाते है। 'लैला मजनू', 'यूसुफ जुलेखा' आदि फारसी मसनवियाँ, जो लौकिक प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम की भावना को स्पष्ट करने के लिए लिखी गयी थी, काल्पनिक कथासूत्रो को लेकर चलती है, और उनका मूल उद्देश्य सूफी विचारधारा का प्रचार है। हिन्दी के सूफी कवियो ने भी, फारसी पद्धति का निकट से अनुसरण किया है, किन्तु उनकी सभी कथाएँ काल्पनिक नही है। कुछ प्रेमाख्यानो, जैसे जायसी की 'पदुमावति' मे रतन सिह, अलाउद्दीन खिलजी आदि ऐतिहासिक व्यक्ति भी आये हैं। अभिव्यञ्जना की प्रणाली मे भी कुछ नवीनता है। हिन्दी के कवियो ने, लौकिक प्रेम का, इतनी सूक्ष्मता तथा रगीनी के साथ वर्णन किया है, कि आध्यात्मिक प्रेम के वर्णन का मूल उद्देश्य, कही-कही खो-सा गया है।

इस्लामी प्रभाव का कुछ प्रतिगामी रूप भी रहा है। ललित कलाओ के सम्बन्ध मे इस्लाम का धार्मिक दृष्टिकोण बहुत सकुचित है, और यद्यपि अबुल फजल ने लिखा है, कि अकबर के राज्यकाल मे, उसमे कुछ उदारता आ गई थी, तथापि सस्कृत की नाटकीय परम्परा हिन्दी मे जागरूक नही हो सकी। इस्लामी प्रभाव का एक और प्रतिक्रियावादी पक्ष था। मुसलमान भारत मे एक पिछडी हुई सामाजिक व्यवस्था को लेकर आये थे, उनकी विजय से भारतीय समाज का विकास अवरूद्ध हो गया था, तथा जनसाधारण मे एक आत्म-रक्षा की भावना उत्पन्न हो गयी थी। इसीलिए, हम मध्य युग मे, हिन्दी के कवियो को, नवीन क्षेत्रो की ओर बढते तथा नवीन प्रवृत्तियो को ग्रहण करते हुए न पाकर, पुरातन की पुन स्थापना करते हुए देखते है, क्योकि वह अपनी समस्त महानताओ तथा विभूतियो के साथ समाप्त होता जा रहा था।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की प्रमुख विशेषताये

इन विभिन्न प्रभावो के अध्ययन से, सामान्य धारणा यह होती है, कि हिन्दी भाषा का अधिकाश शब्द-समूह अन्य भाषाओ से लिया गया है, तथा हिन्दी साहित्य का भी बहुत कुछ, अपभ्र श, सस्कृत, तथा फारसी साहित्यो से ग्रहीत है। किन्तु यह वास्तविकता नही है। इस अध्ययन से केवल इतना स्पष्ट होता है कि हिन्दी भाषा और साहित्य मे बडी ग्रहणशीलता रही है। हिन्दी भाषा तथा साहित्य ने, जो कुछ भी इन प्रभावो से ग्रहण किया है, उसे बिल्कुल नया रूप देकर तथा अपना बना कर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार हिन्दी ने जो कुछ भी अन्य भाषाओ तथा उनके साहित्यो से लिया है, उसने अपना पुराना विन्यास छोड दिया है तथा हिन्दी का अपना स्वाभाविक रूप तथा उसकी प्रकृति ग्रहण कर ली है।

अग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सब से प्रमुख विशेषता, उनका धर्म भावना से अनुप्राणित होना है। हिन्दी भाषा मे यह विशेषता, विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो से सम्बन्धित, शब्दो के बाहुल्य मे, देखी जा सकती है। साहित्य मे धार्मिक भावना का प्राधान्य स्वय ही स्पष्ट है। उसका सम्पूर्ण विकास बहुत काल तक किसी न किसी धार्मिक सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहा, इसीलिए तो कबीर ने नवीन सामाजिक व्यवस्था की स्थापना का सदेश धार्मिको की शैली मे दिया था। जायसी, सूरदास तथा तुलसीदास की रचनाओ मे धार्मिकता की भावना स्पष्ट देखी जा सकती है। रीतियुग के कवियो—बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर आदि की रचनाओ मे भी धार्मिकता की भावना है। यद्यपि इनकी रचनाओ मे, शृंगारिक भावनाओ का प्राधान्य है, तथापि इस भावना को इन्होने राधाकृष्ण के स्नेह सम्बन्ध के माध्यम से

प्रकट किया है। रीतियुग के एक कवि भिखारीदास ने तो स्पष्ट लिखा है—आज के सुकवि बूझिहै तो कविताई, न तु राधिका कन्हाई सुमिरन को बहानो है।'

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की दूसरी प्रमुख विशेषता उनमे शास्त्रीय प्रवृत्तियो का निरन्तर परिव्याप्त रहना है। हिन्दी भाषा के शब्द-समूह मे, शास्त्रीय भाषा, सस्कृत के शब्द, बहुत अधिक सख्या मे हैं, धर्म तथा काव्य-शास्त्र से सम्बन्धित उसके बहुत से पारिभाषिक शब्द सस्कृत से ही ग्रहण किये गये है। साहित्य मे भी हम शास्त्रीय मानदण्डो, वस्तु-विन्यास तथा रूप-विधान का अनुसरण देखते हैं। सूरदास, नन्ददास तथा तुलसीदास आदि भक्त कवियो की रचनाओ मे, शास्त्रीय प्रवृत्तिया स्पष्ट है। सूफी कवियो की रचनाओ पर भी सस्कृत के शास्त्रीय साहित्य का प्रभाव है। शास्त्रीय तत्व, उनकी अभिव्यञ्जना प्रणाली तथा वस्तु-कल्पना मे भी दिखाई देते है। जायसी की 'पदुमावति' मे, हीरामन सुआ की अवतारणा, सस्कृत साहित्य के मेघदूत अथवा हसदूत के अनुरूप है, किन्तु कथा-सूत्र मे उसे जिस प्रकार का स्थान दिया गया है, उसमे फारस के सूफी कवियो की रूपकात्मक शैली का अनुसरण है। रीतियुग के कवियो पर शास्त्रीय प्रभाव सब से अधिक है। यह पहले ही कहा जा चुका है, कि इस युग के काव्यशास्त्र की रूपरेखा के ग्रथ, सस्कृत के इसी प्रकार के ग्रथो के अनुकरण मे लिखे गये है। यही कारण है कि इस युग के राज्याश्रय मे पोषित होने वाले कवियो की भाषा, वस्तु-विन्यास और अभिव्यञ्जना प्रणाली, सभी सस्कृत साहित्य की परम्परा से ग्रहित है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की तीसरी प्रमुख विशेषता, उनका विशेष ग्रहणशील होना है। भारतीय सस्कृति, समन्वयवादी है, इसीलिये उसने नवीनताओ को, जहा कही से भी वे आयी हो, बडी सरलता से ग्रहण कर लिया है। हिन्दी भाषा तथा साहित्य ने अपनी ग्रहणशीलता मे, भारतीय सस्कृति की इस ग्रहणशीलता को ही प्रकट किया है। हिन्दी भाषा तथा साहित्य, अपनी इसी ग्रहणशीलता के कारण, अपने क्षेत्र मे अन्य भाषाओ के राजभाषा होते हुए भी, अपने को रक्षित रख सके, तथा विकास की ओर अग्रसर हो सके। सामाजिक प्रगति, जो साहित्यिक विकास की मूल-भूत प्रेरणा है, उन दिनो बिल्कुल ही नही थी, जब हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास हो रहा था, यह प्रगति ग्रहणशीलता के कारण ही सम्भव हुई।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य की कुछ अन्य विशेषताओ का उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है। उन्होने अधिकाश मे काव्य-रूपो मे ही अभिव्यक्ति पाई है, तथा उनमे भी वस्तुगत वर्णन की ही प्रधानता रही है। किन्तु इन्हे, तथा इसी प्रकार की कुछ अन्य प्रवृत्तियो को, विशेषताए न मान कर, सीमाएँ कहना अधिक उपयुक्त होगा।

सीमाए

अब तक के अध्ययन से हिन्दी भाषा तथा साहित्य की सीमाएँ स्वय ही स्पष्ट हो जाती हैं। हिन्दी भाषा ने अपने को धार्मिक साहित्य, काव्य-शास्त्र के ग्रथो, साहसिकता तथा प्रेम के कथानको तक ही सीमित रक्खा था, इसी कारण तो उसके शब्द-समूह का विशेष विकास नही हो सका। उसने अभी तक जीवन के विभिन्न पक्षो को अभिव्यक्त करने की शक्ति नही प्राप्त कर पायी थी। गद्य रचनाओ की भाषा तो बहुत शिथिल थी। और यह सब इसलिए था, क्योकि व्याकरण के नियम अभी तक नही खोजे गए थे, विराम-चिह्न नही निश्चित हुए थे, तथा अनुच्छेदो के निर्माण की व्यवस्था नही समझी गई थी। हिन्दी भाषा की इन सीमाओ का प्रमुख कारण यह था, कि हिन्दी साहित्य निरन्तर विकासशील नही रहा था और न उसने नये साहित्यिक रूप खोजे थे। इसीलिए हिन्दी साहित्य की भी हमे बहुत सी सीमाए मिलती हैं। उसमे विभिन्न गद्य-रूपो, विशेष रूप से, नाटकीय रचनाओ का तो अभाव ही था। काव्य रचनाओ मे भी, आत्मगत वर्णन अथवा आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति यदा कदा ही मिलती थी। प्रकृति के अनेक रूपात्मक सौन्दर्य के प्रति भी हिन्दी कवियो ने विशेष आकर्षण नही अनुभव किया था।

ये सभी सीमाए इसलिए उत्पन्न हुई थी, क्योकि हिन्दी भाषा और साहित्य, अब तक एक 'प्रतिबद्ध समाज' की भावनाओ को अभिव्यक्त करते रहे थे। हिन्दी के कवि, अब तक भविष्य की ओर देखने तथा नये विचारो और भावो को खोजने के स्थान पर, पुरातन की ओर ही देखते, तथा उन्ही भावो और विचारो को अभिव्यक्त करते रहे थे, जो पहले ही अभिव्यक्त हो चुके थे। यही कारण है कि पतन की प्रवृत्तिया, हिन्दी भाषा तथा साहित्य दोनो मे ही शीघ्र ही प्रारम्भ हो गई, जब उन्होंने शृगारिक भावना तथा मिथ्या प्रशसा की अभिव्यक्ति तक ही अपने को सीमित कर लिया। जब परिस्थिति बहुत अधिक अधकाराच्छन्न हो रही थी, एक प्रबल झझावात के समान, अग्रेजी प्रभाव का आगमन हुआ, और उसका जो कुछ परिणाम हुआ उसका अध्ययन हम आगे के प्रकरणो मे उपस्थित कर रहे है।

— — —

३

अंग्रेजी प्रभाव का आगमन

अभी हमने यह अ ययन किया था कि अंग्रेजो, उनकी भाषा और साहित्य के सम्पर्क के पूर्व, हिन्दी भाषा और साहित्य की क्या विशेषताएँ और कौन-कौन सी सीमाए थी। इस प्रकरण मे हम हिन्दी-प्रदेश मे, अंग्रेजी प्रभाव के आगमन का इतिवृत्त प्रस्तुत कर रहे है। यह अध्ययन पस्तुत कार्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप मे है। व्यवस्था के लिये सम्पूर्ण प्रकरण, तीन उपशीर्षको मे विभक्त किया जा रहा है। प्रथम में प्रारम्भिक सम्पर्को का विवरण होगा, द्वितीय मे अंग्रेजी प्रभाव के विकास का अध्ययन, तृतीय मे हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना का विवेचन। अन्त में उन प्रमुख स्थानो का उल्लेख होगा, जिन्होने हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के विकास मे मुख्य केन्द्रो का काम किया।

१ सम्पर्क का आरम्भ

हिन्दी प्रदेश मे, सर्व प्रथम आने वाले अंग्रेज, जॉन न्यूबरी, रैल्फ फिच, तथा विलियम लीड्स थे। ये तीनो, अपनी तत्कालीन महारानी एलिजाबेथ से, मुगल सम्राट जलालुद्दीन अकबर के नाम, एक परिचय-पत्र लेकर, भारतवर्ष के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के लिए, सन् १५८५ ई० की जुलाई मे आगरा पहुचे थे। कुछ दिनो आगरा ठहर कर ये तीनो फतेहपुर सीकरी चले गये थे, क्योकि

अकबर अपनी राजसभा की बैठक उन दिनो वही किया करता था। २८ सितम्बर तक वे लोग वहा ठहरे, फिर न्यूबरी तो स्थल-मार्ग से यूरोप चला गया, तथा रैल्फ फिच ने अक्तूबर मे आगरा छोड़ा और बगाल की ओर चला गया। विलियम लीड्स को, जो कि एक जौहरी था, मुगल सम्राट ने अपने यहा नौकरी दे दी थी। इसलिये वह फतेहपुर सीकरी मे कुछ समय और रुका रहा। इतिहास इन तीनो के सम्बन्ध मे और कुछ नही बताता, इसलिये यह नही कहा जा सकता, कि जिस उद्देश्य को लेकर वे आये थे, उसमे उन्हे सफलता मिली थी अथवा असफलता।

भारतवर्ष के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने के वास्तविक प्रयत्न, सन् १६०० ई० मे, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद प्रारम्भ हुए थे। सन् १६०८ मे, कप्तान हॉकिन्स ने, सम्राट जहागीर के दरबार मे उपस्थित होकर, सूरत में अपना एक व्यापारिक-केन्द्र स्थापित करने की अनुमति मागी। वह जेम्स प्रथम तथा ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधि के रूप मे आया था। वह लगभग तीन वर्ष आगरे मे ठहरा, और इस काल मे उसने सम्राट जहागीर से फरमान प्राप्त कर लिया, किन्तु पुर्तगालियो के कहने पर, कुछ समय बाद जहागीर ने वह आज्ञापत्र वापस ले लिया।

सन् १६१३ मे जहागीर ने पुन अंग्रेजो को सूरत मे एक स्थायी व्यापारिक-केन्द्र की स्थापना की अनुमति प्रदान की। पुर्तगालियो को यह प्रतीत हुआ कि इससे उनके व्यापार को हानि पहुचेगी, और इसीलिये उन्होने एक शक्तिशाली जहाजी-बेडा लेकर अंग्रेजो पर आक्रमण कर दिया, किन्तु थोडे समय मे ही उनको पराजित होकर लौटना पडा। इस सफलता ने, सूरत मे अंग्रेजो की स्थिति को और अधिक दृढ कर दिया। उन्होंने अपनी स्थिति को, और भी अधिक सुदृढ करने के लिए सर टॉमस रो को, जिसने कस्तुनतुनिया मे रह कर पूर्व के राजदरबारो का अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया था, अपना प्रतिनिधि बनाकर आगरे भेजा। वह सन् १६१५ के अन्त मे आगरा पहुचा, और सन् १६१८ के अन्त तक, वहा के प्रमुख व्यक्तियो के साथ मित्रता के सम्बन्ध स्थापित करता रहा। यद्यपि उसे आगरा के राजदरबार मे, व्यापारिक सन्धि के प्रयास मे सफलता नहीं मिली, तथापि उसने शाहजादा खुरम से, जो आगे चलकर शाहजहा के नाम से विख्यात हुआ, और उस समय गुजरात मे, मुगल बादशाह का प्रतिनिधि था, सूरत मे अंग्रेजो के लिए कुछ और अधिकार प्राप्त कर लिए। इस प्रकार सन् १६१८ मे अंग्रेजो के व्यापारिक-केन्द्रों का सगठन प्रारम्भ हुआ और अहमदाबाद तथा भड़ौच मे व्यापारिक-केन्द्रो की स्थापना के साथ-साथ, आगरा में भी उनका एक व्यापारिक-केन्द्र स्थापित हुआ। सन् १६२० में, पटना मे भी, एक

व्यापारिक-केन्द्र की स्थापना का उल्लेख मिलता है। सन् १६३४ मे अग्रेजो ने, मुगल बादशाह के साथ सम्पर्क स्थापित करके, दूसरी फरवरी को एक और फरमान प्राप्त किया, जिसके अनुसार उन्हे बगाल मे भी व्यापार करने के अधिकार मिल गये। उसी वर्ष पुर्तगालियो को, उनके किसी अशिष्ट व्यवहार के कारण बगाल प्रदेश से निष्कासित कर दिया गया। सन् १६४० मे अग्रेजो ने हुगली मे अपने एक व्यापारिक केन्द्र की स्थापना की, और सन् १६४२ मे बारासोल में।

सन् १६४५ मे शाहजहा ने एक अग्रेज चिकित्सक गिब्राइल बाटन से प्राप्त डाक्टरी सहायता के पुरस्कार स्वरूप, अग्रेजो को कुछ और व्यापारिक अधिकार प्रदान कर दिये। सन् १६४६ मे डॉक्टर बाटन ने बगाल के नवाब की चिकित्सा करके उसे रोग-मुक्त किया। उसके इस उपकार के प्रतिदान स्वरूप नवाब ने हुगली तथा बारासोल के व्यापारिक-केन्द्रो को और अधिक सुदृढ करने के लिये, अग्रेजो को कुछ और अधिक अधिकार दिये। इतिहासकारो ने सन् १६५३ मे लखनऊ मे अग्रेजो के एक व्यापारिक-केन्द्र की समाप्ति का उल्लेख किया है, किन्तु कब इस केन्द्र की स्थापना हुई थी, यह अज्ञात है।

सन् १६६१ मे इगलैण्ड के चार्ल्स द्वितीय ने जब पुर्तगाल की राजकुमारी ब्रेगान्जा की कैथरीन के साथ विवाह किया, तो बम्बई का बन्दरगाह अग्रेजो को दहेज के रूप मे मिला। सन् १६६४ मे शिवाजी द्वारा सूरत के लूटे जाने के अनन्तर, अग्रेजो का भाग्य और चमक उठा। उस समय सर जॉर्न ऑक्सनडेन ने अपने व्यापारिक-केन्द्र की बड़ी वीरता के साथ रक्षा की थी, और मुगल बादशाह औरंगजेब ने उसके इस पराक्रम से प्रसन्न होकर अग्रेजो को एक वर्ष के लिये व्यापारिक कर से मुक्ति प्रदान कर दी थी। फिर भी सूरत मे अंग्रेजो की अवस्था बहुत समय तक सुदृढ नही रही।

भारत मे अग्रेजो की नीति मे इस समय से एक मूलभूत परिवर्तन का क्रम प्रारम्भ होता है। इस सम्बन्ध मे, उत्तर स्टुअर्टो के काल मे, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सचालको मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्ति सर जोशिया चाइल्ड के विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उसका कथन था कि आगे से अग्रेजो का उद्देश्य नागरिक तथा सैनिक शक्ति के लिए एक ऐसी राजनीतिक सत्ता की स्थापना और इन दोनो के लिए विशेष आय का प्रबन्ध "होगा" जो कि सदा के लिए भारतवर्ष में अग्रेजी साम्राज्य की सुदृढ नीव डाल सके।"[1] इस दिशा मे प्रयत्न का प्रारम्भ सन् १६८६ से

१—'दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', पाँचवा भाग, (१६२६), पृ० १०२

हुआ । अंग्रेजो ने कुछ जहाजी बेड़ो से बंगाल तथा पश्चिमी भारत के कुछ बन्दरगाहो पर घेरा डाला । बंगाल मे मुगल बादशाह के प्रतिनिधि, शाइस्ता खाँ को तब अंग्रेजों की इस दुर्नीति का समाचार मिला तो उसने अपनी फौज को हुगली की ओर अंग्रेजो को पूर्णत निकाल देने के लिए भेजा । यद्यपि अंग्रेजो ने बडी सफलता के साथ अपने हुगली के व्यापारिक केन्द्र की रक्षा की और नवाब की फौज को वापस कर दिया, फिर भी उन्हे हुगली छोड़ना पड़ा और नदी के सहारे दक्षिण की ओर जाकर, उन्होने उस गाव मे जाकर आश्रय लिया, जहा कि आगे चलकर कलकत्ता जैसा विशाल नगर खड़ा हुआ ।

अंग्रेजो के इस दुष्टतापूर्ण व्यवहार से औरंगजेब इतना रुष्ट हुआ कि उसने उन्हे अपने साम्राज्य की सीमा से निष्कासित करने की आज्ञा दी । शाइस्ता खा ने इस आज्ञा को पाकर पटना, कासिम बाजार, मछलीपट्टम तथा विजगापट्टम के अंग्रेज व्यापारिक-केन्द्रो पर अधिकार कर लिया । सूरत के व्यापारिक-केन्द्र पर भी मुगल सम्राट का अधिकार हो गया । अंग्रेजो ने इस प्रकार अपने ऊपर दुर्भाग्य को आते हुए देख कर मुगल सम्राट से सन्धि की प्रार्थना की । सन् १६६० मे एक संधि हुई, जिसके अनुसार उन्हें १७,००० रुपये मुआवजे मे देने पड़े, और उन्हे चेतावनी दे दी गई कि आगे से वे इस प्रकार का दुष्टतापूर्ण आचरण न करें । उन्हे पुन हुगली लौट आने का भी एक अनुमति पत्र दिया गया, और तभी जॉब चारनाक नामक अंग्रेज ने कलकत्ता नगर की स्थापना की, जो आगे चलकर भारत मे अंग्रेजी साम्राज्य की राजधानी बना ।

इस समय तक मुगल राज्य की अवनति का क्रम प्रारम्भ हो चुका था। दक्षिण मे शिवाजी के नेतृत्व मे मरहठो ने अपने प्रदेश को औरंगजेब के शासन से मुक्त कर लिया था । उत्तर के पंजाब प्रदेश मे सिक्खो ने अपने गुरु गोविन्दसिंह के नेतृत्व मे संगठित होकर मुगल बादशाह के प्रभुत्व को चुनौती दे दी थी । राजस्थान के राजपूत राजाओ ने भी अपने को स्वतन्त्र करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये थे, और सन् १७०७ मे जब औरंगजेब अन्तिम बार अपनी आखें बन्द कर रहा था उसके अपने मुसलमान भाइयो, उसके विस्तृत साम्राज्य के विभिन्न प्रदेशो के सूबेदारो, ने भी अपने को स्वतन्त्र घोषित करना प्रारम्भ कर दिया ।

२—अंग्रेजी साम्राज्य का प्रसार

मुगल साम्राज्य का पतन औरंगजेब के जीवन काल में ही प्रारम्भ हो गया था । उसकी मृत्यु के अनन्तर तो सम्पूर्ण देश मे, अव्यवस्था तथा अराजकता का साम्राज्य फैल गया । हिन्दी प्रदेश में गंगा के पूर्व के क्षेत्र पर नवाब-वजीर का अधिकार था

उसने अवध के राज्य का सूत्रपात किया। रुहेलखन्ड पर, अफगानिस्तान से आये हुए साहसिक तथा निर्भीक रहेलो का अधिकार था। यमुना के उस पार भरतपुर मे, हिन्दू जाटो का एक साहसिक नेता, अपने लिए एक राज्य बनाने का प्रयत्न कर रहा था। आगरे पर मुगल साम्राज्य के एक बडे पदाधिकारी का अधिकार था। कुछ समय बाद मरहठो ने, दिल्ली तथा मुगल बादशाह दोनो ही पर अपना अधिकार कर लिया। हिन्दी-प्रदेश पर अपना साम्राज्य फैलाने के लिये अग्रेजो को इन सभी शक्तियो के साथ मोर्चा लेना पडा।

अग्रेजो द्वारा उत्तर भारत को विजित करने के प्रयत्न सन् १७५७ के प्लासी के युद्ध से ही प्रारम्भ हो गये थे, किन्तु हिन्दी प्रदेश मे अग्रेजी प्रभाव के प्रसार का आरम्भ सन् १७६४ से हुआ। जब अवध के नवाब वजीर से अग्रेजो को मोर्चा लेना पडा। उसने मेजर ऐडम्स मे उदानाला के स्थान पर युद्ध मे पराजित होकर भागे हुए बगाल के नवाब मीर कासिम को अपने यहा आश्रय दिया था, और अग्रेजो के कहने पर उन्हे समर्पित करने से इन्कार किया था। इस प्रसंग को लेकर अग्रेजो का अवध के नवाब वजीर के साथ जो युद्ध हुआ उसमे मुगल सम्राट शाह आलम ने भी भाग लिया था, किन्तु सन् १७६४ मे मेजर मुनरो ने, बक्सर के युद्ध मे, अवध के नवाब बजीर तथा शाह आलम दोनो को पराजित कर दिया।

इस विजय का समाचार पाते ही, क्लाइव, जो उसी समय दूसरी बार बगाल का गवर्नर होकर इगलैण्ड से लौटा था, तत्काल इलाहाबाद की ओर चल दिया और वहा पहुच कर उसने नवाब वजीर के साथ एक सन्धि की। इसी सन्धि मे अग्रेजो को बगाल, बिहार तथा उडीसा के दीवानी अधिकार प्राप्त हुए। नवाब वजीर को अपना राज्य तो वापस मिल गया, किन्तु उसे युद्ध मे हुए व्यय के लिए अग्रेजो को ५०००० स्टर्लिंग देने पडे। कडा और इलाहाबाद के जिले, अवध राज्य से अलग कर के शाह आलम को दे दिए गये थे। क्लाइव ने मुगल बादशाह को, तीस हजार रुपये वार्षिक पेन्शन देने का भी वायदा किया था, जो कभी दी ही नही गई। अंग्रेजो ने इसी प्रकार हिन्दी प्रदेश के साथ अपना सम्पर्क स्थापित किया।

क्लाइव सन् १७६७ तक भारतवर्ष मे रहा, और इसी अवधि मे उसने इसी सधि के आधार पर, बंगाल की सर्वोच्च राज-सत्ता, अंग्रेजो के हाथो मे पहुचा दी। अवध के नवाब वजीर के साथ उसने मित्रता के सम्बन्ध बनाए रक्खे। उसके अनुसार उस समय साम्राज्य के और अधिक प्रसार की योजना अत्यधिक मूर्खतापूर्ण थी, जो कि कोई भी गवर्नर और उसकी परिषद् अपनी चेतना को सजग रखते हुए नहा ग्रहण कर सकते थे जब तक की ईस्ट इडिण्या कम्पनी के समस्त हित पुन व्यवस्थित न

तथा बनारस के राजा चेतसिंह का प्रदेश अंग्रेजो को समर्पित करने के लिए बाध्य होना पडा। अंग्रेजो ने, अपनी ओर से, मुगल बादशाह से कडा और इलाहाबाद के जिलो को लेकर, उन्हे अवध के नवाब वजीर को समर्पित कर दिया। इसी सन्धि से, जो सन् १७७५ की इक्कीस मई को हुई थी, अवध का पतन प्रारम्भ हुआ। सन् १७८१ मे आसफुद्दौला को अंग्रेजो के साथ चुनार मे एक और सन्धि करनी पडी। वह एक दुर्बल शासक था, और अंग्रेज उसकी इस दुर्बलता का लाभ उठा कर, उसकी शक्ति को और अधिक कम करते, तथा अपने प्रभाव के क्षेत्र को बढाते गये।

सन् १७८६ मे कार्नवालिस गवर्नर जनरल होकर भारतवर्ष आया। उसने अवध के प्रति अंग्रेजो की स्वार्थ की भावना से पूर्ण नीति को और भी अधिक प्रश्रय दिया। नवाब वजीर के मन्त्री हैदरबेग ने उससे भेंट की और अपने राज्य की सीमाओ से अंग्रेजी फौजो को वापस मगा लेने के लिए बहुत जोर दिया, किन्तु कार्नवालिस ने उसकी बातो को ध्यान से सुना ही नही, केवल नवाब वजीर से अंग्रेजो को मिलने वाली रकम को उसने ७४ लाख से घटा कर ५० लाख कर दिया।

सर जॉन शोर ने, जो कार्नवालिस के बाद गवर्नर जनरल हुआ, सन् १७९८ मे, आसफुद्दौला के सौतेले भाई सआदत अली खा को नवाब वजीर बना दिया। सआदत को परिस्थिति के दबाव से अंग्रेजो के साथ एक नयी सन्धि करनी पडी, उसमे यह अंतिम रूप से निश्चित हो गया कि नवाब वजीर को प्रतिवर्ष अंग्रेजो को ७४ लाख रुपये देने होगे, और इलाहाबाद के किले पर अंग्रेजो का अधिकार रहेगा। उस सन्धि मे यह भी निश्चय हुआ था कि अवध मे अंग्रेजो की १०,००० सेना रहेगी। सर जॉन शोर के इस कार्य के लिए इगलैंड मे स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारियो ने उसे बधाइयाँ दी।

हिन्दी-प्रदेश मे अब अंग्रेजो से टक्कर लेने के लिए केवल मरहठे ही रह गये। मरहठो मे भी महादा जी सिन्धिया ही सब से अधिक शक्तिशाली था, जिसने शाहआलम को इलाहाबाद मे से जाकर दिल्ली के सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया था। वह हिन्दी-प्रदेश के पश्चिमी भाग मे, अंग्रेजो के विरुद्ध, जो बाहर से आकर सम्पूर्ण भारतवर्ष पर, अपना अधिकार करना चाहते थे, अपनी सेनाओ को सगठित कर रहा था किन्तु सन् १७९४ मे अचानक उसका देहात हो गया और उसी के साथ उसकी समस्त योजनाए भी समाप्त हो गयीं। मरहठो की शक्ति अब भी पर्याप्त सुदृढ थी।

जब वेलजली सन् १७९८ मे भारतवर्ष आया, तो मरहठे अपनी शक्ति और अधिक

सगठित कर रहे थे, किन्तु अवध की स्थिति बहुत ही खराब हो गयी थी ।उसने उसी वर्ष अवध के रेजिडेन्ट को लिखा

"अवध के सम्बन्ध मे दो तीन ऐसी बाते है जिनकी ओर तुम्हारा ध्यान मैं विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूँ । • जब कभी उलेमाओ का देहात हो, एक अवसर मिलेगा, जिससे लार्ड टेनेमाउथ की सन्धि का लाभ प्राप्त किया जा सके, जिसकी आवश्यकता प्रत्येक परिस्थिति मे निश्चित रकम दिलाने के लिए प्रतीत होती है । आज जो शक्ति उलेमाओ के पास है उसे कम्पनी के हाथ मे अवश्य आ जाना चाहिए । दोआब के उस क्षेत्र की, जिसमे आज वह लगान वसूल करता है, अगर राजसत्ता नही, तो व्यवस्था का कार्य अवश्य ही हमारे हाथो मे आ जाना चाहिये । •• वजीर को सेना की अवस्था और भी अधिक कमजोर है । • उस सशस्त्र समूह के स्थान पर जो आज वजीर को आतंकित किये रहता है, और उसके शत्रुओ को निमन्त्रित-सा करता है, मेरा प्रस्ताव है कि कम्पनी की पैदल तथा घुडसवार सेना के और अधिक रेजिमेट रख दिये जायें ।"[1]

जब ये शर्ते नवाब वजीर के सामने प्रस्तुत की गयी, तो उसने कुछ तर्क पूर्ण आपत्तियाँ रक्खी, और पहले की सन्धियो की ओर ध्यान दिलाया, किन्तु उसे इन सभी को स्वीकार करना पडा । १८०१ की १० नवम्बर को, उसे एक और सन्धि करने के लिए मजबूर किया गया, जिसके अनुसार उसे अपने राज्य का आधा भाग, गगा यमुना के बीच की भूमि, अंग्रेजो को सौंप देनी पडी । इस सन्धि से अंग्रेजो को जो लाभ हुआ था, उसके सम्बन्ध मे, वेलेजली ने स्वय लिखा है 'उसको (अर्थात नवाब की) सैनिक शक्ति की पूर्ण समाप्ति ।''[2] इस प्रकार अवध व्यावहारिक दृष्टि से पूर्णत अंग्रेजो के अधिकार मे आ गया ।

अब केवल मरहठे ही, हिन्दी प्रदेश मे, अंग्रेजो की शक्ति को चुनौती देते हुए शेष रह गये । इस समय दौलत राव सिन्धिया, मुगल बादशाह के प्रधान प्रतिनिधि के अधिकार ग्रहण किये हुए था । लार्ड लेक को इसीलिए उसकी ओर बढने की आज्ञा दी गई । "उसे भेजने का प्रमुख उद्देश्य, या तो सिन्धिया की समस्त शक्ति को समाप्त कर देना था, अथवा उसके साथ एक ऐसी सन्धि करना, जिसके अनुसार उसके राज्य मे से, अंग्रेजी सरकार को इतना क्षेत्र प्राप्त हो जाय, जिससे वह मध्य भारत मे

---

१. सरकार तथा दत्ता की 'टैक्स्ट बुक ऑफ इन्डियन हिस्ट्री', वाल्यूमर, पृ० ९७-९८ मे उद्धृत

२ वही, पृ० १००

अलग करके रक्खा जा सके, ...उसे देहली से निकाला जा सके।"[१] लार्ड लेक ने अलीगढ को तो सहसा विजित कर लिया और फिर देहली की ओर बढा। वहाँ पहुँच कर उसने सिन्धिया की सेनाओ को छिन्न-भिन्न कर दिया, नगर पर अधिकार कर लिया और बादशाह को भी अपने अधिकार मे ले लिया। उसके अनन्तर उसने आगरे पर घेरा डाल कर उसे विजित कर लिया, और फिर लासवाडी के स्थान पर, सिन्धिया की फौजें, बडी कठिन लडाई के बाद, अन्तिम रूप से पराजित कर दी गयी।

३—अंग्रेजी शासन की स्थापना

हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजी शासन की स्थापना, उस समय से हुई थी, जब अंग्रेजो को नवाब वजीर आसफुद्दौला से सन् १७७५ मे, बनारस, गाजीपुर तथा जौनपुर के जिले तथा मिर्जापुर का कुछ भाग, प्राप्त हुए थे। उसके उत्तराधिकारी को अंग्रेजो को, फतेहपुर, बस्ती तथा इलाहाबाद से लेकर फरुखाबाद तक दुआबा का भाग सौंपना पडा था। १८०१ की सन्धि के बाद उसे, रुहेलखण्ड का भी अधिकांश भाग, अंग्रेजो को दे देना पड़ा। फरुखाबाद के नवाब को भी, जो कि अब अंग्रेजों के अधिकार-क्षेत्र में आ गया था, अपने राज्य को अंग्रेजो को सौपकर उसके स्थान पर पेन्शन स्वीकार करनी पडी। दूसरे ही वर्ष, मराठो को पराजित करने के लिये दिल्ली की ओर बढती हुई जनरल लेक की सेना ने, आगरा, मथुरा, मेरठ तथा यमुना के पश्चिम के बहुत से क्षेत्र को अंग्रेजो के अधिकार मे पहुँचा दिया। सन् १८०३ मे, पेशवा के साथ हुई नयी सन्धि के अनुसार, उन्हे बुन्देलखण्ड का प्रदेश भी प्राप्त हो गया। सन् १८१५ में गोरखो के साथ युद्ध समाप्त होने के अनन्तर उन्हे गढवाल, कुमायू तथा देहरादून के पहाडी प्रदेश मिले। सन् १८४० मे, विलीनीकरण के सिद्धात के आधार पर जालौन के राजा के देहात के अनन्तर, उसके कोई उत्तराधिकारी न होने के कारण, उन्होंने उसके राज्य को भी अपने अधिकार मे कर लिया। इसी आधार को लेकर सन् १८५३ मे उन्होंने झासी को भी मिला लिया, और अन्त मे सन् १८५६ मे अवध के नवाब वजीर को अन्तिम रूप से हटाकर, अवध को अंग्रेजी साम्राज्य मे सम्मिलित कर लिया। अंग्रेजों की इस स्वार्थपूर्ण नीति को देखकर जनता के सभी वर्ग विक्षुब्ध हो उठे, और उन्होंने सन् १८५७ मे उनके विरुद्ध एक शक्तिशाली विद्रोह किया, किन्तु वह असफल हुआ, और हिन्दी-प्रदेश पर तथा साथ ही साथ उत्तर भारत के अन्य भागों पर भी, अंग्रेजी शासन की स्थापना हो गयी।

---

१ सर एल्फ्रेड लायल, 'दि राइज एण्ड एक्सपैन्शन ऑफ ब्रिटिश डोमिनियन इन इण्डिया' (१९१०), पृ० २५६

४ उपसंहार

राजनीतिक घटनाओं के इस संक्षिप्त विवरण से यह पूर्णत स्पष्ट हो जाता है, कि किस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने, धीरे धीरे अपने दृढ निश्चय को कार्यान्वित करते हुए, हिन्दी-प्रदेश के बनारस, इलाहाबाद, आगरा, मथुरा, लखनऊ आदि प्रमुख स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया, यहीं स्थान आगे चलकर नवीन ज्ञान-विज्ञान के प्रमुख केन्द्र बने, और पश्चिम तथा पूर्व की मिली जुली संस्कृति के युग को प्रारम्भ करने मे सहायक हुए । इन केन्द्रो मे, अंग्रेजी प्रभाव ने, जिन धाराओं के माध्यम से अपने को फैलाया, उनका अध्ययन आगे के प्रकरण मे किया जायगा ।

———

· ४

अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराएं

हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजी शासन की स्थापना का तात्पर्य, शासन-सूत्र का, एक शासक के हाथो से दूसरे के हाथो मे चला जाना मात्र ही न था। जब अंग्रेज हिन्दी प्रदेश मे प्रविष्ट हुए, तो वे अपने साथ केवल शस्त्रास्त्र ही नही वरन् अपना ज्ञान-विज्ञान तथा साहित्य भी लाये थे। इस प्रकार हिन्दी-प्रदेश मे उनके प्रविष्ट होने का अर्थ, एक नयी सभ्यता, एक नवीन संस्कृति-पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति-का आगमन था। भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास बहुत पुरातन काल से चला आ रहा था, किन्तु मध्ययुग तक आते-आते, उनमे एक प्रकार की स्थिरता सी आ गयी थी। सम्पूर्ण मध्य युग में भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति मे स्थिरता की यह भावना अक्षुण्ण बनी रही। इस दृष्टि से यह कहा जा सकता है, कि भारतवर्ष मे अंग्रेजी सभ्यता के आगमन से दो जीवित शक्तिया एक दूसरे के सम्पर्क मे आयी, जिनमे से एक पुरातन और स्थिरता की भावना से युक्त थी, और दूसरी नवीन तथा नयी चेतना से अनुप्राणित थी। इस सम्पर्क ने एक महान परिवर्तन को जन्म दिया। हिन्दी प्रदेश में, नव युग की भावना का प्रसार, उसके जीवन के प्रत्येक पक्ष मे, बहुत बडे परिवर्तन की भावना का समावेश, इसी प्रभाव के कारण सम्भव हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी-प्रदेश में आने के पूर्व, भारतवर्ष के अन्य क्षेत्रो—बगाल

गुजरात, महाराष्ट्र आदि मे, अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इसीलिये, हिन्दी-प्रदेश तथा उसके भाषा और साहित्य पर, अंग्रेजी का जो प्रभाव पडा, वह पूर्णतः अंग्रेजो के साथ सम्पर्क मे ही नही आया, उसका कुछ अंश, हिन्दी-प्रदेश के इन अन्य क्षेत्रो के साथ सम्पर्क से भी आया। सीधे अंग्रेजो के साथ सम्पर्क से आये हुए प्रभाव को एक विदेशी वस्तु समझकर लोगो ने सरलता से स्वीकार नही किया, किन्तु जो प्रभाव, भारतवर्ष के अन्य प्रदेशो मे स्वीकृत होने के अनन्तर आया, उसे पूर्णतः भारतीय समझ कर भली प्रकार ग्रहण किया गया। हिन्दी-प्रदेश ने भी अपने भाषा और साहित्य मे इस प्रकार के प्रभाव को अपनाया। उन विभिन्न क्षेत्रो मे, जो सब से पहले अंग्रेजो के सम्पर्क मे आये, बगाल ने, हिन्दी प्रदेश को यह नवीन प्रभाव सबसे अधिक दिया है। बगाल ने ही इस प्रभाव को अपने जीवन मे सबसे अधिक आत्मसात किया था इसीलिये उस प्रदेश मे ही सर्वप्रथम पुनरुत्थान तथा नवयुग की भावनाओ का उद्भव एव प्रसार हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप भारत मे जो नयी चेतना उत्पन्न हुई थी, उसका साम्य यूरोपीय पुनरुत्थान के साथ बहुत अधिक है। यूरोप मे नवीन बौद्धिक चेतना का जागरण अथवा पुनरुत्थान सर्वप्रथम नये ससार की खोज के रूप मे देखने को मिला, और उसके अनन्तर पुरातन तथा शास्त्रीय ज्ञान के प्रति अनुराग के रूप में सामने आया। उसने एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी प्रश्रय दिया, जिसकी प्रेरणा से मनुष्य ने अपने मन तथा मस्तिष्क को मध्ययुगीन बन्धनो से मुक्त किया। मुद्रण-यत्र के आविष्कार तथा उसके फलस्वरूप होने वाले ज्ञान के प्रसार ने, पुनरुत्थान के द्वारा उत्पन्न अन्य शक्तियो के सहयोग से, यूरोप के विभिन्न देशो के राष्ट्रीय साहित्य के विकसित होने मे योग दिया। भारत मे अंग्रेजो के आगमन का प्रभाव भी कुछ ऐसा ही हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव ने जिन विभिन्न धाराओ मे होकर कार्य किया वे अग्रलिखित हैं (१) परिवर्तित वातावरण, (२) नवीन शिक्षा सस्थाएँ, (३) ईसाई प्रचारको के कार्य, (४) धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलन, (५) मुद्रण-कला का प्रचार एव पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन तथा (६) नयी सास्कृतिक तथा साहित्यिक सस्थाएँ।

१—परिवर्तित वातावरण

अंग्रेजी प्रभाव का यह पक्ष, हिन्दी-प्रदेश मे कार्य करने वाले अन्य प्रभावो से, अपनी भिन्नता, सबसे अधिक स्पष्ट करता है। मुगल वश के शासक, जिन्होने एक विशेष काल तक हमे प्रभावित किया, यद्यपि मूल रूप मे विदेशी विजेता थे, किन्तु

उन्होने शीघ्र ही अपने को जनता मे घुला-मिला दिया था और उसी की भाषा तथा हितो को ग्रहण कर लिया था।[1] हिन्दी-प्रदेश मे आने वाले अन्य विदेशियो के साथ भी ऐसा ही हुआ था, किन्तु अंग्रेज ने अपने को जनता से अलग रक्खा। वे अपने को एक उच्चतर राष्ट्र का समझते थे, और जहाँ तक भौतिक उन्नति का प्रश्न है, वे वास्तव मे, भारतीयो से श्रेष्ठ थे। इस देश मे रहते हुए भी, वे अपने देश के हित को ही बात हमेशा सोचते रहते थे। वे यहाँ शासको के रूप मे रहे, इस देश को उन्होने कभी अपना घर नही समझा यही कारण था कि जनता तथा शासक के हितो मे निरन्तर संघर्ष चलता रहा।

किन्तु इस संघर्ष के होते हुए भी अंग्रेजो का सम्पर्क, उनके भौतिक रूप से एक उन्नत राष्ट्र होने के कारण, हिन्दी-प्रदेश के लोगो के लिए कुछ लाभप्रद सिद्ध हुआ। उसने उनके जीवन के प्रति दृष्टिकोण को और अधिक व्यापक तथा नवयुग की भावना से पूर्ण बना दिया। मुगल साम्राज्य के विच्छिन होने से, जिसके लक्षण औरंगजेब के जीवन काल मे ही प्रारम्भ हो गये थे, एक ऐसा वातावरण उत्पन्न हो गया था, जिसमे अव्यवस्था तथा अराजकता ही देखने को मिलती थी। देश मे केन्द्रीय शक्ति का पूर्णत अभाव हो गया था। जिन लोगो ने उत्तराधिकार अथवा शक्ति के बल पर, थोडे से भी अधिकार प्राप्त कर लिये थे, वे आनन्द का जीवन व्यतीत कर रहे थे, और उनके लिए जनता को मूल्य चुकाना होता था। वे अपने प्रभाव का क्षेत्र बढाने के लिए, उन अन्य लोगो से संघर्ष करते रहते थे, जिन्हे उन्ही की भांति कुछ शक्ति प्राप्त हो गयी थी। ठग तथा इसी प्रकार के अन्य अपराधी-तत्व, अपने लिए उपयुक्त वातावरण पाकर, अपना धंधा अच्छी तरह चला रहे थे। इस प्रकार का वातावरण, किसी प्रकार भी, जनता की प्रगति के लिए उपयोगी नही कहा जा सकता था। इसीलिए, अंग्रेजी शासन की स्थापना से इस आश्वासन को पाकर, कि अब देश मे शान्ति और सुव्यवस्था रहेगी, जनसाधारण ने सुख की सांस ली।

अंग्रेजी शासन द्वारा, भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो मे जो एकता का सूत्र स्थापित हुआ, तथा आवागमन के जिन नवीन साधनो की व्यवस्था हुई, उन्होने जनता के मन मे समस्त भारत के एक होने की भावना को जन्म दिया। सामन्त युग के वे प्रतिबन्ध, जो अब तक समाज के विकास को अवरुद्ध किये हुए थे, तथा जीवन मे सम्प्रदायगत धार्मिकता की भावना को बल देते रहे थे, टूटने लगे, और मनुष्य का महत्व मनुष्य के रूप मे आका जाने लगा। देश के एक भाग मे रहने वाले लोग

१—'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन' (अंग्रेजी), नवम्बर १५, १८७३, नं० ५, पृ० १२०

अब बड़ी सरलता से दूसरे भाग के लोगों के साथ सम्पर्क मे आने लगे और पारस्परिक प्रभाव को ग्रहण करने लगे। अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से उत्पन्न पारस्परिक आदान-प्रदान की प्रवृत्ति ने जनता के बौद्धिक विकास मे बहुत योग दिया। हिन्दी-प्रदेश के लोग इसी प्रकार तो बगाल मे रहने वाले लोगो के सम्पर्क मे आये, और इस नये प्रभाव के सम्बन्ध मे उन्होंने उनसे बहुत कुछ सीखा।

सन् १८६९ मे होने वाले स्वेज नहर के उद्घाटन का, वास्तव मे वही महत्व था, जो यूरोपीय पुनरुत्थान के काल मे नयी दुनिया की खोज का रहा था। उसने इगलैंड तथा अन्य यूरोपीय देशो के साथ भारतवर्ष के सम्पर्क को और अधिक बढा दिया, और साथ ही सार्वभौमिकता की भावना को भी उत्पन्न किया। पश्चिम का सब कुछ अब भारतीय जनता के लिए और निकट की वस्तु हो गया। भारतवर्ष के लोग अब यूरोपीय देशो को, विशेष रूप से अपने शासको के देश इगलैंड को, जाने आने लगे। हिन्दू समाज मे अब तक समुद्र-यात्रा के सम्बन्ध मे जो प्रतिबन्ध रहे थे, वे टूटने लगे। जो लोग यूरोपीय देशो को जाते थे, वे बडे मनोयोग के साथ यह समझने का प्रयास करते थे, कि आधुनिक सभ्यता अपने ज्ञान-विज्ञान के साथ किस प्रकार प्रगति कर रही है, वे अपने देश के लोगो के लिए भी उससे शिक्षा ग्रहण करते थे। इस जीवित सम्पर्क ने, भारतवर्ष में नवयुग की भावना के प्रसार मे, बहुत अधिक सहायता पहुचाई। हिन्दी-प्रदेश भी उससे लाभान्वित हुआ।

किन्तु अंग्रेज, भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो मे अपना शासन स्थापित करके, भारतीय जनता को इन्ही सद्प्रभावो से अनुगृहीत करने नही आये थे, वास्तव मे वे अपने व्यापारिक हितो को लेकर भौतिक लाभ की दृष्टि से आये थे, और इसी के लिए उन्होंने अपने राज्य की स्थापना की थी। औद्योगिक क्रांति अर्थात् विभिन्न प्रकार की मशीनो के आविष्कार से, उनके यहा तय्यार माल का अनुपात बहुत हो गया था। भारतवर्ष ने उनका ध्यान अपनी ओर उस तय्यार माल के मुक्त व्यवसाय के लिए आकर्षित किया था। अपने शासन की स्थापना के अनन्तर, उन्होने भारतवर्ष की उत्पादन सस्थाओ को विनष्ट कर दिया, और इस देश के बाजारो को अपने यहा बने हुए माल से पूरी तरह भर दिया।

इगलैंड से मशीनो द्वारा बन कर आये इस माल की तुलना मे भारतवर्ष मे मनुष्य के हाथो से बना सामान अधिक महगा था, और उतना मजबूत भी नही था। भारतवर्ष की सामान्य जनता मे, इगलैंड से आने वाले उस सस्ते तथा टिकाऊ माल के प्रति एक स्वाभाविक रुचि उत्पन्न हो गयी, और फलस्वरूप भारतीय वाणिज्य तथा व्यवसाय विनष्ट हो गया। इसी प्रकार तो भारतवर्ष से इगलैंड की ओर धन का

निरन्तर चलने वाला प्रवाह प्रारम्भ हुआ था, जिसने हमारे देश को निर्धन बना दिया तथा हमारी आर्थिक व्यवस्था को भी अस्त-व्यस्त कर दिया। भारतीय जनता, जो अब तक आत्म-निर्भर रही थी, अब अपनी आवश्यकता की छोटी से छोटी वस्तु के लिए भी, विदेशियो की मोहताज हो गयी। इस परिस्थिति ने बहुत सी नयी समस्याए खडी कर दी, जिन्होने भारतीय जनता के दृष्टिकोण मे एक मूलभूत परिवर्तन की भावना उत्पन्न कर दी। भारतवर्ष के लोग, जो अब तक भलीप्रकार धन-धान्य सम्पन्नहोने के कारण ईश्वर-चिन्तन तथा धर्म के विभिन्न पक्षो को लेकर विचार-विमर्श मे तत्पर रहते थे, अंग्रेजो के आर्थिक शोषण के फलस्वरूप अपनी भौतिक आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे सोचने लगे। भारतीय जीवन धारा मे इस भौतिकता के समावेश ने बडे महत्वपूर्ण परिवर्तन-क्रम का सूत्रपात किया।

अंग्रेजो द्वारा स्थापित शासन व्यवस्था पहले की शासन व्यवस्थाओ से, पूर्णत भिन्न थी। उसमे उन बडे बडे राजाओ तथा सामन्तो के लिए, विशेष स्थान न था, जो अब तक साहित्य के सरक्षको के रूप मे कार्य करते रहे थे। सामन्तवादी शासन व्यवस्था के स्थान पर उन्होने जिस नौकरशाही शासन-प्रणाली का सूत्रपात किया, उसने साहित्य के निर्माण की ओर कोई भी ध्यान नही दिया। वह केवल वातावरण को शान्तिमय बनाये रखने का प्रयास करती थी, जो अंग्रेजो के व्यापारिक हितो के लिए बहुत अधिक आवश्यक था। अंग्रेजी प्रभाव से, हिन्दी भाषा तथा साहित्य को राज्य की ओर से मिलने वाले सरक्षण की जो हानि हुई, शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना द्वारा अंग्रेजो ने उसकी पूर्ति की।

२—शिक्षा-सस्थाये

हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे जो अंग्रेजी प्रभाव, शिक्षा-सस्थाओ के माध्यम मे आया है उसका प्रारम्भ कलकत्ते के फोर्ट विलियम कॉलेज से माना जा सकता है। कॉलेज की स्थापना तथा उसका हिन्दी के विषय मे कार्य, हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजी शासन की स्थापना के बहुत पूर्व आरम्भ हो गया था। इसीलिये, अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे शिक्षा-सस्थाओ के योगदान का अध्ययन, फोर्ट विलियम कालेज के कार्य से ही प्रारम्भ किया जा रहा है उसके बाद हिन्दी-प्रदेश मे स्थापित शिक्षा सस्थाओ के कार्य का अनुशीलन होगा।

क—फोर्ट विलियम कॉलेज

इस कॉलेज की स्थापना, निश्चित रूप से, जैसा कि इसके सस्थापक मार्क्विस ऑफ वेलेजली ने अपने पन्द्रह अगस्त, १८०० के लन्दन मे स्थित ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सचालको को सम्बन्धित पत्र मे भी लिखा था इगलैंड से आने वाले नवयुवको को

विभिन्न भारतीय भाषाओ की तथा अन्य आवश्यक विषयो की शिक्षा देने के उद्देश्य से हुई थी, जिससे कि वे कम्पनी के नागरिक कार्यो का भली प्रकार निर्वाह कर सकें।[1] इस उद्देश्य को दृष्टि मे रखते हुए, कुछ यूरोपीय विद्वानो की इस धारणा को तो स्वीकार नही किया जा सकता, कि अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ इस कॉलेज की स्थापना से ही हुआ था, किन्तु इतना तो मानना ही पडेगा, कि इस सस्था ने अंग्रेजी प्रभाव के लिए, आवश्यक पृष्ठभूमि उपस्थित कर दी थी। फोर्ट विलियम कॉलेज के कार्य का अध्ययन यहा हम इसी रूप मे उपस्थित कर रहे है।।

इस कॉलेज के सस्थापक, मार्क्विस ऑफ वेलेजली ने प्रारम्भ से ही इसमे साहित्य, विज्ञान तथा ज्ञान की अन्य शाखाओ के निम्नलिखित पाठ्यक्रम का निर्धारण किया था

अरबी
फारसी
सस्कृत
हिन्दुस्तानी
तैलग
मरहठा
तामिल
कन्नड
मुसलमानी न्याय-विधान
हिन्दू न्याय-विधान
नीतिशास्त्र
नागरिक विधान-शास्त्र, तथा
अन्तर्राष्ट्रीय न्याय-विधान
अंग्रेजी न्याय-विधान

सपरिषद गवर्नर जनरल, फोर्ट सेन्ट जॉर्ज तथा बम्बई से, अनुक्रम से, भारतवर्ष मे अंग्रेजो के अधिकार क्षेत्र मे नागरिक शासन के लिए प्रचलित किये गये नियम तथा विधान।

राजनीति शास्त्र, विशेष रूप से ईस्ट इण्डिया कम्पनी की व्यापारिक, सस्थाए तथा तत्सम्बन्धित अन्य विषय।

---

१ टामस रोएबक 'दि ऐनल्स ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' (१८१९), भूमिका, पृष्ठ १५

भूगोल तथा गणित
यूरोप की आधुनिक भाषाएँ
ग्रीक, लैटिन, तथा अंगेजी का शास्त्रीय साहित्य
सामान्य इतिहास, पुरातन तथा नवीन, हिन्दुस्तान तथा दक्कन के पुरातत्व का इतिहास, प्रकृति का इतिहास
वनस्पतिशास्त्र, रसायन तथा ज्योतिष।[१]

इस पाठ्यक्रम के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजी प्रभाव, भारतवर्ष मे, शिक्षा के क्षेत्र मे, कितनी सीमा तक प्रसार कर सकता था, और अगर यह कॉलेज केवल अंग्रेजो के लिये ही नही, वरन् भारतीयो के लिए भी स्थापित किया गया होता, तो हिन्दी तथा उत्तर भारत की अन्य भाषाओ और साहित्य का इतिहास कुछ और ही होता। फिर भी, क्योंकि इस कॉलेज के पाठ्-क्रम मे अन्य भारतीय भाषाओ के साथ हिन्दुस्तानी को भी स्थान दिया गया था, और हिन्दी भी हिन्दुस्तानी का एक रूप समझकर पढाई जाती थी, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास मे इस सस्था का पर्याप्त योग सम्भव हो सका।

इस विद्यालय के प्रारम्भिक वर्षो मे फारसी तथा हिन्दुस्तानी की शिक्षा पर विशेष वल दिया गया था, और सन् १८०१ के अप्रैल मास मे डा० जॉन वार्थविक गिलक्राइस्ट की नियुक्ति, हिन्दुस्तानी के प्रोफेसर के रूप मे हुई। कॉलेज के अधिकारियो ने उन्हे, हिन्दी भाषा के व्याकरण तथा शब्द-कोष के निर्माण का कार्य सौंपा था, जिसे वे वर्षो तक करते रहे। इन ग्रंथो के निर्माण का उद्देश्य अंग्रेज युवको को हिन्दी भाषा की विशेषताओ से परिचित कराना था। हिन्दी भाषा के व्याकरण के अभाव में, बोलते तथा लिखते समय, उन्हे वाक्य-रचना मे वडी कठिनाई होती थी। विद्यार्थियो को नागरी लिपि का भी अभ्यास कराया जाता था। वर्ष के अन्त मे परीक्षाए होती थी, और सब से अधिक सफलता पाने वाले विद्यार्थियो को पुस्तको, पदको, तथा नगद धन के रूप मे पुरस्कार दिये जाते थे। विद्यार्थियो ने भाषा पर कितना अधिकार प्राप्त कर लिया है, इसकी परीक्षा के लिए, प्रत्येक वर्ष, वाद-विवाद का भी आयोजन होता था।

इन समस्त योजनाओं को देखने से, यह आशा होती है, कि विद्यालय का भविष्य बहुत सुन्दर रहा होगा। उसके संस्थापक मार्क्विस ऑफ वेलेजली की इच्छा थी, कि

---

१ टामस रोएबक 'दि ऐनल्स आफ दि कॉलेज आफ फोर्ट विलियम' (१८१९), भूमिका, पृ० १७

उसे समस्त अंग्रेजी साम्राज्य की सर्वश्रेष्ठ शिक्षा-संस्था बना दे, किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने, १५ जून, १८०२ को, सपरिषद गवर्नर जनरल को लिखा कि वह इस संस्था को तत्काल समाप्त कर दे। फिर भी उसके संस्थापक ने अपने वैयक्तिक प्रयत्न से इस संस्था को इतने विशाल रूप में तो नहीं, किन्तु छोटे रूप में जीवित रक्खा। उसका पाठ्यक्रम काफी कम कर दिया गया, और इस सीमित रूप में वह बहुत वर्षों तक कार्य करती रही। कॉलेज का सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रम, प्रतिवर्ष होने वाला वाद-विवाद था, जिसमें विद्यार्थियों को किसी निश्चित विषय के पक्ष अथवा विपक्ष में अपने निबन्ध प्रस्तुत करने होते थे। इन वाद-विवादों का उद्देश्य, विद्यार्थियों को भारतीय भाषाओं का बोलना तथा लिखना सिखाना था। दोनों पक्षों के निबन्धों की समाप्ति पर अध्यक्ष महोदय, जो कि या तो कॉलेज के कोई प्रोफेसर होते थे, अथवा कोई विशेष रूप से निमन्त्रित व्यक्ति, विषय के दोनों पक्षों को स्पष्ट करके अपना मत प्रकट करते थे। इस प्रकार के कुछ वाद-विवादों के विषय जो हिन्दुस्तानी भाषा में हुए थे, निम्नलिखित हैं।

(१) "हिन्दुस्तानी भाषा भारतवर्ष में सामान्यतः सब से अधिक उपयोगी है।"[1]

(२) "हिन्दू विधवाओं का अपने मृत पतियों के शरीर के साथ अपने को जला कर आत्महत्या करना स्वाभाविक भावनाओं के विरुद्ध तथा धार्मिक कर्त्तव्य की भावना के प्रतिकूल है।"[2]

(३) "मुद्रणकला ही राष्ट्रों के इतिहास को सत्यता तथा यथार्थता के साथ परम्परित रूप से चलाने का साधन है। वही आगे आने वाले लोगों तक विज्ञान तथा साहित्य के क्षेत्र की महान उपलब्धियों को पहुँचा सकती है।"[3]

(४) "भारत वर्ष के निवासियों में पाश्चात्य राष्ट्रों के साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार यूरोपीय भाषाओं के स्थान पर उनकी अपनी मातृभाषाओं में यूरोपीय ग्रंथों का अनुवाद करके अधिक सरलता के साथ किया जा सकता है।"[4]

इन सभी विषयों को लेकर तथा अन्य विषयों पर भी नागरी लिपि में निबन्ध प्रस्तुत किये गये थे। विद्यार्थियों ने उनमें किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया था उसका रूप, हम हिन्दुस्तानी भाषा के सम्बन्ध में बेली द्वारा प्रस्तुत निबन्ध के

१—टामस रोएबक : 'दि ऐनल्स-ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम', पृ० १५

२—वही, पृ० ३१

३—वही, पृ० २७२

४—वही, पृ० ५२८

निम्नलिखित उद्धरण मे देख सकते हैं।

"हिन्दुस्तान मे कारंवाई के लिए हिन्दी जवान और जवानो से जियादा दरकार है।

हिन्दुस्तानी जवान कि जिसका जिक्र मेरे दावे मे है उसको हिन्दी उर्दू और रेग्ता भी कहते हैं और यह मुरक्कव अरबी और फारसी ओ संस्कृत या भाषा से है और यह पिछली अगले जमाने मे तमाम हिन्द मे राएज थी।'[1]

इस उद्धरण मे, अरबी तथा फारसी उद्‌गम के शब्दो का वाहुल्य है, किन्तु फोर्ट विलियम कॉलेज मे प्रश्रय दिये जाने वाले हिन्दी भाषा के स्वरूप के सम्बन्ध मे अन्तिम निर्णय देने के पूर्व, सन् १८०२ मे डब्ल्यू० चैपलिन द्वारा प्रस्तुत निवन्ध मे से भी एक उद्धरण देख लेना चाहिए :

"हे महाराजो · ···जो मेरे वचन को ध्यान देकर सुनो तो आपके मन की दुविधा जाय। सच है जो इस भयानक चाल का सार जिसे अब मै दीखता हू जब धीरज की दृष्टि से देखियेगा तब इसकी अनीति और कठोरी और कुरीति को जानियेगा तो आपकी भी मति मेरी ही मति के समान हो जायगी।"[2]

इस अंश की भाषा शुद्ध हिन्दी है, और यह प्रतीत होता है कि अरबी तथा फारसी उद्‌गम के शब्दो को, जान बूझ कर छोड दिया गया है। अन्य निवन्धो की प्रतियाँ प्राप्त नही है, इसलिए यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिकारी हिन्दी भाषा के किस रूप को विशेष प्रश्रय देते थे, किन्तु इस विषय पर विशेष रूप से कार्य करने वाले विद्वानो का कहना है, कि हिन्दुस्तानी विभाग के संचालक जॉन गिलक्राइस्ट, भाषा के उस रूप पर विशेष वल देते थे, जिसमे अरबी तथा फारसी उद्‌गम के शब्दो का वाहुल्य होता था। यदि इस कॉलेज मे प्रस्तुत किये गये हिन्दी के सभी निवन्ध प्राप्त हो जाएँ, तो भाषा के सम्वन्ध मे यह उलझन दूर हो सकती है, और साथ ही यह भी जाना जा सकता है कि अंग्रेजो ने स्वयं हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव कहाँ तक डाला था।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य को इस कॉलेज की सब मे वडी देन, उसके द्वारा अपनी ही आवश्यकता के लिए लिखित अथवा सम्पादित ग्रंथो का प्रकाशन है। जब

१—डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय 'दि डेवलपमेंट ऑफ हिन्दी लिट्रेचर फ्रॉम १८५० टू १९००', एपेन्डिक्स।

२—इस निवन्ध की प्रतिलिपि, राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष डॉ० माता प्रसाद गुप्त के पास है।

डॉ० गिलक्राइस्ट की नियुक्ति हिन्दी विभाग के प्रोफेसर के रूप मे हुई थी, तो उनके साथ कुछ मुन्शी रख दिये गये थे, जिन्हे उनके निरीक्षण में भा तीय भाषाओं मे ग्रथो को लिखना तथा सपादित करना था। लल्लू जी लाल की नियुक्ति 'भाखा मुन्शी' के रूप मे हुई थी। लल्लू जी लाल तथा अन्य मुन्शियो के द्वारा किये जाने वाले कार्य का विवरण, 'दि ऐनल्स ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' मे इस प्रकार है

१. प्रेमसागर Prama Sagar, or the history of the Hindoo Diety, Shri Krisna, Contained in the 10 th.chapter of Sree Bhagwat of Vyasudeva Translated at the desire of John Gilchrist into Hindduvia from the Braj Bhasha of Chutoorbhuj Misr, by Sree Lalloo Lal Kub, Bhasha Moonshee in the College of Fort William, Calcutta, printed at the Sanskrit Press, in one vol 4to, 1810

2 A vocabulary, Khuree Bolee and English of the principal words occuring in the Prem Sagar, by Lieut William Price, Assistant Professor of the Bungalee and Sanskrit languages in the College of Fort William Printed at the Hindoostanee Press in One Vol thin 4 to, 1814.

३ राजनीति Rajneeti, or tales, exbibiting the Moral Doctrines, and the Civil and Military polity of the Hindoos, Transated from the original Sanskrit of Narain-Pandit into Braj Bhasha at the desire of John Gilchrist by Sree Lalloo lal Kub, Bhasha Moonsbee in the College of Fort William, printed at the Hindoostanee Press, in one Vol 8 vo, 1809

4, General Principles of Inflextion and Conjugation in the Braj Bhasha, of the language Spoken by the Hindoos inthe country of Braj in the district of Gowaliyur, in the dominions of the Raja of Bhurutpoor, Utur Bed and Bundelkhand, Composed for the use of Hindoostanee Students by Sree Lalloo lal Kub, Bhasha Moonshee at the College of Fort William Printed at the Indian Gazettee Press, in one Vol thin 4 to, 1811 [1]

---

१ टामस रोएबक 'दि एनल्स ऑफ दि कॉलिज आफ फोर्ट विलियम 'एपेन्डिक्स पृ० २८

कॉलेज ने हिन्दी के तीन और ग्रथ, बाबूराम पडित सम्पादित' बिहारी सतसई,' लल्लू जी लाल कृत 'सभा विलास' तथा तुलसीकृत 'रामायण' भी प्रकाशित किये थे। कॉलेज द्वारा प्रकाशित एक अन्य ग्रथ, 'दि हिन्दी मैनुअल' अथवा 'दि कैस्केट ऑफ इण्डिया' मे भी जिसका सम्पादन हिन्दुस्तानी के विद्यार्थियों के लिए हुआ था, लल्लु लाल जी की कुछ रचनाएँ 'सिंहासन बत्तीसी', 'शकुतला नाटक', 'माधोनल' तथा 'वैताल पचीसी', सगृहित थी। ये सभी ग्रथ, मिर्जा काजिम अलीजान के साथ मिलकर लिखे गये कहे जाते हैं और उनमे अरबी फारसी उद्गम के शब्दो का बाहुल्य है। दो अन्य ग्रथ 'नक्लियाते हिन्दी' तथा 'लतीफाये हिन्दी' जिनमे छोटी-छोटी कहानिया सग्रहीत थी, नागरी वर्णमाला मे प्रकाशित हुये थे, किन्तु कॉलेज के प्राप्त विवरण के आधार पर, प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से, सब से अधिक महत्वपूर्ण ग्रथ, अग्रेजी रचनाओ के अनुवाद थे। रोएबक ने अपने ग्रथ मे, इस प्रकार की तीन रचनाओ का उल्लेख किया है, जिनमे प्रथम, बाइबिल के 'न्यू टेस्टामेट' का हिन्दी रूपान्तर थी, दूसरी का अग्रेजी नाम 'ओरियेंटल फेबुलिस्ट' था, उसमे रोमन वर्णमाला मे हिन्दुस्तानी, फारसी, अरबी, ब्रजभाषा तथा सस्कृत मे ईसप की कथाओ के अनुवाद प्रस्तुत किये गये थे, तीसरे ग्रथ का नाम 'डायेलॉग्स इगलिश एण्ड हिन्दुस्तानी' था, जिसमे यूरोपियनो को भारत के निवासियो के साथ, सामान्य विषयो को लेकर, बातचीत का ढग बताया गया था। ये रचनाएँ भी प्राप्त नही हैं, यदि कभी प्राप्त हो सकी, तो यह तथ्य अधिक स्पष्ट हो जायेगा, कि अग्रेजी व्याकरण की रचना-प्रणाली, हिन्दी गद्य मे सर्व प्रथम किस रूप मे प्रयोग मे आयी थी, तथा उसने हिन्दी गद्य के विकास मे कहा तक योग दिया था।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे, फोर्ट विलियम कॉलिज द्वारा प्रकाशित दो ग्रथो, लल्लू लाल जी के' प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र के 'नासिकेतोपाख्यान' के, विशेष रूप से उल्लेख मिलते हैं। कुछ अग्रेज विद्वानो ने लिखा है कि यही दोनो हिन्दी गद्य की सर्व प्रथम रचनाएँ है, किन्तु यह सही नही है। इन रचनाओ के प्रकाशन के पूर्व, हिन्दी गद्य का हमे एक निश्चित विकास क्रम मिलता है, और इनके पूर्व लिखित हिन्दी के कुछ गद्य ग्रथो मे भाषा का स्वरूप, इनसे अधिक परिमार्जित तथा व्यवस्थित है। रामप्रसाद निरञ्जनी के 'भाषा योग वाशिष्ठ' का गद्य इन दोनो रचनाओ से गद्य से कही अधिक सुव्यवस्थित है। इसके अतिरिक्त जिस समय फोर्ट विलियम कॉलेज मे इन रचनाओ का निर्माण हो रहा था, उन्ही दिनो बिना किसी

विदेशी अधिकारी की प्रेरणा के, इंशाअल्ला खाँ तथा सदासुख लाल, अपने गद्य ग्रन्थो का प्रणयन कर रहे थे।

इस कॉलेज का वास्तविक योग, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए नये साधनो का उपयोग करने की शिक्षा देना था। हिन्दी साहित्य के दो पुराने तथा महत्वपूर्ण ग्रन्थो विहारी की 'सतसई' तथा तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का इस सस्था के द्वारा ही सर्व प्रथम मुद्रण तथा प्रकाशन हुआ। इस सस्था ने, तथा इसी के साथ बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी ने, हमे पुराने हस्तलिखित ग्रन्थो को सुरक्षित रखने की रीति सिखाई। कॉलिज के पुस्तकालय मे विभिन्न भारतीय भाषाओ के बहुत से हस्तलिखित ग्रथ सग्रहित थे। इसी सस्था द्वारा, सर्व प्रथम, हिन्दी भाषा के आधुनिक प्रणाली के कोष का निर्माण हुआ। इस सम्बन्ध मे जॉन गिलक्राइस्ट तथा विलियम प्राइस के नाम स्मरणीय रहेगे। इसी विद्यालय के एक प्राध्यापक द्वारा व्रजभाषा के व्याकरण के सिद्धान्तो का पहली बार विवेचन हुआ था। हिन्दी गद्य मे छोटी-छोटी कहानियाँ भी सबसे पहले इस विद्यालय द्वारा ही प्रस्तुत की गई थी। इसी सस्था ने अपने प्रकाशित ग्रथो मे सर्व प्रथम अंग्रेजी के विराम-चिह्नो तथा अनुच्छेदो की व्यवस्था का प्रयोग किया था। यदि इस विद्यालय ने अपने सस्थापक वेलेजली की इच्छा के अनुरूप आकार धारण किया होता तो हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास मे इसका योग कही अधिक रहा होता।

ख-हिन्दी-प्रदेश मे नवीन शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना तथा विकास

हिन्दी-प्रदेश मे पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के प्रचार के लिये शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना केवल राजकीय प्रयास से ही नही, वरन् ईसाई प्रचारको तथा जन-सस्थाओ के उद्योग से भी हुई थी। अपने अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने के लिये, शिक्षा के क्षेत्र मे इन तीनो शक्तियो के उद्योगो का हम अलग-अलग अध्ययन उपस्थित कर रहे हैं।

(१) राजकीय प्रयास

अंग्रेजो द्वारा, हिन्दी-प्रदेश मे शिक्षा सम्बन्धी कार्य का आरम्भ, सन् १७९१ में बनारस मे 'सस्कृत कॉलिज' की स्थापना से हुआ था। इस कॉलेज की स्थापना बनारस के रेजिडेन्ट जोनेथन डन्कन के परामर्श पर, हिन्दू न्याय- विधान, साहित्य तथा धार्मिक भावनाओ को समझने के लिए और विशेष रूप से यूरोपीय न्यायाधीशो को हिन्दू सहायक प्रदान करने के लिए हुई थी।[1] इस प्रकार, इस विद्यालय का रूप, प्राच्य साहित्य तथा ज्ञान की शिक्षा देने वाली एक सस्था का था,

१—विलियम हन्टर 'रिपोर्ट ऑफ दि एजुकेशन कमीशन', (१८८१-८२), पृ० १७

और अपनी इस भूमिका मे वह हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे अंगरेजी प्रभाव के प्रसार मे, विशेष सहायक नही सिद्ध हो सकता था। अंग्रेजी प्रभाव तो केवल अंग्रेजी के ग्रन्थो के अध्ययन से ही आ सकता था, और उसके लिए अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य की शिक्षा देने वाली संस्थाओ की स्थापना की आवश्यकता थी। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार का प्रारम्भ सन् १८१३ की राजकीय घोषणा से माना जा सकता है।

इस घोषणा मे अंग्रेजी सरकार ने पहली वार, भारतीय जनता को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व स्वीकार किया था। ब्रिटेन की पार्लियामेट ने घोषणा की थी कि "इस प्रकार के प्रयत्न किये जाने चाहिएँ, जिससे भारतवर्ष मे उपयोगी ज्ञान तथा धार्मिक भावना का प्रसार हो और नैतिक सुधार भी हो सके, किन्तु धार्मिक विश्वासो के सम्वन्ध मे पूर्ण स्वतन्त्रता वनी रहने दी जाय।"[1] इस घोषणा मे यह भी स्वीकार किया गया था कि प्रत्येक वर्ष कम से कम एक लाख रुपया, भारतवर्ष के शिक्षित व्यक्तियो को प्रोत्साहन देने तथा उनमे साहित्यिक रुचि के पुनः जागरण एव जनता मे वैज्ञानिक ज्ञान के प्रचार तथा अभिवृद्धि के लिये व्यय किया जाना चाहिये।[2] किन्तु लार्ड हेस्टिंग्स ने, जो उस समय गवर्नर जनरल थे, कलकत्ते की एक पाठ्य-ग्रथो को प्रकाशित करने वाली संस्था का संरक्षण करने, तथा प्रादेशिक शिक्षा के सम्वन्ध मे एक विवरण लिखने के अतिरिक्त और कुछ भी नही किया। सन् १८२३ मे उन्होने अपने जाने के पूर्व, एक 'जन-शिक्षा-समिति' का निर्माण अवश्य कर दिया था। एच० एच० विलसन इस समिति के मन्त्री नियुक्त हुए थे, और उन्हे एक लाख रुपये की स्वीकृत रकम को वितरित करने का अधिकार भी दे दिया गया था। इस समिति के सदस्य प्रारम्भ से ही, दो सर्वथा भिन्न विचारधाराओ को लेकर, दो वर्गों में वँटे हुए थे। एक वर्ग तो, भारतीय साहित्य तथा शास्त्र की शिक्षा को प्रश्रय देने के पक्ष मे था, और दूसरा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा का प्रसार करना चाहता था। समिति मे प्रथम वर्ग के लोगो, अर्थात् भारतीय विद्याओ के प्रचार की रुचि रखने वाले व्यक्तियो का प्राधान्य था। इसलिए यह निर्णय हुआ कि वनारस के 'संस्कृत कॉलेज' की भाति के कुछ और विद्यालय, कलकत्ता तथा अन्य स्थानो मे भी खोले जायँ।

अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीयो ने इस निर्णय का प्रवल विरोध किया। राजा

१. नूरुल्लह तथा नायक 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया', पृ० ६६
२. वही, पृ० ६६

राम मोहन राय ने लार्ड एमहर्स्ट को एक स्मृति-पत्र लिखा, जिसमे यह कहा गया था

"जब इस नये शिक्षा-केन्द्र (नये सस्कृत कॉलेज) की स्थापना का प्रस्ताव हुआ था, हम लोगो ने समझा था कि इगलैंड मे स्थित सरकार ने अपनी भारतीय प्रजा को शिक्षित करने के लिये प्रति वर्ष एक विशेष रकम व्यय करने का निश्चय किया है। हम लोगो को बडी आशाए थी कि इस धन का उपयोग शिक्षित तथा प्रतिभाशाली यूरोपीय सज्जनो की नियुक्ति मे होगा जो भारतवर्ष के निवासियो को उस ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा प्रदान करेंगे, जिन्हें यूरोप के राष्ट्रो मे इतनी सीमा तक सम्पन्न बना दिया है, जिससे कि वे ससार के अन्य क्षेत्रो की जनता से अधिक उन्नत हो गये हैं ... अब हम देखते हैं कि सरकार हिन्दू पण्डितो को नियुक्त करके एक ऐसे विद्यालय की स्थापना कर रही है, जो कि ऐसे ज्ञान का प्रसार करेगा जैसा भारतवर्ष मे स्वय ही प्रचलित है।......किन्तु सरकार का उद्देश्य तो स्थानीय निवासियो को सुधारना है, इसलिए उसे एक उदार तथा नवयुग की भावना से अनुप्राणित शिक्षा-प्रणाली को प्रश्रय देना चाहिए। और इसके लिए उसे यूरोप मे शिक्षित, प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियो को नियुक्त करना चाहिए, तथा कॉलेज मे आवश्यक पुस्तको, उपकरणो तथा अन्य सम्बद्ध सामग्री की व्यवस्था करनी चाहिए।"[1]

किन्तु यह सब लिखने का तत्काल कुछ भी प्रतिफल न हुआ।

सन् १८३५ में, टॉमस बैबिंगटन मैकाले की नियुक्ति, जो इगलैंड से गवर्नर जनरल की परिषद मे वैधानिक सदस्य के रूप मे कार्य करने के लिये आया था, 'जन शिक्षा-समिति' के अध्यक्ष के रूप मे हुई। 'समिति' के अन्य सदस्यों के सामने शिक्षा के सम्बन्ध मे अपने विचार, उसने १८३५ की दूसरी फरवरी को, लिखित रूप मे प्रस्तुत किये। किस भाषा को शिक्षा का माध्यम स्वीकार किया जाय, इस सम्बन्ध मे उसके सामने तीन विकल्प थे या तो भारतवर्ष की प्रादेशिक भाषाओ को स्वीकार किया जाये, अथवा प्राच्य देशो की पुरातन भाषाओ को, या अग्रेजी को। उसने इनमे से पहले को तो यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि "इस सम्बन्ध मे तो सभी वर्ग एकमत है, कि भारतवर्ष की प्रादेशिक भाषाओ मे न तो विशेष साहित्यिक ग्रन्थ ही हैं और न वैज्ञानिक, और फिर वे इतनी निर्धन तथा अविकसित है, कि जब तक वे किसी दिशा से सम्पन्न न कर दी जाएँ, उनमे किसी महत्वपूर्ण ग्रन्थ का सरलता से अनुवाद नही किया जा सकता।"[2] प्राच्य देशो की पुरातन भाषाओ—अरबी, फारसी

१ 'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया', वाल्यूम ६, पृ० १०५

२ डॉ० देवेन्द्रनाथ शुक्ल 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजुकेशनल पालिसी' (१८५४-१९०४) टकित प्रबन्ध पृ० ५

संस्कृत के सम्बन्ध मे उसका मत था कि "भारतवर्ष तथा अरब के समस्त साहित्य का वास्तविक मूल्य यूरोप के किसी अच्छे पुस्तकालय की एक अलमारी के एक खाने के ही समान था।"[१] इसलिए उन्हे शिक्षा का माध्यम बनाने का प्रश्न ही नही उठाना चाहिए। अन्त मे उसने अंग्रेजी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाने के संबंध मे विचार प्रस्तुत किये थे, किन्तु उसने यह स्पष्ट लिख दिया था कि अंग्रेजी भाषा का उपयोग शिक्षा के माध्यम के रूप मे केवल अस्थायी रूप में ही हो सकता है, क्योंकि आगे चल कर भारतवर्ष की प्रादेशिक भाषाये ही स्थायी रूप से शिक्षा का माध्यम हो सकेंगी। उसने स्पष्ट लिखा था कि "हमे इस समय एक ऐसे वर्ग के निर्माण का प्रयत्न करना चाहिए जो हमारे तथा उन लाखो व्यक्तियो के बीच, जिन पर हम शासन करते हैं, दुभाषिए का कार्य कर सके—एक ऐसे लोगो का वर्ग, जो कि रक्त और वर्ण मे तो भारतीय हो, किन्तु रुचि, विचार, आचार तथा बुद्धि की दृष्टि से अंग्रेज। इसी वर्ग के लोगो के हाथो मे हमे देश की विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ के साहित्य के पुन संस्कार के कार्य को छोड देना चाहिए। यही वर्ग उन प्रादेशिक भाषाओ के शब्द-समूह को पाश्चात्य देशो के शब्द-भंडार से ली जाने वाली वैज्ञानिक शब्दावली से सम्पन्न बनायेगा, और धीरे-धीरे उन्हे विशाल जन-समुदाय तक ज्ञान की विभिन्न धाराओ को ले जाने का उपयुक्त साधन बनायेगा।"[२]

मैकाले ने अपना यह प्रतिवेदन सन् १८३५ की ७ मार्च को, सरकार के सामने प्रस्तुत किया, और वह एक प्रस्ताव के रूप मे स्वीकार किया गया। इस प्रस्ताव के द्वारा निर्धारित नीति का अध्ययन निम्नलिखित रूप मे किया जा सकता है

(१) अंग्रेजी सरकार का सबसे बडा उद्देश्य भारतवर्ष के निवासियो मे यूरोपीय साहित्य तथा विज्ञान का प्रचार होना चाहिए और शिक्षा के लिए निश्चित समस्त धन का सदुपयोग केवल अंग्रेजी शिक्षा के लिए ही हो सकता है।

(२) स्थानीय ज्ञान की शिक्षा देने वाले विद्यालय समाप्त नही किये जाएँगे, किन्तु उनके विद्यार्थियो को कोई छात्र-वृत्ति नही दी जायेगी, और प्राच्य विद्याओ से सम्बंधित इन विद्यालयो का कोई प्राध्यापक जब अपने स्थान को छोडेगा, तो सरकार यह निर्णय करेगी कि उसके स्थान पर अन्य व्यक्ति नियुक्त करने की कहा तक आवश्यकता है।

(३) प्राच्य ग्रंथो के प्रकाशन मे कोई भी धन नही व्यय किया जायेगा।

(४) समस्त धन का उपयोग अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अंग्रेजी साहित्य

१—डॉ० देवेन्द्रनाथ शुक्ल "हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन एजुकेशनल पॉलिसी", पृ० ७
२—वही पृ० ८

तथा विज्ञान की शिक्षा देने के लिए किया जायेगा ।[१]

जब अग्रेजी सरकार द्वारा, अग्रेजी शिक्षा के सम्बन्ध मे, ये निर्णय लिये जा रहे थे, हिन्दी-प्रदेश मे केवल तीन ही कॉलेज थे, जिनमे अग्रेजी के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी । बनारस का 'सस्कृत कॉलेज', जैसा पहले लिखा जा चुका है, प्राच्य साहित्य तथा शास्त्रो की शिक्षा देने के लिये स्थापित किया गया था । किन्तु इस दिशा मे उसे विशेष सफल न देखकर, सन १८३० मे उसमे अग्रेजी विभाग भी खोल दिया गया था ।[२] इसके अनन्तर इस विद्यालय ने जॉन म्यूर तथा उनके योग्य उत्तराधिकारी डॉ० वैलेनटाइन के निरीक्षण मे, निश्चित रूप से विशेष उन्नति की । उसमे अब पाश्चात्य प्रणाली के अनुसार शिक्षा दी जाने लगी थी तथा अग्रेजी की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाने लगा था ।[3] अन्य दो कॉलेज, आगरा तथा दिल्ली मे थे, जिनकी स्थापना क्रमशः सन् १८२३ तथा १८२५ मे हुई थी । बनारस के प्रयोग से यह स्पष्ट हो चुका था कि जनता के हृदय मे प्राच्य साहित्य तथा शास्त्रो की शिक्षा के प्रति कोई विशेष रुचि नही थी, इसीलिए इन कॉलेजो मे अग्रेजी विभाग प्रारम्भ से ही खोल दिये गये थे ।[४] इन्ही कॉलेजो की रूपरेखा पर इलाहाबाद, मेरठ, बरेली तथा हिन्दी-प्रदेश के कुछ अन्य प्रमुख नगरो मे हाई स्कूल खोले गये । सन् १८४३ मे इस प्रकार के स्कूलो की सख्या ८ थी । सन् १८५० मे बरेली के हाई स्कूल को कॉलेज का रूप दे दिया गया ।[५]

सन् १८४३ मे शिक्षा के प्रबन्ध का कार्य केन्द्रीय सरकार से प्रान्तीय सरकारो के हाथो मे पहुच गया ।[६] उस समय हिन्दी-प्रदेश मे अग्रेजी के विद्यार्थियो की सख्या १४२३ थी, उर्दू के विद्यार्थियो की १०१५, हिन्दी ७३६, अरबी ८८, फारसी २७० तथा सस्कृत १७१ ।[७] किन्तु विद्यार्थियो की इतनी सख्या होते हुए भी यह नही कहा जा सकता कि हिन्दी-प्रदेश मे अग्रेजी शिक्षा ने कोई विशेष स्थान बना पाया था । इसका कारण, इस प्रदेश की शिक्षा की स्थिति पर, उसी समय लिखे जाने वाले एक

१—डॉ० देवेन्द्र नाथ शुक्ल 'हिस्ट्री ऑफ दि इडियन एजुकेशनल पॉलिसी', पृ० ८ तथा ९

२—विलियम हन्टर 'रिपोर्ट ऑफ दि एजुकेशन कमीशन' (१८८१-८२) पृ० १७

३ वही, पृ० १७

४—वही, पृ० १७

५—वही, पृ० १८

६—वही, पृ० १७

७—वही, पृ० १७

विवरण मे इस प्रकार स्पष्ट किया गया है

"यहाँ सरकार का सचालन करने वालो को छोड कर अन्य यूरोपीय लोगो की सख्या बहुत ही कम है। यूरोप के ऐसे सम्पन्न व्यापारी भी यहाँ नही रहते, जो अंग्रेजी का ही व्यवहार करते हो, और अंग्रेजी ढग से ही काम चलाते हो। ऐसा कोई उच्च न्यायालय भी यहाँ नही है, जिसमे अंग्रेजी के माध्यम से ही न्याय होता हो, न अंग्रेज वक्ता तथा वकील ही यहा हैं, न यहाँ समुद्री मार्ग से व्यापार ही होता है, जिससे कि जहाजो के ऊपर अंग्रेज नाविक आते हो, और निरन्तर विदेशी सामग्री तथा वस्तुओ से प्रभावित करते हो। सरकारी सस्थाओ मे भी ऐसे पद बहुत थोडे से हैं जिनके कार्य सचालन के लिए अंग्रेजी भाषा का ज्ञान बहुत आवश्यक है।"[१]

इन्ही सब कारणो से सरकार ने यह निश्चय किया कि कॉलेजो को छोड कर अन्य शिक्षा-केन्द्रो मे, प्रादेशिक भाषाओ को भी शिक्षा का माध्यम बनाना उपयुक्त होगा। इसके अनन्तर अंग्रेजी सरकार ने प्राथमिक शिक्षा की एक योजना चलाई।

सन् १८५४ की १९ जुलाई को अंग्रेजी सरकार ने सर चार्ल्स उड द्वारा तय्यार की गई शिक्षा सम्बन्धी योजना प्रकाशित की, जो भारतवर्ष मे अंग्रेजी शिक्षा के 'मैगना चार्टा' के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के प्रारम्भ मे ही यह घोषणा थी, कि बहुत से महत्वपूर्ण विषयो मे, शिक्षा का महत्व सबसे अधिक है।[२] शिक्षा का मुख्य उद्देश्य यूरोप के साहित्य, दर्शन, विज्ञान तथा कलाओ का प्रचार होना चाहिए।[३] पूर्वी देशो के शास्त्रीय साहित्य के अध्ययन को भी पूर्णत नही छोडा गया था, वरन् अंग्रेजी शिक्षा के साथ उन्हे भी स्थान दिया गया था। उच्च कक्षाओ मे अंग्रेजी को ही शिक्षा के माध्यम के रूप मे स्वीकृत किया गया था। किन्तु माध्यमिक कक्षाओ में उसके साथ-साथ भारतीय भाषाओ को भी स्थान मिला था। यह स्पष्ट लिख दिया गया था कि "हम अंग्रेजी तथा भारतीय भाषाओ, दोनो को ही एक साथ ज्ञान के प्रसार के साधन के रूप मे काय करते हुए देखना चाहते है, तथा हमारी यह भी इच्छा है कि इन दोनो का अध्ययन एक साथ हो।"[४] इस प्रकार अंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम का स्थान, केवल भारतीय भाषाओ की

१—नुरुल्लह एण्ड नायक . 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया', पृ० १४८

२—डा० देवेन्द्रनाथ शुक्ल 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजुकेशनल पॉलिसी' (१८५४-१९०४), पृष्ठ ३०

३—वही, पृ० ३०

४—वही, पृ० ४१

अभिवृद्धि के लिए ही दिया गया था। यह योजना इसी दृष्टि से हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए महत्व की है। सर चार्ल्स उड ने यह भी लिखा था कि प्रत्येक प्रान्त मे अपने अलग-अलग शिक्षा विभागो का निर्माण हो। इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा के लक्ष्य तथा उद्देश्य के स्पष्ट हो जाने के अनन्तर, भारतवर्ष के विभिन्न विभागो मे उसका विकास, द्रुत गति से होने लगा।

सर चार्ल्स उड की इसी योजना की प्रेरणा से सन् १८५७ मे कलकत्ता विश्व-विद्यालय की स्थापना हुई। हिन्दी-प्रदेश मे स्थित बनारस, आगरा तथा बरेली के कॉलेजो को तब इसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिया गया। १८५७ के विद्रोह के समय दिल्ली का कॉलेज समाप्त कर दिया गया। विद्रोह की समाप्ति के बाद वह पुन स्थापित हुआ। हिन्दी-प्रदेश मे भी आगे चल कर कुछ नये कॉलेजो की स्थापना हुई। सन् १८६४ मे लखनऊ मे कैनिंग कॉलिज स्थापित हुआ, सन् १८७२ मे इलाहाबाद मे म्योर सेन्ट्रल कॉलेज, तथा सन् १८७५ मे अलीगढ मे मोहम्मेडन ऐंग्लो ओरियेन्टल कॉलेज। ये तीनो ही कॉलेज आगे चल कर विश्वविद्यालयो के रूप मे परिवर्तित हो गये। सन् १८८१-८२ मे हिन्दी-प्रदेश मे माध्यमिक शिक्षा-केन्द्रो की सख्या १२१ थी।[1] सन् १९०२ मे हिन्दी-प्रदेश मे २६ कॉलेज थे, जिनमे से चार प्रयाग, चार लखनऊ और तीन आगरे मे थे।[2] हाई स्कूलो की सख्या भी इस बीच मे इसी अनुपात से बढ गई थी।

सन् १८८७ मे इलाहाबाद मे हिन्दी-प्रदेश के प्रथम विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। उसकी स्थापना का विवरण इस प्रकार है

"उत्तर भारत मे एक विश्वविद्यालय की स्थापना का प्रश्न बहुत पहले सन् १८६९ तथा १८७० मे उठा था। पश्चिमोत्तर प्रान्त की सरकार ने इलाहाबाद मे विश्वविद्यालय के मूल-सूत्र के रूप मे एक कॉलेज खोलने का प्रस्ताव किया था। ••• भारतीय सरकार ने कॉलिज की स्थापना की स्वीकृति प्रदान कर दी थी, किन्तु उसने विश्वविद्यालय की स्थापना की वाञ्छनीयता के सम्बन्ध मे अपने को किसी प्रकार प्रतिश्रुत नही किया था। राज्य के शिक्षा विभाग के मत्री ने यह आशा अवश्य प्रकट की थी कि यह कॉलिज आगे चलकर विश्वविद्यालय मे परिणत हो सकेगा।

पश्चिमोत्तर प्रात के लेफ्टिनेंट गवर्नर ने, राजाओ तथा ताल्लुकदारो का सहयोग प्राप्त करके, सन् १८७२ की पहली जुलाई को एक किराये की इमारत

१—नूरुल्लह एण्ड नायक 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया' पृ० २९४
२—वही, पृ० २३५

लेकर एक केन्द्रीय कॉलिज का प्रारम्भ कर दिया। म्योर कॉलिज के नये भवन का शिलान्यास लार्ड नार्थब्रुक ने सन् १८७३ मे किया था, और उसका उद्घाटन लार्ड डफरिन ने सन् १८८६ मे किया। इस बीच सन् १८८४ मे पंजाब ने भी अपने लिए एक विश्वविद्यालय प्राप्त कर लिया था। एजुकेशन कमीशन ने संयुक्त प्रांत मे भी एक विश्वविद्यालय की स्थापना का परामर्श दिया था। यह सुझाव अच्छा समझा गया था। यह अनुभव किया गया कि कलकत्ता बहुत दूर है और उसके विश्वविद्यालय की नियमावली भी उत्तर भारत मे उच्च शिक्षा के विकास के लिए पूर्णत अनुकूल नही है। विशेष रूप से कलकत्ता विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम बहुत दोष पूर्ण समझा गया, इस दृष्टि से कि उसमे उन प्राच्य साहित्य तथा शास्त्रो के अध्ययन को उचित स्थान नही दिया गया था, जो कि संयुक्त प्रांत मे पहले से प्रचलित थे। यह भी आशा की जाती थी कि एक स्थानीय विश्वविद्यालय की स्थापना से शिक्षा के विकास को और प्रेरणा मिलेगी। इसी सब के अनुसार सन् १८८७ मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय की व्यवस्था करते हुए गवर्नर जनरल की कौंसिल मे एक धारा स्वीकृत हुई थी।"[१]

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना इसी धारा के आधार पर सन् १८८७ मे हुई। उस समय इस प्रदेश के हाई स्कूलो से लेकर एम० ए० तक के शिक्षा-केन्द्र इसी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित कर दिये गये। अपने प्रारम्भिक वर्षो मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय केवल कला तथा न्याय विभागो की उपाधियाँ प्रदान कर सकता था, सन् १८९४ में सपरिषद गवर्नर जनरल ने विज्ञान विभाग की व्यवस्था को स्वीकृति प्रदान की और सिनेट को यह अधिकार दिया कि वह विज्ञान मे ग्रेजुएट तथा डॉक्टरेट की उपाधियाँ प्रदान कर सके।[२] सन् १९०७ मे अर्थशास्त्र मे भी एम० ए कक्षाए खोलने का अधिकार मिला, तथा सिनेट को डॉक्टर ऑफ लेटर्स की उपाधि देने की अनुमति मिली। सन् १९०८ मे जीव-विज्ञान तथा १९११ मे वाणिज्य भी अध्ययन के विषयो के रूप मे स्वीकार किये गये।[३]

सन् १९१५ मे हिंदी-प्रदेश मे एक अन्य विश्वविद्यालय—बनारस हिंदू विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सन् १९२० मे लखनऊ विश्वविद्यालय तथा अलीगढ मे मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना स्वयं जनता द्वारा हुई थी, इसलिये उनके निर्माण का इतिहास आगे चल कर अलग दिया जायेगा।

१—नूरुल्ला तथा नायक · 'हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया,' पृ० २३७ ३८

२—डॉ० अमरनाथ झा 'इलाहाबाद युनिवर्सिटी के पचास वर्ष', 'हिन्दुस्तानी', जनवरी १९३८, पृष्ठ ८७-८८

३—वही, पृ० ८९

२—ईसाई प्रचारको के प्रयास—

ईसाई प्रचारको ने जिस मूल उद्देश्य को लेकर अपने केन्द्रो तथा शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना की थी, उसकी विवेचना, रेवरेन्ड एस० डॉयसन ने अपने 'हाई मिशन एजुकेशन' शीर्षक लेख मे, जिसे उन्होने सन् १८७२ तथा ७३ मे इलाहाबाद मे होने वाली 'आल इन्डिया क्रिश्चियन कॉन्फ्रेंस' मे पढा था, इस प्रकार की थी

"ईसाई धर्म का प्रचार तथा स्थापना ही के उद्देश्य से विभिन्न मिशनरी सोसाइटियाँ तथा सस्थाएँ कायम है, और यही वास्तविक कारण है जिसको लेकर मिशनरी सोसाइटियो द्वारा भारतवर्ष के विभिन्न भागो मे स्कूलो तथा कॉलेजो की स्थापना की गई है, विधर्मियो को ईसाई बनाने के लिए।"[1]

हिन्दी-प्रदेश मे भी ईसाई प्रचारको ने इसी उद्देश्य को लेकर शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना की थी।

ईसाई प्रचारको द्वारा स्थापित किये गये शिक्षा-केन्द्रो मे सर्व प्रथम महत्व का, आगरा का सैन्ट जॉन्स कॉलेज था। उसके प्रारम्भ के सम्बन्ध मे सन् १८१२ मे स्थापित 'आगरा मिशन' तथा सन् १८४० मे स्थापित 'आगरा चर्च मिशनरी एसोसियेशन' के नाम आते हैं।[2] इनमें से अन्तिम सस्था ने अपनी स्थापना के दस वर्ष बाद यह सोचना प्रारम्भ किया था कि आगरा जैसे विशेष आबादी के नगर मे, जो उस समय प्रात की राजधानी भी थी उच्च शिक्षा के लिए एक मिशन कॉलेज होना चाहिए, जो सरकार के विभिन्न पदो पर कार्य करने वाले भारतीय अधिकारियो को तथा भारतीय समाज के प्रभावशाली वर्गो के नव युवको को शिक्षा प्रदान कर सके।[3] उस समय हिन्दी-प्रदेश मे उच्च शिक्षा के केन्द्र बहुत थोडे थे। इसी प्रकार की परिस्थिति मे 'आगरा चर्च मिशनरी सोसाइटीज एसोसियेशन' की समिति ने, जिसके सभी सदस्य अग्रेज नागरिक तथा सैनिक अधिकारी थे, यह निश्चय किया कि एक उच्च श्रेणी के क्रिश्चियन कॉलेज की स्थापना की जाय।

इस कॉलेज की स्थापना से यह आशा की जाती थी, कि ईसाई सस्कृति तथा अंग्रेजी भाषा के माध्यम से दी जाने वाली उच्चतर शिक्षा जिसका पाठ्यक्रम पाश्चात्य विश्वविद्यालयो से बहुत कुछ मिलता जुलता हो, पूर्णत ईसाई वातावरण मे दिये जाने पर एक नये प्रकार के उच्च कोटि के आचार पूर्ण व्यक्तियो की सृष्टि करेगी।

१—'रिपोर्ट ऑफ दि जनरल मिशनरी कॉन्फ्रेंस इलाहाबाद (१८६६-७३),' पृ ८०

२—'सैन्ट जॉन्स कॉलेज आगरा (१८५०-१९३०)' पृ० १-२

३—वही, पृ० ७

उसके सस्थापको को यह भी आशा थी कि आगे चल कर यह कॉलेज शिक्षा सम्वन्धी शक्तिशाली प्रभाव डालने वाला एक केन्द्र हो जायेगा, जो कि सम्पूर्ण प्रान की जनता के आचार विचारो को शुद्ध करेगा तथा शिक्षित वर्गो के सामान्य स्तर को ऊपर उठायेगा। यह योजना इन्ही सव कारणो से वडे उत्साह के साथ स्वीकार की गई थी, और उसके लिए धन सग्रह किया जाने लगा था। इस शिक्षा-केन्द्र की स्थापना के लिए अर्थ-दाताओ मे सर्व प्रमुख नाम, तत्कालीन लैपिटनेन्ट गवर्नर थॉमसन का था, जिसने कॉलिज मे 'इगलिश लिट्रेचर स्कॉलरशिप' नाम की एक छात्रवृत्ति का प्रारम्भ किया था, और यह छात्रवृत्ति अभी तक उसी के नाम से चली जा रही है।[1] कॉलेज के लिए भवन के निर्माण का कार्य सन् १८५० मे प्रारम्भ हो गया था। सन् १८५२ की १६ दिसम्वर को नये भवन का उद्घाटन हुआ। उसके अनन्तर कॉलिज का कार्य सुचारु रूप से चलने लगा।

सैन्ट जॉन्स कॉलेज के सस्थापको का विचार था, कि वे उसे उच्च शिक्षा का एक ऐसा केन्द्र वना दे, जिससे कि ईसाई प्रचारको द्वारा स्थापित सभी हाई स्कूल सम्वन्धित कर दिये जायें। इस कॉलेज से सम्वन्धित इसी प्रकार के एक शिक्षा-केन्द्र की स्थापना सन् १८५५ मे मथुरा मे हुई थी। उसके अनन्तर कुछ ही वर्षो मे ईसाई प्रचारको द्वारा स्थापित गोरखपुर, वनारस, वस्ती, आजमगढ, जौनपुर, मेरठ तथा लखनऊ के हाई स्कूल, इसी कॉलिज से सम्वन्धित कर दिये गये। सैन्ट जॉन्स कॉलिज वहुत वर्षो तक उत्तर भारत के प्रमुख शिक्षा-केन्द्रो मे गिना जाता रहा। इसी सस्था की रूपरेखा पर आगे चल कर अमरीकी ईसाई प्रचारको ने इलाहावाद मे क्रिश्चियन कॉलेज और कानपुर मे क्राइस्ट चर्च कॉलेज की स्थापना की। इन्ही शिक्षा-केन्द्रो तथा इसी प्रकार की अन्य सस्थाओ के माध्यम से ईसाई प्रचारको ने अपने धार्मिक उपदेशो के साथ-साथ अंग्रेजी साहित्य तथा विज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की। इस सव का श्रेय यद्यपि उन्होने कभी अपने लिए मागा नही है, तथापि उन्हें अवश्य दिया जाना चाहिए।

(३) जनता के प्रयास

हिन्दी-प्रदेश मे जनता के द्वारा स्थापित किये गये शिक्षा-केन्द्रो मे वनारस का जय नारायण घोषाल स्कूल अग्रगण्य है, जिसकी स्थापना सन् १८१३ मे वावू जयनारायण घोषाल के प्रयत्न से हुई थी। इस सम्वन्ध मे सर्व प्रथम उन्होने मार्क्विस ऑफ हेस्टिंग्स के पास एक स्मृति-पत्र भेजा था, जिसमे उन्होने इस सस्था के

१—'सैन्ट जॉन्स कॉलिज आगरा (१८५० १९३०)', पृ० ८

लिए २०,००० रुपये तथा कुछ भूमि भी देने की इच्छा प्रकट की थी। सरकार ने भी कुछ आर्थिक सहायता प्रदान की और स्कूल की स्थापना की अनुमति दे दी। इस विद्यालय का प्रारम्भ इस सब के पश्चात सन् १८१३ मे हुआ।[1]

सन् १८८१-८२ के शिक्षा सम्बन्धी विवरण मे इस प्रकार की कुछ अन्य संस्थाओ के भी उल्लेख हैं, जिनकी स्थापना जनता के अपने प्रयत्नो से हुई थी। आगरा कॉलिज की स्थापना के लिए पण्डित गगाधर शास्त्री ने १,५०,००० रुपए एकत्र किये थे।[2] सन् १८२९ मे अवध के मुख्य मन्त्री नवाब ऐतमादउद्दौला ने दिल्ली कॉलिज की उन्नति के लिए १७०००० रुपये प्रदान किये थे।[3] १८६४ मे लखनऊ मे कैनिंग कॉलिज की स्थापना निश्चित रूप से अवध के ताल्लुकेदारो के प्रयत्न से हुई थी। उन्होने सरकार से यह भी प्रार्थना की थी कि कॉलिज को चलाने के लिए वह उनकी भूमि का लगान आधा प्रतिशत और बढा दे।[4] इलाहाबाद का म्योर कॉलिज भी आशिक रूप से जनता के प्रयत्न से ही स्थापित हुआ था। उसकी स्थापना के सम्बन्ध मे 'इलाहाबाद इस्टीट्यूट' के सदस्यो के नाम सदा स्मरणीय रहेगे।[5] अलीगढ का एंग्लो ओरियेण्टल कॉलिज तो निश्चित रूप से सर सय्यद अहमद खाँ तथा कुछ अन्य जागरूक मुसलमानो के प्रयत्न से आरम्भ हुआ था।

सन् १८७५ मे आर्य समाज की स्थापना के अनन्तर जब आर्य-समाजियो ने अपना प्रचार-कार्य आरम्भ किया तो उन्होने भी ईसाई प्रचारको की भाति शिक्षा को उस के माध्यम के रूप मे स्वीकार किया। उनका मूल उद्देश्य प्राचीन साहित्य तथा शास्त्रो का पुनरुत्थान करना था, किन्तु अपनी शिक्षा को उपयोगी बनाने के लिए उन्हे अपने शिक्षा-केन्द्रो मे अंग्रेजी की भी व्यवस्था करनी पडी थी। उन्हे मुख्यत अंग्रेजी शिक्षा-प्रणाली को ही स्वीकार करना पडा था, इसलिये उनका भी अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे योग माना जा सकता है।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से जिस नव जागरण की भावना का विकास हुआ था, उसने भारतीय समाज के कुछ वर्गो को अपने-अपने विद्यालय स्थापित करने

१—डा० देवेन्द्र नाथ शुक्ल 'हिस्ट्री ऑफ इन्डियन एजुकेशनल पालिसी (१८५४-१९०४)' पृ० २

२—विलियम हन्टर 'रिपोर्ट ऑफ दि एजुकेशन कमीशन (१८८१-८२)' पृ० २५९-६०

३—वही, पृ० २६०-६१

४—वही, पृ० २६५

५—डा० अमरनाथ झा 'दि हिस्ट्री ऑफ दि म्योर सेन्ट्रल कालेज', पृ० २

की प्रेरणा दी थी। इसी भावना से प्रेरित होकर मुन्शी काली प्रसाद कुलभास्कर ने अपने व्यक्तिगत प्रयत्नो से इलाहाबाद मे कायस्थ पाठशाला की स्थापना की थी। जनता के अपने प्रयत्नो द्वारा स्थापित किये गये शिक्षा-केन्द्रो मे बनारस का हिन्दू विश्वविद्यालय है। उसके विकास का प्रारम्भ एनीबीसेंट द्वारा स्थापित सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज से हुआ था और आगे चल कर प० मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न से उसने एक विश्वविद्यालय का रूप प्राप्त कर लिया। सन् १९२० मे लखनऊ के कैनिंग कॉलिज तथा अलीगढ के एँग्लो ओरियेंटेल कॉलेज भी, जिनकी स्थापना जनता के अपने प्रयत्नो से हुई थी, विश्वविद्यालयो के रूप मे परिवर्तित कर दिये गये।

इस प्रकार हिन्दी-प्रदेश मे अग्रेजी शिक्षा का प्रसार, सरकार, ईसाई प्रचारको तथा जनता के जागरूक व्यक्तियो के सम्मिलित प्रयत्न से हुआ था, जिसने कि आगे चल कर हिन्दी भाषा तथा साहित्य को अग्रेजी भाषा तथा साहित्य से प्रभावित करने मे सहायता दी। इन्ही शिक्षा-सस्थाओ के माध्यम से हिन्दी-प्रदेश के लोगो को अग्रेजी भाषा तथा साहित्य का परिचय प्राप्त हुआ था और उन्होने अपने भाषा तथा साहित्य की प्रगति के लिए उसके विकास से शिक्षा लेना प्रारम्भ किया था।

३-ईसाई प्रचारक

ईसाई प्रचारक, हिन्दी-प्रदेश मे सर्व प्रथम सन् १८१० मे आये थे,[१] किन्तु उन्होने हिन्दी भाषा तथा साहित्य से सम्बन्धित काय का प्रारम्भ, इसके बहुत पहले, श्रीरामपुर मे अपने केन्द्र की स्थापना के समय से ही प्रारम्भ कर दिया था। सौभाग्य से श्रीरामपुर मे ईसाई प्रचारको द्वारा किये गये समस्त कार्य का विवरण, जॉन क्लार्क मार्श मैन के ग्रन्थ 'दि लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ कैरे, मार्शमैन एण्ड वार्ड' मे, जिसका प्रकाशन दो खण्डो मे सन् १८५९ मे हुआ था, प्राप्त है, नही तो सन् १८१२ के मार्च महीने की १८ तारीख को वहा जो आग लगी थी, तथा १८५७ के विद्रोह के समय उस केन्द्र का जो ध्वस किया गया था, इन दोनो के फलस्वरूप आज हमे वहा रह कर काम करने वाले ईसाई प्रचारको के सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञात न होता। मिशन की स्थापना के थोडे समय बाद ही, सन् १८०० मे श्रीरामपुर मे एक प्रेस भी स्थापित हो गया था।[२] उसी प्रेस से सन् १८०१ मे कैरे द्वारा बगला मे अनुवादित, बाइबिल का एक सस्करण प्रकाशित हुआ था। बगला भाषा मे मुद्रित होने वाली यही सर्व

१—जॉन क्लार्क मार्शमैन 'दि लाइफ एण्ड टाइम्स आफ कैरे, मार्शमैन एण्ड वार्ड', पृ० ४२९

२—वही, पृ० १२९

प्रथम रचना थी। सन् १८०४ मे श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारको ने अपने धर्म-ग्रथ को प्राच्य देशो की कई भाषाओ मे अनुवादित करने की योजना बनाई थी।[१] इस प्रस्ताव मे यह स्वीकार किया गया था कि भारतवर्ष की कम से कम सात प्रमुख भाषाए है—बँगाली, हिन्दुस्तानी, उडिया, तेलगू, कन्नड, तथा तामिल, और इस योजना को बनाने वालो को यह आशा थी कि इनसे से कुछ भाषाओ मे बाइबिल के अनुवाद किये जा सकते हैं। उनके मन मे यह सम्भावना अनुकूल परिस्थिति को देखकर तथा कुछ अन्य विशेष कारणो से उत्पन्न हुई थी। "उन्होने जो अनुवाद किये थे उससे उन्हे अनुवाद-क्रिया की भली प्रकार शिक्षा मिल गई थी, फोर्ट विलियम कॉलेज के सम्बन्ध से वे इन सभी प्रदेशो के शिक्षित व्यक्तियो का सहयोग प्राप्त करने की स्थिति मे थे, बाइबिल से सम्बन्धित उन्होने एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना कर ली थी, उनके पास मुद्रण की विशेष व्यवस्था थी तथा नए अक्षर बनाने के भी साधन थे, और इन सब के अतिरिक्त उनकी स्थिति कुछ ऐसी थी कि वे बडी सुविधा के साथ अपने धार्मिक प्रकाशनो को वितरित कर सकते थे।"[२] बाइबिल के हिन्दी अनुवाद का प्रारम्भ सन् १८०३ मे ही हो गया था, और सन् १८१० मे उसके कुछ अश मुद्रित भी हुए थे।

अनुवाद की इन योजनाओ के साथ ही देश के भीतरी भागो मे भी प्रचार-केन्द्र स्थापित करने का एक प्रस्ताव रखा गया था। उन केन्द्रो मे जिन प्रचारको की नियुक्ति होनी थी, उन्हे अपने भरण-पोषण के लिए कुछ व्यापार का आश्रय लेना था। इस उद्योग से होने वाले लाभ को उन्हे मिशन को देना था, और व्यक्तिगत खर्च के लिए उतना ही धन स्वीकार करना था, जितना कि श्रीरामपुर मे रहने वाले उनके सहयोगियो को मिलता था।[३] इस योजना मे यह भी स्वीकार किया गया था कि विभिन्न केन्द्रो मे काय करने वाले प्रचारक, वर्ष मे एक बार किसी स्थान पर एकत्र होकर विचार विमर्श अवश्य कर लें। यह योजना मार्शमैन की बनाई हुई थी।

सन् १८०९ मे बाईबल का अनुवाद हिन्दुस्तानी मे हुआ था, और उसी समय उसका एक पजाबी सस्करण भी प्रकाशित हुआ था। इन दोनो सस्करणो की प्रतियो को देखकर श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारको की यह बडी प्रबल इच्छा हुई कि किसी प्रकार इन्हे उन क्षेत्रो मे बाटा जाये जहा ये भाषाएँ बोली जाती हैं। चैम्बरलेन नामक एक प्रचारक, जो साहसिक मनोवृत्ति का था, तथा जिसमे इन भाषाओ के सीखने की विशेष रुचि थी, इस कार्य को करने के लिए तैयार हुआ। सहारनपुर, जो

१—जॉन क्लार्क मार्शमैन 'दि स्टोरी ऑफ कॅरे, मार्शमैन एण्ड वार्ड', १९३

२—वही, पृ० ८९

३—वही, पृ० ९०

उस समय सिक्ख और अग्रेजी राज्य की सीमाओ पर स्थित था, इन ग्रथो के प्रचार के सम्बन्ध मे प्रथम केन्द्र के रूप मे उपयुक्त समझा गया। इस सम्बन्ध मे सपरिषद् गवर्नर जनरल के पास, सितम्बर के महीने मे, इस नगर मे जाने के लिए दो ईसाई प्रचारको को अनुमति देने के लिए आवेदन-पत्र भेजा गया। इस आवेदन-पत्र मे वहा जाने का उद्देश्य बाईबल के हिन्दुस्तानी तथा पजाबी अनुवादो को सुधारना बताया गया था। किन्तु यह कहकर, कि वस्तु-स्थिति को देखते हुए, उन यूरोपियनो को छोड कर जो कि नागरिक अधिकारी थे, अन्य किसी यूरोपीय व्यक्ति को इस सीमा-प्रदेश पर भेजना अनुपयुक्त होगा, यह प्रार्थना-पत्र अस्वीकार कर दिया गया था। इस उत्तर के मिलने पर मार्शमैन ने स्वय जाकर तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो से भेट की, और उनसे आगरा अथवा दिल्ली मे एक प्रचार-केन्द्र स्थापित करने की अनुमति ले ली। सन् १८१० की १६ नवम्बर को चैम्बरलेन को आगरे की ओर जाने का आज्ञापत्र मिला, और उसने वहा पहुचकर मिशन की स्थापना कर दी। किन्तु वहा उसे रहे बहुत समय नही हुआ था, जब कि उसे तथा उसके साथ के अन्य ईसाई प्रचारको को तत्काल आगरा छोड देने का आदेश मिला, क्योकि इन प्रचारको ने सैनिको को भी धार्मिक शिक्षा देने का अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। हिन्दी-प्रदेश मे ईसाई प्रचारको ने अपना केन्द्र स्थापित करने का जो प्रयत्न प्रारम्भ किया था, उसकी समाप्ति इस प्रकार हुई।

किन्तु श्रीरामपुर के ईसाई-प्रचारको का हिन्दी भाषा तथा साहित्य से सम्बन्धित कार्य, हिन्दी-प्रदेश मे अपना केन्द्र स्थापित करने के प्रयत्न से ही नही समाप्त हो जाता। वे अपने धर्म-ग्रथ का अनुवाद, हिन्दी तथा उसकी ग्रामीण बोलियो मे करते रहे। सन् १८०६ से लेकर १८२६ तक उन्होने उसका अनुवाद हिन्दी (पश्चिमी प्रदेश की हिन्दी का एक रूप), ब्रजभाषा, अवधी, मागधी, उज्जैनी तथा बघेली मे कर लिया था।[1] सन् १८११ मे बाइबिल के कुछ अश हिन्दुस्तानी मे भी प्रकाशित हुए, साथ ही बाइबिल का एक हिन्दी रूपान्तर भी, जिसमे अरबी, फारसी के शब्दो को जान बूझ कर छोड दिया गया था, बनारस तथा गाजीपुर के निवासियो मे प्रचार के लिए प्रकाशित हुआ था।[2] किन्तु ये सभी अनुवाद आज प्राप्य नही हैं, या तो वे सन् १८१२ मे श्रीरामपुर मे लगने वाली आग मे समाप्त हो गये, अथवा सन् १८५७ के विद्रोह मे विनष्ट हुए।

---

१ 'मेमोरीज ऑफ टेन मिशनरीज ऑफ श्रीरामपुर, पृ० ७६
२ वही, पृ० ८१

सन् १८१३ की घोषणा के अनन्तर, जब ईसाई प्रचारको को, विलियम वेलवर फोर्स द्वारा, ब्रिटेन की पार्लियामेंट मे, उनकी रक्षा के लिए प्रस्तुत किये गये तर्कों के कारण, अपने अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हुई, तो उन्होने फिर से हिन्दी-प्रदेश मे अपने केन्द्रो के स्थापन का कार्य प्रारम्भ किया। इस बार उनके प्रचार-केन्द्र की स्थापना आगरा के निकट सिकन्दरा मे, सन् १८१३ मे सर्व प्रथम, हुई। सन् १८१६ तथा १७ मे मेरठ तथा बनारस मे भी ईसाई प्रचारको के केन्द्र स्थापित हुए, और सन् १८७२-७३ तक हिन्दी-प्रदेश मे इन केन्द्रो की सख्या ७० के लगभग पहुँच गई। उनमे से यदि सिकन्दरा को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो आगरे मे पाच, बनारस मे चार तथा प्रयाग मे चार केन्द्र थे। इस समय तक, ईसाई धर्म का पचार करने वाली जिन सस्थाओ ने हिन्दी-प्रदेश मे अपने केन्द्र स्थापित किये थे, उनके नाम, उनके कार्यारम्भ का वर्ष तथा उनके द्वारा स्थापित केन्द्रो की सँख्या इस प्रकार है —

चर्च मिशनरी सोसाइटी,	प्रारम्भ १८१३,	केन्द्र सख्या	१७
बॅप्टिस्ट ,, ,, ,	,, १८१७,	,,	५
लन्दन ,, ,, ,	,, १८२२,	,,	५
सोसाइटी फॉर दि प्रोपेगेशन ऑफ गॉस्पल,	,, १८३३,	,,	३
अमरीकन प्रेसिपिटेरियन् बोर्ड,	,, १८३६,	,,	११
गॉसनर्स इवेन्जिकल लूथरन मिशन,	,, १८४३,	,,	१
अमरीकन मेथोडिस्ट एपिस्कोपल मिशन,	,, १८५८,	,,	१३
दि इण्डियन नार्मल स्कूल एण्ड फीमेल इन्सट्रक्शन सोसाइटी	,, १८६७,	,,	२
सोसाइटी फॉर प्रोमोटिंग ऑफ फीमेल एजूकेशन इन दि ईस्ट,	,, १८६८,	,,	१
चर्च ऑफ स्कॉटलैण्ड ,	,, १८६९,	,,	१[1]

इन विभिन्न ईसाई प्रचार-सस्थाओ ने, अपने केन्द्रो की स्थापना, अपने धर्म तथा उसके मान्य ग्रथ बाइबिल के प्रचार के लिए की थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए,

१—'दि रिपोर्ट ऑफ दि जनरल मिशनरी कान्फ्रेंस—इलाहाबाद (७१८२-७३)', एपेन्डिक्स

प्रचारको ने, शिक्षा सस्थाओ की स्थापना तथा ईसाई साहित्य के वितरण के साधनो को ग्रहण किया था। ईसाई प्रचारको के द्वारा स्थापित शिक्षा-सस्थाओ का अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे जो कुछ योग रहा है, उसके सम्बन्ध मे हम पहले ही अध्ययन कर चुके हैं, इसलिए आगे हम ईसाई साहित्य के प्रकाशन तथा प्रचार का अध्ययन करेंगे। यह अध्ययन विशेष रूप से हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से ही किया जायेगा।

हिन्दी के ईसाई साहित्य के इतिहास का प्रारम्भ "ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटीज" की स्थापना से आरम्भ होता है, जिन्होने विशेष रूप से बाइबिल तथा अन्य ईसाई धर्म-ग्रथो के हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किये थे। इस प्रकार की प्रकाशन सस्थाओ मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'बनारस ट्रैक्ट सोसाइटी' 'नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी', 'क्रिश्चियन वरनाकुलर लिट्रेचर सोसाइटी', 'क्रिश्चियन लिट्रेरी सोसाइटी', 'नार्थ इण्डिया आग्जोलियरी बाइबिल सोसाइटी' तथा 'बाइबिल ट्रासलेशन सोसाइटी' थी। इन प्रकाशन सस्थाओ से निकलने वाले ग्रथो के मुद्रण के लिए सिकन्दरा, आगरा, इलाहाबाद, बनारस तथा फरुखाबाद मे प्रेसो की स्थापना की गई थी। इनमे मुद्रित ग्रथो की सूची मात्र के अवलोकन से, इन प्रकाशनो की प्रमुख विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती है।

'नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी' ने जिसकी स्थापना सन् १८४८ की ३० जुलाई को हुई थी, सन् १८५४ तक निम्नलिखित ग्रथ प्रकाशित किये थे

(१) 'ग्रहीत पद'—बाइबिल से सकलित कुछ गद्याश जिनमे मुक्ति प्राप्ति के मार्ग को स्पष्ट किया गया था तथा अत मे हिन्दी मे कुछ छोटी छोटी प्रार्थनाए थी।

(२) 'वेद तत्व'—प्रोफेसर विल्सन के ग्रन्थ 'इट्रोडक्शन टू दि रिग्वेद सहिता' का हिन्दी रूपान्तर जिसमे वेदो का सार, उस युग का एक सामान्य विवरण तथा विशेषताओ की विवेचना थी।

(३) 'हिस्ट्री ऑफ मोजेज'—जिसमे सिकन्दरा ऑर्फनेज प्रेस के एक कलाकार द्वारा तीन चित्र भी जोड दिये गये थे।

(४) 'मुक्तिमाला'—इसमे सक्षेप मे ईसाई धर्म के सिद्धान्तो का, अधिकाश मे, बाइबिल के शब्दों मे ही सार था।

(५) 'सोलेमन की कहावतें हिन्दी छन्दो मे'।

(६) 'बार्थ का बाइबिल का इतिहास'।

(७) धर्म तुला।[1]

इस नामावली से ही यह स्पष्ट हो जाता है, कि ईसाई प्रचारकों ने केवल अपनी धार्मिक भावना के ग्रन्थों का ही नहीं, वरन् 'वेदतत्व' जैसी अन्य विषय की रचना का भी प्रकाशन किया था। सन् १८५८ मे, इस प्रदेश की सरकार का स्थानान्तर, आगरा से इलाहाबाद को हो गया था। उस समय आगरे की यह ईसाई प्रचारकों की प्रकाशन संस्था भी समाप्त कर दी गई, और नई राजधानी मे वह फिर से स्थापित हुई। आगरा मे सगृहीत पुस्तकें तथा प्रेसो मे तय्यार सभी ग्रन्थ १८५७ के विद्रोह मे विनष्ट कर डाले गये। इस स्थिति मे, आरम्भिक दिनो के ईसाई साहित्य के सम्बन्ध मे हम, केवल इन शीर्षकों के सहारे ही अध्ययन कर सकते हैं।

ईसाई प्रचारको द्वारा स्थापित शिक्षा-संस्थाओ की सख्या भी प्रतिदिन बढती जा रही थी, इसलिए उनकी प्रकाशन संस्थाओ पर ही, इन विद्यालयो मे पढाई जाने वाली पुस्तकों के प्रकाशन का भार पडा, और इसीलिए उन्हे बहुत से अन्य विषयो के ग्रन्थो को प्रकाशित करना पडा। इस प्रकार के कुछ ग्रथ 'कथासार', 'भूगोलसार', 'रसायन प्रकाश', 'स्त्रियो के वर्णन', 'मूर्ति-पूजा का वर्णन' आदि हैं। ईसाई प्रचारको द्वारा प्रकाशित विशाल धार्मिक साहित्य मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'बाइबिल' तथा जौन बनियन के ग्रन्थ 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' के रूपान्तर हैं।

हिन्दी के ईसाई साहित्य मे भाषा का स्वरूप बहुत व्यवस्थित तथा परिमार्जित नहीं है। यद्यपि ईसाई लेखको ने प्रयत्न करके अपनी रचनाओ से अरबी, फारसी शब्दो का बहिष्कार किया है, और उन्हे स्थानगत रूप प्रदान करने के लिए, ग्रामीण शब्दो का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया है, फिर भी उनके द्वारा व्याकरण की जो भूलें हुई हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि इनके लेखक विदेशी हैं। कुछ स्थानो पर तो उन्होंने अंग्रेजी के वाक्य-विन्यास को शब्दश अनूदित कर लिया है। ईसाई लेखको ने भाषा की दृष्टि से, सदासुखलाल तथा लल्लू जी लाल को अपना आदर्श माना था, इसीलिए वे हिन्दी भाषा को इन लेखको की रचनाओ के आगे नहीं ले जा सके। उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा के रूप को स्पष्ट करने के लिए, आगे हम बनियन के 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' के हिन्दी रूपान्तर 'यात्रा स्वप्नोदय' से कुछ पक्तिया उद्धृत करते हैं

"उसी दशा मे वह घर फिर आया और कही घर के लोग स्त्री पुत्रादि इस बात को न जान लेवें, इस कारण अपने चित्त मे यथाशक्ति धीरज धर चुपका हो रहा, परन्तु

[1] यह नामावली 'नार्थ इण्डिया क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी' के एक सूचीपत्र से ली गयी है।

चित्त के दुःख के बढने से जब उस दुःख को न सह सका तब स्त्री पुत्रादि के निकट अपने मन का सम्पूर्ण शोक खोल कर कहने लगा कि हे प्रिय भार्या, हे मेरे प्यारे पुत्रो मेरे ऊपर तुम्हारा बडा स्नेह है। देखो तुम जो मेरी पीठ पर बोझ देखते हो उसी के द्वारा मैंने दृढ समाचार सुना है कि स्वर्ग से अग्नि बरस कर हमारे इस नगर को भस्म करेगी और इस महा आपदा से बचने के निमित्त मैं कोई उपाय नही देखता हूँ।"[1]

ईसाई प्रचारको के इन उद्योगो का मूल उद्देश्य, भारतीयो को अपने धर्म मे परिवर्तित करना था। जब से हिन्दी-प्रदेश मे उनका प्रवेश हुआ था, सरकार की ओर से उन पर कोई भी प्रतिबन्ध नही था, फिर भी उन्हे विशेष सफलता नही मिल रही थी, और न उनका प्रभाव ही बढ रहा था। हिन्दू समाज के निम्नवर्ग मे उन्होने, काफी सख्या मे लोगो को अपने धर्म मे परिवर्तित कर लिया था, किन्तु उच्चवर्ग के लोग उनके प्रभाव से दूर ही रहे थे। ईसाइयो द्वारा स्थापित शिक्षा-सस्थाओ मे पढने वाले विद्यार्थी भी उनके प्रभाव मे विशेष नही आये थे। एच० एस० कॉटन ने अपने ग्रन्थ 'न्यू इण्डिया' मे इस असफलता का मूल कारण इस प्रकार स्पष्ट किया है

"समस्त शिक्षित-समुदाय ने यह भली प्रकार समझ लिया है कि यूरोप के बुद्धिवादी परम्परागत धर्म से अलग हो रहे हैं।"[२]

आगे उसने लिखा है "और चाहे कुछ भी हो जाय, हिन्दू धर्म से ईसाई धर्म मे परिवर्तन पूर्णत असम्भव है।"[3] ये शब्द अक्षरश सही हुए हैं, और इसका सबसे बडा कारण हिन्दू-धर्म की व्यापक भावना रही है। वस्तुत ईसाई धर्म के पास, उसे देने के लिए, कुछ नया था ही नही।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे ईसाई प्रचारको का योग, अंग्रेजी शिक्षा प्रदान करने तथा शिक्षा-सस्थाओ के लिए पाठ्य-ग्रन्थो का निर्माण करने तक ही सीमित रहा। इन सीमाओ के भीतर भी उनके कार्य का बहुत महत्त्व है, क्योकि इनकी शिक्षा-सस्थाओ ने अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य को लोकप्रिय बनाने मे विशेष सहायता दी, तथा उनके द्वारा प्रकाशित ग्रन्थो ने हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को बढ़ाया और उसे नये-नये विषयो के भावो तथा विचारो को प्रकट करने की योग्यता प्रदान की। ईसाई प्रचारको के कार्य का एक और दृष्टि से भी महत्व है, उन्होंने, लोगो को अपने धर्म मे परिवर्तित करने के प्रयत्न मे, जिन तर्कों का आश्रय लिया था, उनके द्वारा उन्होंने भारतीय समाज की दुर्बलताओ पर विशेष रूप से प्रकाश डाला था। इस प्रकार उन्होने भारतवर्ष मे एक समाज सुधार की भावना

१—'यात्रा-स्वप्नोदय', पृ० १—२
२—एच० एस० काटन, 'न्यू इण्डिया, पृ० ११४
३—वही, पृ० ११४

को उत्पन्न कर दिया था, जिसकी प्रेरणा से आगे चलकर धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनो का विकास हुआ।

धार्मिक, सामाजिक, तथा राजनीतिक आन्दोलन

अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई प्रचारको के कार्य के सब से महत्वपूर्ण परिणाम राजनीतिक, धार्मिक, तथा सामाजिक आन्दोलन थे, जो अपने साथ यूरोपीय पुनरुत्थान, सुधार तथा प्रतिसुधार की भावनाओ को, तथा कुछ आगे की विकास अवस्थाओ को भी लाये थे। इन सभी आन्दोलनो का उद्‌गम, किसी न किसी रूप मे, अंग्रेजी प्रभाव से बताया जा सकता है, यद्यपि आगे चल कर उनमे अपनी स्वतन्त्र विशेषताओ का विकास हो गया था। प्रस्तुत अध्ययन मे, इन आन्दोलनो पर केवल इस दृष्टि से विचार किया जायगा, कि कहा तक वे पाश्चात्य देशो से आये हुए नये भावो तथा विचारो से प्रभावित थे और कहा तक उन्होने उन्हे, हिन्दी-प्रदेश मे प्रचलित करने का प्रयास किया था। इस प्रसग मे, इस तथ्य की ओर भी सकेत किया जायेगा कि कहा तक इन आदोलनो मे, नये विचारो तथा भावो के प्रचार के लिए, पाश्चात्य देशो मे प्रचलित प्रचार के साधन उपयोग मे लाये गये थे, क्योकि इन साधनो के उपयोग से ही हिन्दी भाषा तथा साहित्य को अपने विकास के लिए विशेष गति प्राप्त हुई थी।

क—धार्मिक आन्दोलन

अंग्रेजी प्रभाव की सबल प्रेरणा से, भारतवर्ष मे उत्पन्न होने वाला सबसे पहला धार्मिक आन्दोलन, 'ब्रह्म समाज' का था। इस आन्दोलन के जन्मदाता राजा राम मोहन राय को, उन्नीसवी शताब्दी मे हिन्दू समाज ने, धार्मिक, सामाजिक तथा शिक्षा के क्षेत्रो मे जो कुछ भी वास्तविक प्रगति की है, उस सब का प्रमुख नेता कहा गया है।[1] किन्तु राजा राम मोहन राय ने सब से अधिक कार्य, धर्म के क्षेत्र मे किया था। उन दिनो ईसाई प्रचारक, हिन्दू धर्म के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वो से अनभिज्ञ होने के कारण उसके विभिन्न मतो तथा विश्वासो के सम्बन्ध मे उलटी-सीधी बाते कह रहे थे। राजा राममोहन राय को, यह कटु परिस्थिति बडी असह्य हुई, और उन्होने हिन्दू तथा ईसाई, दोनो ही धर्मो के साहित्यो का गहरा अध्ययन करके उनके बीच समन्वय स्थापित करने का विचार किया। इस सम्बन्ध मे, यह सोचकर कि उनके ईसाई मित्र बहुत दूर तक उनका साथ न दे सकेंगे, उन्हे एक स्वतन्त्र आन्दोलन का प्रारम्भ करना पडा, जिसमे उनके अनेक जागरूक मित्रो ने साथ दिया। इस प्रकार संस्थापित

१—डॉ जे० एन० फरक्यूहर 'माडर्न रिलिजस मूवमेण्ट्स इन इण्डिया' (१९२४) पृ० २९

होकर 'ब्रह्म समाज ने', हिंदू धर्म को नवयुग की भावनाओ के अनुकूल परिवर्तित करने का प्रयत्न प्रारम्भ किया । राजा राममोहन राय ने, जब अपनी नवयुग की चेतना से अनुप्राणित दृष्टि से, एक ओर तो प्रचलित हिन्दू धर्म की अनैतिकताओ तथा अन्ध-विश्वासो को देखा, तथा दूसरी ओर, ईसाई तथा इस्लाम धर्मो के विश्वासो मे तथा अपने यहा के उपनिषदो मे भी स्पष्ट रूप से सत्यता की भावना का अनुभव किया, तो उन्होने उलझनो से भरी हुई प्रस्तुत समस्या का एक सामान्य हल खोजा । उन्होने इन तीनो धर्मो के सामान्य आस्तिक तत्वो को लेकर, उन्हे हिन्दू धर्म के मूल सत्यो के रूप मे घोषित किया । राजा राममोहन राय का विचार था कि वे तत्व एक विश्व-धर्म के भी मूलाधार हो सकते हैं, और उन्हे लेकर सभी मनुष्यो के बीच एकता का सूत्र स्थापित किया जा सकता है । [१] 'ब्रह्म-समाज' ने अपने विस्तृत जीवन-काल मे सदा आस्तिक विश्वासो का प्रचार किया, तथा मूर्ति-पूजा का विरोध करते हुए धर्म तथा सामाजिक जीवन के क्षेत्रो मे सुधार की भावनाओ पर विशेष जोर दिया। [२]

यह आन्दोलन बगाल मे उत्पन्न हुआ था, और इसका प्रभाव, उस प्रदेश के बाहर और कही विशेष देखने को नही मिलता । हिन्दी-प्रदेश के लोग इस आन्दोलन के सम्पर्क मे सर्व प्रथम उस समय आये थे, जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८६४-६५ मे बगाल की यात्रा की थी । उस समय 'ब्रह्म समाज' के सर्व प्रमुख नेता देवेन्द्रनाथ ठाकुर थे, तथा केशवचन्द्र सेन और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर भी प्रकाश मे आने लगे थे । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र इस आन्दोलन से विशेष प्रभावित हुए थे, और हिन्दी-प्रदेश मे लौटने के अनन्तर उन्होंने उस प्रकार की कई सस्थाए स्थापित की, जिस प्रकार की सस्थाए उन्होंने बगाल मे देखी थी । 'ब्रह्म समाज' के अनुकरण स्वरूप उन्होने 'तदीय समाज' का प्रारम्भ किया था, किन्तु जैसा हम उनके जीवन से परिचित होने के कारण भली प्रकार जानते है, आगे चलकर उन्होंने, साहित्य के क्षेत्र मे ही अपनी प्रतिभा का विशेष उपयोग किया, इसीलिए उन्हे धर्म के क्षेत्र मे नये युग के प्रारम्भ मे सफलता नही मिली ।

हिन्दी-प्रदेश मे, धर्म के क्षेत्र में, नव-युग की भावना का प्रारम्भ 'आर्य समाज' के आन्दोलन ने किया था । डॉ० जे० एन० फरक्यूहर ने अपने ग्रथ 'माडन रिलिजस मूवमेंटस इन इण्डिया' में, 'आर्य समाज' को एक ऐसा आन्दोलन कहा है,

---

१—डॉ० जे० एन० फरक्यूहर . माडर्न रिलिजस मूवमेंट्स इन इण्डिया (१९२४)' पृ० ३६—३७

२—वही, पृ० २९

जिसमे सुधारो को रोकने तथा पुराने विश्वासो की रक्षा करने का प्रयास किया,[1] किन्तु वास्तव मे उन्होने इस आन्दोलन के महत्व को नही समझा। इस आन्दोलन के नेताओ ने वेदो की ओर चलने के लिए अवश्य कहा था, किन्तु यह उसी प्रकार था, जिस प्रकार कि यूरोपीय पुनरुत्थान के नेताओ ने, पुरातन साहित्य के अध्ययन पर बल दिया था। इस आन्दोलन मे नवयुग की भावना स्पष्ट रूप से अनुप्राणित देखी जा सकती है। यूरोप मे पुनरुत्थान के अनन्तर, धार्मिक क्षेत्र मे सुधार की भावना का विकास हुआ था, किन्तु 'आर्य समाज' का आन्दोलन सामाजिक विकास की इन दोनो अवस्थाओ को एक साथ लेकर आया था। 'आर्य समाज' के नेताओ ने हिन्दू धर्म मे उत्पन्न हो गये अन्ध-विश्वासो को दूर करने तथा उसे अपनी शक्तिभर वैज्ञानिक रूप देने का प्रयास किया था।

'आर्य समाज' आन्दोलन का प्रारम्भ सन् १८७५ से माना जाता है, जब बम्बई मे इसकी स्थापना हुई थी, किन्तु इसके सस्थापक दयानन्द सरस्वती ने, इसके बहुत पहले, अपनी विचारधारा का प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। इसके अतिरिक्त, 'आर्य समाज' आन्दोलन का विकास, उसके जन्म-स्थान मे नही, वरन् विशेष रूप से हिन्दी-प्रदेश तथा पजाब मे हुआ था। यद्यपि इस आन्दोलन के जन्मदाता स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन मे अग्रेजी प्रभाव मिलना दुष्कर है, तथापि उन्होने जिस आन्दोलन का प्रारम्भ किया था, उसकी रूपरेखा, उस वातावरण मे बनी थी, जो अग्रेजी प्रभाव से परिपूर्ण था। उन्होने अपने देश के पुरातन धार्मिक साहित्य का बडा गहरा अध्ययन किया था, और प्रारम्भ मे अपने विचारो का प्रचार वे पण्डितो की भाषा, सस्कृत मे ही किया करते थे। किन्तु इस प्रकार की भाषा का उपयोग करके वे केवल थोडे से श्रोताओ को ही एकत्र कर पाते थे। सन् १८७२ मे जब वे कलकत्ते गये, और उन्होने वहा की जनता के बीच 'ब्रह्म समाज' के बढते हुए प्रभाव को देखा, तो उनका कुछ झुकाव उसकी ओर होने लगा था। उन्होने 'ब्रह्म समाज' के तत्कालीन नेता केशवचन्द्र सेन से भेंट की, और उन्ही के प्रभाव से उन्होने जनता की भाषा मे प्रचार करने के महत्व को समझा। उनके कार्य का क्षेत्र विशेष रूप से हिन्दी प्रदेश था, इसलिए उन्होने अपने महत्व पूर्ण ग्रथ 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिन्दी मे ही लिखकर, सन् १८७४ मे प्रकाशित किया।

अपने इस ग्रथ मे दयानन्द जी ने हिन्दू समाज के अन्ध विश्वासो, मूर्ति-पूजा

१—डॉ० जे० एन० फरक्यूहर 'माडर्न रिलिजस मूवमेंट्स इन इण्डिया' (१६२४), पृ० ८६

आदि के विरुद्ध अपने विचार प्रकट किये, तथा एक ही ईश्वर की आध्यात्मिक साधना पर बल दिया। उन्होने कर्म के सिद्धात के पक्ष मे भी तर्क प्रस्तुत किये तथा यह दिखाया कि दुष्ट कर्मो के करने पर क्षमा असम्भव है। वेदो को उन्होने समस्त ज्ञान के भण्डार के रूप मे स्वीकार किया था, और निम्न जातियो के लोगो, यहा तक कि अछूतो को भी, उन्होने वेदो के पढने का अधिकार प्रदान कर दिया।

हिन्दी-प्रदेश के शिक्षित नवयुवको ने, जिनकी विचार-शृखला अग्रेजी प्रभाव को लेकर इसी दिशा की ओर चल रही थी, दयानन्द जी मे अपने महान नेता के दर्शन किये और इस नये आन्दोलन मे सम्मिलित हो गये। 'आर्य समाज' का आन्दोलन इस प्रकार, पूर्णत भारतीय पृष्ठभूमि मे प्रारम्भ होकर, अग्रेजी प्रभाव के प्रसार के साथ शीघ्रता से विकसित हुआ था, क्योकि उसने भी उन्ही भावनाओ, पुरातन साहित्य के पुनरुत्थान, धर्म के क्षेत्र मे सुधार तथा कर्तव्य के प्रति एक सम्मान की भावना का प्रचार किया था।

हिन्दी-प्रदेश मे प्रति-सुधार ('काउण्टर-रिफार्मेशन) की भावना की अभिव्यक्ति, 'भारत-धर्म-महामण्डल' की स्थापना के रूप मे हुई। 'आर्य समाज' आन्दोलन के द्वारा शिक्षित नवयुवको मे एक जागरण की भावना उत्पन्न हो गई थी, जिसे लेकर उन्होने पुराने विश्वासो की तर्क सम्मत व्याख्या करना प्रारम्भ कर दिया था। इस नये आन्दोलन का यदि निकट से अध्ययन किया जाय, तो यह स्पष्ट हो जाएगा, कि 'आर्य समाज' आन्दोलन मे जो कमिया थी तथा उसने जो अतिचार किये थे, उन्हे ही दूर करने तथा सुधारने का प्रयास इसके द्वारा सम्पन्न हुआ।

यह नवीन आन्दोलन सर्व प्रथम पजाब मे दीनदयाल शर्मा द्वारा प्रारम्भ किया गया था। शर्मा जी ने न तो अग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया था और न सस्कृत साहित्य से ही उनका विशेष परिचय था, किन्तु एक कुशल वक्ता होने के कारण उन्होने 'आर्य समाज' द्वारा किये गये आरोपो का प्रत्युत्तर देना प्रारम्भ किया था। उनके भाषण-कौशल से आकर्षित होकर बहुत से पढे-लिखे नवयुवक उनके चारो ओर एकत्र हो गये थे। इन्ही नवयुवको के प्रयत्न के फलस्वरूप हरिद्वार तथा दिल्ली मे, सनातन धर्म सभाओ की स्थापना हुई थी। इसी प्रकार की कुछ अन्य सस्थाये उत्तर भारत के अन्य नगरो मे भी स्थापित हुई थी, और सन् १९०२ मे इन सभी सस्थाओ को सम्बन्धित करके मथुरा मे एक बडी सस्था 'भारत-धर्म-महामण्डल' की स्थापना हुई थी। आगे चल कर पडित मदनमोहन मालवीय इस आन्दोलन के बहुत बडे समर्थक हो गये थे।

इस आदोलन के मुख्य लक्ष्य, धर्म का ऐतिहासिक अध्ययन तथा नवयुग के अनुरूप उस मे आवश्यक सुधार करना था। 'आर्य समाज' ने केवल वेदो को ही

महत्वपूर्ण माना था , इस आदोलन ने स्मृतियो तथा पुराणो के प्रति भी आदर तथा श्रद्धा की भावना उत्पन्न की। इसने हिन्दू धर्म को नवयुग की भावनाओ के अनुकूल बनाने का प्रयास किया। इस आन्दोलन की प्रेरणा से समाज के प्रत्येक वर्ग को धर्म-ग्रन्थो के पढने का अधिकार प्राप्त हो गया।

इस स्थान पर, बगाल मे, रामकृष्ण परमहस तथा उनके शिष्य विवेकानन्द द्वारा परिचालित आन्दोलन की चर्चा भी आवश्यक है। इस आन्दोलन मे, भारतवर्ष की उच्च आध्यात्मिक अनुभूतियो के साथ, ईसाई प्रचारको की जनसेवा की भावना का समन्वय सबसे अधिक आकर्षक प्रतीत होता है। विवेकानन्द ने अपने गुरू श्रीराम-कृष्ण परमहस के उपदेशो का प्रचार करते हुए, हिन्दू धर्म के विश्वासो का जो विश्ले-षण किया था, उसमे हमे एक विश्वधर्म की भावना देखने को मिलती है। विवेकानन्द ने अपना प्रचार कार्य, केवल भारतवर्ष मे ही नही, वरन् विदेशो मे भी जाकर किया था। उनके व्याख्यानो मे श्रोताओ को काव्य का सा आनन्द प्राप्त होता था और इसी कारण वे उनकी विचारधारा से प्रभावित भी होते थे। हिन्दी के कवियो तथा लेखको पर भी इस आन्दोलन का कुछ प्रभाव है।

ख—सामाजिक आन्दोलन

हिन्दी-प्रदेश मे धार्मिक आन्दोलन का विकास, ऐकातिक रूप से नही हुआ था, वरन् उसके साथ निरन्तर एक समाज-सुधार का आन्दोलन भी चलता रहा था। सामाजिक आन्दोलन का महत्व, उस समाज के लिए बहुत अधिक था, जिसका विकासक्रम शताब्दियो तक अवरुद्ध रहा हो, और जो बहुत समय तक निरन्तर पुराने शास्त्रों को लेकर ही चलता रहा हो। मध्ययुग मे भारतीय समाज का विकासक्रम अवरुद्ध हो गया था, और उसी समय उसमे बाल-विवाह, बहु-विवाह, सती-प्रथा तथा इसी प्रकार की अन्य कुप्रवृत्तिया उत्पन्न हो गई थी। अग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न नवीन सामाजिक दृष्टिकोण ने, इन दुर्बलताओ को दूर करने का प्रयास किया।

धार्मिक आन्दोलन की भाति, सामाजिक आन्दोलन का प्रारम्भ भी, बगाल से ही हुआ था। पिछले पृष्ठो मे, फोर्ट विलियम कॉलेज के कार्य का विवरण प्रस्तुत करते हुए यह उल्लेख किया गया था कि किस प्रकार उसके वार्षिक वाद-विवाद मे, एक बार सती-प्रथा के ऊपर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार-विमर्श हुआ था। ईसाई प्रचारको ने भी, इस प्रथा की तथा इसी प्रकार की अन्य मान्यताओ की, बडी कटु आलोचना की थी। मध्ययुग मे मुगल सम्राट अकबर ने इस अमानुषिक प्रथा को समाप्त करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वह हिन्दुओ को अपनी विचारधारा के अनु-

फूल नही बना सका था, इसलिए उसे सफलता नही मिली थी। परन्तु अंग्रेजी शिक्षा ने जिस नव चेतना को उत्पन्न किया था, तथा ईसाई प्रचारको के प्रचार के फलस्वरूप यदि सभी नही, तो बहुत से पढे-लिखे व्यक्तिओ को इस प्रथा की बर्बरता तथा नृशंसता विदित हो गयी थी। अंग्रेज अधिकारियो तथा नवशिक्षित-वर्ग के सम्मिलित प्रयत्नो के द्वारा ही, सन् १८२९ मे, इस प्रथा को वैधानिक रूप से समाप्त किया गया।

सती-प्रथा की समाप्ति के अनन्तर शिक्षित-वर्ग का ध्यान विधवाओ के पुनर्विवाह के प्रश्न की ओर गया, और इसे सुलझाने मे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महामना व्यक्तियो ने भी भाग लिया। उन्होने इस समस्या को लेकर एक पुस्तक भी लिखी थी। कहा जाता है, उसकी २००० प्रतियो का प्रथम संस्करण, एक सप्ताह के भीतर ही बिक गया था। उस पुस्तक ने, जिसमे स्थान-स्थान पर शास्त्रो से उद्धरण दिये गये थे, इस समस्या के प्रति जन-साधारण का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। समाज के विभिन्न वर्गो के बहुत से लोगो ने प्रार्थना-पत्रो पर हस्ताक्षर करके, उन्हे सरकार के पास भेजा, और उसी के फल-स्वरूप, १८५६ मे, विधवाओ के पुनर्विवाह की धारा स्वीकृत हुई। इसी प्रकार बगाल के जागरूक शिक्षित-वर्ग ने बहु-विवाह की प्रथा को भी समाप्त करने का प्रयत्न किया था। उन्हे इस समस्या के सम्बन्ध मे वैधानिक सहायता नही प्राप्त हुई थी, किन्तु विषम आर्थिक परिस्थिति के कारण, यह समस्या आगे चल कर अपने आप ही सुलझ गई।

अंग्रेजी प्रभाव के प्रसार तथा हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजी शासन की स्थापना के साथ यहा भी सती-प्रथा को समाप्त करने वाली धारा लागू हो गई। किन्तु अन्य क्षेत्रो मे सुधार के लिए हिन्दी-प्रदेश के लोगो को स्वय प्रयत्नशील होना पडा, फिर भी उनके लिए उन्होंने बगाल के समाज सुधार आन्दोलन से प्रेरणा अवश्य ग्रहण की। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की, विधवाओ के पुनर्विवाह के प्रश्न से सम्बन्धित पुस्तिका, 'विधवा विवाह प्रचलित होवा उचित कि ना' को अनुवादित करके प० ब्रह्मशकर मिश्र ने १८८१ मे प्रकाशित कराया। उन लोगो को, जो अंग्रेजी प्रभाव अथवा अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के फलस्वरूप, तथा 'आर्यसमाज' आन्दोलन की प्रेरणा से, इसी दिशा मे सोच रहे थे, इस पुस्तिका के हिन्दी मे प्रकाशन से विशेष प्रोत्साहन मिला।

हिन्दी-प्रदेश की सीमा के अन्तर्गत, भारतीय समाज मे जो कुरीतियाँ उत्पन्न हो गई थीं, उन्हे दूर करने का प्रयास विशेष रूप से 'आर्य समाज' आन्दोलन ने किया था। इस प्रदेश मे हमे, सामाजिक प्रश्नो के सम्बन्ध मे, जनता के हृदय मे उतना उत्साह देखने को नही मिलता, जितना बगाल के जन-समुदाय मे मिला था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अवश्य, 'तदीय समाज' नामक एक सस्था की स्थापना करके, इसी

दिशा के प्रयत्न का प्रारम्भ किया था, किन्तु आगे चल कर वे साहित्य क्षेत्र मे सलग्न हो गये, और यह सस्था मृत-प्राय ही वनी रही। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने ग्रथ 'सत्यार्थ प्रकाश' मे शास्त्रो से उद्धरण देते हुए यह दिखाने का प्रयास किया, कि उनमे विधवा विवाह की अनुमति है।[1] इसी प्रकार उन्होंने शास्त्रो का आधार लेकर यह भी दिखाया, कि वाल-विवाह की प्रथा भारतीय समाज मे पुरातन युग मे प्रचलित नही थी, और मध्ययुग मे उसका प्रचार हुआ था। उन्होने वडी तर्क पूर्ण शैली मे यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया था, कि यह प्रथा स्त्री तथा पुरुष दोनो के विकास मे, और इसीलिए समाज की प्रगति मे भी, वाधक है।[2] उन्होने वहुविवाह की प्रथा के विरुद्ध भी वडे प्रभावपूर्ण तर्क प्रस्तुत किये थे।[3]

स्वामी दयानन्द ने, इन समस्याओ के सम्वन्ध मे, अपने कर्तव्य की इति श्री केवल अपनी पुस्तक मे ही उनके सम्वन्ध मे, लिखकर नही समझी थी। उन्होने देश के एक भाग से दूसरे भाग तक यात्रा करके, विद्वत्तापूर्ण वार्त्ताओ तथा लोकप्रिय व्याख्यानो द्वारा लोगो को विधवाओ के पुनर्विवाह के अनुकूल और वाल-विवाह तथा वहुविवाह के परित्याग के लिए तैयार करने का प्रयत्न किया था। 'आर्य समाज' ने अपना सदेश विशेष रूप से हिन्दी-प्रदेश के साधारण जन-समुदाय तक पहुचाया था। उसके प्रचारको ने वहुत कुछ उन्ही रीतियो का अनुसरण किया था, जो ईसाई प्रचारको द्वारा प्रयोग मे लाई जा चुकी थी। उन्होने भी, हिन्दी-प्रदेश के प्रमुख नगरो मे अपने केन्द्रो तथा शिक्षा-सस्थाओ की स्थापना की थी, और इनके माध्यम से हिन्दू समाज को पर्याप्त मात्रा मे प्रभावित किया था।

हिन्दू समाज मे एक और वहुत वडा दोष था। उसमे कुछ वर्गो के लोग विशेष रूप से क्षत्रीय, अपनी नवजात वालिकाओ का वध कर डाला करते थे, क्योकि वे अपने परिवार मे वालिका का जन्म वडी लज्जा की वात समझते थे। सर्व प्रथम ईसाई प्रचारको ने इस वर्वर प्रथा को दूर करने का प्रयास किया, किन्तु जागरूक भारतीयो तथा सरकारी अधिकारियो के सम्मिलित प्रयत्न से ही इसे समाप्त किया जा सका था।

ग—राजनीतिक आन्दोलन

अंग्रेजी शासन के प्रथम अनुभव से हिन्दी-प्रदेश के लोगो को प्रसन्नता हुई थी, क्योकि उसने, मुगलवंश के शासन के अंतिम दिनो की अराजकता तथा अव्यवस्था

१—स्वामी दयानन्द सरस्वती 'सत्यार्थ प्रकाश' (१६४४), पृ० ६६ तथा ७४

२—वही, पृ० ४८-४६

३—वही, पृ० ६८

को समाप्त करके, शान्ति के एक युग का सूत्रपात किया था। किन्तु शीघ्र ही प्रखर बुद्धि के लोगो ने यह भली प्रकार समझ लिया, कि इस शाति के युग का सूत्रपात, जनता के लाभ के लिए नही, वरन् उसके कला कौशल तथा उद्योगो को समाप्त करके, अग्रेजो के व्यापारिक हितो को सुरक्षित करने के लिए हुआ है। अग्रेजी शासन के प्रारम्भिक वर्षो मे, हिन्दी के एक लेखक ने, भारतीय कला-कौशल तथा उद्योगो की अवनति के कारणो का विश्लेषण करते हुए लिखा था

"इसका आशिक कारण यूरोप की बनी हुई वस्तुओ के लिए हमारी असामान्य लालसा रही है, तथा अ शत भारतवर्ष मे, मनुष्य के श्रम से तैयार होने वाले कपडो से, मशीन की बनी हुई वस्तुओ का विशेष सस्ता होना रहा है।" [१]

आगे चलकर उसी लेखक ने इस कटु परिस्थिति से मुक्ति के उपाय की ओर भी सकेत किया था

"यदि भारतवर्ष मे मनुष्य के श्रम से बने हुए कपडे बाजारो मे मशीन के बने हुए कपडो से प्रतियोगिता नही कर सकने ... तो स्थानीय व्यापारियो को ग्रेट ब्रिटेन के व्यापारियो से कितनी अधिक सुविधा रहेगी, यदि वे अपने यहा भी उसी मशीन का उपयोग करने लगें।" [२]

इसी निबन्ध मे और आगे चलकर इस समस्या को सुलझाने के लिए भारतीयो को अग्रेजो के इतिहास से कुछ शिक्षा ग्रहण करने के लिए कहा गया था

"बहुत पहले जब इगलैंड मे वाष्प-यन्त्र का आविष्कार नही हुआ था, उसके व्यापारी भारतवर्ष से बहुत सा कपडा मगवाया करते थे।... किन्तु उस सौभाग्य-शाली भूमि के निवासियो मे मिल-जुल कर इस प्रकार होने वाली अपनी हानि को रोकने के, उपयुक्त साधनो को खोजने के लिए साहस, शक्ति तथा जन-भावना की कभी भी कमी नही थी। सन् १७७३ में कुछ देश-भक्त व्यक्तियो ने ग्लासगो तथा एडिन्बरा मे जन-सभाए की थी। · सर्व सम्मिति से यह निश्चय किया गया था कि कोई भी व्यक्ति ऐसे वस्त्रो का प्रयोग नही करेगा जो कि इस देश मे न बनाये गये होंगे, नहीं तो उसे समाज से बहिष्कृत कर दिया जायेगा। इस दृढ निश्चय का बडा आश्चर्य जनक परिणाम हुआ। केवल इतना ही नही कि उनके उद्योग पुन बडी अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गये, वरन् साथ ही साथ, भारतवर्ष को अपनी वस्तुओ के भेजने मे उनको धन-सम्पत्ति हजारो गुना बढ गई है। हम लोगो की अब अग्रेजी

१—'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में काशीनाथ का निबन्ध, पृ०१६४
२—वही, पृ० १६४

वस्तुओ का उपयोग करने की आदत हो गई है । प्रत्येक वस्तु जिसकी हमे आवश्यकता है ।' '' हमे प्रसन्नता है कि बम्बई के कुछ निवासियो ने यह प्रतिज्ञा की है कि वे अपने देश के बने हुए कपडो को छोडकर और कही के वस्त्रो का उपयोग नही करेगे । यह प्रयत्न सही दिशा की ओर है ।' [१]

इस निबन्ध की प्रेरणा से यद्यपि हिन्दी-प्रदेश मे जन-सभाओ का आयोजन नही किया गया, और न अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक दिनो मे विदेशी कपडो का उपयोग न करने की प्रतिज्ञाए ही की गई, तथापि हिन्दी लेखक अपनी रचनाओ के माध्यम से स्वदेशी वस्तुओ के उपयोग के सम्बन्ध मे प्रचार करते रहे । उनकी यह भी इच्छा थी कि हाथ के उद्योग-धन्धो के स्थान पर, भारतवर्ष मे मशीनो के उद्योग-धन्धो की स्थापना की जाय ।[२]

भारतवर्ष के अन्य प्रदेशो को भाति हिन्दी-प्रदेश मे भी राजनीतिक चेतना का प्रचार, सन् १८८५ मे 'इन्डियन नेशनल कांग्रेस' की स्थापना के अनन्तर, उसी के प्रयत्न से हुआ था । इसका चौथा वार्षिक अधिवेशन इलाहाबाद मे हुआ था, और इसके अतिरिक्त १९२० तक, इसके सात और वार्षिक अधिवेशन हिन्दी-प्रदेश मे हुए थे। इसका आठवा वार्षिक अधिवेशन फिर इलाहाबाद मे ही हुआ था, और इसके अनन्तर शेष अधिवेशन लखनऊ (१८९९), बनारस (१९०५), इलाहाबाद (१९१०) बाकीपुर (१९१२), लखनऊ (१९१६), तथा दिल्ली (१९१८) मे हुए थे ।

कांग्रेस के प्रारम्भिक काल मे, इसके नेताओं ने, अंग्रेजी सरकार से भारतीयो के लिए विशेष सुविधाए प्राप्त करने का प्रयत्न किया था । उसके विभिन्न अधिवेशनो मे स्वीकार किये गये बहुत से प्रस्तावो मे उन्होने, यह माग की थी, कि भारतीयो को सरकारी विभागो मे उच्च-पदो पर नियुक्त किया जाय । इस माग को और व्यावहारिक रूप देने के लिए, सिविल सर्विस की परीक्षा भारतवर्ष मे भी हो, इस आशय का एक प्रस्ताव भी स्वीकार किया था । सन् १९०५ मे बगाल के विभाजन की योजना ने, यह स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेज वास्तव मे जनता के हितो के लिए नही, वरन् अपने स्वार्थ के लिए, विभाजन तथा शासन की नीति का अनुसरण कर रहे थे । इस बोध को लेकर कांग्रेस के अधिवेशनो मे और अधिक राजनीतिक समस्याओ को स्थान दिया जाने लगा । सन् १९१६ मे, लखनऊ के अधिवेशन मे, इसी राजनीतिक दृष्टि को लेकर, स्वशासन का प्रस्ताव स्वीकार किया गया था ।

राष्ट्रीय चेतना के इस विकास से परिचित न होने के कारण ही कुछ विद्वानो ने

१—'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे काशीनाथ का निबन्ध, पृ० १९४

२—वही, पृ० १९४

भारतेन्दु-युग के लेखको पर अग्रेजो के प्रति विशेष श्रद्धालु होने का दोष लगाया है। किन्तु वे यह नही समझ पाये हैं कि उस युग मे नवचेतना से अनुप्राणित प्रत्येक भारतीय, अग्रेजो के प्रति इसी प्रकार की भावना से ओतप्रोत था। फिर भी इन लेखको ने प्रारम्भ से ही अग्रेजी शासन की शोषण की नीति को समझ लिया था, और अपनी रचनाओ मे इसके लिए अग्रेजो का विरोध भी करते रहते थे। अग्रेजी प्रभाव के इस पक्ष से छुटकारा पाने के लिए, उन्होंने, मशीनो की उत्पादन-व्यवस्था को ग्रहण करने के लिए भी कहा था, तथा स्वदेशी वस्तुओ के प्रति भी जनता के हृदय मे स्नेह उत्पन्न किया था।[1] इस सम्बन्ध मे इगलैड के औद्योगिक तथा सामाजिक विकास से उन्हे पर्याप्त प्रेरणा मिली थी।

हिन्दी-प्रदेश के धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन पर, अग्रेजी प्रभाव, का जो विश्लेषण किया गया है, उसने यहा की जीवनधारा मे बौद्धिकता की भावना का समावेश किया, जिसकी प्रेरणा से ये विभिन्न आन्दोलन उत्पन्न हुए। इन आंदोलनो ने अपने विकास मे, हिन्दी के लेखको तथा कवियो के दृष्टिकोण को और अधिक तर्क-सम्मत तथा मानवतावादी बनाने का प्रयास किया, जिससे उनकी रचनाओ मे एक मूलभूत परिवर्तन की भावना परिव्याप्त हो गई।

५—मुद्रणकला का प्रचार तथा उसका नवीन भावनाओ के विकास मे योग

हिन्दी प्रदेश मे मुद्रण कला का प्रचार भी, अग्रेजी प्रभाव की एक धारा के रूप मे, हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे एक व्यापक परिवर्तन की भावना को जन्म देने वाला रहा है। अपने विकास मे उसने बड़ी सफलता के साथ, साहित्य सृजन की सम्पूर्ण व्यवस्था मे एक क्रातिकारी परिवर्तन कर दिया। उसने लेखको को नवीन विषयो की ओर उन्मुख होने की प्रेरणा प्रदान की, तथा साहित्यिक प्रतिभा को ऐसे विषयो पर व्यर्थ व्यय होने से बचाया, जिनके सम्बन्ध मे पहले ही उत्कृष्ट रचनाए प्रस्तुत की जा चुकी थी। इसके साथ ही साथ उसने साहित्य मे नवीन रूपो के प्रयोग तथा पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन मे विशेष योग दिया। इन पत्र-पत्रिकाओ ने नये विचारो तथा भावो का प्रचार बड़ी द्रुत गति से किया और जीवन के नये मूल्यो के निर्माण मे बड़ी सहायता दी।

भारतवर्ष मे मुद्रणकला का प्रचार अग्रेजो द्वारा अठारहवी शताब्दी के अतिम चतुर्थांश मे हुआ था। जॉन क्लार्क मार्शमैन ने अपने एक ग्रथ मे भारत वर्ष मे प्रथम प्रेस की स्थापना का विवरण इस प्रकार दिया है "जब प्रेस "उसके विभिन्न यत्रो को जोड़-जाड़कर प्रस्तुत किया गया तो स्थानीय निवासी उसको देखने के लिए, एकत्र

१—'हरिश्चन्द्र मैगज़ीन', पृ० १६४

हुए और उन्होंने इसकी अद्भुत शक्ति के सम्बन्ध मे सुनकर इसे एक यूरोपीय देवता घोषित कर दिया।"[1] सन् १८७८ मे, सस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान सर चार्ल्स विलकिन्स द्वारा बगाली अक्षरो का निर्माण हो जाने के अनन्तर, एण्ड्रयूस नाम के एक सज्जन ने हुगली मे सबसे पहले बगला भाषा के प्रेस की स्थापना की थी। प्रेस के लिए अक्षरो के बनाने की रीति, सर विलकिन्स ने पञ्चानन कमकार नामक एक बगाली व्यक्ति को भी बता दी थी। मुद्रण के लिए बनाये गये ये अक्षर काली कुमार राय द्वारा लिखित सुदर वर्णमाला के आधार पर निर्मित हुए थे।

हिन्दी प्रेस की स्थापना का सर्व प्रथम उल्लेख फोर्ट विलियम कॉलेज के सातवे वार्षिक वाद-विवाद के विवरण मे, जो कि २७ फरवरी, १८०८ को हुआ था, इस प्रकार मिलता है "शिक्षित हिन्दुओ ने विभिन्न भाषो के हिदी के टाईप अक्षरो सहित सस्कृत भाषा के ग्रथो के मुद्रण के लिये एक प्रेस की स्थापना की है।'[2] कॉलेज के अधिकारियो को यह आशा थी कि "हिन्दुओं के बीच मुद्रण कला का जो प्रचार सस्कृत प्रेस की स्थापना से प्रारम्भ हुआ है, वह इन बहुत पुराने तथा बहु-सख्यक लोगो मे ज्ञान की अभिवृद्धि मे सहायक होगा, और साथ ही वह उनके उच्चतम साहित्य तथा विज्ञान के अवशेषो को सुरक्षित करने का भी साधन होगा।"[3]

इस सस्कृत प्रेस की स्थापना फोर्ट विलियम कॉलेज के अधिकारियो के प्रोत्साहन से वहा के 'भाखा मुन्शी' लल्लू जी लाल ने की थी। कॉलेज के सस्कृत तथा हिन्दी के सभी, प्रकाशन इसी प्रेस मे, जो कि कलकत्ते के निकट खिजिरपुर मे प्रतिष्ठित था, मुद्रित हुए थे। श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारको ने अपने प्रचार साहित्य के मुद्रण के लिए सन् १८०७ मे नागरी के टाइप अक्षर बनाये थे। उन्होंने ७०० अक्षर बनाये थे और इसमे उन्हे ७०० पौंड के स्थान पर जितने कि लदन के एक निर्माता ने उन से मागे थे, केवल १०० पौड ही व्यय करने पडे थे।

सन् १८२४ मे हिन्दी-प्रदेश मे सबसे पहले हिन्दी प्रेस की स्थापना हुई थी, जब कि लल्लू जी लाल फोर्ट विलियम कॉलेज की नौकरी छोड कर, अपने प्रेस को लेकर आगरे में आकर बस गये थे। ईसाई प्रचारको ने भी सन् १८४० मे आगरे के निकट सिकन्दरा मे अपने सबसे पहले प्रेस की स्थापना की थी। सरकार ने इस प्रेस

१—जॉन क्लार्क मार्शमैन : 'स्टोरी ऑफ कैरे, मार्शमैन' एण्ड वार्ड, पृ० १००

२- टामस ए० रोएबक 'ऐनल्श ऑफ दि कॉलेज ऑफ फोर्ट विलियम' पृ. १५७

३—वही, पृ. १५७

को विशेष संरक्षण प्रदान किया था, इसलिये वह जल्दी ही एक बड़ा लाभप्रद उद्योग हो गया था। इस प्रयोग की सफलता को देखकर शीघ्र ही ईसाई प्रचारकों ने इलाहाबाद तथा कानपुर में भी अपने प्रेस प्रारम्भ किये थे। ईसाई प्रचारकों के ये सभी प्रेस अपने प्रचार साहित्य के प्रकाशन के साथ-साथ पाठ्य-ग्रंथों को भी मुद्रित करते थे। सिकन्दरा प्रेस ने अपनी स्थापना के थोड़े समय बाद से ही 'दि आगरा जर्नल' नाम के एक समाचार-पत्र का भी प्रकाशन प्रारम्भ किया था, किन्तु वह थोड़े समय में ही बन्द हो गया। यही हिन्दी-प्रदेश का पहला समाचार-पत्र था।

मुद्रण कला के प्रचार का स्वाभाविक परिणाम पत्र-पत्रिकाओं का प्रारम्भ था। अंग्रेजी शासन की स्थापना के पूर्व, निश्चित रूप से इस प्रकार के साहित्यिक रूपों की सृष्टि नहीं हुई थी। मुसलमानी शासन के अंतिम वर्षों के विवरण में हमें निजी अखबारों तथा उनके लेखक अखबार-नवीसों के उल्लेख मिलते हैं, किन्तु सामान्य भाव से भी उन्हें आधुनिक समाचार पत्रों का प्रारम्भिक रूप नहीं कहा जा सकता। भारतवर्ष में सर्व प्रथम मुद्रित तथा प्रकाशित होने वाला समाचार-पत्र 'दि बंगाल गजट' था, जिसका प्रकाशन जेम्स ऑगस्टस हिक् नामक मुद्रक ने किया था। इस पत्र का प्रथम अंक, शनिवार, २९ जनवरी, १७८० को प्रकाशित हुआ था, और उस पर घोषणा थी "सभी दलों के लिए मुक्त किन्तु किसी से भी अप्रभावित एक राजनीतिक तथा व्यापारिक साप्ताहिक पत्र"।[१]

इस समाचार-पत्र की रूपरेखा तथा वस्तु-विन्यास के सम्बन्ध में यह लिखा गया है कि 'उसमें आठ तथा बारह इंचों की नाप के दो पन्ने होते थे, जिनके प्रत्येक पृष्ठ के तीन स्तम्भों में मुद्रित सामग्री होती थी, अधिकांश विज्ञापन, शेष भाग में अधिकतर स्थानीय तथा दूर के सम्वाददाताओं से प्राप्त सूचनायें, जिनमें यहां वहां यूरोप से प्राप्त खबरें भी होती थी।'[२] अपने प्रारम्भ के महीनों में यह समाचार-पत्र, बड़ी शान्ति तथा समृद्धि के साथ चलता रहा। कलकत्ते के अंग्रेज तथा अंग्रेजी पढ़े-लिखे भारतीय, उसके लेखों को बड़े मनोयोग से पढ़ते थे। किन्तु आगे चलकर इसने अपने को वारेन हेस्टिंग्स तथा सर फिलिप फ्रेंसिस के झगड़े में उलझा लिया, और इन में से प्रथम के सम्बन्ध में, जो उस समय गवर्नर जनरल था, कटु टिप्पणियां भी लिखने लगा। इसका यह परिणाम हुआ कि उसका प्रकाशन १७८२ के मार्च महीने से बन्द कर दिया गया।

१—'इकोज फ्रॉम ओल्ड कलकटा', पृ० १६२

२—वही, पृ० १६२

सन् १७८० के नवम्बर मास से कलकत्ता से, अंग्रेजी के एक और समाचार-पत्र, 'इण्डियन गजट' का प्रकाशन, सरकार के सरक्षण मे प्रारम्भ हुआ। उसके अनन्तर दो और समाचार-पत्र, 'बेंगल जरनल', फरवरी, १७८२, तथा 'कैलकटा क्रॉनिकल', जनवरी, १७८५ मे प्रकाशित हुए। इनके अनन्तर प्रकाशित होने वाली 'दि ओरियेंटल मैगज़ीन अथवा 'कैलकटा मैगजीन' एक मासिक पत्रिका थी। इन्ही समाचार-पत्रो तथा पत्रिकाओ के अनुकरण मे, विभिन्न भारतीय भाषाओ मे पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

सन् १८१८ मे बँगला का प्रथम समाचार-पत्र, 'समाचार दर्पण' श्रीरामपुर के ईसाई प्रचारको के प्रयत्न से प्रकाशित हुआ। सन् १८१९ मे ईसाई प्रचारको तथा जागरूक भारतीयो के बीच मत भेद हो जाने के कारण, राजा राममोहन राय ने एक और बगला पत्र 'सम्वाद कौमुदी' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। हिन्दी का प्रथम समाचार-पत्र भी सन् १८२६ मे कलकत्ते से ही प्रकाशित हुआ था। इसी वर्ष के प्रारम्भ मे पण्डित युगल किशोर शुक्ल ने, जो कानपुर से आकर ३७ अहमद तल्ला लेन, कुल्लू टोला, कलकत्ते मे बस गये थे, और स्थानीय कचहरी मे वकालत करते थे, 'उदन्त मार्तण्ड' नाम के एक समाचार-पत्र के प्रकाशितार्थ अनुमति प्राप्त करने के लिए एक आवेदन-पत्र दिया था। उनका आवेदन-पत्र स्वीकृत हो गया था, और १६ फरवरी, सन् १८२६ को अनुमति-पत्र भी प्राप्त हो गया। उन्होने सर्व प्रथम एक विज्ञापन निकाला, जिसे अनुष्ठान-पत्र का शीर्षक दिया गया था। बगला के समाचार-पत्रो ने इस नवीन उद्योग के सम्बन्ध में निम्नलिखित सूचना प्रकाशित की थी

"नागरी का नवीन सवाद-पत्र अभी हाल मे पश्चिमीय लोगो मे गुण का प्रचार और ज्ञान का सचार करने के लिए जिसकी अब तक उक्त देश के लोगो मे चर्चा मात्र भी नही थी, अन्तर्वेद देशान्तर गत कान्हपुर ग्राम निवासी स्वदेश जन मुक्ताभिलाषी कान्यकुब्जजातीय श्रीयुत जुगुल किशोर शुक्ल ने, जाड्यता रूपी तिमिर से आच्छादित हिन्दूस्थानी लोगो के विद्या रूपी मणि पर प्रकाश डालने और उदन्त मार्तण्ड के उदय से गुण और ज्ञान का उदय करने के अभिप्राय से श्री श्रीयुत गवर्नर जनरल की कौन्सिल सभा से इस विषय की विवरण पत्रिका उपस्थित करके अनुमति प्राप्त की है। श्री श्रीयुत की अनुमति प्राप्त करके पूर्वोक्त शुक्ल के द्वारा देवनागरी अक्षरो और हिन्दी भाषा मे एक अनुष्ठान-पत्र इस नगर मे हिन्दुस्थान और नैपाल देशो के सज्जन महाजनो एव इग्लैंडीय महाशयो के बीच प्रचारित हुआ और हो रहा है। इस 'उदन्त मार्तण्ड' का मूल्य दो रुपया मासिक स्थिर हुआ है। जिन महाशयो को यह समाचार पत्र लेना वाछित हो वे मुकाम आँगडा तल्ला गली के ३७ न० के

मकान मे आदमी भेजने से जान जायेंगे ।"[1]

हिन्दी के इस प्रथम समाचार-पत्र, 'उदन्त मार्तण्ड' का पहला अंक, ३० मई सन् १८२६ को प्रकाशित हुआ था। वह एक साप्ताहिक-पत्र था, और सामान्यत प्रति मगलवार को प्रकाशित होता था। इस पत्र मे प्रकाशित होने वाली सूचनाओ तथा लेखो के अग्रलिखित शीर्षको से यह स्पष्ट हो जायेगा कि उसमे किस प्रकार के विषयो की चर्चा रहती थी। 'श्री श्रीमन गवर्नर जेनेरल वहादुर का समावर्णन,' 'फरासीस देश की खवर,' 'ठट्टे की वात', 'वहुत मोटा और वडा आदमी,' 'गवर्नर वहादुर की खबर,' 'विलायती कपडा,' 'लूट की छूट,' 'श्री बुद्धि प्रकाश रामायण अश्वमेघ,' 'सर्पदन्शन विष उतारने की औषधि,' आदि आदि। इस समाचार-पत्र मे प्रयोग मे आने वाली भाषा के रूप को स्पष्ट करने के लिए उसके प्रथम अंक के एक लेख से कुछ पक्तिया उद्धृत हैं

"श्री श्रीमान गवर्नर जेनेरल वहादुर का समावर्णन"

अग्रेजी १८२६ साल १६ मे को सरकार कम्पनी अग्रेज वहादुर और ब्रह्मा के वीच सधि हो चुकने के प्रसग से यह दरवार शोभनागार हो के श्री श्रीमान लार्ड एमहर्सट गवरनर जेनरेलवहादुर के साक्षात से मौलवि मोहम्मद सलिलुद्दीन खा अवध विहारी ओर से वकालत के धाम पावने के प्रसग से सात पारचे की खिलअत औ जिगा सरपेच वादशाह जडाऊ मुक्ताहार औ पालकि मालरदार औ मृत महाराज सुखमयि वहादुर के सतति राजा शिवचन्द्र राय वहादुर औ राजा नृसिंह चन्द्र राय वहादुर औ राज्य औ वहादुरी पदवी मिलने के प्रसग से सात सात पारचे की खिलअत जिगा सरपेच जडाउ मुक्ताहार ढाल तलवार और मिर्जा मुहम्मद कामिलखा नवाव ताजिम वहादुर के विवाह के प्रसग से ६६ पारचे की खिलअत जिगा सरपेच जडाऊ औ कृपाराम पडित नवाव फैज मुहम्मदखा वहादुर की ओर से वकालत का पद होने के प्रसग से दोशाला गोशवारा नीमे आस्तीन सरपेच जडाऊ पगडी औ विश्वम्भर पडित की स्त्री के एक्टिग वकील देवीप्रसाद तिवाडी दोशाला औ मुहम्मद सओद खा साहिव औ राजा भूपसिंह वहादुर कोटे के एक एक हार भूषित हो कृतकृत्य हुये औ जालवन के रईस के वकील शिवराव ने श्री श्री · गवरनर जेनरेल वहादुर के साक्षातकार इस सधि के वधाई के कविता भेंट धरी औ नर श्रेष्ठ उस कविता का भाव वूझे पर वहुत रीझे ।"[2]

एक और हास्य पूर्ण उद्धरण, जो इस समाचार-पत्र मे अषाढ वदी ८ सवत १८८३

१—'विशाल भारत' (१९३१) · पृ० १६१—६२

२—वही, (१९३१) पृ० ४२२

प्रकाशित हुआ था, प्रस्तुत है

ठट्ठे की बात

एक वकील वकालत का काम करते-करते बुढा होकर अपने दामाद को वह काम सौंप के आप सुचित हुआ। दामाद कई दिन यह काम करके एक दिन आया औ प्रसन्न होकर बोला हे महाराज आपने जो फलाने का पुराना औ संगीन मोकद्दमा हमे सौंपा था सो आज फैसला हुआ यह सुन कर वकील पछता करके बोला कि तुमने सत्यानाश किया उस मोकद्दमे से हमारे बाप बड़े थे तिस पीछे हमारे बाप मरती समय हमे हाथ उठा के दे गऐ औ हमने भी उसको बना रखा औ अब तक भली भांति अपना दिन काटा औ वही मुकद्दमा तुमको सौप करके समझा था कि तुम भी अपने बेटे पोतो परोतो तक पालोगे पर तुम थोडे दिन से दिनो मे उसको खो बैठे।"[1]

इन दोनो अवतरणो से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समाचार-पत्र की भाषा बहुत अव्यवस्थित थी और उसके सम्पादक को विराम चिह्नो के प्रयोग का थोडा सा भी ज्ञान नही था। एक ही लेख मे उसने, एक शब्द के कई कई रूपो का प्रयोग किया है। किन्तु इस समाचार-पत्र मे जितने प्रकार के विषयो का विवेचन हुआ है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि हिन्दी का यह पत्र, अपने समकालीन अंग्रेजी के समाचार-पत्रो का अनुकरण करता हुआ भली प्रकार प्रगति कर रहा था।

इस समाचार-पत्र का अंतिम अंक ४ दिसम्बर सन् १८२७ को प्रकाशित हुआ था, और इसके अनन्तर इसका प्रकाशन ग्राहको की कमी के कारण बन्द हो गया। इस दुखात्मक प्रसग के दो वर्ष बाद, राजा राम मोहन राय का पत्र 'बंगदूत' प्रकाशित हुआ। यह पत्र अंग्रेजी, बँगला, हिन्दी तथा फारसी चार भाषाओ मे प्रकाशित हुआ था। सन् १८३४ से एक अन्य पत्र 'प्रजामित्र' का प्रकाशन हुआ। ये सभी पत्र कलकत्ते मे ही प्रकाशित हुए थे, और इनके ग्राहक भी मुख्यत वही के लोग थे।

सन् १८४५ मे हिन्दी-प्रदेश मे, हिन्दी के प्रथम समाचार-पत्र, 'बनारस अखबार' का प्रकाशन हुआ। यह पत्र राजा शिवप्रसाद के सरक्षण मे प्रारम्भ हुआ था, और गोविन्द रघुनाथ ठाटे इसका सम्पादन करते थे। इस समाचार-पत्र मे प्रयुक्त भाषा के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए, उसके एक सम्पादकीय लेख मे निम्नलिखित पंक्तियां उद्धृत हैं

"यहा जो नया पाठशाला कई साल से जनाब कप्तान किट साहब बहादुर के इहतिमाम और धर्मात्माओ की मदद से बनता है उसका हाल कई दफा जाहिर हो

---

[1]—विशाल भारत (१९३१) पृ० ४२४

चुका है। अब वह मकान एक आलीशान बनने को निशान तैयार हर चेहरा तरफ से हो गया बल्कि इसके नक्शे का बयान पहिले मुदर्ज है सो परमेश्वर की दया से साहब बहादुर ने बडी तन्देही और मुस्तैदी से बहुत बेहतर और माकूल बनवाया है। देखकर लोग उस पाठशाले के कितै के मकानो की खुबिया अक्सर बयान करते है और उनके बनने के खर्च का तजवीज करते हैं कि जमा से जियादा लगा होगा और हर तरफ मे लायक तारीफ के है सो यह सब दानाई साहेब ममदूद की है खर्च से दूना लगावट मे मालूम होता है।"[1]

इस उद्धरण की भाषा, अरबी, फारसी शब्दो के बाहुल्य के कारण, किसी प्रकार भी, हिन्दी नहीं कही जा सकती। इस पत्र की भाषा-नीति के विरोध मे सन् १८५० मे, बनारस मे ही, तारा मोहन मैत्र ने 'सुधाकर' नाम का एक समाचार-पत्र निकालना प्रारम्भ किया। इसी पत्र के आधार पर, बनारस के सुप्रसिद्ध संस्कृत विद्वान, प० सुधाकर द्विवेदी का नामकरण हुआ था। यह पत्र भी, कलकत्ते से पूर्व प्रकाशित समाचार-पत्रो की भाँति, अंग्रेजी के तत्कालीन पत्रो के अनुकरण पर था। इस प्रकार, यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि हिन्दी के समाचार-पत्रो का जन्म तथा प्रारम्भिक विकास, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे हुआ था।

इस प्रसग को समाप्त करते हुए, अंग्रेजी सरकार की पत्र-पत्रिकाओ से सम्बन्धित नीति को भी देख लेना चाहिए। यह तो प्रारम्भ मे ही दिया जा चुका है, कि कलकत्ते के 'दि बंगाल गजेट' का प्रकाशन केवल इसलिए रोक दिया गया था, क्योंकि उस समय के सरकारी अधिकारी, अपनी आलोचना मे एक शब्द भी नही सुनना चाहते थे। इस अप्रिय घटना के कुछ वर्षो बाद ही, उन्होंने कई अंग्रेज सम्पादको को, उनकी नीति से असतुष्ट होकर इंगलैंड वापस भेज दिया था। समाचार पत्रो के संबंध मे, सर्व प्रथम प्रतिबंधक नियमो का निर्धारण, मार्क्विस ऑफ वेलेजली ने किया था जिसके अनुसार प्रत्येक सम्पादक को, अपना नाम अन्त मे प्रकाशित करना होता था, तथा उसे अपना पता तथा अन्य आवश्यक बातें भी देनी होती थीं, जिससे आवश्यकता पड़ने पर अधिकारी उनका उपयोग कर सकें। भारत सरकार की नीति उस समय, पुरातन पन्थी राजनीतिज्ञों के हाथो मे थी, जो भारतवर्ष मे पत्र-पत्रिकाओ के प्रचार को सदेह की दृष्टि से देखते थे, और उनकी प्रगति को बहुत समय तक रोकने का प्रयास करते रहे। भारतीय समाचार-पत्रो को पूर्ण स्वतन्त्रता, सन् १८३५ मे प्राप्त हुई थी। लार्ड मैकाले के मन मे, जो सपरिषद गवर्नर जनरल के साथ वैधानिक परामर्शदाता के रूप

१—रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (१९४८), पृ० ४३१

में कार्य करने के लिए आया था, भारतीय समाचार-पत्रों को इस प्रकार की स्वतन्त्रता देने का विचार उत्पन्न हुआ था, किन्तु उसे व्यावहारिक रूप प्रदान करने का श्रेय सर चार्ल्स मेटकॉफ को है। उसने प्रेस सम्बन्धी सभी प्रतिबन्धों को रद्द करते हुए अपने पक्ष के समर्थन के लिए लिखा था

"यदि भारतवर्ष और उसके निवासियों को, अज्ञान में रख कर ही, अंग्रेजी साम्राज्य के एक भाग के रूप में रक्खा जा सकता है, तो हमारा शासन इस देश के लिए अभिशाप के रूप में होगा और उसे समाप्त हो जाना चाहिये ·· हम निश्चित में रूप से यहां महान उद्देश्यों के लिए है, जिनमें से एक नई चेतना से परिपूर्ण ज्ञान तथा सभ्यता, यूरोप के कला-कौशल तथा विज्ञान का इस देश में प्रचार करना और इनके द्वारा जनता की स्थिति को सुधारना है। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रेस की स्वतन्त्रता के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार का भी प्रयत्न सहायक नहीं सिद्ध हो सकता।"[1]

सर चार्ल्स मेटकॉफ द्वारा उत्पन्न यह अनुकूल परिस्थिति, बहुत समय तक न चल सकी। इंगलैंड का अधिकारी-वर्ग इसे सहन न कर सका, और एक-एक कर, प्रेस के सभी पुराने प्रतिबन्धक नियम फिर से लौटने लगे। फिर भी अंग्रेजी प्रभाव हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से कार्य करता रहा। मुद्रणकला के प्रचार ने पत्र-पत्रिकाओं को उत्पन्न किया, उनके विकास में योग दिया, साथ ही उसने प्रति वर्ष पुस्तकों के प्रकाशन की भी अभिवृद्धि की। इन पत्र-पत्रिकाओं तथा नवीन पुस्तकों के माध्यम से, भारतीय जनता में नयी भावनाओं तथा नये विचारों का प्रचार हुआ। मुद्रणकला के प्रचार तथा पत्र-पत्रिकाओं के विकास ने, अंग्रेजी प्रभाव की धारा के रूप में, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास में पर्याप्त योग दिया।

६—सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाएं

हिंदी-प्रदेश में सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाओं का प्रारम्भ तथा विकास भी अंग्रेजी प्रभाव की एक धारा के रूप में हुआ है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व इस प्रकार की संस्थाएं यहां विकसित नहीं हुई थी। इन संस्थाओं ने, अपने जन्म के साथ ही साहित्यिक-केन्द्रों के रूप में, मध्ययुग की राजसभाओं का स्थान ग्रहण कर लिया था। कुछ शिक्षा-केन्द्रों की स्थापना भी इन्हीं संस्थाओं के उद्योग से हुई थी। इस प्रकार की कुछ संस्थाओं ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास-क्रम को भी प्रभावित किया। कुछ सांस्कृतिक तथा साहित्यिक संस्थाएँ तो थोड़े समय में ही समाप्त हो गई थी, किन्तु कुछ बहुत काल तक जीवित रही। आगे इन दोनों ही प्रकार की कुछ

१—'लाइफ ऑफ सर चार्ल्स मेंटकाफ', वॉल्यूम सेकेन्ड, पृ० २६३-६४

सस्थाओ का वर्णन है। यहा पर जो मस्कृतिक तथा साहित्यिक सस्थाओ की सूची दी जा रही है, वह पूर्ण नही है, फिर भी उसके द्वारा इन सस्थाओ की सामान्य विशेषताएँ अवश्य प्रकट हो जाती है। व्यवस्थित अध्ययन के लिए प्रारम्भ मे, उन सस्थाओ का अध्ययन होगा, जो अग्रेजी पढे लिखे लोगो ने स्थापित की थी।

'दि बनारस इन्स्टीट्यूट'

इस सस्था की स्थापना, बनारस मे 'सस्कृत कॉलिज' की स्थापना के थोडे समय बाद ही हो गयी थी। इसके प्रमुख सदस्यो मे डा० थीबो, सर सैय्यद अहमद खाँ, राजा शिवप्रसाद आदि थे। 'सस्कृत कॉलिज' के गणित के प्राध्यापक तथा हिन्दी मे वैज्ञानिक विषयो के प्रथम लेखक प० लक्ष्मीशकर मिश्र भी इसके सदस्य थे। इसकी बैठको मे जनरुचि के विषयो को लेकर भाषण, निबन्ध-पाठ, वाद-विवाद आदि का आयोजन किया जाता था।

'दि इलाहाबाद इन्स्टीट्यूट'

इस सस्था की स्थापना, इस प्रदेश की सरकार के इलाहाबाद स्थानान्तरण के बाद हुई थी, और इसका उद्देश्य स्थानीय लोगो की सामाजिक, नैतिक तथा बौद्धिक अभिवृद्धि करना था। इलाहाबाद के 'म्योर सेन्ट्रल कॉलेज' की स्थापना इसी सस्था के द्वारा लिखित स्मृति पत्र के फलस्वरूप हुई थी। साहित्यिक तथा सामाजिक विषयो पर विचार-विमर्श करने की आवश्यकता को लेकर, इस सस्था की एक साहित्यिक शाखा भी बनाई गई थी, जिसका नाम, 'दि लिटरेरी ब्रांच ऑफ इलाहाबाद इन्स्टीट्यूट' रखा गया था। आगे चलकर इस सस्था ने अपनी मूल सस्था का ही स्थान ग्रहण कर लिया था। 'म्योर सेन्ट्रल कॉलिज' के अतिरिक्त इस सस्था ने इलाहाबाद मे एक 'सिटी ऐंग्लो वरनाक्यूलर स्कूल' की भी स्थापना की थी।

इस सस्था की साहित्यिक शाखा के उद्देश्य थे—(क) सदस्यो को जनता के बीच व्याख्यान देने का अवसर देना तथा पारस्परिक विचार-विमर्श के माध्यम से भाषण-कला को और उन्नत बनाना, (ख) समय समय पर जनता की भाषा मे पुस्तिकाएँ प्रकाशित करना। इस सस्था के द्वारा प्रकाशित पुस्तके (१) 'बुद्धि शिक्षा' बौद्धिक सस्कृति पर एक निबन्ध, (२) 'धर्म शिक्षा,' नैतिक सस्कृति सम्बन्धी निबन्ध, (३) 'वर्ण शिक्षा', हिन्दी भाषा की प्राथमिक पुस्तक, (४) 'हिन्दी शिक्षावली', भाग १ से ५, हिन्दी शिक्षा की एक क्रमिक पुस्तक-माला।

इस सस्था के सदस्य तीन प्रकार के—प्रवर्तनिक, साधारण तथा बाहर रहने वाले थे। सदस्यों मे [illegible] हिन्दी-प्रदेश के रहने वाले थे, ४ बगाली, और २१७ बाहरी, जिन मे कुछ इसी प्रदेश के, कुछ अग्रेजी, कुछ मुसलमान और थोडे से ईसाई थे।

इसकी आय केवल सदस्यो से प्राप्त चन्दा ही थी।

'दि फ्रेंड्स डिबेटिंग सोसाइटी'

इस सस्था की भी स्थापना इलाहाबाद मे ही ११ अप्रैल, सन् १८८४ को नैतिक, सामाजिक तथा बौद्धिक उन्नति को प्रोत्साहित करने के लिए हुई थी। यह भी सदस्यो से प्राप्त चन्दे को ले कर ही चलती थी। सदस्यो की सख्या १२२ के लगभग थी, जिसमे ईसाई, मुसलमान, हिन्दू तथा जैन सभी थे। 'म्योर सेन्ट्रल कॉलेज' के प्राध्यापक एस० ए० हिल, इसके प्रथम अध्यक्ष बनाये गये थे। उनके देहात के अनन्तर इस सस्था के सदस्यो ने उनकी स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए उनके नाम पर एक चांदी का पदक, जिसका नाम, हिल मैडिल, रखा गया था, चलाया था। अपने नियमित सदस्यो के लिए प्रतियोगिता द्वारा यह सस्था दो उपाधि-पत्र भी प्रदान करती थी। कुछ वर्षो बाद न्याय-सम्बन्धी प्रश्नो पर विचार-विमर्श के लिए इस सस्था की एक शाखा भी बनायी गयी थी।

'दि फारमाइकल लाइब्रेरी एसोसियेशन'

इस सस्था की स्थापना सन् १८९२ मे बनारस मे, प्रसिद्ध रईस राय सकठा प्रसाद की प्रेरणा से हुई थी। इस सस्था का उद्देश्य, अंग्रेजी तथा प्राच्य भाषाओ की नवीनतम साहित्यिक कृतियो को जनता के सामने प्रस्तुत करना था, प्रारम्भ मे इस सस्था द्वारा स्थापित पुस्तकालय मे, ८४५८ पुस्तकें थी, जिनमे ३५३८ अगरेजी, २८६५ अरबी, फारसी तथा उर्दू, १८१० सस्कृत तथा हिन्दी, १७१ बगला तथा १४ गुजराती की थी। इस प्रकार उसमे प्रारम्भ से, आठ भाषाओ के ग्रथ विद्यमान थे। पुस्तकालय मे कुछ समाचार-पत्र तथा पत्रिकाएं भी ली जाती थी, जिनमे से आठ अंग्रेजी, दस उर्दू और सात हिन्दी की थी।

यह पुस्तकालय जनता के लिये खुला रहता था, किन्तु पुस्तकें घर ले जाने की सुविधा केवल उन्ही व्यक्तियो को थी, जो चन्दा देते थे। इस सस्था की प्रबन्ध-समिति की बैठक तो प्रतिमास होती थी, किन्तु सभी सदस्यो की बैठक वर्ष मे एक बार होती थी, जब साहित्यिक विषयो पर व्याख्यान आदि का भी आयोजन किया जाता था। प्रारम्भ मे इसके सदस्यो की सख्या ३५ थी, जिनमे से अधिकाश बनारस के ही रहने वाले थे। माननीय बाबू रामकली चौधरी इसके अध्यक्ष थे।

'दि यूनियन क्लब'

यह सस्था भी बनारस मे ही सन् १८८२ मे स्थापित हुई थी। प्रारम्भ मे इसके सरक्षक 'मिशन कॉलेज' के प्रोफेसर बाबू गोपाल लाल मैत्र बी०ए०, बी०एल० थे। इस सस्था का उद्देश्य शिक्षित वर्ग को, विशेष रूप से अच्छी अगरेजी बोलने तथा लिखने

में कुशल बनाना तथा उनके बीच स्वस्थ एकता का सूत्र स्थापित करना था। सदस्यो की सख्या ७० थी, जिनमे मुसलमान, उच्च जाति के हिन्दू, सरकारी कर्मचारी, वकील तथा अन्य पढे-लिखे लोग थे। इसकी बैठको मे साहित्यिक, नैतिक तथा सामाजिक विषयो को लेकर निबन्ध-पाठ होता था और उसके अनन्तर उसी विषय पर वाद-विवाद।

बनारस की 'थियोसॉफिकल सोसाइटी'

बनारस मे 'थियोसॉफिकल सोसाइटी' की शाखा की स्थापना, सन् १८८३ मे, आर्य तथा पूर्वी देशो के साहित्य को प्रोत्साहन देने, जाति-भेद तथा वर्ण-भेद की भावनाओ को समाप्त करके विश्वबन्धुत्व की भावना को बढाने, प्रकृति के नियमो की खोज तथा मनुष्य मे अन्तर्निहित मानसिक शक्तियो के उद्घाटन के लिये हुई थी। सभी सदस्य प्रतिमास एक बार मिलते थे। इस सस्था के कार्य-क्रम में सस्कृत के ग्रन्थो का अनुवाद कार्य भी था। थोडे समय मे ही इस प्रकार की सस्थाये हिन्दी प्रदेश के अन्य नगरो मे भी खुली। इस प्रसग मे डॉ० एनीबेसेन्ट का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

ये सभी सस्थाए, अग्रेजी शिक्षित लोगो द्वारा अपने ही लिए स्थापित की गई थी। कुछ सस्थाओ की स्थापना हिन्दी सवर्धन के लिए भी की गई थी और यही बाद को साहित्य निर्माण के केन्द्रो मे परिवर्तित हो गई। १९वी शताब्दी के उत्तरार्ब का हिन्दी साहित्य मुख्यत इसी प्रकार की सस्थाओ मे पठन-पाठन के लिए लिखा गया था।

'कविता वर्द्धिनी सभा'

यह साहित्यिक सस्था, जिसकी स्थापना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८७० के लगभग की थी, अपने प्रकार की पहली थी। उन कवियो तथा लेखको मे से जो कि इसकी बैठको मे भाग लेते थे—सेवक, सरदार, नारायण, हनुमान, दीन दयालगिरि, मन्नालाल, अम्बिकादत्त व्यास आदि प्रमुख थे। इसी सस्था ने प० अम्बिकादत्त व्यास को 'सुकवि' की उपाधि प्रदान की थी। जिन कवियो की रचनाए सदस्यो द्वारा विशेष पसन्द की जाती थी उन्हे सस्था की ओर से प्रमाण-पत्र प्रदान किये जाते थे।

'दि पेनी रीडिंग क्लब'

इस सस्था का भी सूत्रपात, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सन् १८७३ मे किया था। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे प्रकाशित होने वाली लगभग सभी रचनाए पहले इसी सस्था के सदस्यो के समक्ष प्रस्तुत की जाती थी। राधाकृष्ण दास ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की जीवन कथा मे लिखा है कि कभी-कभी भारतेन्दु जी इसकी बैठको मे, विषय के अनुरूप वेश-भूषा मे बडे नाटकीय ढग के साथ प्रस्तुत होते थे। इस सस्था के तत्वावधान मे अनेक निबन्धो का पाठ हुआ।

'हिन्दी प्रवर्द्धिनी सभा'

सन् १८७७ मे कुछ शिक्षित युवको के प्रयत्न से इलाहाबाद मे इस साहित्यिक सस्था की स्थापना हुई थी। प्रारम्भिक वर्षो मे ही, इसके कार्यकर्ताओ ने यह निश्चय किया, कि प्रत्येक सदस्यो से ५ रु० वार्षिक चन्दा लेकर, हिन्दी मे एक मासिक पत्रिका निकाली जाय। इसी निश्चय के फलस्वरूप "हिन्दी प्रदीप" का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। प० बालकृष्ण भट्ट को इस पत्रिका के सम्पादन का भार दिया गया। उनकी सभी साहित्यिक रचनाए इसी पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने, इसी सस्था के एक अधिवेशन मे, अपनी लम्बी काव्य रचना 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' पढ़ी थी।

'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि मध्य सभा'

इस सस्था की स्थापना भी इलाहाबाद मे सन् १८८४ मे हुई थी, और इसी के तत्वावधान मे 'सम्पादक समाज' का भी सूत्रपात हुआ था। किन्तु ये दोनो सस्थाएँ दो वर्ष के भीतर ही समाप्त हो गई थी।

'नागरी प्रचारिणी सभा'

इस सस्था की स्थापना बनारस मे सन् १८९३ मे हुई थी। श्यामसुन्दरदासजी ने अपनी 'आत्म कहानी' मे इस सस्था के प्रारम्भ तथा विकास का विस्तृत इतिहास दिया है। जब श्यामसुन्दर दास जी इन्टर कक्षा के विद्यार्थी थे, उन्होने अपने कुछ अन्य मित्रो के साथ एक वाद-विवाद की सस्था का प्रारम्भ किया था। इसी सस्था की एक बैठक मे, १६ जुलाई १८९३ को, 'नागरी प्रचारिणी सभा' का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था। 'सभा' का कार्य उसी दिन से प्रारम्भ हो गया था, और श्यामसुन्दर दास जी उस के पहले मन्त्री चुने गये थे। अपने प्रथम वर्ष मे ही, इस सस्था ने अपने कार्य-क्रम मे शब्दकोष, व्याकरण, हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ का इतिहास, हिन्दी विद्वानो के जीवनवृत्त तथा वैज्ञानिक विषयो पर पुस्तकें लिखवाना तथा प्रकाशित कराना, स्वीकार कर लिया था। 'सभा' का प्रथम वार्षिक अधिवेशन, ३० सितम्बर १८९४ को, 'कारमाइकल पुस्तकालय' के भवन मे, प० लक्ष्मीशंकर मिश्र की अध्यक्षता मे हुआ था। उसी वर्ष 'सभा' ने, हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज के कार्य को भी प्रारम्भ कर दिया था। 'सभा' के लिए एक पुस्तकालय के निर्माण का प्रयत्न भी इन प्रारम्भिक वर्षो मे ही आरम्भ हो गया था। 'सभा' के तृतीय वार्षिक अधिवेशन के विवरण की निम्न-लिखित पक्तिया उसके सदस्यो की कर्त्तव्य बुद्धि तथा जागरुकता का परिचय देती हैं

"सभा की कोई सामयिक पत्रिका न होने के कारण उसकी निर्णीत बहुत सी बातें सर्व साधारण मे प्रचारित होने से रह जाती थी, और सभा के बहुतेरे उद्योग

सरोवर मे खिल कर मुरझाने वाले कमलो के समान हो जाते थे। दूसरे बहुतेरे भाव-पूर्ण उपयोगी लेख सभा मे आकर पुस्तकालय की अलमारियो को ही अलकृत करते थे, जिनसे उनके सुयोग्य लेखक हतोत्साह हो जाते थे और सुरसिक उत्साही पाठक-जन प्यासे चातक की भाति वाट जोहते ही रह जाते थे। इन्ही वातो का विचार कर और हिन्दी मे भाषा-तत्व, भूतत्व, विज्ञान, इतिहास आदि विषयक लेखो और ग्रथो का पूर्ण अभाव देख 'सभा' ने 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' निकालना प्रारम्भ किया है।"[1]
इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने अपने तीसरे ही वर्ष मे, एक ऐसी उच्च कोटि की पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ कर दिया था, जो अंग्रेजी प्रभाव द्वारा हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे प्रारम्भ किये गये, वैज्ञानिक तथा अन्य नवीन विषयो की रचनाओ को प्रोत्साहन देती थी।

अपने प्रकाशन के पहले ही वर्ष से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' ने वैज्ञानिक विषयो के निवन्धो को स्थान देना प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु अंग्रेजी के विज्ञान सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दो के लिए, हिन्दी के उपयुक्त पर्याय न होने के कारण वडी कठिनाई होती थी। इसीलिए वैज्ञानिक कोष के निर्माण का प्रश्न उठा। १८९८ मे ही यह कार्य प्रारम्भ हो गया, और १९०८ से सभा ने 'हिन्दी वैज्ञानिक कोष' का प्रकाशन प्रारम्भ किया। उसमे १०३३० अंग्रेजी के पारिभाषिक शब्द अनुवादित रूप मे सकलित किये गये थे। रसायन के पारिभाषिक शब्दो का अनुवाद करने के लिए, कुछ नये उपसर्ग तथा प्रत्यय भी वनाये गये थे, और यह सब 'महाभाष्य' के रचयिता पातञ्जलि के इस कथन कि 'कोई भी वैय्याकरण के घर जाकर यह नही कहता कि शब्द बनाओ, मैं उनका प्रयोग करूगा' के विपरीत हुआ था, और वह भी एक विदेशी प्रभाव की प्रेरणा से।

'नागरी प्रचारिणी सभा' के अन्य दो महत्वपूर्ण कार्य 'हस्तलिखित ग्रथो की खोज के विवरण' तथा 'हिन्दी शब्द सागर' के प्रकाशन हैं। हस्त-लिखित ग्रथो के विवरण के प्रकाशन का प्रारम्भ सन् १९०१ से ही हो गया था। इन्ही हस्तलिखित ग्रथो के विवरणो का आधार लेकर, अब तक हिन्दी भाषा तथा साहित्य का वैज्ञानिक, ऐतिहासिक तथा आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता रहा है। हिन्दी के एक शब्दकोष के प्रकाशन का निश्चय 'नागरी प्रचारिणी सभा' के प्रारम्भ के वर्ष ही हो गया था, उसके लिए फिर भी वास्तविक प्रयत्न का प्रारम्भ, २३ अगस्त, १९०७ के वाद से, एडवर्ड ई० ग्रीवज के, इस विषय के प्रस्ताव के स्वीकृत हो जाने के अनन्तर हुआ। इस कार्य

१—श्याम सुन्दर दास 'मेरी आत्मकहानी, पृ० २७-२८

की रूपरेखा बनाने के लिए एक उपसमिति बनाई गई, जिसने अपनी कई बैठको के अनन्तर उसी वर्ष, ९ नवम्बर को अपना विवरण प्रस्तुत किया और फिर कार्य प्रारम्भ हो गया। 'हिन्दी शब्द सागर' के प्रकाशन का प्रारम्भ सन् १९१२ से हुआ, और वह कई वर्षों में पूरा हुआ। ये सभी कार्य 'सभा' ने अंग्रेजी प्रभाव से ग्रहीत वैज्ञानिक प्रणाली से ही सम्पन्न किये।

'हिन्दी साहित्य सम्मेलन'

इस सस्था की स्थापना सन् १९०५ मे हुई थी। प्रस्तुत अध्ययन के अन्तर्गत इसका १५ वर्ष का जीवनकाल ही आता है, जिसमे इसने विशेष रूप से हिन्दी भाषा तथा साहित्य को लोकप्रिय बनाने का ही कार्य किया था। इसके वार्षिक अधिवेशनो के भाषणो मे, हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए, पाश्चात्य प्रवृत्तियो के ग्रहण पर अनेक बार बल दिया गया।

हिन्दी-प्रदेश की अन्य साहित्यिक सस्थाएँ, जिनका हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास मे योग रहा है, निम्नलिखित हैं

(१) 'भाषा सम्वर्द्धिनी सभा', इसकी स्थापना बाबू तोताराम ने अलीगढ मे की थी। उनका उद्देश्य हिन्दी भाषा मे सस्ते मूल्य की अच्छी पुस्तकें प्रकाशित करना था। तोता राम जी ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक एडीसन के एक दुःखान्त नाटक 'केटो' का हिन्दी अनुवाद 'केटो कृतान्त' नाम से इसी सस्था से प्रकाशित कराया था।

(२) 'रसिक समाज', इसकी स्थापना प० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने सन् १८७४ मे मिर्जापुर मे की थी।

(३) 'कवि-कला-कौमुदी', सस्थापक, प० राधाचरण गोस्वामी, सन् १८७५, वृन्दावन।

(४) 'सस्कृत सञ्जीवनी समाज', सस्थापक, प० अम्बिकादत्त व्यास, सन् १८८३, मधुवनी।

(५) 'इतिहास कार्यालय', सस्थापक, कविराज श्यामलदान, उदयपुर। सन् १८८८ मे महामहोपाध्याय प० गौरी शकर हीराचन्द ओझा इसके मन्त्री बनाये गये।

(६) 'विज्ञान प्रचारिणी सभा,' सस्थापक, प० सुधाकर द्विवेदी। उद्देश्य हिन्दी मे वैज्ञानिक विषयो के ग्रथो का प्रकाशन।

(७) 'रसिक समाज', कानपुर मे स्थापित, राय देवीप्रसाद पूर्ण सब से सम्मानित सदस्य।

(८) 'श्री भानुकवि समाज,' जबलपुर मे स्थापित।

(९ तथा १०) लाला भगवानदीन ने मधुवनी मे 'कवि समाज,' तथा 'काव्य-लता' नाम की दो सस्थाएँ स्थापित की थी।

इस स्थान पर कुछ सामाजिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ के सम्बन्ध मे भी विचार कर लेना चाहिये। यद्यपि इस प्रकार की सस्थाओ ने हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अगेजी प्रभाव को लाने मे विशेष सहायता नही दी, फिर भी जीवन के नये मूल्यो के निर्माण मे, उनका योग अवश्य रहा है। इस प्रकार की सस्थाओ मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण 'तदीय समाज', 'साधारण समाज', 'भारतमित्र सभा,' धर्मोपयोगिनी सभा' आदि है। १९ वी शताब्दी मे हिन्दी के बहुत से लेखक इस प्रकार की किसी न किसी सस्था से सम्बन्धित रहे थे। इन्ही की प्रेरणा से उन्होने जीवन के नये मूल्यो को ग्रहण किया था।

इन साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ के अध्ययन को समाप्त करते हुये, हिन्दी प्रदेश मे स्थापित पुस्तकालयो का उल्लेख, आवश्यक प्रतीत होता है। अग्रेजी प्रभाव के पूर्व इस प्रकार की सस्थाएँ राजाओ, महाराजाओ तथा बहुत अधिक धनवान व्यक्तियो तक ही सीमित रही थी। अब इनका निर्माण निर्धन तथा धनवान सभी के लिए होने लगा था। हिन्दी-प्रदेश के कुछ पुस्तकालयो के नाम, जिनकी स्थापना १९वी शताब्दी मे ही हो गई थी, अग्रलिखित हैं

'लायल लाइब्रेरी' अलीगढ, 'आर्य भाषा पुस्तकालय' जो मिर्जापुर मे स्थापित हुआ पर आगे चलकर बनारस को स्थानान्तरित हो गया, 'भारती भवन' तथा 'पब्लिक लाइब्रेरी' इलाहाबाद। इन पुस्तकालयो ने पश्चात्य ज्ञान-विज्ञान के जनता के बीच प्रचार मे विशेष सहायता पहुँचाई थी, और इस प्रकार हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव लाने मे भी सहायक हुए थे।

उपसहार

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए, अग्रेजी प्रभाव की इन विभिन्न धाराओ ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य को सम्मिलित रूप से कितना प्रभावित किया, यह देख लेना चाहिये। परिवर्तित वातावरण की प्रथम धारा ने जनता के दृष्टिकोण को और अधिक व्यापक, सासारिक तथा मानवतावादी बना दिया था। उसने राजाओ तथा नवाबो के उन दरबारो के महत्व को भी समाप्त कर दिया था, जो अब तक साहित्य-निर्माण के केन्द्रो का कार्य करते रहे थे। फोर्ट विलियम कॉलेज' ने भाषा तथा साहित्य के सम्बन्ध मे नये प्रकार की कार्य-प्रणालिया सिखायी थी। अग्रेजी सरकार, ईसाई प्रचारको तथा जन-सस्थाओ द्वारा स्थापित शिक्षा-सस्थाओ ने, अग्रेजी भाषा तथा साहित्य के हिन्दी-प्रदेश की जनता के बीच प्रचार मे, बडी सहायता पहुचाई थी।

उनके द्वारा पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान भी जनता के बहुत निकट पहुँच गये थे। ईसाई प्रचारको ने हमारा ध्यान धार्मिक, सामाजिक तथा सास्कृतिक क्षेत्रो मे उत्पन्न हो गये अन्ध-विश्वासो की ओर आकर्षित किया था, और इसी के फलस्वरूप हिन्दी-प्रदेश मे धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनो का विकास हुआ था। साम्राज्य-वादी शोषण नीति ने, जनता की राजनीतिक चेतना को जागरूक किया था। मुद्रण-कला के प्रचार तथा पत्र-पत्रिकाओ के आरम्भ से, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का प्रचार बडी तीव्रता के साथ हुआ था। इन सब के सहयोग से नवोत्पन्न सास्कृतिक तथा साहित्यिक सस्थाओ ने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास मे, सब से अधिक योग दिया। साहित्यिक सस्थाओ ने तो नवीन साहित्यिक-केन्द्रो का रूप धारण कर लिया, और हमारे भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी प्रतिमानो को शीघ्रता के साथ परिवर्तित कर दिया। आगे के प्रकरण मे इन प्रतिमानो के परिवर्तित होने के क्रम का ही अध्ययन किया जायेगा।

: ५ :

अंग्रेजी प्रभाव की छाया में हिन्दी के भाषागत एवं साहित्यिक आदर्शों का निर्माण

अंग्रेजी प्रभाव ने अपनी विभिन्न धाराओ मे कार्य करते हुए, हिन्दी-प्रदेश मे एक विशेष परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात किया था। इस प्रभाव द्वारा प्रारम्भ की गई विशेष गतिशील परिवर्तन की प्रवृत्ति ने, हिन्दी भाषा और साहित्य को भी प्रभावित किया, उसने उनमे स्थिर विकास के स्थान पर द्रुतगति पूर्ण विकास के क्रम का सूत्र-पात किया। इस गतिशीलता ने हिन्दी भाषा और साहित्य के आदर्शो मे महत्वपूर्ण परिवर्तनो का प्रारम्भ किया। अग्रेजो द्वारा स्थापित शिक्षा-सस्थाओ के माध्यम से अग्रेजी भाषा और साहित्य के साथ जो सम्पर्क स्थापित हुआ, वह भी बदलते हुए भाषागत तथा साहित्यिक आदर्शो के निर्माण मे सहायक हुआ। इन आदर्शो के निर्माण का अध्ययन, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, अग्रेजी प्रभाव की रूपरेखा को स्पष्ट कर देगा, और आगे के प्रकरणो मे उसका विस्तृत रूप से अध्ययन किया जायगा। अग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी साहित्य को प्रभावित करने के पूर्व हिन्दी भाषा पर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया था, इसलिए पहले भाषा सम्बन्धी आदर्शो के निर्माण के क्रम का ही अध्ययन होगा। इसके अनन्तर हिन्दी के साहित्यिक आदर्शो के निर्माण के क्रम को, अग्रेजी प्रभाव ने जो कुछ उसमे योग दिया है, उसके साथ, प्रस्तुत किया जायेगा।

हिन्दी भाषा के नवीन आदर्श

हिन्दी भाषा अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क मे आने के पूर्व मुख्यत काव्य-रचनाओ तक ही सीमित रही थी, और यद्यपि यदा-कदा गद्य रूप के भी प्रयोग किये गये थे, किन्तु उनमे उसकी अवस्था प्रारम्भिक विकास की ही रही थी। इसी कारण उसका शब्द-समूह सीमित रहा था, उसके व्याकरण के नियमो की खोज नही हुई थी, लिखते समय प्रयोग मे आने वाले विराम-चिह्न भी निश्चित नही हुए थे, और शैली के विभिन्न प्रकारो का भी विकास नही हुआ था। इसी कारण उसमे इतनी शक्ति नही थी कि वह जीवन के विभिन्न पक्षो तथा ज्ञान की विविध धाराओ को अभिव्यक्त कर सके। अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क ने उसकी इन कमियो को दूर करने मे बड़ी सहायता दी।

हिन्दी-प्रदेश मे, अंग्रेजी शासन की स्थापना के बहुत पूर्व ही, अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा पर कार्य करना आरम्भ कर दिया था। जब अंग्रेजी शासन उत्तर भारत मे केवल बगाल मे ही स्थापित हुआ था, तभी से अंग्रेजी शब्द, अपने शुद्ध तथा अनुवादित रूपो मे, हिन्दी भाषा मे प्रविष्ट होने लगे थे। 'फोर्ट विलियम कॉलिज' की स्थापना (१८००) से ही, हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ हुआ था। 'उदन्त मार्तण्ड' (१८२६), 'बगदूत' (१८२९), 'प्रजामित्र' (१८३४), आदि समाचार-पत्रो के प्रकाशन से, उसने और अधिक व्यापक रूप मे आना प्रारम्भ किया। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आने के साथ अंग्रेजी भाषा ने जो उन्नति की थी, वह हिन्दी भाषा के लिए आदर्श मानी जाने लगी। आगे के वर्षो मे हम उस आदर्श को प्राप्त करने का प्रयास देखते है।

अंग्रेजी प्रभाव सर्व प्रथम हिन्दी भाषा के शब्द-समूह पर देखने को मिला। बहुत से अंग्रेजी शब्द हिन्दी भाषा मे अपने मौलिक तथा अनुवादित रूपो में आने लगे थे। सबसे पहले शासन व्यवस्था से सम्बन्धित शब्दो तथा अंग्रेजो के साथ आई हुई नई वस्तुओ की सज्ञाओ के प्रयोग प्रारम्भ हुए थे। इसके अनन्तर नवीन शिक्षा-केन्द्रो के स्थापित होने से, अंग्रेजी की साहित्यिक, सांस्कृतिक तथा वैज्ञानिक शब्दावली भी हिन्दी मे प्रयोग मे आने लगी थी।

अंग्रेजी के कुछ शब्द हिन्दी मे सर्व प्रथम अपने मौलिक रूप मे प्रयोग मे आये। विदेशी भाषा के शब्दो का इस प्रकार मौलिक रूप मे प्रयोग, हिन्दी भाषा के क्षेत्र में जो शुद्धतावादी थे उन्हे भला नही प्रतीत हुआ। किन्तु उन्नीसवी शताब्दी के अंतिम दशक मे, साहित्यिक तथा सामाजिक सभी क्षेत्रो मे खड़ी बोली के प्रयोग के लिए

आन्दोलन करने वाले, अयोध्या प्रसाद खत्री ने युग की भावधारा को भली प्रकार समझ लिया था, और हिन्दी भाषा मे अंग्रेजी शब्दो के, उनके शुद्ध रूप मे, प्रयोग को वे ऐतिहासिक आवश्यकता मानते थे

"अंग्रेजी राज्य होने से, अंग्रेजी भाषा की शिक्षा पाने से, अंग्रेजो की निर्मित वस्तुओ का इस देश मे प्रचार होने से अंग्रेजी शब्द भी हिन्दी मे अवश्य आयेंगे, यह इतिहास की बात है।"[1] आगे उन्होंने लिखा था

"बाहरी भाषाओ के शब्दो को अपना सा कर डालना, जिससे भाषा दिन प्रति दिन अमीर होती जाय यह भी एक बडा काम है और सबसे बडा काम है अपनी भाषा के विषयो को दूना चौगुना करते जाना अर्थात् जो जो विषय भाषा मे पहले कम थे उनको मिला देना और जो विषय कभी थे ही नही उनको बाहर से लाय भरती करना इन सब का असर यह होगा कि भाषा की नमनशक्ति बहुत बढ जायेगी अर्थात् जिस तरह के विषय पहले उसके बाहर समझे जाते थे वे, जल्दी उसकी पहुच के भीतर आ जाएगे। हमारे देखते ही देखते अंग्रेजी मेमो ने हिन्दुस्तानी गहनो का पहनना प्रारम्भ कर दिया, जैसे सोने की चूडिया, जडाऊ कठा आदि। इसी तरह हम अपनी भाषा को अंग्रेजी भाषा के आभूषणो से आभूषित करे तो इसमे क्या क्षति है।"[2]

इस प्रकार अंग्रेजी शब्द अपने विशुद्ध रूप मे हिन्दी भाषा मे आते रहे। किन्तु शुद्धतावादियो की विचारधारा का भी प्रभाव पडा और जैसे जैसे समय बीतने लगा, अंग्रेजी के शब्द अपने शुद्ध रूप मे अपनाये जाने के स्थान पर अनुवादित रूप मे ग्रहण किये जाने लगे। हिन्दी भाषा मे आने वाले अंग्रेजी शब्दो की बढती हुई सख्या के साथ, अंग्रेजी की शब्दावलिया, प्रयोग तथा कहावते भी हिन्दी रचनाओ मे स्थान पाने लगी।

हिन्दी भाषा के एक रूप की व्याकरण की रचना का प्रयत्न भी अंग्रेजी प्रभाव की छत्रछाया मे ही, सर्व प्रथम हुआ था। 'फोर्ट विलियम कॉलिज' के 'भाखा मुशी' लल्लू जी लाल ने अपना 'वृज भाषा व्याकरण' इसी कॉलेज के एक प्रोफेसर लेफ्टिनेन्ट विलियम प्राइस के निरीक्षण मे सन् १८१२ मे लिखा था। इस रचना के प्रकाशन के २५ वर्ष बाद फादर ऐड्म्स का 'हिन्दी व्याकरण' प्रकाशित हुआ, जो अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर लिखा गया था। कामता प्रसाद गुरु ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी व्याकरण' की भूमिका मे लिखा है, कि फादर एडम्स की रचना के अनन्तर प्रकाशित होने वाले

१—अयोध्या प्रसाद खत्री 'खडी बोली का पद्य' (१८८८), पृ० १६
२—वही, पृ० १६-१७

हिन्दी व्याकरण के सभी ग्रन्थ उसी को आधार मानकर लिखे गये है। स्वय कामता प्रसाद गुरु का ग्रथ, जो १६२० मे प्रकाशित होने के अनन्तर, अभी तक हिन्दी का सबसे प्रामाणिक व्याकरण माना जाता है, अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर ही लिखा गया है। उसका वाक्य-विन्यास सम्बन्धी प्रकरण तो पूर्णत किसी अंग्रेजी व्याकरण पर ही आधारित है।

हिन्दी रचनाओ मे प्रयोग मे आने वाले अल्पविराम, अर्ध-विराम, निर्देशक आदि विराम-चिह्न अंग्रेजी से ही ग्रहण किये गये थे। इन मे से कुछ का प्रयोग सर्व प्रथम लल्लू जी लाल तथा सदलमिश्र ने 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के अंग्रेज प्रोफेसरो के प्रभाव से अपनी रचनाओ मे किया था, किन्तु उनका नियमित प्रयोग हमे राजा शिवप्रसाद तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ से मिलता है। श्रीनिवास दास ने अपने उपन्यास 'परीक्षागुरु' की भूमिका मे अंग्रेजी से लिए गये विराम-चिह्नो पर कुछ थोडे से वाक्य लिखे थे। किन्तु इस सम्बन्ध मे सबसे अधिक प्रामाणिक सामग्री अपने ग्रन्थ 'लेखनकला' (१६१६) मे स्वामी सत्यदेव ने प्रस्तुत की। कामता प्रसाद गुरु ने भी अपने ग्रन्थ 'हिन्दी-व्याकरण' मे विराम-चिह्नो के सम्बन्ध मे कुछ पृष्ठ लिखे हैं।

अंग्रेजी प्रभाव, आधुनिक युग के कई लेखको की शैली मे तथा उनके वाक्य-विन्यास मे भी देखा जा सकता है। यह पहले कहा जा चुका है कि अंग्रेजी प्रभाव के आगमन से हिन्दी-प्रदेश मे एक नये युग का सूत्रपात हुआ था। नये युग के साथ, जो नये भाव और विचार विकसित हुये थे, जब वे अभिव्यक्त होने लगे, तो हिन्दी मे नये प्रकार के वाक्य-विन्यास तथा नई प्रकार की शैलियो का जन्म हुआ। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के फल-स्वरूप हिन्दी के लेखको का सम्पर्क अंग्रेजी के लेखको से हो गया था और कभी-कभी वे जान बूझकर तथा कभी अनजाने ही, अंग्रेजी के लेखको के वाक्य-विन्यास तथा शैली का अनुकरण कर जाते थे।

हिन्दी भाषा के आदर्शों मे इन परिवर्तनो के साथ, उसकी अभिव्यञ्जना-शक्ति बहुत बढ गयी है। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव का जो व्यापक रूप रहा है, वह इन परिवर्तनो के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुआ था। आगे के पृष्ठो मे उसका विस्तृत अध्ययन किया जायगा। यहा केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा के आदर्शों मे जो परिवर्तन किया है, उससे उसमे नए भावो तथा विचारो को अभिव्यक्त करने की शक्ति आयी है।

२—नवीन साहित्यिक-केन्द्रो की स्थापना

नवीन साहित्यिक आदर्शों के निर्माण का क्रम, सदा ही, नवीन साहित्यिक-केन्द्रो की स्थापना से सम्बन्धित रहा है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व साहित्य-निर्माण के दो केन्द्र

रहे थे विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाय तथा राज सभाएं। विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो मे लिखे जाने वाले साहित्य मे राम, सीता, कृष्ण तथा राधा और इसी प्रकार के अन्य दैवी भावनाओ से ओत-प्रोत पात्र ही प्रमुख स्थान पाते थे। राज सभाओ मे लिखे जाने वाले साहित्य मे पृथ्वीराज, वीसलदेव, वीरसिंह देव, हिम्मत बहादुर तथा इस प्रकार के अन्य राजाओ और नवावो को, अथवा दैवी भावनाओ से ओत प्रोत पात्रो को ही, मुख्य चरित्रो के रूप मे प्रस्तुत किया जाता था।

जब अंग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी साहित्य पर कार्य करना प्रारम्भ किया, तो विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायो का साहित्यिक-केन्द्रो के रूप मे विशेष महत्व नही रह गया था। अंग्रेजी शासन के प्रसार के साथ राज सभाओ का महत्व भी घटता जा रहा था। इस प्रकार उत्पन्न हुए रिक्तता के वातावरण मे, अंग्रेजी प्रभाव ने नये साहित्यिक केन्द्रो का निर्माण किया। अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार ने एक नवीन सामाजिक श्रेणी, मध्यम वर्ग, को उत्पन्न किया था और इसी नवीन वर्ग के लोगो ने 'कविता-वर्द्धिनी सभा', 'पैनी रीडिंग क्लब' तथा इसी प्रकार के अन्य साहित्यिक-केन्द्रो की स्थापना की। ये नवीन साहित्यिक-केन्द्र पूर्ववर्ती केन्द्रो की तुलना मे जनता के अधिक बीच स्थापित हुए थे, इसीलिए नवीन साहित्य मे सामान्य जीवन को महत्व मिलना प्रारम्भ हुआ।

अंग्रेजी प्रभाव द्वारा प्रारम्भ किये गये इस आधारभूत परिवर्तन के साथ-साथ, इस प्रभाव ने हिन्दी के साहित्यिक आदर्शों के निर्माण मे भी योग दिया। नवीन साहित्यिक-केन्द्रो की स्थापना, उन व्यक्तियो ने की थी, जो अंग्रेजी पढे लिखे थे और इस प्रकार उन्हे अंग्रेजी साहित्य का ज्ञान था। अंग्रेजी साहित्य के साथ इस सम्पर्क के फलस्वरूप ही, राजा शिव प्रसाद, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, श्रीनिवास दास, बाल कृष्ण भट्ट तथा अन्य लेखको ने हिन्दी मे नवीन साहित्यिक रूपो का प्रारम्भ किया था।

नवीन साहित्यिक केन्द्रो से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओ मे ही नवीन साहित्यिक रूपो के प्रयोग, सर्वप्रथम प्रकाश मे आये थे। इस तथ्य की पुष्टि के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के मुख पृष्ठ की निम्नलिखित अंग्रेजी की पंक्तिया प्रस्तुत की जाती हैं

A Monthly Journal

Published in connection with the Kavi vacansudha containing Articles on Literary, Scientific, Political and Religious subjects, Antiquities, Reviews, Dramas, History, Novels, Poetical selections,

Gossips, Humour and wit[1]

आगे इन नवीन साहित्यिक रूपो के अपने-अपने आदर्शों के निर्माण तथा उसमे अंग्रेजी प्रभाव के योग का अध्ययन होगा। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी साहित्य के काव्य-रूप का ही विशेष विकास हुआ था, इसलिए ऐतिहासिक परम्परा के निर्वाह के लिए सबसे पहले काव्य के नवीन आदर्शों के निर्माण का विवरण ही प्रस्तुत किया जायगा।

३—काव्य

नव-स्थापित साहित्यिक-केन्द्रो मे से एक, 'कविता वर्द्धिनी सभा' (१८७०) की स्थापना, प्रधानतया काव्य-रूपो के विकास के लिए ही हुई थी। यही हिन्दी-प्रदेश का सर्व प्रथम नवीन साहित्यिक-केन्द्र था। मध्ययुग मे काव्य रचनाएँ राजाओ, महाराजाओ तथा नवावो के दरवारो मे उनके सभासदो के बीच सुनाने के लिये लिखी जाती थी और उनमे अभिव्यक्त भावना प्रधानतया शृंगार की होती थी। 'कविता वर्द्धिनी सभा' मध्यम वर्ग के लोगो की सस्था थी, और उसके कुछ सदस्य तो अंग्रेजी साहित्य से भी परिचित थे। इसीलिए जो कुछ इस साहित्यिक-केन्द्र के लिये लिखा जाता था, वह सभी पूर्णत पुरातन पद्धति का नही होता था, यद्यपि पुरानी पद्धति भी थोडी-वहुत चलती जा रही थी, और आगे भी कुछ समय तक चलती रही। इस साहित्यिक-केन्द्र मे सुनाई जाने वाली कुछ रचनाएँ आगे चलकर 'कवि वचन सुधा' नामक पत्रिका मे प्रकाशित भी होती थी। किस प्रकार यह सस्था, लोगो को काव्य-रचनाएँ लिखने के लिए प्रोत्साहित करती थी, इसके सम्बन्ध मे भी कुछ लिखना यहा आवश्यक प्रतीत होता है। सर्व प्रथम 'कवि वचन सुधा' मे निम्नलिखित प्रकार का विज्ञापन प्रकाशित होता था

॥ प्रसिद्ध पत्र ॥

सभा कार्तिक कृष्ण १ को होगी जो लोग नीचे लिखे
हुए काव्य वनावेंगे उनको १ रुपया तक पारितोषिक और जो
रु० न लेंगे उनको प्रशसा-पत्र दिया जायगा ॥

॥ समस्या ॥

चिरजीये सदा विक्टोरिया रानी ॥

॥ वर्णन ॥

प्रात काल की शोभा का वर्णन चाहे जिस छन्द मे हो।

१—'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के मुख-पृष्ठ पर परिचय रूप मे ये पंक्तियाँ प्रकाशित होती थीं

॥ हरिश्चन्द्र ॥
काव्य वर्द्धिनी सभा का सेक्रेटरी ।[१]

इस संस्था के मन्त्री को, इस विज्ञापन के अनन्तर, जो रचनाएँ प्राप्त होती थी, वे उसकी एक बैठक मे उन्ही के लेखको द्वारा पढी जानी थी, और सबसे सुन्दर रचनाओ पर धन के रूप मे अथवा प्रशसा-पत्रो के रूप मे पुरस्कार दिये जाते थे। प्रशसा-पत्र की प्रतिलिपि नीचे प्रस्तुत की जाती है

प्रशसा पत्र

यह प्रशसा-पत्र ···· को कवि सभा की ओर से इस हेतु दिया जाता है कि आज की समस्या को जो पूर्ण करने के हेतु दी गई थी इन्होंने उत्तमता से पूर्ण किया और दत्त विषय की कविता इनने प्रशसा के योग्य की है इस हेतु मती ··· की काव्य वर्द्धिनी सभा के सभापति, सभाभूषण, सभासद और लेखाध्यक्षो ने अत्यत प्रसन्नता पूर्वक आदर से इनको यह पत्र दिया है।

मि० सवत् १९२७

ह० ह०

सभापति लेखाध्यक्ष[२]

यह किसी अंग्रेजी प्रशसा-पत्र के आधार पर लिखा गया प्रतीत होता है। कुछ शब्द सभापति, लेखाध्यक्ष आदि तो स्पष्ट ही, अंग्रेजी भाषा से अनुवादित रूप मे लिये गये हैं।

इस साहित्यिक सस्था तथा इसी प्रकार के अन्य साहित्यिक-केन्द्रो मे किये गये प्रयोगो से, हिन्दी कविता को दो नवीन तत्व प्राप्त हुए थे—वर्णनात्मकता तथा प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति अनुराग। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ मे प्राप्त वर्णनात्मकता मे यथार्थ वर्णन की प्रवृत्ति है। उदाहरण के लिए उनकी 'गगा की शोभा' तथा 'प्रात समीरण' शीर्षक रचनाए प्रस्तुत की जा सकती है। प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति स्नेह की भावना का प्रारम्भ 'कविता वर्द्धिनी सभा' की ओर से 'कवि वचन सुधा' मे निकलने वाले उन विज्ञापनो मे जिनमे प्राकृतिक विषयो पर काव्य रचनाए मागी जाती थी माना जा सकता है। उन विज्ञापनो मे अक्सर प्रात, सध्या, निशा तथा विभिन्न ऋतुओ पर काव्य-रचनाए लिखने के लिए कहा जाता था।

१—'कविवचन सुधा', वाल्यूम २, न० ६ (आश्विन कृष्णपक्ष, सवत् १९२७), पृ० १६

२—श्यामसुन्दरदास सम्पादित 'राधाकृष्ण ग्रथावली', पृ० ३७८

हिन्दी कविता मे इन दोनो नवीन तत्वो के विकास मे, अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ तथा टॉमसन का विशेष योग रहा है। ये दोनो अंग्रेजी कवि, हिन्दी कविता मे, अपने प्रभाव के निश्चित चिह्न छोड गये हैं। भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध लेखक तथा कवि बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने, अपनी लम्बी रचना 'जीर्ण जनपद' की रूपरेखा, गोल्डस्मिथ की रचना 'डेजर्टिड विलेज' के आधार पर बनाई थी। टॉमसन की प्रसिद्ध रचना 'सीजन्स' ('Seasons') का प्रभाव, श्रीधर पाठक तथा लोचन प्रसाद पाण्डेय की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओ मे देखा जा सकता है। अंग्रेजी के इन दोनो कवियो की व्यञ्जना-प्रणाली वर्णनात्मक थी, इसलिए हिन्दी मे वर्णनात्मकता के सूत्रपात मे भी इनका प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है। हिन्दी कविता इन दोनो नवीन तत्वो के विकास से जीवनधारा के अधिक निकट आ गई थी, जिस से मध्ययुग मे अपना सम्बन्ध उसने पूर्णत अलग-सा कर लिया था।

इस के अनन्तर प० महावीर प्रसाद द्विवेदी के, हिन्दी कविता मे नवीनता के सूत्रपात के सम्बन्ध मे, उद्योग आते हैं। उन्होने 'सरस्वती' के सन् १६०१ के दो अको मे 'कवि कर्तव्य' शीर्षक दो लेख प्रकाशित किये थे, जिन्हे सम्भवत उन्होने ही विद्यानाथ के छद्म नाम से लिखा था। इन निबन्धो मे प्रस्तुत की गई तर्क परम्परा का, वर्ड्सवर्थ द्वारा अपने काव्य-सग्रह 'लिरिकल बैलेड्स' (१७६८) की भूमिका मे उल्लिखित काव्य-सम्बन्धी विचारधारा से पर्याप्त साम्य है। वर्ड्सवर्थ ने अपने काव्य-सिद्धात को स्पष्ट करते हुए, उसके चार प्रमुख तत्व बताये थे

(१) घटनाओ तथा परिस्थितियो का सामान्य जीवन से चयन,

(२) उनका प्रारम्भ से अन्त तक, जहा तक सम्भव हो सके, सामान्य मनुष्यो द्वारा प्रयोग मे लाई जाने वाली भाषा मे वर्णन,

(३) उनके ऊपर कुछ कल्पना के रगो का उपयोग, जिनसे कि वे अपने साधारण रूप मे नही वरन् असामान्य रूप मे प्रकट हो,

और (४) इन घटनाओ तथा परिस्थितियो को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए उनमे, प्रदर्शन के लिए नही, वरन वास्तविकता के साथ, प्रकृति के प्राथमिक नियमो का समावेश करना।[1]

'कवि-कर्तव्य' शीर्षक दूसरे निबन्ध के अन्त मे उसके मुख्य निष्कर्ष इस प्रकार हैं

"... यदि आजकल की कविता मे शास्त्रोक्त गुणो को छोड कर नीचे लिखे हुए

१—'इगलिश क्रिटिकल एसेज' (उन्नीसवीं शताब्दी)· 'वर्ड्सवर्थ 'पोएट्री एण्ड पोएटिक डिक्शन' पृ० ४

गुण हो तो सम्भव है कि वह लोकप्रिय होगी

१—कविता मे साधारण लोगो की अवस्था, विचार और मनोविकारो का वर्णन हो।

२—उसमे धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणो के उदाहरण रहे।

३—कल्पना सूक्ष्म और उपमादिक अलकारो से गूढ न हो।

४—भाषा सहज, स्वाभाविक और मनोहर हो।

५—छन्द सीधा, परिचित, सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो।"[1]

इन तत्वो का विवेचन करते हुए लेखक के मस्तिष्क मे वर्ड्सवर्थ द्वारा प्रतिपादित काव्य-सिद्धान्त अवश्य रहे होगे, इस प्रकार का साम्य अपने आप हो गया नही प्रतीत होता।

इस निबन्ध मे नवीन कवियो को, काव्य के जिन शास्त्रीय गुणो का परित्याग कर देने की शिक्षा दी गई है, उनकी विवेचना इस प्रकार है

" अलकार और रस विवेचन के झगडो से जटिल ग्रथो के बनाने की हम कोई आवश्यकता नही देखते। हेला भाव का लक्षण और उसका चित्र देखने से क्या लाभ, अथवा दीपक अलकार के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भेदो के जानने का क्या उपयोग! हिन्दी मे ऐसे कितने काव्य है जिनमे यह सभी भेद पाये जाते है। हमारी अल्प बुद्धि के अनुसार 'रस कुसुमाकर' और 'जसवन्त जसो' ? भूषण' के समान ग्रन्थो की इस समय आवश्यकता नही।"[2]

नायिका-भेद के सम्बन्ध मे, जो अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी-काव्य का प्रमुख विषय हो गया था, लेखक का कथन था

"यमुना के किनारे केलि-कौतूहल का वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओ पर प्रबन्ध लिखने की अब आवश्यकता है और न स्वकीयाओ के गतागत की पहेली बुझाने की।"[3]

लेखक ने हिन्दी कवियो को काव्य-रचनाओ के जो नवीन विषय बताये थे, वे इस प्रकार हैं

"चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्ताकाश, अनन्तपर्वत सभी पर कविता हो सकती है, सभी

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी 'रसज्ञ रञ्जन' 'कवि कर्तव्य, पृ० १६

२ वही, पृ० १२

३ वही, पृ० ११

से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरंजन हो सकता है ।"[1]

भारतीय भाषाओ मे नीति सम्बन्धी साहित्य प्रचुर मात्रा मे मिलता है । यह भावना या तो कथा-सूत्र के माध्यम से प्रकट की गई है अथवा जीवन की आदर्शवादी भावना के साथ अभिव्यक्त हुई है । किंतु ऊपर के अवतरण मे उसकी जिस रूप मे आवश्यकता बताई गई है, उस पर, पद्य रूप मे लिखे गये अंग्रेजी कवि पोप के 'मॉरल एसेज' का प्रभाव प्रतीत होता है ।

इन नवीन तत्वो के अतिरिक्त इस लेख के लेखक ने हिन्दी कविता मे कुछ और नवीनताओ का समावेश करने का प्रयत्न किया था । उसने अपने निबन्ध को चार भागो मे विभक्त किया था । प्रथम भाग मे उसने छन्द के विषय मे अपने विचार प्रस्तुत किये थे, द्वितीय मे भाषा के सम्बन्ध मे, तृतीय मे अर्थ के विषय मे, और चतुर्थ मे काव्य के विषय-वस्तु के सम्बन्ध मे । छन्द सम्बन्धी विवेचना करते हुए उसने हिन्दी मे अतुकात छन्द के प्रारम्भ के विषय मे बडे सबल तर्क प्रस्तुत किये थे

"अनुप्रास और यमक आदि शब्दाडम्बर कविता के आधार नही, जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जाय या उसे कोई अपरिमेय हानि पहुचे । कविता का अच्छा और बुरा होना विशेषत अच्छे अर्थ और रस-बाहुल्य पर अवलम्बित है । परन्तु अनुप्रासो के ढूंढने का प्रयास उठाने मे समुचित शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है, तथा जिससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है । अनुप्रासो का विचार न करने से कविता लिखने मे सुगमता भी होती है और मनोभिलषित अर्थ व्यक्त करने मे विशेष कठिनाई भी नही पडती । अतएव पादान्त मे अनुप्रास हीन छन्द हिन्दी मे लिखे जाने की बडी आवश्यकता है ।"[2]

काव्य रचना मे प्रयोग मे आने वाली भाषा के सम्बन्ध मे लेखक का विचार था

"गद्य और पद्य की भाषा पृथक-पृथक न होनी चाहिये ।"[3]

काव्य रचनाओ मे अर्थ को लेखक ने प्राथमिक महत्व प्रदान किया था और इसके लिए वैयक्तिकता के तत्व पर विशेष बल दिया था

"अर्थ सौरस्य ही कविता का जीव है । · कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिये । ·· · प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्त करण में यह दृढ सस्कार होना चाहिये कि वर्ण्यमान नदी, पर्वत अथवा वन के समुख वह स्वय उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है । जब कवि

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी 'रसज्ञ रञ्जन 'कवि कर्त्तव्य' पृ० ११

२—वही, पृ० ४-५

३—वही, पृ० ७

की आत्मा का वर्ण्य विषयो से इस प्रकार का निकट सम्बन्ध हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता पढ कर पढने वालो के हृदयो म तद्वत भावनाएँ उत्पन्न होती है।"[१]
काव्य की विषय-वस्तु के सम्बन्ध मे लेखक का मत पहले ही प्रस्तुत किया जा चुका है, कि वे जन साधारण की जीवन धारा से लिए जाने चाहिएँ।

ये सभी विचार बडी सरलता के साथ वर्ड्सवर्थ के 'लिरिकल बैलड्स' की भूमिका से लिये गये दिखाये जा सकते हैं। 'कवि कर्त्तव्य' मे काव्य का जो आदर्श प्रस्तुत किया गया है, वह भी, इसी भूमिका से लिया गया प्रतीत होता है। वर्ड्सवर्थ का विचार था

" All good poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings "[२]

हिन्दी मे यही भाव इस प्रकार प्रकट किया गया है

"कविता करने मे अलकारो को बलात लाने का प्रयत्न न करना चाहिये। विषय वर्णन के झोक मे जो कुछ मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिये।"[३]

यदि हिन्दी कविता ने इन सभी नवीन तत्वो को स्वीकार कर लिया होता तो उसमे क्रातिकारी परिवर्तन हो जाता, किन्तु, क्योकि वह शताब्दियो से रूढियो के साथ आवद्ध रही थी, इसलिए उसने इन्हे अपनाने मे असमर्थता अनुभव की। महावीर प्रसाद द्विवेदी की सहानुभूति यद्यपि इन नवीन तत्वो के साथ पूर्णत थी, फिर भी इस असमर्थता को देख कर उन्हे एक बीच का मार्ग खोजना पडा, इस मध्यममार्ग म भी अग्रेजी प्रभाव देखने को मिलता है। इस मार्ग का स्पष्टीकरण, द्विवेदी जी ने अपने 'कवि और कविता' शीर्षक निबन्ध मे किया था, जिसम एक स्थान पर उन्होन मिल्टन की काव्य परिभाषा का उल्लेख किया है

"अग्रेजी के प्रसिद्ध कवि मिल्टन ने कविता मे तीन गुण वर्णन किये है। उनकी राय है कि कविता सादी हो, जोश से भरी हुई हो और असलियत से गिरी हुई न हो।"[४]

---

१ महावीर प्रसाद द्विवेदी, 'रसज्ञरञ्जन' 'कवि कर्त्तव्य', पृ० ८-९

२—'इगलिश क्रिटिक्स एसेज' (उन्नीसवीं शताब्दी) 'वर्ड्सवर्थ 'पोएट्री एण्ड पोएटिक डिक्शन', पृ० ५

३- महावीर प्रसाद द्विवेदी 'रसज्ञरञ्जन' 'कवि कर्त्तव्य', पृ० ९

४—वही, 'कवि और कविता' पृ० ४७। मिल्टन की दी हुई काव्य-परिभाषा इस प्रकार है 'Poetry should be simple, sensuous and full of spirits'

आगे चलकर उन्होने हिन्दी कविता के लिए इन्ही तीनो तत्वो का ग्रहण आवश्यक बताया है।

कुछ समय तक मैथिलीशरण गुप्त, कामता प्रसाद गुरू तथा कुछ अन्य, कवि द्विवेदी जी द्वारा प्रतिपादित इन काव्य सिद्धातो को लेकर ही काव्य रचनाएँ लिखते रहे, और फिर बनारस से सन् १६०६ मे, 'इन्दु' नामक पत्रिका के प्रकाशन के साथ, हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे स्वच्छन्दतावादी विद्रोह की धारा बडे प्रबल वेग से बह चली। इस नवीन आन्दोलन का घोषणा-पत्र, इस पत्रिका के प्रथम अक मे ही, इस प्रकार देखा जा सकता है

"साहित्य का कोई लक्ष्य विशेष नही होता है और उसके लिए विधि का कोई निबन्धन नही है, क्योकि साहित्य स्वतन्त्र प्रकृति सर्वतोगामी प्रतिभा का परिणाम है, यह किसी की परतन्त्रता को सहन नही कर सकता, ससार मे जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य का विषय है। साहित्य केवल सत्य और सौन्दर्य की चर्चा करके सत्य को प्रतिष्ठित और सौन्दर्य को पूर्ण रूप से विकसित करता है। आनदमय हृदय के अनुशीलन मे और स्वतन्त्र आलोचना मे उसकी सत्ता देखी जाती है।"[1]
यह केवल हिन्दी कविता के ही क्षेत्र मे नही वरन् हिन्दी साहित्य के विभिन्न रूपो मे, स्वच्छन्दतावादी तत्वो के ग्रहण का आग्रह था।

स्वच्छन्दतावाद के इस आग्रह को सर्वप्रथम जयशकर प्रसाद (१८८६-१६३७) ने स्वीकार किया था। सम्भव है, यह घोषणा-पत्र भी उन्होने ही लिखा हो, क्योकि 'इन्दु' पत्रिका के प्रकाशन से वे प्रारम्भ से ही सम्बन्धित रहे थे। इस पत्रिका के आगे के एक अक मे 'कवि और कविता' शीर्षक एक निबन्ध है, जिसमे यह स्पष्ट किया गया है कि नवीन काव्य रचनाएँ किस प्रकार की होनी चाहिएँ

"अधिकाश महाशय कविता का मर्म समझाने की बात तो दूर है, उस पर ध्यान भी नही देते। यह क्यो, छन्द विषयक अरुचि है · इसका कारण यह है कि सामयिक पाश्चात्य शिक्षा का अनुकरण करके जो समाज के भाव बदल रहे हैं उनके अनुकूल कविता नही मिलती और पुरानी को पढना तो महाद्वेष सा प्रतीत होता है, क्योकि इस ढग की कविता बहुतायत से हो गई है। ·

शृगार रस की मधुरता पान करते-करते आपकी मनोवृत्तिया शिथिल हो गई हैं इस कारण अब आपको भावमयी, उत्तेजनामयी, अपने को भुला देने वाली कविताओ की आवश्यकता है। अस्तु धीरे-धीरे जातीय सगीतमयी वृत्तिस्फुरणकारिणी, आलस्य

१—'इन्दु', कला १, किरण १

को भग करने वाली, धीर गभीर पद विक्षेप कारिणी, शातिमयी कविता की ओर हम लोगो को अग्रसर होना चाहिये। अब दूर नही है, सरस्वती अपनी मलीनता का त्याग कर रही है, और प्रबल रूप धारण करके प्रभातिक ऊषा को भी लजावेगी, एक बार वीणाधारिणी अपनी वीणा को पचम स्वर मे ललकारेगी, भारत की भारती फिर भी भारत की ही होगी।"[1]

इस अवतरण की भावधारा का निकट से अध्ययन करने से, यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस परिवर्तन की आवश्यकता, अंग्रेजी प्रभाव, जिसे यहा पाश्चात्य प्रभाव कहा गया है, के प्रसार से हुई थी। अत मे इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि इस प्रयत्न का परिणाम विदेशी तत्वो को ग्रहण कर लेने पर भी पूर्णत भारतीय ही होगा। अतिम अश को पढते हुए यह प्रतीत होता है, जैसे कि लेखक किसी आलोचक द्वारा हिन्दी कविता मे नवीन तत्वो को देखकर लगाये गये इस आरोप का उत्तर दे रहा हो, कि यह सब तो विदेशो का अनुकरण मात्र है और इसलिये ग्राह्य भी नही है।

हिन्दी काव्य जगत मे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के दर्शन, सर्वप्रथम जयशङ्कर प्रसाद की रचनाओ मे होने प्रारम्भ हुए। इसके अनन्तर मुकुटधर पाण्डेय, इस नवीन आन्दोलन मे सम्मिलित हुए। सन् १९२० के लगभग इस नवीन वाद को लेकर चलने वाले दो प्रमुख कवि सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' तथा सुमित्रानन्दन पत की रचनाएँ भी पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने लगी थी। वे नवीन तत्व, जो ये कवि हिन्दी काव्य जगत मे अपने साथ लाये थे, काव्य की बाह्य रूप-रेखा मे तो मुक्त-छन्द और गीतिकाव्य थे, और अन्तर्धारा मे कल्पना का विशेष रूप से उपयोग, हृदय की वास्तविक भावनाओ की अभिव्यक्ति तथा प्रकृति के प्रति स्नेह की भावना थे। इस प्रकार हिन्दी कविता ने, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे, अपने को पूर्णत बदल दिया था। उसने अपने मध्ययुगीन आवरण का परित्याग कर दिया था, और नये रूप तथा नव-युग की भावना से अनुप्राणित हो गई थी।

४—नाटक

शताब्दियो के व्यवधान के अनन्तर, भारतवर्ष की नाटकीय परम्परा का पुनर्जागरण, अंग्रेजी प्रभाव के सबसे अधिक महत्वपूर्ण योगदानो मे से एक है। जिस प्रकार यूरोप मे ईसाई धर्म के प्रचार ने इस साहित्यिक रूप के विकास की गति को अवरुद्ध कर दिया था, उसी प्रकार भारतवर्ष मे मध्य युग मे इस्लाम धर्म के प्रचार से हमारी नाटकीय परम्परा का विकास बाधित हो गया था। सस्कृत साहित्य में नाटको तथा

1—'इन्दु', कला २, किरण १

नाट्य-शास्त्र के ग्रन्थो, दोनो की ही सख्या बहुत अधिक है, किन्तु हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप का विकास नही हो सका था, क्योंकि इस्लाम का धार्मिक दृष्टिकोण इस साहित्यिक रूप का विरोधी था। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व की, जितनी नाटकीय रचनाएँ कही जाती है, जैसे केशवदास कृत 'विज्ञान गीता', निवाजकवि कृत 'शकुन्तला नाटक' आदि, वे केवल नाम मात्र के लिए ही नाटक हैं। नाटकीय रचनाओ की अन्य विशेषताओ के सम्बन्ध मे क्या कहा जाय, उनमे तो नाटक की बाहरी रूप-रेखा, अक, दृश्य आदि भी नही हैं। केवल रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द रघुनन्दन नाटक' मे, नाटकीय रूप की कुछ विशेषताएँ अवश्य मिलती हैं, किन्तु उसमें भारतवर्ष की महान नाटकीय परम्परा का निर्वाह नही है, वह अत्यन्त साधारण कोटि की रचना है।

हिन्दी मे नाटकीय साहित्य का विकास वास्तव मे अंग्रेजी प्रभाव के हिन्दी साहित्य पर कार्य करने के अनन्तर ही हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'नाटक' (१८८३) निवन्ध की निम्नलिखित पक्तियो से इस तथ्य को पुष्टि होती है

"विशुद्ध नाटक रीति से पात्र प्रवेशादि नियम रक्षण द्वारा भाषा का प्रथम नाटक मेरे पिता पूज्य चरण श्री कविवर गिरधर दास, वास्तविक नाम बाबू गोपालचन्द जी का है।··· · · मेरे पिता ने विना अंग्रेजी शिक्षा पाये इधर क्यो दृष्टि दी, यह बात आश्चर्य की नही, उनके सब विचार परिष्कृत थे। ·· उनको वर्तमान समय का स्वरूप भली प्रकार विदित था।"[1]

इस उद्धरण मे जिस नाटकीय रचना की ओर सकेत किया गया है, उसका नाम 'नहुप' है और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गोपाल चन्द जी ने उसे लिखा था।

यह हिन्दी भाषा मे अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप किन्तु विना अंग्रेजी के नाटकीय साहित्य के परिचय के ही, नाटकीय रूप का प्रथम प्रयास था। अंग्रेजी के नाटकीय साहित्य के सम्पर्क ने हिन्दी नाटको के विकास मे और भी योग दिया। अंग्रेजी नाटको का प्रभाव हमे सर्व प्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ मे देखने को मिलता है। उनके 'नाटक निवन्ध से यह स्पष्ट हो जाता है, कि उन्होने सस्कृत नाट्य-शास्त्र का भी भली प्रकार अध्ययन किया था, किन्तु उसके सम्बन्ध में उनका विचार था कि उसकी समस्त विशेषताएँ हिन्दी नाटको के लिए ग्राह्य नही थी। उनका अपना दृष्टिकोण था

"जिस समय मे जैसे सहृदय जन ग्रहण करे और देशी रीति नीति का प्रभाव जिस तरह से चलता रहे, उस समय मे उक्त सहृदयगण के अन्त करण की वृत्ति और सामा-

---

१ - श्यामसुन्दर दास सम्पादित 'भारतेन्दु नाटकावली', परिशिष्ट, पृ० ८३७

जिक रीति पद्धति इन दोनो विषयो की समीचीन समालोचना करके नाटकादि दृश्य-काव्य, प्रणयन करना योग्य है।"[1]

इसीलिए उनका विचार था "वर्तमान समय मे इस काल के कवि तथा सामाजिक लोगो की रुचि उस काल की अपेक्षा अनेकाश मे विलक्षण है, इससे सम्प्रति प्राचीन मत का अवलम्बन करके नाटक आदि दृश्य-काव्य लिखना युक्ति सगत नही बोध होता।"[2]

फिर भी उनका यह मत नही था कि सभी पुराने नियम छोड दिये जायँ। उनका विचार था कि जो नियम आधुनिक युग की भावधारा के अनुसार हो उन्हे ग्रहण कर लिया जाय। उनके विचार से सस्कृत नाटक की निम्नलिखित प्रवृत्तिया हिन्दी नाटको के अनुकूल नही थी

'अब नाटकादि दृश्य-काव्य मे अस्वाभाविक सामग्री परिपोषक काव्य सहृदय सभ्य मडली को नितात अरुचिकर है, इसलिए स्वाभाविक रचना ही इस काल के सभ्यगण की हृदय ग्राहिणी है, इससे अब अलौकिक विषय का आश्रय करके नाटकादि दृश्य-काव्य प्रणयन करना उचित नही है। अब नाटक मे कही आशी प्रभृति नाट्याlलकार, कही प्रकरी, कही विलोभन, कही सम्फेट, पच सन्धि व ऐसे ही अन्य विषयो की कोई आवश्यकता नही रही।"[3]

इन पक्तियो मे भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र जी ने सस्कृत नाटक की कुछ विशेषताओ तथा जटिलताओ, विशेष रूप से उसके लोकोत्तर तत्व के परित्याग के लिए कहा है। हिन्दी नाटक इसीलिए प्रारम्भ से ही जीवन का यथार्थवादी चित्रण करते हुए सामाजिक जीवनधारा के अधिक सन्निकट रहा है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने इस निबन्ध मे अग्रेजी प्रभाव के साथ हिन्दी नाटक मे जो विदेशी तत्व आ रहे थे, उनका भी उल्लेख किया है। नाटको के विभिन्न प्रकारों की विवेचना करते हुए, उसके नवीन प्रकारो के वर्णन मे उन्होने लिखा था

"आजकल योरप के नाटको की छाया पर जो नाटक लिखे जाते है वह सब नवीन भेद मे परिगणित हैं। प्राचीन की अपेक्षा नवीन की परम मुख्यता बारम्बार दृश्यो के बदलने मे है और इसी हेतु एक-एक अक मे अनेक अनेक गर्भाको की कल्पना की जाती है, क्योकि इस समय मे नाटको के खेलो के साथ विविध दृश्यों का दिखलाना भी आवश्यक समझा गया है। इन अक और गर्भाको की कल्पना यो होनी चाहिए,

१—श्यामसुन्दर दास सपादित 'भारतेन्दु नाटकावली', पृ० ७९९

२—वही पृ० ७९८

३—वही, पृ० ७९९

यथा पाच वर्ष के आख्यान का एक नाटक है तो उसमे वर्ष-वर्ष के इतिहास के एक-एक अ क और उस अ क के अत पाती विशेप-विशेप समयोके वरणन का एक-एक गर्भाक । अथवा पाच मुग्य घटना विशिष्ट कोई नाटक है तो प्रत्येक घटना के सम्पूर्ण वणन का एक-एक अ क और भिन्न भिन्न स्थ नो मे विशेप घटनान्न पाती छोटी २ घटनाओ के वणन मे एक-एक गर्भाक । ये नवीन नाटक मुख्य दो भेदो मे बटे हे - एक नाटक, दूसरा गीति-रूपक, जिनमे कथा भाग विशेष और गीति न्यून हो वह नाटक, और जिसमे गीति विशेप हो, वह गीति-रूपक । यह दोनो कथा के स्वभाव मे अनेक प्रकार के हो जाते है, किन्तु उनके मुग्य भेद इतने किये जा सकते है १ ' सयोगात ' अर्थात् प्राचीन नाटको की भाति जिसकी कथा सयोग पर समाप्त हो । २ वियोगात ' जिसकी कथा अन्त मे नायिका या नायक के मरण वा और किसी आपद घटना पर समाप्त हो । ' ३ मिश्र अर्थात् जिसके अन्त मे कुछ लोगो का नो प्राणवियोग हो और कुछ सुख पावे ।"[1]

इस अवतरण मे नवीन नाटको के तीन मुग्य तत्वो की ओर सकेत किया गया है (१) एक अ क मे कई दृश्यो की कल्पना, जिन्हे यहा पर गर्भा क कहा गया है, (२) अभिव्यञ्जना की शैली के आधार पर नाटको के दो भेद—नाटक तथा गीति-रूपक, (३) कथा-सूत्र के आधार पर नाटको के तीन भेद—सयोगात, वियोगात तथा मिश्र, जो कि अग्रेजी के तीन भेदो-कॉमेडी, ट्रेजेडी तथा ट्रेजीकॉमेडी के हिन्दी रूपातर मात्र है । ऊपर के अवतरण मे पाश्चात्य नाटको के सकलन-त्रय के सिद्धान्त का भी अस्पष्ट सा उल्लेख है ।

इन नाटको की रचना जिन उद्देश्यो की पूर्ति के लिए की जाती थी, वे निम्नलिखित थे (१) शृगारिक भावना को जागरूक करना, (२) हास्य के प्रसगो की अवतारणा करके उनके माध्यम से मनोरञ्जन करना, (३) कुछ विचित्र परिस्थिति उत्पन्न करके उसके द्वारा कौतुक अथवा कौतूहल की वृत्ति को जगाना, (४) समाज-सस्कार की भावना को जगाना, तथा (५) देशवत्सलता की भावना उत्पन्न करना । इनमे से अ तिम दो तो निश्चित रूप से अग्रेजी प्रभाव से लिये गये कहे जा सकते है ।

सस्कृत के नाटक-साहित्य मे यद्यपि नाटकीय रूप के भेदो की सख्या बहुत अधिक है, कि तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की दी हुई परिभाषा के आधार पर, वे सभी, एक ही प्रकार, सयोगात (Comedy) के भीतर आ जाते है, क्योकि उन सभी का अन्त सुख की भावना से ही होता है । सस्कृत साहित्य मे विशुद्ध दुखान्तकी नाटक कोई नही

१—श्यामसुन्दर दास सपादित 'भारतेन्दु नाटकावली', परिशिष्ट, पृ० ७९५-९६

है। संस्कृत नाटक मे नायक सर्वोत्तम गुणो से युक्त होता है और अपने इसी रूप मे वह कथा-सूत्र को लेकर सत्य, न्याय, ईमानदारी तथा औचित्य के प्रतिपादक के रूप मे अपनी प्रतिष्ठा करता है। इस प्रकार के चरित्र के पतन का तात्पर्य होता है, उन सद्गुणो का पतन, जिनकी सामाजिक जीवन के स्वस्थ निर्माण के लिए परम आवश्यकता है। संस्कृत के नाटककारो ने, दु खान्त को नायक की पराजय का संकेतक समझ कर कभी प्रस्तुत ही नही किया था। संस्कृत नाटको मे हम देखते है कि नायक महान से महान दुर्घटना होने पर भी शान्त तथा स्थिर बुद्धि का बना रहता है, और अपने महान उद्देश्य पर निरन्तर दृढ रहते हुए, मनुष्य मे जो कुछ भी सर्वोत्तम है, उसका दिव्य-संदेश समाज को देता रहता है। इसी आदर्श का अनुसरण करने के कारण संस्कृत के नाटककारो ने दु खान्त रचना लिखने का प्रयास ही नही किया।

इसी कारण से तो हिन्दी मे दु खान्त नाटको की रचना मे, पर्याप्त समय लगा। अंग्रेजी प्रभाव के प्रारम्भ से ही यद्यपि श्रीनिवास दास की 'रणधीर प्रेम मोहिनी' (१८७८) तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'भारत दुर्दशा' (१८८०) नाम की दुखान्त रचनाए प्रकाशित होने लगी थी, तथापि इस साहित्यिक रूप के लोक-प्रिय होने मे विशेष समय लगा था। महावीर प्रसाद द्विवेदी जी को भी, अपने बहुत बाद को लिखे गये 'नाट्यशास्त्र' (१९१२) नामक ग्रन्थ मे, हिन्दी लेखको से दु खान्त नाट्य-पद्धति अपनाने के लिए कहना पडा था

"वियोगांत अथवा दु खांत नाटको का क्यो अभाव होना चाहिए इसका कोई स्पष्ट कारण नही देख पडता। दृश्य-काव्य का अभिप्राय मनुष्य-चरित्र को अभिनय द्वारा दिखलाना ही है। मनुष्य को सुख भी होता है और दु ख भी होता है। दुराचारियो के कर्मो का फल प्राय दु खमय ही हुआ करता है। अतएव यदि ऐसो का चरित्र दृश्य-काव्य रूप मे दिखलाया जाय तो उसका अन्त दुखद होना ही चाहिए। अतएव दु खान्त या वियोगान्त नाटक लिखना हमारी समझ मे अनुचित नही है।"[1]

इन पंक्तियो का तर्क बड़ा सही है नाटकीय रचनाओ का उद्देश्य जब जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना है, और जीवन मे सुख और दु ख दोनो ही प्रकार की परिस्थितिया आती हैं, तो दु खान्त कथा-सूत्र का उपयोग करके भी नाटकीय रचनाए लिखी जा सकती हैं।

इस प्रकार के प्रयत्नो के अतिरिक्त पाश्चात्य नाटककारो, विशेष रूप से शेक्सपियर की रचनाओ के अध्ययन से हिन्दी लेखको की रुचि दु खान्त नाटक लिखने की ओर

१—महावीर प्रसाद द्विवेदी · 'नाट्य शास्त्र' (१९१२), पृ० ४१

उन्मुख हुई। अंग्रेजी के नाटककार धीरे-धीरे लोकप्रिय होने जा रहे थे। श्रीनिवास दास ने, अपने 'परीक्षा गुरु' उपन्यास मे, शेक्सपियर तथा वेन जॉन्सन के नाटको का कई स्थानो पर उल्लेख किया है। इसी प्रकार के उल्लेख अन्य रचनाओ मे भी प्राप्त होते है। अंग्रेजी के नाटक, धीरे-धीरे अनुवादित रूप मे भी, हिन्दी लेखको के सामने आने लगे थे। हिन्दी मे अनुवादित होने वाला सर्व प्रथम अंग्रेजी नाटक एडीसन का 'केटो' था। अलीगढ के बाबू तोता राम ने, उसका अनुवाद सन् १८७७ मे, 'केटो कृतांत' नाम देकर प्रकाशित कराया था। यह भी एक दु खान्त रचना थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी, शेक्सपियर के नाटक 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' के अपने मित्र द्वारा किये हुए हिन्दी रुपातर, 'दुर्लभ वन्धु' का सशोधन करके सन् १८८० मे प्रकाशित कराया था। इसके अनन्तर अवधवासी लाला सीता राम ने शेक्सपियर के पन्द्रह नाटको के हिन्दी रूपातर प्रकाशित किये। हास्य रस के प्रसिद्ध लेखक जी० पी० श्रीवास्तव ने भी अपने प्रारम्भिक लेखन-काल मे फास के प्रसिद्ध नाटककार मोलियर के कुछ नाटको के रूपातर किये थे। कुछ अंग्रेजी नाटको के अनुवाद फारसी नाटक कम्पनियो द्वारा भी प्रस्तुत किये गये थे। शिक्षा सस्थाओ के पाठ्यक्रमो मे भी अंग्रेजी के नाटककारो-शेक्सपियर, मिल्टन, शेरिडन, गोल्डस्मिथ आदि को स्थान दिया गया था। हिन्दी के लेखको का सम्पर्क इन सभी माध्यमो से अंग्रेजी नाटककारो के साथ बडा घनिष्ठ हो गया था। इसी सम्पर्क के फलस्वरूप उन्होने, नाटको के स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त से परिचय प्राप्त किया, तथा आचार-प्रधान सुखान्तकी (Comedy of Manners) और इसी प्रकार के कुछ अन्य नाटकीय रूपो को अपनाया। अंग्रेजी नाटको के प्रभाव से ही हिन्दी नाटको मे सघर्ष को प्रधान तत्व के रूप मे माना जाने लगा, और सस्कृत नाट्यशास्त्र के अनुसार आत्महत्या, वध, युद्ध आदि के वर्जित दृश्य भी, हिन्दी नाटको मे प्रस्तुत किये जाने लगे।

५—उपन्यास

हिन्दी साहित्य के लिए उपन्यास एक नवीन साहित्यिक रूप था। इशा अल्ला खा की 'रानी केतकी की कहानी' (१८००-१८०३), जो हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप की सर्व प्रथम रचना मानी जाती है, वास्तव मे उपन्यास नही है, क्योकि उसमे जीवन के विभिन्न पक्षो का उस प्रकार का व्यापक चित्रण नही है, जैसा इस साहित्यिक रूप के लिए परमावश्यक है। हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप का अभाव सर्वप्रथम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को प्रतीत हुआ था, और इस सम्बन्ध मे उन्होने अपने अमृतसर के एक मित्र प० सतोषसिंह को लिखा था

"जैसे भाषा मे अब तक कुछ नाटक बन गये है, अब तक उपन्यास नही बने है।

आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी सम्पादक जैसे बाबू काशीनाथ व गोस्वामी राधाचरण जी कोई भी उपन्यास लिखें तो उत्तम होगा।"[1] किन्तु उनके इस प्रकार लिखने का कुछ भी परिणाम न हुआ। इन पंक्तियों में उल्लिखित तीनों व्यक्तियों मतोपसिंह, काशीनाथ तथा राधा चरण गोस्वामी में से किसी ने भी, इस नवीन साहित्यिक रूप की रचना नहीं प्रस्तुत की, और तब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को स्वयं यह कार्य अपने हाथों में लेना पड़ा।

हिन्दी में प्रकाशित होने वाला प्रथम उपन्यास 'चन्द्र प्रभा और पूर्ण प्रकाश' (१८८०) था। वह एक मराठी उपन्यास का रूपान्तर था, जिसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने संशोधित करके प्रकाशित कराया था। उन्होंने अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' में 'कुछ आप बीती कुछ जग बीती' नाम का एक स्वलिखित उपन्यास प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था, किन्तु किसी कारणवश वह पूरा न हो सका। इसी प्रकार का एक प्रयत्न बालकृष्ण भट्ट ने भी अपनी पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप' में किया था, किन्तु वह भी असफल रहा। हिन्दी का सर्व प्रथम मौलिक उपन्यास श्रीनिवासदास (१८५०-८७) का 'परीक्षा गुरु' (१८८४) है।

अपनी इस रचना को प्रस्तुत करते हुए लेखक को यह भान था कि वह हिन्दी में एक नवीन साहित्यिक रूप का सूत्रपात कर रहा है, इसीलिए उस नवीन साहित्यिक रूप को स्पष्ट करने के लिए उसने भूमिका में लिखा था

"अब तक नागरी और उर्दू भाषा में अनेक तरह की अच्छी अच्छी पुस्तकें तैयार हो चुकी हैं, परन्तु मेरे जान इस रीति से कोई नहीं लिखी गई, इसीलिए अपनी भाषा में यह नई चाल की पुस्तक होगी ..

यह सच है कि नई चाल की चीज को देखने को सब का जी ललचाता है परन्तु पुरानी रीति के मन में समाये रहने और नई रीति को मन लगाकर समझने में थोड़ी मेहनत होने से पहले पहल पढ़ने वालों का जी कुछ उलझने लगता है और मन उचट जाता है इससे उसका हाल समझ में आने के लिए मैं अपनी तरफ से कुछ खुलासा किया चाहता हूँ।

पहले तो पढ़ने वाले इस पुस्तक में सौदागर की दूकान का हाल पढ़के घबरावेंगे क्योंकि अपनी भाषा में जो अब तक वार्ता रूपी पुस्तकें लिखी गई हैं उनमें अक्सर नायक नायिका वगैरा का हाल ठेठ से सिलसिलेवार यथाक्रम लिखा गया है जैसे कोई राजा बादशाह, सेठ, साहूकार का लड़का था उसके मन में इस बात से यह रुचि हुई

---

१ डॉ० रामविलास शर्मा 'भारतेन्दु युग', पृ० ६३

और उसका यह परिणाम निकला ऐसा सिलसिला इसमे कुछ भी नही मालूम होता। लाला मदन मोहन एक अंग्रेजी सौदागर की दूकान मे अस्वाव देख रहे है, लाला ब्रज किशोर, मुन्शी चुन्नी लाल और मास्टर शिभूदयाल उनके साथ है। इनमे मदन मोहन कौन, ब्रजकिशोर कौन, चुन्नी लाल कौन और शिभूदयाल कौन हैं इनका स्वभाव कैसा है' परस्पर सम्बन्ध कैसा है हरेक की क्या हालत है यहा इस समय किस लिए इकट्ठे हुये है। यह वाते पहले से कुछ भी नही वताई गई। हाँ पढने वाले धैर्य से सव पुस्तक पढ लेगे तो अपने अपने मौके पे सव भेद खुल्ता जायगा और आदि से अन्त तक सव मेल मिल जायगा परन्तु जो साहव इतना धैर्य न रक्खेगे वह इसका मतलव भी नही समझ सकेगे।"[1]

इन पंक्तियो मे तीन मुख्य बातो पर बल दिया गया है (१) यह हिन्दी साहित्य मे एक नए रूप का प्रयोग है, (२) इसका प्रारम्भ यथार्थवादी है, तथा (३) इसके चरित्र, कथानक एव अन्य तत्व, कहानी आगे वढने के साथ खुलते जायेंगे।

हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ तो इस प्रकार हो गया, किन्तु कुछ वर्षो तक 'परीक्षा गुरु' द्वारा प्रस्तुत किये गये उदाहरण का अनुसरण नही हुआ। हिन्दी उपन्यास ने अपने विकास का दूसरा मार्ग ग्रहण कर लिया। श्रीनिवास दास स्वय भी इस क्षेत्र मे अन्य कोई प्रयोग प्रस्तुत नही कर सके, क्योकि उनका जल्दी ही सन् १८८७ मे देहान्त हो गया। उनके अनन्तर उपन्यास लेखन का कार्य देवकीनन्दन खत्री (१८६१-१९१३) ने लिया। उनका सर्व प्रथम उपन्यास 'चन्द्रकाता' (१८९१) था। उसके अनन्तर 'चन्द्रकाता सतति, 'भूतनाथ' आदि प्रकाशित हुए। उन्होने हिन्दी को तिलस्मी उपन्यास प्रदान किये। तिलस्म की व्याख्या चन्द्रकाता की भूमिका मे उन्होने इस प्रकार की थी

"आज हिन्दी के वहुत से उपन्यास हुए हैं जिनमे कई तरह की वाते व राजनीति लिखी गई है, राज दरवार के तरीके के सामान भी जाहिर किये गये है, मगर राज दरवारो मे ऐयार, चालाक, भी नौकर हुआ करते थे जो कि हरफन मौला याने सूरत वदलना, वहुत सी दवाओ का जानना, गाना, वजाना, दौडना, शस्त्र चलाना, जासूसो का काम देना वगैरह वहुत सी वातें जाना करते थे। जव राजाओ मे लडाई होती थी तव ये लोग अपनी चालाकी से विना खून गिराये वो पल्टनो की जाने गवाये लडाई खतम कर देते थे। इन लोगो की वडी कदर की जाती थी। इन्ही ऐयारी पेशे मे आजकल वहुरुपिये दिखलाई देते है। वे सव गुण तो इन लोगो मे रहे

---

१ श्रीनिवासदास 'परीक्षा गुरु', भूमिका, पृ० १—२

नही, सिर्फ शक्ल बदलना रह गया, वह भी किसी काम का नही। इन ऐयारो का बयान हिन्दी किताबो मे अभी तक मेरी नजरो से नही गुजरा। अगर हिन्दी पढने वाले भी इस मजे को देखलें तो कई बातो का फायदा हो। सबसे ज्यादा तो यह है कि ऐसी किताबो का पढने वाला जल्दी किसी के घोखे मे न पडेगा। इन सब बातो का ख्याल करके मैंने यह चन्द्रकाता नामक उपन्यास लिखा है।"[1]

यह तिलस्मी तत्व हिन्दी उपन्यासो मे सामान्यत फारसी साहित्य से आया हुआ कहा जाता है, किन्तु उसका कुछ अश सस्कृत के कथा साहित्य से भी ग्रहण किया गया था। फारसी साहित्य का जो प्रभाव हिन्दी उपन्यासो पर आया है, वह सभी फारसी के माध्यम से नही है, उसका काफी अ श फारसी साहित्य के अ ग्रेजी अनुकरणो से भी होकर आया है विशेष रूप से जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनॉल्ड्स की रचनाओं के माध्यम से ग्रहीत है।

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे, किशोरी लाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) के आगमन से, एक नवीन युग का प्रारम्भ होता है। उन्होने अपनी रचनाओ के लिए सभी क्षेत्रो से सामग्री एकत्र करते हुए एक वास्तविक उपन्यासकार के रूप मे कार्य किया था। अपने एक उपन्यास 'अ गूठी का नगीना' की भूमिका मे उन्होने लिखा था:

" एक सज्जन हमारे यहा काशी मे पधारे और हमारे अतिथि हुए। ..... उन्होने अपने घराने की एक सच्ची और अस्सी वर्ष की पुरानी कहानी सुनाई और उस कहानी के आधार पर एक छोटा सा उपन्यास लिख देने का आग्रह किया। अपने उक्त सज्जन मित्र के ऐसे आग्रह को देख कर हमने उस कहानी का कन्टेन्ट्स तीन नोट फूल्सकेप मे लिख लिया और उसी नोट के आधार पर इस उपन्यास की रचना करनी प्रारम्भ की।'[2]

किशोरीलाल गोस्वामी के प्रयत्न के फलस्वरूप ही ऐतिहासिक, सामाजिक, पारिवारिक आदि उपन्यास के विभिन्न प्रकारो का विकास हुआ। रेनाल्डस के उपन्यासो का प्रभाव इनकी रचनाओ मे स्पष्ट देखा जा सकता है। उन्होने सन् १८९८ से 'उपन्यास' नाम की एक पत्रिका का भी प्रकाशन आरम्भ किया था। उनकी कई रचनाएँ सर्व प्रथम इसी पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी।

किशोरी लाल गोस्वामी के अनन्तर, हिन्दी उपन्यास क क्षेत्र मे, गोपाल राम गहमरी का नाम आता है। प्रारम्भ मे उन्होने देवकी नन्दन खत्री तथा किशोरी लाल गोस्वामी

१—देवकी नन्दन खत्री 'चन्द्रकाता', भूमिका

२—किशोरी लाल गोस्वामी 'अंगूठी का नगीना', भूमिका, पृ० १ तथा २

के मार्गो का ही अनुसरण किया, किन्तु आगे चल कर उन्होने अपने लिए एक नया मार्ग खोजा और हिन्दी मे जासूसी उपन्यास प्रस्तुत किये। इस प्रकार के उपन्यासो की अभिवृद्धि के लिए उन्होने 'जासूस' नाम की एक पत्रिका भी प्रकाशित की थी।

हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप के निर्माण मे इन प्रतिभाशाली व्यक्तियो का योगदान होते हुए भी, प्रस्तुत अध्ययन की अवधि (१८७०-१६२०) तक प्रकाशित होने वाले अधिकाश उपन्यास, बगला और कुछ अग्रेजी रचनाओ के रूपान्तर मात्र हैं। बगला से विशेष रूप से वकिमचन्द्र, रमेश चन्द्र दत्त तथा पचकौडी दे की रचनाएं प्रकाशित हुई थी। अग्रेजी उपन्यासकारो मे रेनॉल्डस की रचनाओ के अनुवाद सबसे अधिक हुए थे। प्रेमचन्द जी का प्रथम उपन्यास 'प्रेमा' सन् १६०५ मे प्रकाशित हुआ था, किन्तु उपन्यासकार के रूप मे उनका जीवन वास्तव मे 'सेवासदन' (१६१७) के प्रकाशन से आरम्भ हुआ। उनकी रचनाओ मे अग्रेजी प्रभाव प्रारम्भ से ही मिलता है।

६--कहानी

हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप का विकास वास्तव मे अग्रेजी प्रभाव के फल-स्वरूप ही हुआ है। इस क्षेत्र मे राजा शिवप्रसाद के प्रथम प्रयोग, 'राजा भोज का सपना' तथा 'स्टैन फोर्ड और मर्टन की कहानी' अग्रेजी के एक लेखक डु करकी रचनाओ पर आधारित कहे जाते है। इनके पश्चात् अन्य प्रयोग हमे 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे देखने को मिलते हैं। उसमे प्रकाशित होने वाली एक भूतो की कहानी 'मार्टिन वाल्डेक का भाग्य' निश्चित रूप से किसी अग्रेजी अथवा यूरोपीय जन-कथा का हिन्दी रूपान्तर है। इन प्रयोगो के कुछ ही वर्ष पश्चात् काशी नाथ खत्री ने, चार्ल्स तथा मैरी लैम्ब के 'टैल्स फ्रॉम शेक्सपियर' का अनुवाद, दो भागो मे 'शेक्सपियर के मनोहर नाटक' नाम से प्रकाशित किया। इस प्रकाशन ने हिंदी कहानी के विकास को वास्तविक प्रोत्साहन दिया।

ये सभी इस क्षेत्र मे प्रयोगमात्र थे, हिन्दी कहानी का विकास वास्तव मे सन् १६०१ से किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' के प्रकाशन से प्रारम्भ हुआ। इस कहानी का कथानक शेक्सपियर के नाटक 'टेम्पेस्ट' की कथा से बहुत मिलता हुआ है। इस रचना के अनन्तर 'सरस्वती' मे जो अन्य कहानिया प्रकाशित हुई थी, उनमे से कई कथानक अग्रेजी की कथा-मक रचनाओ, गोल्डस्मिथ के 'हरमिट', टेनिसन के 'एनॉक आर्डेन' लॉंगफ्लो की 'इवेंजेलाइन' आदि से बहुत मिलते जुलते है। 'सरस्वती' मे शेक्सपियर के कई नाटको की कहानिया भी, कहानी के रूप मे प्रकाशित हुई थी।

हिन्दी कहानी के साहित्यिक आदर्श का निर्माण इस प्रकार, अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हो जाने के अनन्तर, आगे हम उसे बगला के कथा साहित्य, पौराणिक गाथाओ, सस्कृत नाटको की कहानियो, जन गाथाओ तथा लेखक के अपने जीवन की अनुभूतियो से, अपने लिए एक नवीन मार्ग खोजते हुए पाते हैं। हिन्दी-प्रदेश के सामाजिक तथा राजनीतिक आन्दोलनो का भी हिन्दी कहानी के विकास मे पर्याप्त योग रहा है।

७—निबन्ध तथा आलोचना

नवीन हिन्दी कविता की भाति, हिन्दी निबन्ध का विकास भी, अपने प्रारम्भिक काल मे 'पेनी रीडिंग क्लब' नाम के एक नव-स्थापित साहित्यिक-केन्द्र से सम्बन्धित रहा था। इस साहित्यिक रूप का सर्व प्रथम प्रयोग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही प्रस्तुत किया था। 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे प्रकाशित लगभग सभी निबन्ध, सर्व प्रथम इस साहित्यिक-केन्द्र मे प्रस्तुत किये गये थे। अपने आगे के जीवन मे हिन्दी निबन्ध का विकास कुछ पत्र-पत्रिकाओ से सम्बन्धित रहा। बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) ने अपने निबन्ध स्व-सम्पादित 'हिन्दी प्रदीप' मे प्रकाशित किये थे, प्रताप नारायण मिश्र (१८५६-९४) ने 'ब्राह्मण' मे, तथा बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के 'आनन्द कादम्बिनी' तथा 'नागरी नीरद' मे। अपने प्रारम्भिक काल मे हिन्दी निबन्ध ने कल्पना-शक्ति को विशेष प्रश्रय दिया था। इस प्रकार के निबन्धो के उदाहरण 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे सन् १८७३ मे प्रकाशित 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' तथा 'कलिराज की सभा' हैं। आगे चल कर हिन्दी निबन्धकारो ने गम्भीर तथा जन-महत्व के विषयो पर विचार-विमर्श करना आरम्भ किया।

हिन्दी निबन्ध के प्रारम्भिक विकास मे अंग्रेजी निबन्ध का भी योग रहा था। श्यामसुन्दरदास जी ने अपनी आत्म-कहानी मे लिखा है, कि उन्होंने सन् १८९४ मे, अंग्रेजी के एक निबन्ध, 'एड्स ऑफ कन्टेन्टमेंट' के आधार पर, 'सतोष' शीर्षक एक निबन्ध लिखा था, और उसे बाकीपुर की किसी हिन्दी पत्रिका मे प्रकाशित कराया था। यह निबन्ध उन्होने अपने पाठ्य-क्रम की एक पुस्तक 'हेल्प्स एसेज रिटेन इन इन्टरवल्स ऑफ बिजनेस' मे पढा था।[1] बालमुकुन्द गुप्त द्वारा लिखित 'शिवशम्भु के चिट्ठे' (१९०६) तथा अन्य निबन्ध, 'कोवरले पेपर्स' मे सग्रहीत एडिसन तथा स्टील के निबन्धो से काफी मिलते-जुलते थे। यह ग्रथ भी उन दिनो पाठ्य-क्रम मे था। महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा मिश्रबन्धु के कुछ निबन्धो पर बेकन के निबन्धो का प्रभाव

१—श्यामसुन्दर दास 'मेरी आत्म कहानी' (१९४१), पृ० ३६

स्पष्ट दिखाई देता है ।

साहित्यिक आलोचना का प्रारम्भ पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होने वाले पुस्तक-परिचयो से हुआ। पुस्तक-परिचयो का प्रकाशन सर्व प्रथम 'हिन्दी प्रदीप'[1] तथा 'आनन्द कादम्बिनी'[2] मे हुआ। 'हिन्दी प्रदीप' मे बालकृष्ण भट्ट ने श्रीनिवास दास के 'सयोगिता स्वयवर' की छोटी सी आलोचना प्रस्तुत की थी। इसी रचना पर बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने अपनी पत्रिका 'आनन्द कादम्बिनी' मे विस्तृत आलोलना लिखी। इन प्रारम्भिक प्रयोगो मे सबसे अधिक स्वस्थ आलोचनात्मक अध्ययन श्रीधर पाठक द्वारा अनुवादित गोल्डस्मिथ की रचनाओ के परिचय है। हिन्दी का पहला आलोचनात्मक निबन्ध बालकृष्ण भट्ट का 'साहित्य जन-समूह के हृदय का विकास है'[3] शीर्षक रचना है। साहित्यकारो का स्वतत्र रूप से आलोचनात्मक अध्ययन, सन् १९११ मे, मिश्र-बन्धुओ के 'हिन्दी नवरत्न' के प्रकाशन से आरम्भ हुआ था। मिश्र-बन्धुओ ने ही 'मिश्र बन्धु विनोद' नामक तीन खण्डो का ग्रथ प्रकाशित करके, हिन्दी मे ऐतिहासिक आलोचना का प्रारम्भ किया था।[4] महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी कुछ आलोचनात्मक निबन्ध लिखे थे, और उनमे उन्होने डॉ० जॉनसन के प्रसिद्ध ग्रथ, 'लाइव्स ऑफ पोएट्स' को अपना आदर्श बनाया था।[5]

८—अन्य साहित्यिक रूप

अन्य साहित्यिक रूप, जो अंग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न हुये थे, और जिनके साहित्यिक आदर्शों के निर्माण मे इस प्रभाव का विशेष योग रहा था, इतिहास, जीवन चरित्र तथा पत्र-पत्रिकाये आदि हैं। कुछ अन्य साहित्यिक रूपो का विकास भी इस प्रभाव के कारण हुआ था, जैसे यात्रा-विवरण, आध्यात्मिक विश्लेषण आदि, किन्तु इस प्रकार की रचनाओ को पत्र-पत्रिकाओ मे ही स्थान मिला था, इसीलिए उन्ही के साथ इनका भी अध्ययन हो जायेगा।

हिन्दी मे इतिहास का सर्व प्रथम ग्रन्थ राजा शिव प्रसाद का 'इतिहास तिमिर

१—रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (सं० १९५२), पृ० ४६७

२—वही, पृ० ५२७

३—'हिन्दी प्रदीप', अक फरवरी-मार्च १८९२, पृ० ६—७

४—प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध की अवधि तक इस ग्रथ के तीन ही खण्ड प्रकाशित हुये थे, चौथा खण्ड, जिसमे आधुनिक साहित्य का विवेचन है, सन् १९३४ मे प्रकाशित हुआ।

५—'सरस्वती' (१९१४), पृ० २३६

नाशक' (१८७३) था। यह ग्रंथ कुछ अंग्रेजी रचनाओ की रूपरेखा पर लिखा गया था। इसके अनन्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ आती है, जिनमे हमे तथ्यो का सग्रह मात्र ही नही, वरन् इतिहास लेखन की वैज्ञानिक रीति का उपयोग मिलता है। आगे चलकर मुन्शी देवी प्रसाद ने भी अपनी रचनाओ मे इसी रीति का अनुसरण किया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक निवन्ध मे अग्रेजी के प्रसिद्ध इतिहासकारो-गिवन तथा व्लैकी को हिन्दी के लिए आदर्श इतिहासकार माना था।[1]

यद्यपि इस काल मे लिखे गये जीवन-चरित्रो की सख्या वहुत अधिक है, तथापि साहित्यिक दृष्टि से वे उच्च कोटि के नही हैं। मध्ययुग मे भी इस क्षेत्र मे कुछ प्रयोग हुये थे, किन्तु या तो वे 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' की भाति साम्प्रदायिकता लिये हुए हैं, या वेणी माधव दास कृत 'मूल गोसाई चरित्' की भाति पूर्णत अविश्वसनीय है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा राधा कृष्ण दास ने अग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से जो जीवन-चरित्र लिखे थे, उनमे इस प्रकार के दोष नही हैं। उनकी रचनाए कुछ खोज के पश्चात लिखी गई प्रतीत होती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जव जीवन-चरित्र लिखना प्रारम्भ किया तो उन्होने वेकन के ग्रथ, 'एडवान्समेंट ऑफ लर्निग' की निम्न-लिखित पक्तियो को अपना मूल-सूत्र वनाया था

"But lives if they be well written, propounding themselves a person to represent, in whom actions both greater and smaller, public and private have a co-mixture, must of necessity contain a more true and lively representation "[2]

और उन्होने हिन्दी के जीवन-चरित सम्बन्धी साहित्य की विशेष अभिवृद्धि भी की थी।

हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ का प्रारम्भ अग्रेजी प्रभाव का सवसे अधिक महत्व पूर्ण योग रहा है। उन्होने हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपो के आदर्शों के निर्माण तथा विकास के साथ-साथ जन-साधारण मे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक विषयो पर विचार-विमर्श को भी प्रोत्साहित किया था, और पश्चिम के नवीन तथा वैज्ञानिक विचारो का प्रचार करके जनता के अन्धविश्वासो को दूर करने का प्रयास किया था। हिन्दी पत्र पत्रिकाओ का प्रकाशन अग्रेजी पत्र-पत्रिकाओ के अनुकरण मे हुआ था, और महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' सम्पादन काल तक, जैसा उन्होने

१—'सरस्वती' (१९१२), पृ० ३७।

२—वही (१९०३), पृ० १३५।

स्वय ही लिखा है,[1] हिन्दी की पत्र-पत्रिकाये अंग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओ को ही आदर्श मानकर चलती थी।

६—उपसहार

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए, यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि महावीर प्रसाद द्विवेदी की कोटि का लेखक तथा सम्पादक, हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपो के विकास के लिये अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान को आवश्यक समझता था। अंग्रेजी पढे लिखे नवयुवको को, हिन्दी साहित्य के विकास के प्रति विशेष उन्मुख न देखकर, द्विवेदी जी ने बडे प्रभावशाली शब्दो मे, उनसे, अपनी मातृ-भाषा की सेवा के लिये तत्पर होने का अनुरोध किया था, और इस सम्बन्ध मे मिल्टन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, उन्होने उसकी एक रचना 'रीजन्स एगेस्ट चर्च गवर्नमेंट' की निम्न-लिखित पक्तिया उद्धृत की थी

"I applied myself to that resolution which Aristo followed against the persecution of Bambo, to fix all the industry and art which I could write to the adorning of my native tongue, not to make verbal curiosities the end (that were a toilsome vanity) but to be an interpreter of the best and suggest things among mine own citizens throughout the island in the mother dialect, that what the greatest and choicest wits of Athens, Rome and Modern Italy and those Hebrews of old did for their country, I in my portion, with this, over and above those of being a Christian, might do for mine, not caring to be once named abroad, by writing in Latin (like Bacon) though perhaps I could attain to that but content with these British Islands as my world "[2]

महावीर प्रसाद द्विवेदी के इस अनुरोध तथा मिल्टन के उदाहरण का प्रभाव पडा, और अधिक से अधिक सख्या में अंग्रेजी पढे लिखे नवयुवक हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए कार्य करने लगे। उनकी रचनाओ से हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक आदर्शो मे एक निश्चित परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात हुआ।

१—'सरस्वती' (१९११), पृ० ४६८।

२—वही (१९०३), पृ० २३३

नाटक' (१८७३) था। यह ग्रथ कुछ अग्रेजी रचनाओ की रूपरेखा पर लिखा गया था। इसके अनन्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की इतिहास सम्बन्धी रचनाएँ आती है, जिनमे हमे तथ्यो का सग्रह मात्र ही नही, वरन् इतिहास लेखन की वैज्ञानिक रीति का उपयोग मिलता है। आगे चलकर मुन्शी देवी प्रसाद ने भी अपनी रचनाओ मे इसी रीति का अनुसरण किया था। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपने एक निबन्ध मे अग्रेजी के प्रसिद्ध इतिहासकारो–गिबन तथा ब्लैकी को हिन्दी के लिए आदर्श इतिहासकार माना था।[1]

यद्यपि इस काल मे लिखे गये जीवन-चरित्रो की सख्या बहुत अधिक है, तथापि साहित्यिक दृष्टि से वे उच्च कोटि के नही है। मध्ययुग मे भी इस क्षेत्र मे कुछ प्रयोग हुये थे, कि तु या तो वे 'चौरासी वैष्णवन की वार्त्ता' की भाति साम्प्रदायिकता लिये हुए है, या वेणी माधव दास कृत 'मूल गोसाई चरित्' की भाति पूर्णत अविश्वसनीय है। भारते दु हरिश्चन्द्र तथा राधा कृष्ण दास ने अग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से जो जीवन-चरित्र लिखे थे, उनमे इस प्रकार के दोष नही है। उनकी रचनाए कुछ खोज के पश्चात लिखी गई प्रतीत होती है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जब जीवन-चरित्र लिखना प्रारम्भ किया तो उन्होने बेकन के ग्रथ, 'एडवान्समेट ऑफ लर्निग' की निम्न-लिखित पक्तियो को अपना मूल-सूत्र बनाया था

"But lives if they be well written, propounding themselves a person to represent, in whom actions both greater and smaller, public and private have a co-mixture, must of necessity contain a more true and lively representation "[2]

और उन्होने हि दी के जीवन-चरित सम्बन्धी साहित्य की विशेष अभिवृद्धि भी की थी।

हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ का प्रारम्भ अग्रेजी प्रभाव का सबसे अधिक महत्व पूर्ण योग रहा है। उ होने हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपो के आदर्शों के निर्माण तथा विकास के साथ-साथ जन-साधारण मे धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक विषयो पर विचार-विमर्श को भी प्रोत्साहित किया था, और पश्चिम के नवीन तथा वैज्ञानिक विचारो का प्रचार करके जनता के अन्धविश्वासो को दूर करने का प्रयास किया था। हिन्दी पत्र पत्रिकाओ का प्रकाशन अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओ के अनुकरण मे हुआ था, और महावीर प्रसाद द्विवेदी के 'सरस्वती' सम्पादन काल तक, जैसा उन्होने

१—'सरस्वती' (१९१२), पृ० ३७।

२—वही (१९०३), पृ० १३५।

स्वय ही लिखा है,[1] हिन्दी की पत्र-पत्रिकाये अग्रेजी की पत्र-पत्रिकाओ को ही आदर्श मानकर चलती थी।

६—उपसहार

इस प्रकरण को समाप्त करते हुए, यह लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि महावीर प्रसाद द्विवेदी की कोटि का लेखक तथा सम्पादक, हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपो के विकास के लिये अग्रेजी साहित्य के ज्ञान को आवश्यक समझता था। अग्रेजी पढे लिखे नवयुवको को, हिन्दी साहित्य के विकास के प्रति विशेष उन्मुख न देखकर, द्विवेदी जी ने वडे प्रभावशाली शब्दो मे, उनसे, अपनी मातृ-भाषा की सेवा के लिये तत्पर होने का अनुरोध किया था, और इस सम्बन्ध मे मिल्टन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, उन्होने उसकी एक रचना 'रीजन्स एगेस्ट चर्च गवर्नमेट' की निम्नलिखित पक्तिया उद्धृत की थी

"I applied myself to that resolution which Ariosto followed against the persecution of Bambo, *to fix all the industry* and art which I could write to the adorning of my native tongue, not to make verbal curiosities the end (that were a toilsome vanity) but to be an interpreter of the best and suggest things among mine own citizens throughout the island in the mother dialect, that what the greatest and choicest wits of Athens, Rome and Modern Italy and those Hebrews of old did for their country, I in my portion, with this, over and above those of being a Christian, might do for mine, not caring to be once named abroad, by writing in Latin (like Bacon) though perhaps I could *attain to that but content with these British* Islands as my world"[2]

महावीर प्रसाद द्विवेदी के इस अनुरोध तथा मिल्टन के उदाहरण का प्रभाव पडा, और अधिक से अधिक सख्या में अग्रेजी पढे लिखे नवयुवक हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास के लिए कार्य करने लगे। उनकी रचनाओ से हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक आदर्शों मे एक निश्चित परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात हुआ।

१—'सरस्वती' (१६११), पृ० ४६८।

२—वही (१६०३), पृ० २३३

६

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के नवीन आदर्शों के निर्माण के इस अध्ययन के अनन्तर, हिन्दी भाषा पर अग्रेजी प्रभाव की विवेचना प्रारम्भ की जा सकती है। हिन्दी भाषा ने अपने विस्तृत इतिहास मे, उन अनेक भाषाओ के प्रभाव को, जिनके सम्पर्क मे वह आई है, बडी सरलता से स्वीकार किया है, और ये बाह्य तत्व उसके अपने हो जाने के अनन्तर, उसके लिए विशेष मूल्यवान रहे हैं। अब तक हिन्दी भाषा ने जिन प्रभावो को स्वीकार किया था, उन्होंने उसके शब्द-समूह की विशेष अभिवृद्धि की थी, उसमे कुछ नई ध्वनिया जोडी थी, और उसे कुछ शब्दावलिया तथा मुहावरे भी प्रदान किये थे। अग्रेजी भाषा के सपर्क ने, जैसा कि आगे के अध्ययन से स्पष्ट हो जायेगा, हिन्दी भाषा को इससे कही अधिक लाभान्वित किया है।

हिन्दी भाषा, ने जो बडी सरलता के साथ समय २ पर विभिन्न प्रभावो को ग्रहण किया है, यह उसकी कोई दुर्बलता अथवा दोष नही है। ससार की लगभग सभी भाषाए, जो विशेष काल तक प्रचलित रही हैं, भाषा-वैज्ञानिको के मतानुसार, विदेशी प्रभावो को अवश्य स्वीकार करती रही हैं। अग्रेजी भाषा ने भी अपने विकास मे बहुत से विदेशी तत्वो को स्वीकार किया है, हिन्दी भाषा के शब्दो को ग्रहण

करना उसने सोलहवी शताब्दी से ही प्रारम्भ कर दिया था।[1] सस्कृत भाषा भी, जो अब तक विशुद्ध समझी जाती थी, और देव-भाषा के नाम से सम्बोधित की जाती थी, भाषा-वैज्ञानिको के अनुसार, विदेशी तत्वो से युक्त है।[2] जब सस्कृत भाषा ने विदेशी प्रभावो को ग्रहण करना बन्द कर दिया, तभी से उसके प्रभाव का क्षेत्र कम होने लगा था, और अब तो वह बहुत ही थोडा रह गया है। सस्कृत के अनन्तर विभिन्न प्राकृत तथा अपभ्र श भाषाए आयी और उन्होने भी विदेशी तत्वो को ग्रहण करके अपनी अभिवृद्धि की। हिन्दी भाषा, जो कि अपभ्र श के शौरसेनी तथा अर्ध-मागधी रूपो से विकसित हुई है, परम्परा से प्राप्त विदेशी तत्वो के ग्रहण करने का गुण स्वीकार करके, अपनी अभिवृद्धि करती रही है।

हिन्दी भाषा पर अग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए, अग्रेजी भाषा का, कम से कम उसकी सामान्य विशेषताओ का, ज्ञान आवश्यक है। अग्रेजी भाषा की प्रमुख विशेषताए है (१) वह एक निरन्तर विकासशील भाषा रही है, (२) उसने अपने शब्द-समूह की, अन्य भाषाओ के शब्दो को, उनके मूल तथा अनुवादित रूपो मे ग्रहण करके, निरन्तर अभिवृद्धि की है, (३) उसने कुछ निश्चित विराम-चिह्नो का विकास किया है, (४) अनुच्छेदो की व्यवस्था की है (५) विभिन्न प्रकार के विषयो के लिए भिन्न भिन्न प्रकार की शैलिया खोजी हैं, (६) गद्य और पद्य दोनो मे ही अनेक साहित्यिक रूप और उनके भी बहुत से प्रकार विकसित किये है, तथा (७) इस प्रकार उसने अपने को ज्ञान की विभिन्न धाराओ को अभिव्यक्त करने के योग्य बना लिया है।

अग्रेजी भाषा की इन समस्त विशेषताओ ने हिन्दी भाषा को प्रभावित किया है। अग्रेजी प्रभाव ने सबसे पहले हिन्दी के शब्द-समूह पर कार्य किया था। प्रारम्भ मे अग्रेजी शब्द अपने मूल रूप मे ग्रहण किये गये, किन्तु समय के विकास के साथ अग्रेजी के शब्दो को अनुवादित करके ग्रहण करने की प्रवृत्ति बढती गई। अग्रेजी शब्दो के साथ-साथ उस भाषा की कुछ शब्दावलियाँ, मुहावरे तथा कहावते भी हिन्दी भाषा मे ग्रहण की जाने लगी। इसके अनन्तर अग्रेजी के व्याकरण तथा वाक्य-विन्यास ने, हिन्दी को प्रभावित किया। अग्रेजी प्रभाव से ही हिन्दी भाषा ने विराम-चिह्नो के प्रयोग तथा अनुच्छेदो की व्यवस्था को ग्रहण किया। हिन्दी के लेखको ने

१—मेरी एस० सरजीनसन 'ए हिस्ट्री ऑफ फॉरेन वर्ड्स इन इगलिश', पृ० २२०-२६

२—सुलियन लेवी, जीन प्रज्यलास्की तथा जूल ब्लाक 'प्री-आर्यन एण्ड प्री ड्रिवेडियन इन इंण्डिया', पी० सी० बागची द्वारा फ्रेंच से अगरेजी मे अनुदित ग्रन्थ मे सस्कृत भाषा पर विभिन्न प्रभावो का विवेचन है।

अंग्रेजी की विभिन्न प्रकार की शैलियो के भी अनुकरण किये। इस बहुमुखी प्रभाव के फल-स्वरूप ही हिन्दी भाषा ने जीवन के विभिन्न पक्षो तथा ज्ञान की विभिन्न धाराओ को प्रकट करने की शक्ति अर्जित की है।

अंग्रेजी भाषा ने, अपनी इन समस्त विशेषताओ को, शताब्दियो के काल मे, विकसित किया था, किन्तु हिन्दी भाषा को उन्होने एक ही समय मे प्रभावित किया। फिर भी, ये सभी विशेषताए, एक ही समय मे नही ग्रहण कर ली गयी, उनके ग्रहण मे हम एक निश्चित विकास-क्रम देखते है। प्रारम्भ मे हिन्दी भाषा ने अंग्रेजी भाषा के ऐसे शब्दो को ग्रहण किया, जो उन नई वस्तुओ के नाम थे, जिन्हे अंग्रेज व्यापारी अपने देश से भारतवर्ष लाये थे। इस प्रकार के शब्द हिन्दी भाषा मे, हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजो के आने के बहुत पूर्व ही, प्रयोग मे आने लगे थे। अंग्रेजी शासन की स्थापना के अनन्तर इस नवीन व्यवस्था से सम्बन्धित शब्दावली को, हिन्दी मे स्थान मिलने लगा था। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के फल-स्वरूप यह प्रभाव बहुत व्यापक हो गया। विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत अंग्रेजी पुस्तको के सम्पर्क से, हिन्दी-प्रदेश के लोगो को अंग्रेजी भाषा की विभिन्न विशेषताओ का ज्ञान हुआ और उन्होने उनका उपयोग अपनी भाषा की अभिवृद्धि के लिए करना आरम्भ कर दिया। मुद्रण-कला के प्रचार तथा उसी के फल-स्वरूप होने वाले, पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन ने, पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को लोक-प्रिय बनाते हुए, अंग्रेजी प्रभाव को हिन्दी भाषा मे बद्ध-मूल कर दिया। इस सम्बन्ध मे अनेक साहित्यिक तथा सास्कृतिक सस्थाओ का योग भी विशेष लाभप्रद रहा है।

इस सामान्य विवेचन के अनन्तर अब विस्तृत अध्ययन प्रारम्भ किया जा सकता है। सुविधा के लिए, प्रारम्भ मे, हिन्दी के शब्द-समूह पर, इस प्रभाव की विवेचना होगी। उसके अनन्तर, अंग्रेजी प्रभाव मे ग्रहण की गयी शब्दावलियो, मुहावरो तथा कहावतो का अध्ययन होगा। तत्पश्चात हिन्दी व्याकरण पर अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव का विश्लेषण किया जायेगा, और उसके बाद इस प्रभाव के फल-स्वरूप हिन्दी के वाक्य-विन्यास में होने वाले परिवर्तन, विराम-चिह्नो के प्रयोग, अनुच्छेदो की व्यवस्था तथा विभिन्न प्रकार की शैलियो के सूत्रपात का अनुशीलन होगा।

१—शब्द-समूह

किसी भाषा के शब्द-समूह की अभिवृद्धि, अन्य भाषाओं के शब्दो को ग्रहण करने मे ही होती है। अन्य भाषाओ के साथ सम्पर्क, विजय, उपनिवेशीकरण, व्यापार अथवा साहित्य के माध्यमो मे स्थापित हो सकता है। अंग्रेजी भाषा के साथ, हिन्दी भाषा का सम्पर्क, अंग्रेजों की भारत विजय मे ही स्थापित हुआ था।

हिन्दी के शब्द-समूह पर अ ग्रेजी प्रभाव की मूल प्रवृत्ति तथा कार्य-प्रणाली को समझने के लिए, मेरी एम० सरजीनसन के ग्रथ 'ए हिस्ट्री ऑफ फारेन वर्ड्स इन इंगलिश' का निम्नलिखित अवतरण दृष्टव्य है

"When one nation subdues another which speaks a different language, the conquerers, if their object has been political power rather than settlement, may constitute an authority, or ruling class, which is in point of view of numbers much in the minority compared with the whole body of conquered people In case like this it is only the native language which survives, though the incoming dialect will very probably transfer to native vocabulary works which express its own method of government and other cultural words "[1]

जहा तक हिन्दी भाषा पर अ ग्रेजी प्रभाव का सम्बन्ध है यह सर्वांशत सही हुआ है।

किसी भाषा मे, अन्य भाषाओ के शब्द, कहा तक उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति को ग्रहण कर पाते हैं, इसमे पर्याप्त विभेद देखने को मिलता है। विजित जाति जैसे ही विजेताओ को अपनी भूमि से निकाल पाती है, अपनी स्फूर्ति और उत्साह मे विजेताओ की भाषा से लिए गये शब्दो को भी अपनी भाषा से निकालने लगती है। भारतवर्ष से अ ग्रेजो के जाने के बाद, हिन्दी भाषा मे इस प्रकार की प्रवृत्ति का प्रारम्भ अवश्य हो गया है, किन्तु यह प्रवृत्ति बहुत समय तक नही चल सकती। हिन्दी भाषा को अ ग्रेजी भाषा से अभी बहुत कुछ लेना है। यह सम्भव है कि अ ग्रेजी के बहुत से ऐसे शब्द, जिन्होने कि हिन्दी भाषा की स्वाभाविक वृत्ति को भी ग्रहण कर लिया है, निकाल दिये जाएँ, और उनके स्थान पर यहा के बने हुए शब्दो का उपयोग होने लगे। फिर भी, बहुत से अ ग्रेजी शब्द, अपने मौलिक अथवा अनुवादित रूप मे, हिन्दी भाषा मे कुछ समय तक ग्रहण किये जाते रहेगे। प्रस्तुत अध्ययन मे, इस सम्बन्ध मे, विशेष विचार-विमर्ष के लिए स्थान नही है।

अग्रेजी शब्दो का हिन्दी भाषा मे प्रथम प्रयोग

हिन्दी भाषा मे, अग्रेजी शब्दो का सर्व प्रथम प्रयोग, रीवा के महाराज विश्वनाथ सिंह के रामचरित से सम्बन्धित नाटक 'आनन्द रघुनन्दन' मे देखने को मिलता है। राम के लका से अयोध्या लौटने के अनन्तर, एक समारोह होता है,

१—मेरी एस० सरजीनसन · 'ए हिस्ट्री ऑफ फॉरेन वर्ड्स इन इगलिश', पृ० १-२

जिसमे नाटककार ने ससार के लगभग सभी देशो के नर्तको तथा नर्तकियो को अपनी कला का प्रदर्शन करते हुए दिखाया है। एक नर्तकी गरुण्ड देश (इगलैंड) से भी आयी है। वह रामचन्द्र की प्रशस्ति अपनी भाषा मे इस प्रकार प्रस्तुत करती है।

'प्रविश्य गरुण्ड देशीयोनर्तक
प्रणम्य नृत्यति गायतिच ए किग हितकारी माई डियर वेरी।
लिवरल एण्ड बरेव विश ट्रिरी।
गुड स्प्रेड माइ सिन टाप लाड।
गुड आल टैम विश्वनाथ आफ गाड।'[1]

नीचे इन पक्तियो की व्याख्या इस प्रकार की गई है

"अर्थ ए किग वादशाहो का वादशाह, हितकारी भगवान माई हमारा डियर प्यारा वेरी वहुत परस्पर प्यारा लिवरेल दातो का दाता एण्ड और वरेव शूरवीरो का सरदार, वीश ट्रिरी सुरतरु दोनो जहान का गुड स्प्रेड अच्छा करने वाला माइसिन हमारे तकसीर टाप लाड सरदारो का सरदार गुड आल टैम अच्छा येकरस"..... विश्वनाथ आफ गाड विश्व नाथ का ईश्वर।"[2] इन उद्धरणो मे हमे अग्रेजी के शब्द, हिदी भाषा मे सर्व प्रथम देखने को मिलते हैं, किन्तु ये ऐसे शब्द नही है, जिन्होंने हिन्दी भाषा के प्रकृत स्वरूप को ग्रहण कर लिया हो। ये अब भी अग्रेजी के ही शब्द है और हिन्दी भाषा मे लिखे गये सर्व प्रथम अग्रेजी शब्दो के उदाहरण मात्र हैं। अन्तिम पक्ति मे 'विश्वनाथ ऑफ गाड' प्रयोग गलत है।

अंग्रेजी शासन ने, हिन्दी प्रदेश मे अपने प्रसार के पूर्व, वगभूमि मे, विशेष रूप से उसके प्रमुख नगर कलकत्ता तथा उसके निकट के क्षेत्र मे, अपनी स्थापना कर ली थी। कलकत्ता, उस समय भी व्यापार का वहुत वडा केन्द्र था, और हिन्दी-प्रदेश के वहुत से लोगो ने वहा जाकर रहना प्रारम्भ कर दिया था। इन्ही लोगो ने हिन्दी मे सर्व प्रथम अंग्रेजी शब्दो का प्रयोग आरम्भ किया। उस समय अंग्रेजी भाषा के किस प्रकार के शब्द, हिन्दी मे ग्रहण किये गये थे, यह जानने के लिए, कलकत्ते से प्रकाशित होने वाले, हिन्दी के सर्व प्रथम समाचार-पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' के विभिन्न अक देखने चाहिए। अंग्रेजी के कुछ शब्दो का प्रयोग, लल्लू जी लाल ने अपने 'प्रेमसागर' तथा सदल मिश्र ने अपने 'नासिकेतोपाख्यान' मे भी पहली वार किया था, किन्तु वे वहुत थोडे से शब्द थे, जैसे गवर्नर जनरल, लार्ड, कप्तान, डाक्टर, लिपटन तथा कम्पनी।

१—विश्वनाथ सिंह · 'आनन्द रघुनन्दन' (बनारस १९२८), पृ० १४२
२—वही, पृ० १४२

इन लेखको की रचनाओ के विषय पुराने थे, इसीलिए अग्रेजी शब्दो के प्रयोग उन्होंने बहुत ही कम किये। ये शब्द तो भूमिका भाग मे ही आ गये है।

'उदन्त मार्तण्ड' का प्रथम अक ३० मई, सन् १८२६ को प्रकाशित हुआ था। हिन्दी का यह प्रथम समाचार पत्र, केवल १५ दिसम्बर, १८२७ तक ही चला, किन्तु इस थोडे से जीवन-काल मे ही वह, अग्रेजी के बहुत से शब्द, हिन्दी भाषा मे, अपने मौलिक तथा अनुवादित रूपो मे लाने मे समर्थ हुआ। मौलिक रूप मे लिये गये शब्दो मे शासन सम्बन्धी शब्द अग्रलिखित थे गवर्नर जेनरल, काउन्सिल, कम्पनी, लाड, गवर्नमेंट, गेजेट, सुपरीम कोर्ट, पलटन, मेजर आदि, अग्रेजी महीनो के नामो मे अपरिल, एप्रिल, जुलाई, सिपटेम्बर, मार्च, डीसेम्बर आदि, तथा सामान्य शब्द फोर्ट, सेक्रटरी, मिसियर्स, रसीद इत्यादि।

इस समाचार-पत्र मे प्रयुक्त अग्रेजी से अनुवादित शब्दो की सख्या भी पर्याप्त थी, और उनमे से अधिकाश का सम्बन्ध समाचार-पत्र सम्बन्धी कार्य से ही था। अग्रेजी के शब्द News paper के ही 'कागज' 'समाचार का कागज' 'सम्वाद-पत्र' तथा 'समाचार-पत्र' इन चार शब्दो का प्रयोग किया गया था। Prospectus शब्द के लिए 'अनुष्ठान-पत्र, तथा 'विवरण पत्रिका' इन दो शब्दो का प्रयोग हुआ था। मकान तथा समाचार-पत्र दोनो की ही क्रम-सख्या को 'अक' कहा गया था। Editor के लिए 'सम्पादक' शब्द का प्रयोग हुआ था, और यही शब्द आज तक प्रचलित है। Printing concern के लिए छापाखाना तथा छापाघर, Printers के लिए छापे वाले, Government Press के लिए सरकारी छापाघर। अग्रेजी की सकर्मक क्रिया, publish का अनुवाद 'प्रकाश पाना' किया गया था। इस पत्र के स्वामी को, अग्रेजी मे लिखे गये एक पत्र का, हिन्दी रुपातर भी, एक अक मे, अपने मौलिक रूप के साथ प्रकाशित हुआ था। इस अनुवाद मे, Editor के लिए 'कर्त्ता' तथा proprietor के लिए 'धनी' शब्दो का प्रयोग मिलता है। अग्रेजी के प्रयोग, Yours obediently का अनुवाद, 'तुम्हारा आज्ञावह' किया गया था। इस समाचार-पत्र मे एक मिश्र अनुवाद भी देखने को मिलता है 'कौसिल सभा'। यह उसी प्रकार का शब्द है, जिस प्रकार इलाहावाद मे, इक्के वाले कहा करते हैं 'किला फोट चलोगे बाबू जी' और 'जमुना ब्रिज का पुल'।

इस समाचार-पत्र मे प्राप्त अग्रेजी शब्दो के अनुवादित रूपो के सम्बन्ध मे, इतना और लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है, कि यह कलकत्ते से प्रकाशित हुआ था, इस लिए इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि ये शब्द बगला भाषा से ग्रहण किये गये हो। हिन्दी का प्रथम दैनिक-पत्र 'समाचार सुधावर्षण' भी, कलकत्ते से ही, एक बगाली

सज्जन श्याम सुन्दर सेन के सम्पादकत्व मे, प्रकाशित हुआ था। इस पत्र मे भी अंग्रेजी के जो शब्द, मौलिक तथा अनुवादित रूपो मे, प्रयुक्त हुए है, वे बंगला-भाषा मे पूर्व प्रयोग के कारण बडे मजे-घिसे प्रतीत होते है। इन शब्दो के ध्वनि-विज्ञान मे भी बंगला भाषा के तत्व है।

हिन्दी का यह सर्व प्रथम दैनिक-पत्र, जून सन् १८५४ मे प्रकाशित हुआ था, और सन् १८६८ तक या इस से भी अधिक समय तक चलता रहा।[1] इस पत्र मे प्रयुक्त कुछ शासन सम्बन्धी शब्द है पोलीस, माजिस्ट्रेट, ब्रिटिस गवर्नमेंट, कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर तथा अन्य, हिन्दी भाषा मे सर्व प्रथम लिखे गए पाश्चात्य देशो के नाम रूसिया, प्रूसिया, आस्ट्रिया, डेनमार्क आदि, अन्य सामान्य शब्द थे स्टीमर, सेकण्ड क्लास, एलक्ट्रिक, टालीग्राफ, बेलून, ग्यास, टौनहाल तथा अन्य। अनुवादित शब्दो मे शासन सम्बन्धी शब्द ये शासन कर्त्ता (Administrator) राज विद्या (politics) प्रधान सेनापति (Commander-in-chief) तथा व्यवस्थापिका (Legislative); सामान्य शब्द कल की गाडी (Kailway train), धुए की सेकण्ड क्लास की गाडी, (?) आदि। इस समाचार-पत्र मे Advertisement के लिए 'विज्ञापन' शब्द का प्रयोग किया गया है, यही शब्द आज भी उसके लिए प्रचलित है।

ये थोडे से शब्द, इस समाचार पत्र के प्रथम वर्ष के कुछ अको से लिए गये है, और यह स्पष्ट करते हैं कि उस समय हिन्दी-भाषा, किस प्रकार के अंग्रेजी शब्दो को ग्रहण कर रही थी। इस स्थान पर, विशेष विस्तार मे हम इसलिए भी नही जा रहे हैं, क्योकि प्रस्तुत अध्ययन का सम्बन्ध हिन्दी भाषा पर सन् १८७० से लेकर १९२० तक पडने वाले अंग्रेजी प्रभाव से है। हिन्दी-प्रदेश मे, अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ १८७० के ही लगभग हुआ था, जब भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन आरम्भ किया था।

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के प्रारम्भिक काल मे, विशेष रूप से उन्नीसवीं शताब्दी मे, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-८५) तथा बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) का सबसे अधिक योग रहा था। हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के विकास मे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे अधिक कार्य, अपनी, पत्र-पत्रिकाओ 'कविवचनसुधा' (१८६९) 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३) तथा 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' (१८७३) के माध्यम से किया था। बाल कृष्ण भट्ट ने भी, अपनी पत्रिका 'हिन्दी प्रदीप (१८७७)

१—ब्रजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय 'हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र', 'विशाल भारत', मई, १९३९, पृ० ५९५

के माध्यम से, अंग्रेजी प्रभाव को, हिन्दी-भाषा मे, व्यापक बनाया था। इसके अनन्तर उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से, अंग्रेजी प्रभाव के हिन्दी भाषा मे प्रसार का कार्य 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने अपने हाथो मे ले लिया। उसने विभिन्न विषयो के पारिभाषिक शब्दो की रचना करते हुए हिन्दी भाषा को अंग्रेजी के बहुत से मौलिक तथा अनुवादित शब्द प्रदान किये। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी 'सरस्वती' के माध्यम से, इस क्षेत्र मे बहुत महत्व पूर्ण योग दिया था। किसी भाषा पर कार्य करने वाले विदेशी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए, ओटो जेस्पर्सन का कहना है कि कोई भी भाषा अन्य भाषाओ से सर्वनाम, क्रिया आदि न लेकर, अधिकाश मे पूर्ण शब्दो, अर्थात् पूरे भावो को व्यक्त करने वाले शब्दो, सज्ञा और विशेषणो को ही ग्रहण करती है।[1] यह विचार कहा तक ठीक है, इसका निर्णय, हिन्दी भाषा मे, अंग्रेजी से ग्रहण किये गये सभी शब्दो को देख लेने के अनन्तर ही किया जा सकेगा।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की सर्व प्रथम रचना 'विरह शतक' का प्रकाशन सन् १८६७ मे हुआ था, किन्तु उनकी रचनाओ मे अंग्रेजी के मौलिक तथा अनुवादित शब्दो का प्रयोग उसके एक वर्ष बाद 'कविवचन सुधा' नामक पत्रिका के प्रकाशन मे प्रारम्भ हुआ। 'हरिश्चन्द्र-मैगज़ीन' तथा 'हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका' के प्रकाशन के साथ तो उनकी सख्या और भी अधिक बढती गयी। भारतेन्दु युग मे, हिन्दी शब्द-समूह पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन के लिए, हमे, भारतेन्दु जी के अतिरिक्त, उस युग के अन्य लेखको की रचनाओ मे प्रयुक्त, अंग्रेजी के मौलिक तथा अनुवादित शब्दो पर भी विचार करना होगा। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके युग के अन्य लेखको की रचनाओ मे प्रयुक्त अंग्रेजी के मौलिक तथा अनूदित शब्दो की वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है

(क) शासन सम्बन्धी शब्द गवर्नर जनरल, वाइस राय, गवर्नर, कमिश्नर, मजिस्ट्रेट, जन्ट मजिस्टर, कलक्टर, डेप्टी कलक्टर, चीफ जस्टिस, जस्टिस, जज, आनरेरी मजिस्ट्रेट, हाई कोर्ट, कोर्ट, स्माल काज कोर्ट, वारन्ट, नोट्स, अपील, पीनल कोड, सेक्सन, कमान्डर-इन-चीफ, जनरल, कोर्ट-मार्सल, कप्तान, सुपरेन्टेन्डेन्ट पोलीस, इस्पेक्टर, पेटरौल, गजेट, एक्ट, रिपोर्ट, मिनिट, लार्ड, ड्यूक, रजीडेन्ट आफिस सेक्रेटरी, फाइनेन्शल डेपाटमेट, डेक्री, इन्सालवेन्ट, इन्सालवेन्सी, लोकल सेल्फ गवर्नमेट, एडीकाग, ग्राड मार्च, हेराल्ड, चीफ हेराल्ड, प्रीवी कौनसिल, क्लार्कस, टैक्स,

---

१—ओटो जेस् पर्सन 'लैंगवेज', (१९३४), पृ० २११

(ख) प्रतिदिन के प्रयोग की वस्तुओ से सम्बन्धित शब्द वक्स, चुरुट, विस्कुट, कोट, पतलून, वूट, हैट, लालटेन, लवेन्डर, बुरुश, वाच, क्लाक, लोट, वगिया, कौच, हरमोनियम वाजा, आरगन वाजा, अलवम, पाकेट चेन, नेकलस, पालिस,

(ग) अ ग्रेजो द्वारा स्थापित सस्थाओ से सम्वन्धिन शब्द पास्ट आफिस, पोस्ट मास्टर, पोस्ट मैन, म्यूनिसीप्यालिटी, म्यूनिसीपल कमेटी, अस्पताल, डाक्टर, वोट, टौन हाल, पार्क, म्यूजियम, इस्टेशन, इन्जन, टिकट, टिकट मास्टर, वारिस्टर, प्लीडर, विअरिंग पत्र, प्राईवेट टेलीग्राम, वालन्टियर, चेम्वर आफ कामर्स, रोमन कैथोलिक, चर्च, क्रिस्तान, क्रिश्चियन, होटेल, प्रूफरीडर, टैप, कालम, स्पलीमेट प्रेस, अडीटर, आरटिकिल, करसपान्डेन्ट, म्यूनिसीपल कमिश्नर, म्यूनिसीपल सेकरिटरी, मैडिकल सेकरटरी, पब्लिक वर्क, जेल, कम्पनी, जुएलर, पोस्ट कार्ड, रजिस्टरी,

(घ) शिक्षा सम्बन्धी शब्द हाई स्कूल, नारमल स्कूल, कालिज, इ टरमीडिएट कालेज, हेडमास्टर, प्रिंसीपल, सेकेण्ड क्लास, सारटीफिकट, यूनिवर्सिटी, फेलोसिप, फिलासफी, फिलासफर, मेडिकल कालिज, फीता, लाइन, पेन्सिल, कोमा, सेमीकोलन, फुलइस्टाप, ब्रेकेट्स, कोलन, पैराग्राफ, इ ट्रोगेशन, एक्सक्लेमेशन, पैरेन थीसिस, इनवरटिड कामा।

(ङ) वैज्ञानिक शब्द साइनटिफिक एसोसियेशन, ग्यास, फासफरस, केमेस्ट्री, कारवनिक, ऐसिड, सलफरिक ऐसिड, वैलून, रेल।

(च) साहित्यिक तथा सास्कृतिक शब्द डिबेटिंग क्लव, यग्गमैन्स एसोसियेशन, प्रेसिडेंट, सेकरेटरी, एसिसटेंट सेकरेटरी, मेम्बर, सोसाइटी, रिपोर्ट, ऐनुअल रिपोर्ट, मिस्टर, इजूकेटिड, सिविलाइज्ड, इन्गलिसाइज्ड, इल्लिटरेट, सेकिंड हैंड, ऐन्टीक्वेरियन, मेमोरियल, थियेटर, ड्रामा, ट्रेजिडी, कोमेडी, आपेरा।

(छ) अ ग्रेजी महीनो के नामवाची शब्द जनवरी, फरवरी, मार्च, अप्रेल, मे तथा मई, जून, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, सेप्टम्बर, ऑक्टूवर, नवम्बर और दिसम्बर।

भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओ तथा अन्य रचनाओ मे अ ग्रेजी के अनुवादित शब्दो की सख्या भी काफी है

(क) शासन सम्बन्धी शब्द न्यायाधीश (Judge), विचारपति (Justice), अध्यक्ष (President), स्वत मुख्याधिकारी (Dictator), शरीर-रक्षक (Body-guard), विश्वासपात्र क्लर्क या लेखक (Personal Assistant), अधिकारी (Officer), विदेशी राजदूत (Ambassador), बाहरी राज्यो के प्रतिनिधि

(Foreign Representatives), दामवरदार बालक (Poge), वन्दीजन (Herald) सूचना पत्र (Notice), दर्शनानुशासन (?), कार्यालय (Office), अनुरोध पत्र (Application), नीति (Policy), निरस्त्रीकरण का विधान (Policy of Disarmament), पंचायत की अदालत (Honrary Magistrate's Court), मुन्शी (Clerk),

अंग्रेजो द्वारा स्थापित सस्थाओ से सम्बन्धित शब्द प्रेस अखबार (Newspsper) दैनिक पत्र (Daily paper), साप्ताहिक पत्र (Weekly paper), पाक्षिक पत्र (Fortnightly paper), प्रसिद्धि पत्र (Advertisement), कार्याध्यक्ष (Manager), कार्य सम्पादक (Managing Editor), शोधक (Proof Reader), प्रति (Copy तथा Issue), पूर्ति (Suppliment), साम्वतसरिक मूल्य अथवा वार्षिक मूल्य (Annual Subscription), षट्मासिक मूल्य (Six monthly-subscription), अग्रिम मूल्य (Advance subscription), सम्वाददाता (Correspondent), पोस्ट आफिस डाकघर (Post Office), डाक के चपरासी (Postman), लौटती डाक (Return post), प्रेरण व्यय (Postal Charges), अन्य शब्द डाकगाडी (Mail train), रेल गाडी (Trian) धूए की कल (Steam Engine), धुआकस (Engine), कारखाना (Work Shop), विचित्र वस्तु सग्रहालय (Museum), पादरी (Jesuit Father),

(ग) शिक्षा सम्बन्धी शब्द प्रधान शिक्षालय अथवा विश्वविद्यालय (University), उष्णकाल की छुट्टी (Summer Vacation) किंचित विश्राम (Comma), अर्ध विश्राम (Semi colon), पूर्ण विश्राम (Full-stop) शब्द कल्पद्रुम (Dictionary), प्राचीन विद्या (Antiquiety),

(घ) वैज्ञानिक शब्द यन्त्र शास्त्र (Chemistry), पारदर्शक-किरण-चलन (Movement of transparent ray), प्रकाश वलन (Delation of Light), दूर दर्शक यन्त्र (Telescope), ऊष्मा अथवा गरमी (Heat), उत्तम ऊष्मा सचालक, (Good conductor of Heat), अधम उष्मा सचालक (Bad conductor of Heat), सचालन (Conduction), समवहन (Convection), स्फेरण सचालित गरमी (Rediation of Heat), शीतोष्ण मापक यत्र (Barometer), घनरूप (Solid), द्रवरूप (Liquid), गूढोष्मा (Latent Heat), सकोच (Pressure), दीप्तोत्पल (Illumination), दूरवीन (Telescope),

(ट) साहित्यिक तथा सास्कृतिक शब्द समाज (Society), सभा (Club, Association or meeting), सभ्य (Member), सभाध्यक्ष अथवा सभापति (President), सभोपपति (Vice-president), साधारण सभा (General

meeting), मासिक सभा (Mouthly meeting), वार्षिक सभा (Annual meeting), कार्य सभा (Working Committee or Executive Committee), उपस्थित सभासद (Members present), लेखाध्यक्ष (Secretary), उपलेखाध्यक्ष (Assistant Secretary), भाषक (Speaker), विवरण (Roport), वार्षिक विवरण (Annual report), प्रस्ताव (Proposal or Resolution), प्रलम्ब पत्र (Condolence letter or Condolence Resolution), प्रशसा पत्र (Certificate), शोक सूचक कृत्य (Condolence meeting), शोक पत्र (Condolence letter or Condolence Resolution), सरस्वती भण्डार (Library), वाद विवाद (Debate), प्रतिपक्षी (Opponent), सूची पत्र (List), शृंखलाबद्ध इतिहास (Chronological history), पुन सम्स्कार (renaissance), पूर्ववृत्त (Antiquity), पुरातत्ववेत्ता (Antiquarion), नई तलाश के लोग (Enlightened), स्मरण कीर्ति (Memorial), उपष्टम्भक (Appendix), सुखात अथवा सयोगात (Comedy), दुखात अथवा वियोगात (Tragedy), गीतिनाट्य (Opera)।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके समकालीन अन्य लेखको की रचनाओ मे प्राप्त अग्रेजी के शुद्ध तथा अनूदित शब्दो का यह अध्ययन, अपूर्ण ही रह जायेगा, यदि कुछ ऐसी पक्तियाँ उद्धृत न की जाय जिनमे इन का प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु युग के प्रसिद्ध कवि, अम्बिकादत्त व्यास (१८५८-१९००) की काव्य रचना 'भारतधर्म' की निम्नलिखित पक्तिया देखिये

> पहिरि कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर
> भालू चर्बी चरचि लवेंडर की लगाई फिर
> नई विदेशी विद्या ही को मानत सवस
> सस्कृत के मृदु वचन लगत इनको अति कर्कश।[१]

इनमे कई अग्रेजी शब्दो का प्रयोग है, जो भारतवर्ष मे अग्रेजो के साथ आई हुई कुछ नवीन वस्तुओ की सज्ञाए है। इस प्रकार के शुद्ध तथा अनूदित अग्रेजी शब्दो का प्रयोग, हमे भारतेन्दु युग के अन्य लेखको की रचनाओ मे भी, जब उन्होने नवीन विषयों को ग्रहण किया है, मिलता है। इस प्रकार के शब्दो की सबसे अधिक सख्या स्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ मे है, क्योकि उन्होंने, अग्रेजी का भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक प्रभाव ही नही, सास्कृतिक प्रभाव भी ग्रहण किया था। राधाकृष्णदास ने, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन वृत्त मे लिखा है कि एक बार उन्होंने, पहली अप्रैल के दिन बहुत से लोगो को एक विशेष प्रदर्शन देखने के लिए एक स्थान पर निमन्त्रित किया था, किन्तु जब लोग वहा पर एकत्रित हुए तो उन्होंने पर्दा उठने पर, एक काले खम्भे के ऊपर

१—डॉ० केसरी नारायण शुक्ल 'आधुनिक काव्यधारा,' पृ० ९१ से उद्धृत।

'April Fools' लिखा हुआ पाया।[1] अपने पत्रो पर भी अकसर वे 'Forget me not' 'To love is heaven and heaven is love' जैसे सिद्धान्त-वाक्य लिख दिया करते थे।[2] अपने पत्रो के ऊपर, कभी कभी वे, अंग्रेजी की शैली के अनुसार 'Reply soon, 'Urgent' तथा 'Love' के लिए 'उत्तरशीघ्र' 'जरूरी' तथा 'प्रेम' आदि शब्द लिख देते थे[3] अयोध्या प्रसाद खत्री ने, अपने ग्रन्थ 'खडी बोली का पद्य' (१८८६) मे, यह दिखाने के लिए कि भारतेन्दु जी अंग्रेजी के शब्दो का कितना अधिक प्रयोग किया करते थे, उनके जीवन के अन्तिम क्षणो से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रसग प्रस्तुत किया है

"...६ जनवरी सन् १८८५ ईस्वी प्रात काल के समय जब भीतर से बीमारी का हाल पूछने के लिए मजदूरिन आई तो आपने कहा कि जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया-नया छप रहा है, पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खासी की, सीन हो चुकी, देखे लास्ट नाइट कब आती है।"[4]

बालकृष्ण भट्ट

हिन्दी-भाषा को अंग्रेजी प्रभाव प्रदान करने मे, बालकृष्ण भट्ट ने, अधिकाश मे 'हिन्दी प्रदीप' नामक पत्रिका के माध्यम से कार्य किया था। इस पत्रिका का प्रकाशन १८७७ से प्रारम्भ हुआ था। अब तक हमने अंग्रेजी के शुद्ध तथा अनूदित शब्दो की जो सूचिया प्रस्तुत की है, वे इस पत्रिका के प्रकाशन-काल तक की ही है। इस समय तक हिन्दी भाषा ने, अंग्रेजी से जो शब्द ग्रहण किए थे, उनमे से अधिकाश, शासन व्यवस्था, शिक्षा सस्थाओ, वैज्ञानिक विषयो तथा नवीन सांस्कृतिक वातावरण से सम्बन्धित थे, किन्तु 'हिन्दी प्रदीप' के प्रकाशन के अनन्तर, हिन्दी भाषा मे जो अंग्रेजी शब्द ग्रहण किये गये, उन्हे और भी अधिक वर्गो मे विभक्त किया जा सकता है

(क) ब्रिटिश सस्थाओ से सम्बन्धित शब्द पार्लियामेंट, हौम आफ कामन्स, प्राइम मिनिस्टर, कजरवेटिव पार्टी, लिबरल पार्टी, रैडिकल पार्टी, पार्टी पालिटिक्स,

(ख) राजकीय सस्थाओ से सम्बन्धित शब्द हाई कोर्ट, प्रीवीकौन्सिल, जूडिशल, क्रिमिनल, पीनल कोड, रूल, सेक्शन, सेड्शिन, कोर्ट आफ जस्टिस, जाइन्ट जज,

---

१—राधाकृष्ण दास 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'राधाकृष्ण दास ग्रन्थावली', पृ० ३६०

२—वही, पृष्ठ ४०६ तथा ४०८

३—वही, पृ० ४०८

४—अयोध्या प्रसाद खत्री 'खडी बोली का पद्य' (१८८६), पृ० ३१-३२

इन्गलिश वार, लोकल बार, एडवोकेट, अपील, कोर्ट फीस, डिगरी करनल, सार्जन्ट, लेफ्टीनेन्ट, मार्शल, पोलिस, कान्सटेबिल, सुपरिन्डेन्ट, इन्सपेक्टर, रेजीमेट, पलटन, राइफल, किर्च, क्विकमार्च, पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट, फारेन डिपार्टमेंट, सदर बोर्ड, बोर्ड आफ रेविन्यू, फाइनेन्शियल डिपार्टमेंट, कमसेरियट डिपार्टमेंट, अन्डर सेक्रेटरी, जाइन्ट सेकरेटरी, लाइसेंस, टैक्स, इनकमटैक्स, गजेटिड आफीसर्स कन्सरवेटर, पतरौल, इस्टाम डियूटी, साल्ट डियूटी, सिविल सर्विस, सिविल सर्वेन्ट, हैड क्लर्क, जूरिसडिक्शन टैकजेशन, गवर्नमेंट आरगन, सरकुलर, गजेटियर, बजट, रेकार्ड, रिमार्क, पेन्शन पेन्शनर, फैक्ट्री ऐक्ट, टैरिफ ऐक्ट,

(ग) अंग्रेजो द्वारा स्थापित संस्थाओ से सम्बन्धित शब्द रेलवे रेलवे स्टेशन, इस्टेशन मास्टर, ब्रेकवान, मेलवान, गार्ड, इन्जन ड्राइवर, टिकट, रिटर्न टिकट, पोस्ट ऑफिस पोस्टेज, इस्टाम्प, रजिस्ट्री, मनीआर्डर, लैटर, डैड्ल्यटर, लेटर बक्स, प्रेस पब्लिशर, प्रिन्टर आर्टिकिल, प्रूफशीट, कापी राइट, अन्य शब्द सेनीटरी कमिश्नर हाउस टैक्स, मेशीन, मेकेनिक, एनेक्शन, कम्पास, क्यूरेटर, लाइब्रेरियन, लीथोग्राफ, प्रोमेसरी नोट,

(घ) अंग्रेजो के साथ आई हुई नई वस्तुओ से सम्बन्धित शब्द [illegible] वारनिश, टाइप, लालटेन, लैम्प, बरान्डी, चुरुट, बिस्कुट, पाव रोटी गौन, लवेण्डर बैलून, टेलीफोन एलेक्ट्रिक लाइट, मैक्रोफोन सोडावाटर, रबर क्रिकेट, बाल, सर्कस कसर्ट, टकिंग वराप, जाकेट सोप, पाउडर,

(ङ) शिक्षा सम्बन्धी शब्द एडुकेशन डिपार्टमेंट, एग्लो वर्नाक्यूलर, प्रोफेसर, टीचर, मास्टर, ग्रेजुएट, इकजामिनेशन, बोर्ड, डिफिनीशन, पेन्सिल, बुक, प्राइमरी, जामिती, ग्रामर, इस्कालरशिप, रजिस्टर, इक, कापीग इक, डिक्शनरी, होल्डर, इच, फुट, मील,

(च) ज्ञान की विभिन्न शाखाओ से सम्बन्धित शब्द साइंस, किमिस्ट्री, मेडीकल साइंस, मिसमेरिज्म, एस्ट्रानोमी, थियासोफी, थियासोफिस्ट, पालिटिक्स, हिस्ट्री, यूरेनस, नेपचून सिटियर्स, शूटिंग स्टार,

(छ) भौगोलिक शब्द योरोप, आयरलैंड ग्रीस, रोमानिया, क्रीमिया, सर्विया, जर्मनी, आस्ट्रिया, हालैण्ड, बेलजियम, डेनमार्क, इटाली, स्पेन, फ्रांस, पुर्तगाल, आइसलैंड, माटीनीग्रो, मैनचेस्टर, पेरिस, ग्रीनविच, पाम्पाई सिमवन, माल्टा, एडन, वाशिंगटन, न्यूयार्क प्रादन, हेन्ना,

(ज) वैज्ञानिक शब्द आक्सिजन, आक्सीजन हैड्रोजन, कम्बस्चन, कार्बन, क्लोरीन, फासफरस, पोटाशियम, सैडियम मैग्नीशियम, क्रोमियम, माइक्रोस्कोप, नाइट्रोजन,

एअर पम्प, वाटर पम्प, क्रिस्टल कारबोनिक एसिड, कास्टिक सोडा, इस्टीम, इस्टीम इन्जन, थर्मामीटर, माईक्रास्कोप, डाइनमाइट,

(भ) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शब्द लेक्चर, थियेटर, नेशन, नेटिव, इस्पीच फैशन, सब्जक्ट, सिविलियन, लीडर, इन्डीविडुअल, प्रपोजल, रिजोल्यूशन, रिसर्च सोसाइटी, पेम्फलेट, लिटरेचर, क्रिटिक, नावेल, एसे, इस्टज, जुबली, रिफार्मर, ऐड्रस, पोजीशन, ट्रांसलेटर, वेटरहाफ, स्वीट हार्ट, इस्टाइल,

(ञ) नवीन भाव वाचक शब्द पब्लिक ओपीनियन, सेल्फरिस्पेक्ट, इन्सल्ट, लायल, लायल्टी, डिसलायल्टी, ड्यूटी, लिबर्टी, इनफीरियर, इम्पर्टनेन्ट, रीजन, होली, फ्री थिंकिंग, मारल करेज, प्रेजुडिस, सिम्पैथी, केआस, इस्पीरीचुअलइजिम, कम्पिटीशन, नेशनेलिटी, इम्मारल, रिफाइनमेंट, इस्टैन्डर्ड, प्रेस्टिज, पालीसी, डिप्लोमेसी, इस्टेट-मैनशिप, प्रिविलेज, रैडिकल, आइडियल्स, लव, फेट, चार्म, मेजारिटी, मैनारिटी, प्रेक्टिकल,

(ट) अन्य प्रकार के शब्द प्रिंस, टाइटिल, मिनिट, सेकिण्ड, फेमीन, कमीशन, ट्रेड, सैन्ट्रल, ग्रेड, इम्पोर्ट, डेपूटेशन, बेयरा (Bearer), इंशोरेन्स, लाटरी, हार्स रेस, मलेरिया, बोनस, वेन्टिनेशन, स्ट्रीट, वोटर, ट्रेडिंगकम्पनी, प्रोफेशन, गिलोटीन, स्लाटर हाउस, डिग्रीदार (Degree holders) डिसप्याच, एजेंट, नानसेंस, हम्बग,

अनुवादित शब्दों की संख्या और भी अधिक थी। उनकी वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है

(क) राजकीय संस्थाओं से सम्बन्धित शब्द जन्ट साहेब, (Joint magistrate) प्रधान मन्त्री तथा प्रधानामात्य (Prime minister), कोषाधिपति (Fianance minister), पारिषद वर्ग (Advisors), स्वाधीन हाता (Presidency), व्यवस्था (Law), प्रार्थना पत्र (Application), कोषाध्यक्ष (Treasurer), उदार सम्प्रदाय (Liberal party), राज्य प्रबन्ध (Administration), सैन्यदल (Regiments) प्रतिपालन (Execution),

(ख) नव स्थापित संस्थाओं से सम्बन्धित शब्द कार्यालय तथा कारखाना (Workshop), मालगाडी (Goods train), सवारी तथा मुसाफिर गाडी (Passenger train), रेलघर (Station), यन्त्रालय (Press), शिला-यन्त्र (Lethograph), त्वरित लेख (phonography), स्तम्भ (Column), हुन्डी पत्री के कारखाने (Banking Firms), सार्वजनिक गृह (Town Hall), पुस्तकालय (Library), पुस्तकालयाध्यक्ष (Librarian), संशोधन (Correction), नूतन तडित समाचार (Telegram), आत्मशासन (Self government), प्रदर्शिनी (Exhibition),

(ग) शिक्षा सम्बन्धी शब्द शिक्षा विभाग तथा विद्या विभाग (Education Department), रेखा गणित (Geometry), त्रिकोण (Triangle) चतुष्कोण (Rectangle), पचकोण (Pentagon), समकोण (Right angle), विषमकोण (Obtuse angle), साध्य (Theorem), मध्यम शिक्षा (Secondary education), उत्तम शिक्षा (High education), उत्कृष्ट शिक्षा (Higher education), हाजिरी (Roll call), सोख्ता कागज (Blotting paper), प्रवेशिका परीक्षा (Enterance examination), प्रशसा पत्र (Testimonial), प्रतिष्ठा पत्र (Certificate), प्रधानाध्यापक (Head of the department), उपाधि दान (Convocation),

(घ) ज्ञान की विभिन्न धाराओ से सम्बन्धित शब्द डाक्टरी (Medical science), विज्ञान शास्त्र (Science), पदार्थ विद्या (Physics), रसायन शास्त्र (Chemistry), रसायन शास्त्र विद् (Chemist), भूगर्भ विद्या (Geology) वृक्षायुर्वेद (Botany), कल की विद्या (Mechanics), आत्मचिकित्सा (Anatomy), आत्मचिकित्साविद्या विद् (Anatomist), प्राचीन विवरण ज्ञानी (Antiquarians), इतिहास तथा इतिवृत्त (History), इतिहास विद् (Historians) राज्य शासन की विद्या (Politics), भाषा विज्ञान (Science of language),

(ङ) भौगोलिक शब्द शान्त समुद्र (Pasific Ocean), त्रिकोण मण्डल (Delta), सामुद्रिक त्रिकोण मण्डल (Sea delta), नादेय त्रिकोण मण्डल (River delta), उल्का (Meteor), विषुव रेखा (Equator), स्थिर तारे (Fixed stars), केन्द्रीयाकर्षण शक्ति (Centrifugal Force), व्यास (Axis), धरातल (Plain), उत्तम आशा अन्तरीप (Cape of good Hope), महासागर (Ocean, गोलार्ध (Hemisphere), सौर मण्डल (Solar system),

(च) वैज्ञानिक शब्द तत्व (Elements), तत्व धातु रूप तथा अधातु रूप (Solids & Liquids), प्राण प्रद वायु (Oxygen), जलकर तथा जलकर वायु (Hydrogen), अगार तथा अगार तत्व (Carbon), हरित वायु (Chlorine), प्रकाशदा (Phosphorus), वातांकर्षण यन्त्र (Air pump), जलाकर्षक यन्त्र (Water pump), स्फटिक (Crystal), अगाराम्ल वायु (Carbonic acid-gas) वाष्प (Steam), वाष्पीय यन्त्र (Steam Engine), ताप (Heat), आकर्षण (Attraction), अणु Atoms, परिष्कृत मद्य (Racti fied spirite of wine), सयोग (Mixture), अश (Degree), स्वर्णबीज (Calcium), क्षार बीज (Potassium), मृद् बीज (Milicium), शून्य (Vacum), अनुवीक्षण यन्त्र (Micro scope), सयोजन (Cohesion), सयोजन जनित आकर्षण (Cohesive attraction), वियो-

जन (Repulsion), विद्युत (Electric), तेजाब (acid), यौगिक (Compound), मूल (Elementary), पदार्थ (Substance), सूक्ष्मवायु (Ether), कठिन तरल और वाष्पमय (Solid, liquid & steam), किरन्त पदार्थ (Rediant matter), प्रकाश विश्लेषणी यन्त्र (Spectroscope), प्रस्फुटक (Phosphorus), विकीर्ण (Radiant), रासायनिक शक्ति (Chemical force), रसायनिक क्रिया (Chemical process), आसमान के पिण्ड (Heavenlybodies), सम और विषम भेद (Positive and negative poles), सौर जगत (Solas system),

(ङ) मनोवैज्ञानिक शब्द मनोविज्ञान (Psychology), ज्ञान (Knowledge), मूर्ति विषयक तथा बहिर्जगत सम्बन्धीय (Objective), अमूर्त विषयक तथा अन्तजगत सम्बन्धीय (Subjective), प्रभा (Consciousness), मानसिक शक्ति (mental-power), ज्ञान की अवस्था (cognition or knowledge), भाव की अवस्था (feeling), धारण शक्ति (Retention), उन्नयन (Recollection), निष्क्रमण (Deduction), निष्पदण (Inauction), साधारण धर्म का निष्कर्षण करना (Generalisation), आभ्यंतरिक शक्ति (Mental energy), विचार शक्ति (Thinking Capacity), अभिज्ञात [Experience], ध्यान गम्य वस्तु [Conception], विचार शक्ति तथा विवेचना शक्ति (Conscience), मानसिक शक्ति (Mental capacity), वास्तविक (Real), कल्पित (Imaginary), हलचल (Agitation), पशुबुद्धि (Animal instinct), विवेक बुद्धि (Reason), प्रकृत ज्ञान (perception), बोध (Sensation),

(ज) साहित्यिक तथा सांस्कृतिक शब्द सभ्यता (Civilisation), असभ्य unciviliged), ऐक्य, एक्य तथा एकता (Unity), श्वेतांगी (White races), गौरांग (White people), सभ्य (Gentleman), स्थानिक तथा स्थानीय (Local), मध्यमश्रेणी (Middle class), श्वेत दीप (White islands), श्वेतपुरुष (Whitemen), सभ्य (Polite), सुनिति शिक्षा (Morality), पदार्थवादी (Materialist), स्मारक (Memorial), सम्मेलन (Conference), समागम तथा अधिवेशन (Session), सास्य तन्त्र तथा पदार्थवाद (Materialism), नागरिक (Citizen), अगुआ तथा अग्रगामी (Leader), बधाइयां (Congratulations), धन्यवाद (Thanks), स्थापक (Founders), संरक्षण (Patronage), प्रतियोगी (Competitor), प्रतियोगिता (Competition), अभिनन्दन पत्र (Address), मांगलिक स्वागत (Welcome), मान्यवर (Honourable), जातीय महा सभा (National Congress), पाठक वर्ग (Readers), संस्कार-कारक (Reformer),

पुनर्उद्घाटन (Revival), जाति (Race तथा Nation), अनियमवद्ध कविता Blankverse), इतिहासिक नाटक (Historical drama), कला उत्पादन Artistic Composition), पात्रो की व्यक्ति (Characterization), गुटका (Pamphlet), मुख्य नायक (Hero),

(क) भाववाचक शब्द जात्याभिमान (Self-respect), स्वदेशानुराग (Patriotism), स्वार्थ भ्र श तथा स्वार्थ हानि (Self-sacrifice), स्वच्छन्द अनुभूति (Free opinion), सहानुभूति (Sympathy), महा प्रलय (Chaos), साफल्य (Success), कुसस्कार (Prejudice), स्थिर (Stationary), योग्यता (Merit), सामयिक (Present), राजकीय (Political), सामाजिक (Social), तेजस्विता (Spirit), बुद्धि भ्र शक (Immoral), भोग लोलुप (Luxurious), स्वच्छन्दता (Liberty), आत्म निर्भरता (Self-dependence), स्वदेशानुरागी (Patriot), दु साध्य धर्म (Enterprise), प्रणवध (Contract), आविष्कृत (Invented), आत्मा का तत्व (Real-Self), स्वतत्रकर्त्ता (Liberator), अनुपात (Proportion), स्वच्छ (Transparent), नयेपन (Novelty), क्रम (Order), परिभाषा तथा उन्मापक (Standard) महार्वता (Scarcity), जातीय गौरव (National Prestige) सम्स्कार (Idea), व्यवहार (Practice), लागडाट (Competition), आत्म गौरव (Prestige), स्वत्व रक्षा (Previlage), राजनीतिक कुटिलता (Policy), राजनीति की काट छाट (Diplomacy), राज्यतत्व निपुणता (Statesnamship), जातीयता (Nationality), राजभक्त (Loyal), वाह्येन्द्रिय शक्ति (Bodily energies), निमित्त कारण तथा असूल (Principle), विद्रोह (Revolt), अराजकता (Anarchy), उपयोगिता (Ability), मनुष्यता (Humanity), कालातिक्रमण (Procrastination), प्रथकत्वाभिमान (Individuality) ।

इस स्थान पर, उन रचनाओ से भी कुछ उद्धरण देना आवश्यक प्रतीत होता है, जिनमे अ ग्रेजी के इन शुद्ध तथा अनुवादित शब्दो का प्रयोग हुआ था । अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा सकलित, 'खड़ी बोली का पद्य' (१८८६) नामक काव्य-सग्रह मे इस प्रकार की कई रचनाये हैं, जिनमे अ ग्रेजी शब्दो का प्रयोग बहुत अधिक है । इसी प्रकार की एक रचना की कुछ पक्तियाँ ह

रैन्ट लो का गम करें, या बिल ऑफ इनकम टैक्स का

Rent law　　　　bill of income-tax

क्या करें अपना नही है सैन्स राइट नाउ ए डेज ।
Sense right nowadays
फस गई जाने हमारी किस मुसीबत मे, एलास ।
alas
नीद तक आती नही है होल नाइट नाउ ए डेज ।
whole night now-a-days [1]

इस प्रकार की पंक्तियाँ, जिनमे अगरेजी शब्दो का प्रयोग बहुत बडी सख्या मे किया जाता था, व्यग तथा हास्य को प्रधानता देने वाले पत्र, 'अल पच' मे प्रकाशित हुआ करती थी। किन्तु इस पत्र की रचनाओ मे प्रयुक्त अग्रेजी शब्दो को हिदी भाषा मे ग्रहण किये गये शब्दो के रूप मे, स्वीकार नही किया जा सकता, क्योकि वे रचनाएँ जिनमे इनका प्रयोग होता था, स्थायी महत्व की नही थी। बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र, बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन', बालमुकुन्द गुप्त तथा अन्य लेखको की रचनाओ मे बहुत से अगरेजी शब्द, जो हिन्दी भाषा मे कालान्तर मे ग्रहण कर लिये गये, विशेष रूप से देखने को मिलते थे। बाल कृष्ण भट्ट को, इस प्रकार के शब्दो के प्रयोग की विशेष रुचि थी, जो उनकी रचनाओ के निम्नलिखित उद्धरणो से स्पष्ट है,

१. शाडिल्य ने जो कुछ निरे ख्याल थ्योरी मे रक्खा, उसको वल्लभाचार्य ने प्रेक्टिस करके दिखला दिया।[2]

२ नेशन मे नैशेनेलिटी जातीयता और आध्यात्मिक उन्नति स्पिरिचुआलिटी सदा चलती रहती है ।[3]

३ उतार चढी कम्पिटीशन मे तो केवल दौड धूप स्ट्रगल को बुरी न कहेगे ।[4]

४ . ...ऋगवेद मे डान उषा को देवी कह कर उसकी कमनीय कोमल मूर्ति के वर्णन मे कवित्व प्रतिभा को छोर तक पहुचा दिया है ।[5]

इन पक्तियो में एकाध स्थानो पर तो अग्रेजी शब्द का प्रयोग पूर्णत अनावश्क है अतिम वाक्य मे उषा के पहले डान शब्द इसी प्रकार का है ।

१—अयोध्या प्रसाद खत्री. 'खडी बोली का पद्य' (१८८९), पृ० १३
२—धनञ्जय भट्ट सम्पादित 'भट्ट निबन्धावली', भाग २, (१९४८), पृ० ४१
३—वही, पृ०९
४—वही, पृ० १२५
५—वही, पृ० ८२

अंग्रेजी के शुद्ध तथा अनुवादित शब्दो की, हिन्दी रचनाओ मे बढती हुई सख्या को देखकर, भाषा के क्षेत्र मे शुद्धतावादी, बडे चिन्तित हो उठे, और वे केवल अंग्रेजी शब्दो का ही नही, वरन् अरबी, फारसी आदि अन्य विदेशी भाषाओ के शब्दो के प्रयोग का भी, विरोध करने लगे। अपनी स्फूर्ति मे, उन्होने उन शब्दो का भी वहिष्कार प्रारम्भ कर दिया, जिन्होने हिन्दी भाषा का प्रकृत स्वरूप ग्रहण कर लिया था। किन्तु उनके इस प्रयत्न का, अयोध्या प्रसाद खत्री ने, जो उस समय, समस्त साहित्यिक रूपो के लिए खडी बोली के उपयोग का आन्दोलन चला रहे थे, बडा प्रबल विरोध किया था। उनका विचार था, कि जनता, विशेष रूप से मध्यम-वर्ग के लोग, अंग्रेजी शब्दो का प्रयोग किये बिना, अपना दैनिक कार्यक्रम बिल्कुल ही नही चला सकते, और अपने इस मत की पुष्टि के लिए उन्होंने 'अवध अखबार' में प्रकाशित एक वार्ता अवतरित की थी। उस वार्ता मे दो मित्रो के वार्तालाप मे यह दरसाया गया था कि अगरेजी न छोडने का निश्चय कर लेने के कारण, उनमे से एक सज्जन, प्रात काल अपने दातो को बुरुश से साफ नही कर सके, सिगार नही पी सके, न फिल्टर किया हुआ पानी ही ग्रहण कर पाये, न ब्रिटेन के बने हुए विस्कुट ही खा सके और न वाच अथवा क्लॉक से समय ही जान सके, जो कुछ वे चाहते थे, उसे उन्होने अपनी भाषा मे स्पष्ट करने का प्रयास किया, और जिसमे उन्हे असफलता हुई, किन्तु अपने प्रयत्नो से उन्होने अपने नौकरो तथा घर के लोगो के लिए तमाशा-सा खडा कर दिया। इस उदाहरण के द्वारा अयोध्या प्रसाद खत्री ने हिन्दी भाषा की शुद्धता के प्रचारको के सामने यह स्पष्ट किया कि अगरेजी शब्दो का प्रयोग, जनसाधारण के प्रतिदिन के जीवन यापन के लिए, आवश्यक हो गया है। उन्होने युग की अन्तार्धारा को भली प्रकार समझ लिया था, और जहां कही भी आवश्यक हो अंग्रेजी शब्दो के प्रयोग को उचित समझते थे।

अयोध्या प्रसाद खत्री ने हिन्दी भाषा मे अंग्रेजी के शब्दों को उनके शुद्ध रूप में अपनाये जाने के सम्बन्ध मे, सन् १८८९ के लगभग विशेष प्रयत्न किया था, और हम बालकृष्ण भट्ट के 'हिन्दी प्रदीप' मे, सन् १८७७ से लेकर १९०० तक अगरेजी के शब्दो का बहुत बडी सख्या मे ग्रहण देखते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि भाषा की शुद्धता के समर्थकों के विचार चाहे जितने भी पवित्र रहे हो, हिन्दी

१—अयोध्या प्रसाद खत्री 'खडी बोली का पद्य', पृ० १७—२२

२—परिशिष्ट 'क'

भाषा तथा साहित्य के क्षेत्र मे, उनका विशेष प्रभाव नही पडा था। फिर भी, इतना तो मानना ही पडेगा, कि उन्होने अग्रेजी शब्दो को शुद्ध रूप मे ग्रहण किये जाने का जो विरोध किया था, उसके फलस्वरूप, अनुवादित रूप मे ग्रहण करने की प्रवृत्ति, प्रारम्भ हो गई थी, और समय के प्रसार के साथ यह प्रवृत्ति और भी अधिक विकसित होती गयी।

नागरी-प्रचारिणी-सभा
(हिन्दी वैज्ञानिक कोष)

इस सस्था की स्थापना, सन् १८९३ मे, किस प्रकार हुई थी, इस सबन्ध मे, अग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराओ का विश्लेषण करते हुए, पहले ही लिखा जा चुका है। सन् १८९८ मे अपनी एक बैठक मे, इसके अधिकारियो ने, विभिन्न विषयो के विशिष्ट शब्दो का एक कोष प्रकाशित करने का निश्चय किया। प्रारम्भ मे, इस सम्बन्ध मे, एक उपसमिति बनाई गई, जिसने विचार विमर्श के अनन्तर, यह परामर्श दिया कि वेब्सटर के अग्रेजी भाषा के कोष से, भूगोल, गणित, नक्षत्र-विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, भौतिक विज्ञान, रसायन तथा दर्शनशास्त्र के विशिष्ट शब्दो का सग्रह किया जाय। जब विशिष्ट शब्द सगृहित कर लिये गये, और उनकी विषयानुक्रम, सूचियाँ तैयार हो गई, तो विभिन्न विषयो के विद्वानो को, उनके लिए, हिन्दी के शब्द निश्चय करने का कार्य सौंपा गया। यह कार्य भी १९०२ तक पूरा हो गया, और तब उसे सशोधन तथा परामर्श के लिए छपवा कर, विद्वानो के पास भेजा गया। नागरी-प्रचारिणी-सभा ने, सन् १९०३ मे, इस कार्य के पुनरावलोकन तथा सशोधन के लिए, विभिन्न विषयो के विद्वानो की एक समिति बनाई। इस समिति ने निम्न लिखित सिद्धान्तो के आधार पर कार्य प्रारम्भ किया

"१— पारिभाषिक शब्दो को चुनने के लिए उपयुक्त हिन्दी शब्दो को पहले स्थान दिया जाय।

२— इन शब्दो के अभाव मे मराठी, गुजराती, बगला और उर्दू के उपयुक्त शब्द ग्रहण किये जाय।

३— इनके अभाव मे पहले सस्कृत के शब्द ग्रहण किये जाय, तब अग्रेजी के शब्द रक्खे जाय और अत मे सस्कृत के आधार पर नये शब्द निर्माण किये जाय।"[1]

इस पुनरावलोकन तथा सशोधन के कार्य मे तीन वर्ष लगे, और तीस जून, १९०६ को आठ वर्षो के कठिन प्रयत्न के अनन्तर, 'हिन्दी वैज्ञानिक कोष' तैयार

१—श्यामसुन्दर दास 'मेरी आत्म कहानी', पृ० ४५-५५

हुआ।

इस कोष मे सगृहित शब्द, कुछ तो अग्रेजी के शुद्ध शब्द थे, और कुछ अनुवादित भूगोल के विशिष्ट शब्दो मे ४८१ अग्रेजी के शुद्ध तथा ६७५ अनुवादित शब्द थे, नक्षत्रविज्ञान शुद्ध ८१३, अनुवादित ६४८, अर्थशास्त्र, शुद्ध १३२०, अनुवादित २११५, रसायन, शुद्ध १६३८, अनुवादित २२१२, गणित, शुद्ध १२४०, अनुवादित १५२०, भौतिकविज्ञान, शुद्ध १३२७, अनुवादित १५४१, तथा दर्शनशास्त्र, शुद्ध ३५११, अनुवादित ७१६८। इस कोष का जो रूप, पुनरावलोकन तथा सशोधन के लिए भेजा गया था, उस मे ७४८३ शुद्ध अग्रेजी शब्द थे, और ११४७२ अनुवादित, किन्तु सशोधन के उपरात, उसके शुद्ध शब्दो की सख्या १०३३०, और अनुवादित शब्दो की सख्या १६२६६ हो गयी थी।

अंग्रेजी उपसर्गों का अनुवाद

रसायनशास्त्र के, अग्रेजी के विशिष्ट शब्दो के अनुवादित रूपो का निर्माण करते हुए, अग्रेजी के उपसर्ग तथा प्रत्ययो के भी, अनुवाद किये गये थे। एकरूपता के लिए अग्रेजी के निम्नलिखित उपसर्गों को हिन्दी मे इस प्रकार अनुवादित किया गया था

"A, An	= अ या अन,	as Anhyoxide	=	अनाद्र
Bi, Di,	= द्विव,	as Bisulphate, Disulphate	=	द्विवगन्धित
Hepta	= सप्त,	as Heptavalent	=	सप्तशक्तिक
Hexa	= षट,	as Hexavalent	=	षट शक्तिक
Hypo	= उप,	as Hyposulphite	=	उपगधायित
Meta	= मित,	as Metaphosphate	=	मित स्फुरित
Mono	= एक,	as Monoxide	=	एकाम्लजित
Octa	= अष्ट,	as Octavalent	=	अष्टशक्तिक
Ortho	= ऋजु,	as Orthophosphate	=	ऋजुस्फुरित
Penta	= पच,	as Pentasulphide	=	पचगन्धित
Per	= परि,	as Persulphate	=	परिगन्धित
Poly	= बहु,	as Polyatomic	=	बहुवर्णिक
Proto	= प्रति,	as Protosulphate	=	प्रतिगधित
Pyro	= मध्य,	as Pyrophosphate	=	मध्यस्फुरित
Sesqui	= स्यार्द्ध,	as Sesquioxide	=	स्यार्द्धमूलजिद
Sub	= अधि,	as Subchloride	=	अधिहरिद
Super	= अति,	as Superoxide	=	अत्यम्लजिद

Tetra	= चतुर,	as Tetraoxide	= चतुरम्लजिद
Tri	= त्रि,	as Trioxide	= त्र्यम्लजिद"[1]

अनुवादित प्रत्यय निम्नलिखित थे

"Ate	= इत,	as Carbonate	= कार्बनित
Ation	= करण,	as Oxidation	= अम्लजनीकरण
Et	= एत,	as Sulphuret	= गधेत
Ic	= क, इक	as Antimonic	= आजनिक
Ide	= इद,	as bromide	= ब्रमिद
Ine	= इन,	as Amine	= अमीन
Ite	= आयित,	as Arsenite	= लालायित
Myl	= इल,	as Chromyl	= क्रोमिल
Oid	= ओद,	as Alkaloid	= क्षारोद
ous	= स, अस,	as Ferous	= लोहस[2]

यह समस्त कार्य इसलिए किया गया था कि हिन्दी भाषा को उच्च कक्षाओ मे विभिन्न विषयो के लिए शिक्षा का माध्यम बनाया जा सके। इस दिशा मे यह पहला प्रयत्न था, और यद्यपि इसके बाद अब तक किये गये प्रयत्नो के फल-स्वरूप भी हिन्दी भाषा अभी इस योग्य नही हो सकी है कि वह विश्वविद्यालयो मे विभिन्न विषयो के लिए सफलता के साथ शिक्षा के माध्यम के रूप मे कार्य कर सके, तथापि यह तो स्वीकार करना ही पडेगा कि नागरी-प्रचारिणी-सभा द्वारा किये गये इस प्रारम्भिक प्रयत्न का, विशेष महत्व है।

'सरस्वती'

(१९०० से १९२० तक अपनाये गए अंग्रेजी शब्द)

सन् १८९९ मे, इलाहाबाद के इंडियन प्रेस के स्वामी, चिन्तामणि घोष ने, हिन्दी मे एक उच्चकोटि की पत्रिका के सम्पादन के सम्बन्ध मे, नागरी-प्रचारिणी सभा के अधिकारियो को लिखा। उनका प्रस्ताव स्वीकार किया गया, और उसी के फलस्वरूप सन् १९०० से, राधाकृष्णदास, कार्तिक प्रसाद, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', किशोरी लाल गोस्वामी, तथा श्यामसुन्दर दास के सयुक्त सम्पादकत्व मे, 'सरस्वती' का प्रकाशन आरम्भ हुआ। सन् १९०३ से, प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने इसके सम्पादन का भार ग्रहण किया। घोष बाबू का विचार था कि यह एक उच्च कोटि का प्रकाशन हो

१—श्यामसुन्दर दास 'मेरी आत्म कहानी', पृ० ५८

२—वही, पृ० ५८-५९

और प्रथम अक ने ही उनकी इस इच्छा को पूर्ण कर दिया। 'सरस्वती' वर्षो तक हिन्दी की प्रमुख पत्रिका रही। हिन्दी भाषा को इस पत्रिका 'सरस्वती' के माध्यम से भी अंग्रेजी के बहुत से शुद्ध तथा अनुवादित शब्द प्राप्त हुए। 'सरस्वती' के प्रमुख लेखक, जिनकी रचनाओ के माध्यम से, अंग्रेजी के शुद्ध तथा अनुवादित शब्द, हिन्दी भाषा मे आये, श्यामसुन्दर दास, मिश्र-बन्धु तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी थे, कुछ लेखक ऐसे भी थे, जो अमरीका तथा यूरोपीय देशो से, इस पत्रिका के लिए लेख भेजा करते थे, उनमे स्वामी सत्यदेव का नाम सर्व प्रमुख है। उन्होने, अमरीका के सामाजिक जीवन के सम्बन्ध मे, कई लेख तथा कुछ कहानियो के अनुवाद प्रकाशित कराये थे। इस प्रकार की रचनाओ से भी हिन्दी भाषा मे अंग्रेजी के कुछ शब्द अपने शुद्ध तथा अनुवादित रूपो मे आये।

यदि 'सरस्वती' पत्रिका के जनवरी, १६०० के प्रथम अक से लेकर प्रस्तुत अध्ययन की अवधि दिसम्बर १६२० तक के सभी अको को देखा जाय तो हमे उसमे, साहित्यिक, भाषा सम्बन्धी, ऐतिहासिक, सामाजिक, राजनैतिक, अर्थ-शास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक-पुरातत्व-विज्ञान तथा अन्य सभी प्रकार के विषयो की रचनाएँ देखने को मिलेगी। इन्ही रचनाओ के माध्यम से हिन्दी मे बहुत से अंग्रेजी शब्द आये। इस काल की अन्य पत्र-पत्रिकाओ तथा स्वतन्त्र साहित्यिक रचनाओ के माध्यम से भी, बहुत से अंग्रेजी शब्द हिन्दी मे आये। इस प्रकार आये हुए अंग्रेजी के शुद्ध शब्दो की वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है

[क] सामान्य शब्द पार्क, डिवीजन, कैनट्नमेंट, सिटी, वेटिंगरूम, प्लेट फार्म सिगल, पैसेन्जर, सेनीटोरियम, सम्मन, पियानो, डिग्री, एलेक्ट्रो टाईपिंग, कापी राइट टाइटिल-पेज, हाफटोन, नोट्स, हाईड्रोप्याथी, अलार्म, पोर्ट-मैंटो, रिजर्व, रिसर्च, अरोरा बोरियालिस, पैकेट, पार्सल, बन्डल, पेटेन्ट, पेन्डुलम, मील, टारपीडो, एडमिरल, पोर्ट, सर्च लाइट, जिप्सी, बायोग्राफर, फोनोग्राफ, सीनरी,

[ख] वैज्ञानिक शब्द बैटरी, डाइनमो, रेडियम, यलेक्ट्रोन, यूरेनियम, रेटिना, येलेक्ट्रास्कोप, एक्सरेज, फीजियालोजी, मैकेनिज्म, इस्पेट्रम, अनालिसिस, फोसिल्स,

[ग] फोटोग्राफी मे सम्बन्धित शब्द फोटोग्राफी, क्यामेरा, तथा केमरा, लेन्स, वेलेन्टाइप, हेलोग्राफी, प्लेट, ड्राइप्लेट, फोटो, फोटोग्राफर, नेगेटिव, एक्सपोज, फिल्म, मरकरी, बनोराइड, ग्रेन, ग्राउ स, डेवलप, डेवलपर, वार्निश, रिटच, रिटचिंग, शेड, लाइट, ग्लास, डार्क रूम, ब्याक ग्राउण्ड, टेबिल, ब्रोमाइड, ग्रोपलस, पेपर, एनलार्जमेंट फारमूला, ड्राम, हाइपोवाथ, डिश, वाटरप्रूफ, पोर्ट्रेट्स, केमिकल फाग, ग्रीनफाग मनफली फाग, पोटास, फीनिंग, मीडियम,

[घ] राजनीतिक अर्थशास्त्र से सम्बन्धित शब्द पोलिटिकल एकानामिक्स लेबर, प्रोडक्टिव लेबर, अनप्रोडक्टिव लेबर, वेजिज, एक्सचेंज, कोआपरेटिव सोसाइटी,

[ङ] दार्शनिक शब्द यूटीलीटेरियनइज्म, इवाल्यूशन, रिलेटिव, एब्सोल्यूट आइडियनइज्म।

यह सम्भव है कि उस काल की पत्र-पत्रिकाओं तथा स्वतन्त्र रचनाओं में अंग्रेजी से लिये गए कुछ और शब्द खोजे जा सकें, किन्तु उनकी संख्या बहुत अधिक नहीं होगी, क्योंकि, अंग्रेजी शब्दों को अनुवादित रूप में ग्रहण करने की प्रवृत्ति अब तक बहुत दृढ़ हो चुकी थी। यही कारण है कि इस काल की 'सरस्वती' तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में अंग्रेजी के शुद्ध शब्दों से अनुवादित शब्दों की संख्या बहुत अधिक है।

अनुवादित शब्दों की वर्गीकृत सूची निम्नलिखित है

[क] सामान्य शब्द स्वास्थ्य निकेतन [Sanatorium] बाग [Park], छावनी [Cantonment], प्रान्तिक [Provincial], आवेदन-पत्र तथा प्रार्थना पत्र [Application], प्रबन्ध विभाग [Administration department], सूचना पत्र [Notice], संशोधन [Amendment], संक्षेप चिह्न [Short hand], जल चिकित्सा [Hydropathy], शस्त्राघात तथा शस्त्रोपचार [Operation], झिलमिलियाँ [Ventilators], लटकन [Pendulum], अकस्मात [At once], पदत्याग [Resignation], प्राण संहारक यन्त्र तथा प्राण नाशक यन्त्र [Guillotine], सन्निपात [Delirium], अवैतनिक [Honorary], भूमि प्रदेश [Landscape] समकालीन तथा समसामयिक [Contemporary], ढोलन [Roller], स्वाधीनता [Liberty], दिनचर्या [Daily Routine], फुटकर [Miscellaneous], भत्ता [Allowance], ठिकाना [Address], लोक संख्या [Census],

[ख] शिक्षा सम्बन्धी शब्द विद्यालय [School], विद्या भवन [College] अध्यक्ष [Principal], क्रीडा क्षेत्र [Play-ground], नायक [Captain], समुदाय [Group], व्याख्यान [Lecture],

[ग] वैज्ञानिक शब्द बिजली के धक्के [Galvanic shocks], प्राणप्रद अंश [Oxygen], दूषित वायु [Carbonic acid gas], पदार्थ विज्ञानी [Naturalist], शरीर शास्त्र [Anatomy], वैद्युतिक अणु [Electrons], प्रकाश प्रभाव हीन [Opaqe], किरण तथा रश्मि [Rays], श्वास गृह [Respiratory chamber], घटक [Cells], हयकल [Plug], क्षिति [Solid], जल [Liquid], तेज [Gaseous], वायु [Ether], व्योम [Etheron], तड़ित लहरी [Electric-woves], संग्राहक

[Positive], अभिमारक [Negative,], तन्तु [Tisshe],प्रकार्यालय [laboratory],

[घ] फोटोग्राफी से सम्बन्धित शब्द आलोक चित्रण [Photographhry] द्विभुजाकार काच [Convex gliss], अंधेरे घर [Dark chambers तथा Camera obscura], यक्षारीय रौप्य [Nitraite of Silver], स्थायी [Fixed], तिमिरावरी [Camera], दृष्टि वैज्ञानिक [Optician], अंकित तथा मुद्रित [Print], धुंधलापन [Fog], रसायनिक धुंधलापन [Chemical fog], हरा धुंधलापन [Green fog], अंधकार गृह [Dark tent], छाया और आलोक [Shade & light], शीशे का रोशनीदार मकान [Glass light room], शीशे का घर [Glass room], आलोक गृह [Light room], अभ्यास [Practice], शिल्पी [Artist], आलोक चित्रकार [Photographer], तिरछे भाव [Sideways], स्वाभाविक भाव [Unnatural pose], वर्धित चित्र [Enlargement], आलोकित [Expose],

[ङ] अन्तर्राष्ट्रीय नियमों से सम्बन्धित शब्द पारस्परिक राजधर्म [International Law], दण्ड संग्रह तथा दण्ड शास्त्र (Penal code), स्वतन्त्र सागर [High seas], शक्ति [Power], रियासत [State], राजदूत [Ambassodor], वर्जित [Banned], जलयान ग्रहण [Embargo], छीना छोरी [Repressal], शान्ति मे घेरा [Peace ful Blockade], युद्धकर्त्ता शक्ति [Warring power], अयुद्धकर्त्तायिक्ति [Nonwarring power], नियम [Rules], शत्रु रियासत [Enemy State], उदासीन [Neuteral], अधिकार [Right], निश्चित [Conditional], अनिश्चित [Unconditional], बलशाली [Powerful], व्यक्तिगत लूट [Privateer ing],

(च) नौसेना सम्बन्धित शब्द बन्दर [Port], युद्ध सामग्री [War-material], युद्धपोत तथा संग्रामपोत [Battle Ships], विनाशक [Destroyer], रण नौका [Battle Ships], रक्षित रणसेना [Reserved armoured Cruisers], जल सेनाधिपति [Admiral],

(छ) भूगोल से सम्बन्धित शब्द गोला [Globe], अक्षांश [Latitude], रेखांश [Longitude], अंश [Degree], पृथ्वी की कक्षा [Earth's orbit], क्रांति वृत्त [Orbit], मेरु सन्निहित देश [Arctic regions], मेरुज्योति [Aurora Borealis], ध्रुवदर्शक सुई [Magnetic needle], विषुव वृत्त [Equator line] नताश [Magnetic dip], चुम्बकीय तूफान [Magnatic Storm],

(ज) अर्थशास्त्र, व्यापार तथा वाणिज्य से सम्बन्धित शब्द अर्थशास्त्र तथा सम्पत्तिशास्त्र [Political economy], श्रम तथा मेहनत [Labour], उत्पादक श्रम

मुख्य पात्र (Chief character,) गति (Movement), शब्दाडम्बर चित्र तथा शब्द चित्र (Word painting), वृत्तान्ताख्यान (Details), शीघ्रगामी वाक्य (Rapid sentences), उत्तेजना (Stimulation), विचित्र (Striking), सार्वलौकिक भाव (Universal idea), जाति निर्देश (Generalization), व्यक्ति (Individual), लक्षण तथा परिभाषा (Definition), सघटन (Combination), प्रतिनिधि तथा नियोजक (Factors), स्थिति के प्रधान (Underline), सादृश्य (Like), असादृश्य (Unlike), स्पष्टता (Clearness), प्रभावोत्पादक शक्ति तथा ओज (Force), लालित्य (Elegance), लालित्यकला विशिष्ट गुण (Aesthetic quality), यथार्थ (Accuracy), सापेक्ष (Relative), वचन (Expression), सदिग्धार्थक (Ambiquiety), अनिश्चय (Vagueness), अनिश्चित (Vague), अव्यक्त (Obscure), अव्यक्तता (Obscurity), हार्दिक सम्वेदना (Feeling), यान्त्रिक (Mechanical), चित्रोपम (Picturesque), आकार (Form), निष्कर्ष (Substance), ध्वनि (Tone), ताल (Rhythm), तुल्यता (Balance), धारा प्रवाह (Smooth flowing), विचार (thought), भाव (Feeling), अक्षारान्तर (Transliteration), भाषान्तर (Translation) ।

(ज) प्रेस तथा सम्पादन कार्य से सम्बन्धित शब्द दफ्तर की स्थिति स्थापकता (Office Establishment), विज्ञापन विभाग (Advertisement department), शोधन (Proof reading), सम्पादकीय लेख (Editorial), स्वत्वरक्षण (Copy right), सस्करण तथा आवृत्ति (Edition), आवरण पृष्ठ (Title page), प्रकाशक (Publisher) ।

इस स्थान पर अंग्रेजी की कुछ व्यक्तिवाचक सज्ञाओ के हिन्दी अनुवादो का उल्लेख भी मनोरञ्जक होगा । प्रसिद्ध अंग्रेज राजनीतिज्ञ Gladstone का रूपान्तर एक स्थान पर आनन्दरत्न किया गया था । इसी प्रकार डेनियल डेफो के 'रॉबिंसन क्रूसो' के एक हिन्दी अनुवाद मे Friday, व्यक्तिवाचक सज्ञा को, शुक्रवार अनुवादित किया गया था । इस प्रकार के प्रत्यन श्लाघनीय तो नही कहे जा सकते, किन्तु ये उस प्रवृत्ति को स्पष्ट करते हैं, जिसके अनुसार, अंग्रेजी शब्द अपने शुद्ध रूप मे अधिक, अनुवादित रूप मे ग्रहण किये जाने लगे थे । इस काल मे हिन्दी भाषा अंग्रेजी शब्दों को उनके शुद्ध तथा अनुवादित रूपो मे कितना अधिक ग्रहण कर रही थी, यह निम्न अवतरणो मे स्पष्ट है

"(१) आज लोगो ने कवित्व और पद्य को एक ही चीज समझ रक्खा है । यह

भ्रम है। कविता और पद्य मे वही भेद है जो अंग्रेजी के पोयटरी और वर्स मे है।"[1]

(२) "वैज्ञानिको का सिद्धान्त है कि आदि जीवन-तत्व या प्राण-रस प्रोटो-प्लाजम का एक टुकडा, जिसे हम आदि जीव या जीवाणु प्रोटो-जोआ कह सकते हैं, पहले अपने सब अंगो से सब कार्य करता है।"[2]

(३) "व्यंजकता लाने के लिए जरूरी है कि विशेष भाव बोधक स्पेसिफिक शब्दो का प्रयोग किया जाय, अमूर्त एब्सट्रेक्ट शब्दो मे यह गुण कम पाया जाता है।'[3]

हिन्दी भाषा के शब्द-समूह पर, अंग्रेजी प्रभाव ने किस प्रकार कार्य किया है, इसके सम्बन्ध मे, अब कुछ निष्कर्ष दिये जा सकते है। अंग्रेजी भाषा के जो शब्द, अपने शुद्ध रूप मे ग्रहण किये गये, उन्हे हम तीन वर्गो मे विभक्त कर सकते है। प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वे शब्द आते है, जिनका प्रयोग केवल एक दो बार ही हुआ था, और फिर उनके स्थान पर, यहाँ के ही बने हुए शब्द प्रयोग मे आने लगे, दूसरा वर्ग उन शब्दो का है, जो बहुत समय तक प्रयोग मे आते रहे है, और अभी और भी, प्रयोग मे आयेगे, किन्तु आगे चल कर उनके स्थान पर यहाँ के ही बने हुए शब्द प्रयोग मे आने लगेगे, तथा तृतीय वर्ग उन शब्दो का है, जिनका प्रयोग उस समय तक रहेगा, जब तक हिन्दी भाषा चलेगी। अनुवादित शब्दो के भी तीन वर्ग है प्रथम वर्ग मे वे शब्द आते है, जो अंग्रेजी शब्द के भाव को पूर्णत प्रकट न कर सकने के कारण, प्रचलित नही हो सके, दूसरा वर्ग उन शब्दो का है, जो बहुत शिथिल थे और अपने आप ही, जिनका प्रयोग बन्द हो गया, तथा तृतीय वर्ग, उन शब्दो का है, जो अपने जन्म काल मे ही प्रयोग मे आते रहे है और भविष्य मे भी प्रचलित रहेगे। अंग्रेजी से ग्रहण किये गये, शुद्ध तथा अनुवादित शब्दो ने, नवीन भावो की अभिव्यक्ति के लिए, हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति की बहुत अधिक अभिवृद्धि की है। हिन्दी भाषा मे अंग्रेजी शब्दो को उनके शुद्ध तथा अनुवादित रूपो मे ग्रहण का क्रम अब तक चल रहा है, और सम्भवत अभी कुछ और वर्षो तक चलता रहेगा।

२—शब्दावलियाँ, मुहावरे तथा कहावते

हिन्दी भाषा ने अंग्रेजी से बहुत से शुद्ध तथा अनुवादित शब्द ग्रहण करने के साथ-साथ कुछ शब्दावलिया, मुहावरे तथा कहावते भी ग्रहण की है। यह ग्रहण अपने

१—महावीर प्रसाद द्विवेदी 'रसज्ञ रञ्जन', पृ० ३९

२—डॉ० हीरालाल संपादित 'गद्य कुसुमावली' मे श्यामसुन्दर दास का निबन्ध 'साहित्य और समाज', पृ० १३७

३—स्वामी सत्यदेव परिव्राजक 'लेखन कला', पृ० ७४

शुद्ध रूप मे नही, वरन् अनुवादित रूप मे हुआ है। अंग्रेजी से अनुवादित शब्दावलियाँ वर्गीकृत रूप मे इस प्रकार है —

(क) सामाजिक व्यवहार से सम्बन्धित शब्दावलियाँ सुप्रभात (Good-morning), करमदन (Shake hand), नवयुग्म पर्यटन (Honey moon), शुभपरामर्श (Good advice), मन की दृढता (Presence of mind), दृष्टि, सम्मति तथा विचार विन्दु (Point of view), दृष्टिकोण (Angle of vision), सामाजिक सम्मान (Social status), स्वास्थ्य भवन (Health resort], वायुपरिवर्त्तन (Change of climate), जीवन होड प्रावल्य (Struggle for life), सामाजिक बन्धन (Social ties), साधारण बुद्धि तथा साधारण ज्ञान (Common sense), सर्व साधारण का महज लाभ (common interest) स्वार्थ भ्रंश, स्वार्थहानि तथा आत्म त्याग (self sacrifice), खुदमुखतार तबियत (Independent spirit), साम्प्रदायिक जोश (Party feeling),

(ख) विभिन्न संस्थाओ से सम्बन्धित शब्दावलिया स्वायत्त शासन (Local self government), नियम बनाने वाली सभा (Legislative Council), प्रतिनिधि शासन तथा प्रतिनिधि सत्तात्मक राज्यसत्ता (Representative Government), काय कारिणी सभा तथा काय सचारिणी सभा (Executive Committee),

(ग) साहित्यिक तथा सास्कृतिक शब्दावलिया साहित्य समालोचना (Literary Criticism,) शब्द मालिका (Series of words), शब्द समूह (Group of words), विचार-क्रम (Continuity of thought), विहगम दृष्टि (A bird's eye view), इसाफ पसन्द (Justice loving), सर्वतोन्मुखी (All round), मातृ-भाषा (Mother tongue), देश व्यापक भाषा (Lingua franca), जातियो का अनूठापन (National Character), बडे बोल (High sounding), सुसंस्कृत समय (Classical stage), उत्कृष्टता की माप (Standard of excellence), समय मान के भाव (Spirit of the times), नव जीवन विज्ञान (The science of new life), शीघ्रगति लेख (Short hand writing),

(घ) व्यापार तथा वाणिज्य मे सम्बन्धित शब्दावलिया स्वतन्त्र वाणिज्य (Free trade), लाभदायक व्यवसाय (Lucrative trade), यथोचित स्पर्द्धा (Fair competition),

(ङ) सामान्य शब्दावलिया जान माल की रक्षा (Security of life and property) स्फटिक सा उज्जवल (Crystal clear), रक्तातप (Red hot) समाज का परिश्रम विभाग तथा क्रिया विभाग (Division of labour), सामाजिक नियम (Social laws),

हवामहल (Castle in the air)।

अंग्रेजी से ग्रहण की गई कुछ शब्दावलियो को इस भाषा से ग्रहीत शब्दो की सूचियो मे भी स्थान मिल चुका है।

मुहावरो का विकास, प्रत्येक भाषा मे, अपनी निज की प्रकृति के अनुसार होता है। सामान्यत अन्य भाषाओ से इन्हे ग्रहण नही किया जाता, किन्तु हिन्दी भाषा ने, सम्भवत अन्य भाषाओ के साथ अपने निकट सम्पर्क के कारण, उनके बहुत से मुहावरो को भी ग्रहण कर लिया है। डॉ० हरदेव बाहरी ने, हिन्दी भाषा पर फारसी प्रभाव का अध्ययन करते हुए, फारसी से गृहीत मुहावरो की एक लम्बी सूची दी है। अंग्रेजी से ग्रहण किये गए मुहावरो की सख्या यद्यपि बहुत अधिक नही है, किन्तु उन्होंने भी हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति की पर्याप्त वृद्धि की है, और इसी दृष्टि से उनका महत्व है।

अंग्रेजी मे ग्रहीत सर्वाधिक प्रचलित मुहावरे हैं तदनन्तर (After that), कालान्तर (After some time), आज्ञा के बमूजिब तथा आज्ञानुकूल (According to orders), नियमानुसार (According to Rule), साधारणत तथा साधारणतया (Generally), विशेष कर (Specially), पूर्वोक्त तथा उपरोक्त (Above said), क्रमश (Continued from the last issue), प्रथम तो (Firstly), दूसरे (Secondly), सम्बन्धीय (Concerning), प्रबन्ध से (By arrangement), विशेष (greatly), अनुग्रहीत कीजिए (Oblige), आपका सदा सच बोलने वाला (Yours truly), आपका शुभ चिन्तक (Your well wisher), दिन का प्रकाश देखा (Saw the light of the day), उसके साथ-साथ (To gether with it), जैसा कि वह है (As it is), दूसरी ओर (On the other hand), निम्नलिखित (Following)।

कहावतो मे चाहे वे किसी भी भाषा की हो सर्वमान्य अथवा सर्व स्वीकृत सत्य निहित होते है। इस प्रकार की कहावतें प्रत्येक भाषा मे देखने को मिलती है, और जहा तक उनके उद्गम का प्रश्न है, उनमे से बहुत सी परम्परा से ग्रहण की जाती है, और शेष उस भाषा के साहित्यकारो अथवा साधारण वक्ताओ द्वारा प्रचलित की जाती है। जिस भाषा का साहित्य विस्तृत काल तक विकसित होता रहता है, उसमे परम्परा से, गृहीत कहावतो से, साहित्यिक रचनाओ मे प्राप्त कहावतो की सख्या अधिक होती है। हिन्दी के लेखको ने, अग्रेजी के शब्दो, शब्दावलियो तथा मुहावरो के साथ-साथ उस की कुछ कहावतो को भी अपनी रचनाओ मे यदा-कदा अनुवादित रूप मे ग्रहण किया है।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ तथा स्वतन्त्र साहित्यिक रचनाओ मे, प्रस्तुत अध्ययन की अवधि तक, निम्नलिखित अंग्रेजी कहावतो का, अनुवादित रूप मे प्रयोग मिलता है

1	Rome was not built in a day	१	दिल्ली शहर एक ही दिन मे नही तैयार हुआ था। १८७७
2	Love is the root cause of all evils	२	सब बुराइयो की जड इश्क है। १८७७
3	Man is a descendent of ape	३	आदमी वन्दर की औलाद है। १८७७
4	Nature abhors vacum	४	प्रकृति शून्य से घृणा करती है। १८७८
5	God helps those who help themselves	५	वे जो विना किसी की सहायता के धुन बाध के अपने प्रयोजन मे त पर रहते ह उनका ईश्वर सहायक होता है। १८७६
6	I think, therefore I am	६	मै हूं, क्योकि मैं अपने को सोच सकता हूँ। १८७६
7	As is the God so is the worshipper	७	जैसी रूह वैसे फरिस्ते। १८७६
8	Every tree is known by its fruits	८	हर एक पेड अपने फलो से पहचाने जाते है। १८६६
9	More haste less speed	९	अति उतावली मन्द गति। १८८०
10	Might is right	१०	जवरदस्त का ठेगा सिर पर। १८८०
11	Honesty is the best policy	११	दियानतदारी उम्दा हिकमत है। १८८०
12	Sickness of wisdom	१२	समझदारी वेइलाज वीमारी है। १८८०
13.	All that glitters is not the gold	१३	जो चमकत सो सुवरन नाही। १८८०
14	Man is born to wage war against the empire of falsehood and insincerety.	१४	मनुष्य का जन्म ही उस निमित्त हुआ है कि वह मिथ्या और पाखंड के साम्राज्य के विरुद्ध सदा वैर भाव

			रक्खे और लडा करे। १८८१
15	To err is human, to forgive Devine	१५	भूल करना मनुष्य का स्वभाव है परन्तु उसको क्षमा करना ईश्वर का गुण है। १८८४
16	An honest man is the noblest work of God	१६	एक प्रामाणिक मनुष्य ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट कृति है। १८८४
17	Liberty is gift which not even God can give	१७	स्वच्छन्दता खुद अपने बाहुबल से पैदा की जाती है। १८८४
18	Unity is strength	१८	समुदाये शक्ति। १८८५
19	Let the past bury its dead	१९	पिछली बातो को छोडो। १८८५
20	Jack of all trades master of none	२०	रोटी कमाय पेट भर लेने को थोडा, सब सीख रक्खा है पर पूरे एक मे भी नही। १८८६
21	As civilization increaseth, muses decrease	२१	ज्यो-ज्यो सभ्यता का विकास होता जाता है पद्यमयी सरस्वती क्षीणता की दशा को आती जाती है। १८८८
22	Simple living and high thinking	२२	साधारण जीवन उत्कृष्ट विचार। १८९०
23	Necessity is the mother of inventions	२३	दरिद्रता की पराकाष्ठा मे समझ बढती है। १८९६
24	Action is a language that never errs	२४	क्रिया वह भाषा है जिसके अभिज्ञान मे कभी भूल ही नही होती। १९०३
25	An idle mind is Satan's workshop	२५	निष्क्रिय मन शैतान का कार्यालय है। १९१०
26	Righteousness exalteth a man	२६	केवल धर्म ही जाति को उन्नत करता है। १९११
27	Out of sight, out of mind	२७	आखो से दूर हो जाने पर मन से भी दूर हो जाता है। १९१६
28	Style is the man himself	२८	लेखन शैली लेखक का अपना स्वरूप है। १९१६
29	There is nothing new under	२९	सूय मण्डल मे कोई बात नयी नही

	the sun		है। १६१६
30	Look before you leap	३०	कूदने के पहले खूब देख भाल लो। १६१६
31	The art of boring people is to tell everything	३१	दुनिया भर की बाते ठूँस देना ही श्रोताओ को उबा देने का साधन है। १६१८
32	Condensation is a safer process than expansion	३२	विस्तार से बाते कहने की अपेक्षा थोडे मे बाते करना अधिक नीति सगत है। १६१६
33	I call a spade a spade	३३	मैं तो कुल्हाडा को कुल्हाडा कहता हू। १६२०

कुछ रचनाओ मे अग्रेजी की कहावते, अनुवादित रूप मे नही, वरन मौलिक रूप मे मिलती है। इस प्रकार की कुछ कहावते हे

1 Fools' make feast and wise men eat [१]

2 Two is company three is none [२]

3 Love is heaven and heaven is love [३]

किन्तु इस प्रकार के प्रयोग अधिक देखने को नहीं मिलते। अधिकाश लेखको ने अग्रेजी की कहावतो को रूपान्तरित करके ही प्रस्तुत किया है।

अग्रेजी की शब्दावलियो, मुहावरो तथा कहावतो के ग्रहण से हिन्दी भाषा को विशेष लाभ हुआ है। अग्रेजी शब्दो के उनके मौलिक तथा अनुवादित रूप मे ग्रहण से जिस प्रकार हिन्दी भाषा को, नवीन भावो को अभिव्यक्त करने की शक्ति प्राप्त हुई थी, उसी प्रकार मुहावरो आदि के ग्रहण ने भी उसकी अभिव्यञ्जना शक्ति की अभिवृद्धि की तथा उसमे नवजीवन का सचार किया।

व्याकरण

व्याकरण, भाषा-विशेष के बोलने तथा लिखने के नियमो की सैद्धातिक विवेचना है। इसीलिए किसी भाषा के व्याकरण की रचना उस समय होती है, जब वह पर्याप्त विकसित होने के अनन्तर कुछ व्यवस्थित तथा परिमार्जित हो जाती है।

१—'हिन्दी प्रदीप', खण्ड ७, सख्या ११, पृ० २४

२—वही, खण्ड ८, सख्या ६, पृ० २०

३—वही, खण्ड ८, सख्या ११, पृ० १५

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी भाषा मे, अधिकाश मे काव्य-रूपो का ही विकास हुआ था। गद्य रचनाये भी लिखी गई थी, किन्तु उनमे, भाषा का रूप, बहुत शिथिल तथा अव्यवस्थित था। इसीलिए उस समय तक हिन्दी भाषा का कोई व्याकरण नही लिखा गया था, और न उसके सही बोलने तथा लिखने के नियमो का ही निर्धारण हुआ था।

अंग्रेजो ने जब उत्तर भारत के कुछ भागो पर अपना साम्राज्य स्थापित कर लिया, तो उन्हे इस क्षेत्र की भाषाओ के बोलने तथा लिखने के नियमो को समझने की अपेक्षा प्रतीत हुई। किसी भाषा को सीखने के लिए उसके व्याकरण को भली प्रकार समझना आवश्यक होता है। उत्तर भारत की बगाली, बिहारी, हिंदी, उर्दू तथा अन्य प्रचलित भाषाओ के व्याकरणो की रचना तब तक हुई ही नही थी। उनके लिखने तथा बोलने के नियम, अभी तक निश्चित नही किये जा सके थे, इसलिये, अंग्रेजो को स्वय, इस कार्य को अपने हाथो मे लेना पडा।

अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न धाराओ की विवेचना करते हुए, कलकत्ते के 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के कार्य का उल्लेख किया जा चुका है। इस कॉलेज की स्थापना, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हितो की रक्षा के लिए, इग्लैंड से नये आये नवयुवको को, भारतीय भाषाओ तथा अन्य आवश्यक विषयो की शिक्षा प्रदान करने के लिए, हुई थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने, उस समय तक, एक राजनीतिक शक्ति का रूप प्राप्त कर लिया था, और हिन्दी-प्रदेश का कुछ भाग भी उसके राजनीतिक प्रभाव के अन्तर्गत आ गया था। इस कारण अंग्रेजो को हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने की भी आवश्यकता हुई। अंग्रेज, उस समय, हिन्दुस्तानी को ही, हिन्दी-प्रदेश की भाषा समझते थे। यदि अंग्रेजो द्वारा उस समय लिखी गयी, हिन्दुस्तानी की रचनाओ को देखा जाय, तो उनमे हमे हिन्दी के अपने विशुद्ध रूप का नही, वरन् उर्दू रूप का बाहुल्य मिलेगा। इसीलिए उन्होने हिन्दुस्तानी भाषा का जो सैद्धातिक विवेचन उपस्थित किया, वह उर्दू की ही व्याकरणगत विशेषताओ का विश्लेषण था। हिन्दी-प्रदेश की भाषा के सम्बन्ध मे, अंग्रेजो की यह धारणा, बहुत समय तक बनी रही। यही कारण है कि डंकन फॉर्ब्स ने, सन् १८४६ मे लिखित ग्रामर ऑफ हिन्दुस्तानी लेंगवेज मे, हिन्दी भाषा के सम्बन्ध मे केवल चार पृष्ठ ही लिखे है। शेष पृष्ठो मे उर्दू भाषा के व्याकरण का ही सैद्धातिक विवेचन है।

'फोर्ट विलियम कॉलेज' के अधिकारियो ने, हिन्दी को, हिन्दुस्तानी भाषा के विभिन्न स्वरूपो मे, एक स्वरूप स्वीकार किया था, और सम्भवत इसीलिए उन्होने, उसकी एक बोली, व्रजभाषा का अध्ययन करके, उसका व्याकरण सन् १८*१

मे प्रकाशित कराया था। टॉमस रोएवक ने, अपने 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के विवरण मे, इस व्याकरण का उल्लेख इस प्रकार किया है

"Grammatical Principles of the Braj Bhasa, or Dialect of Braj, comprizing Mathoora, Brindabun, and the adjacent territory, as far as Gwalior, with an English Translation, by Shree Luloo Lal Kavi, the Bhasha Moonshee , assisted by Captain Taylor, Professor of the Hindoostanee language, to whom is inscribed this attempt to facilitate the study of one of the forms of Indian Dialects, considered to form a principal part of the basis of this language"[1]

किन्तु यह ग्रंथ अब प्राप्त नही है। कामता प्रसाद गुरु ने डॉ० गिलक्राइस्ट के अंग्रेजी भाषा मे 'हिन्दी व्याकरण' का भी उल्लेख किया है।[2] डॉ० गिलक्राइस्ट की ही प्रेरणा से लल्लू जी लाल ने भी 'कवायद हिन्दी' नाम का एक हिन्दी व्याकरण लिखा था।[3] ये दोनो ग्रन्थ भी अप्राप्य है।

हिन्दी भाषा की व्याकरण रचना के इन प्राथमिक प्रयोगो के कोई २५ वर्ष बाद, फादर एडम्स नाम के एक ईसाई प्रचारक ने, 'हिन्दी व्याकरण' नाम का एक छोटा सा ग्रंथ लिखा। हिन्दी मे, अंग्रेजी व्याकरण के ढग की, यह प्रथम रचना थी, और उसके पारिभाषिक शब्द सम्भवत बंगला से लिये गये थे। इस ग्रंथ मे, मध्ययुगीन भाषा का प्रयोग था, जिसमे स्थान-स्थान पर वाक्य रचना की भूले थी। एक विदेशी की रचना होने के कारण, यह स्वाभाविक था।

जब अंग्रेजी शासन की स्थापना हिन्दी-प्रदेश मे भी हो गयी, और नये शिक्षा-केन्द्र खोले जाने लगे, तो प० रामजसन नाम के एक सज्जन ने, 'भाषा तत्व बोधिनी' नाम का एक हिन्दी व्याकरण प्रकाशित किया। इस ग्रंथ मे, हिन्दी भाषा के व्याकरण की विवेचना, सस्कृत भाषा के व्याकरणिक सिद्धातो से मिला जुला कर की गयी थी। इसके अनन्तर प० श्री लाल का 'भाषा चन्द्रोदय' प्रकाशित हुआ। सन् १८६६ मे नवीन चन्द्र राय ने, जो पजाब प्रान्त के शिक्षा-विभाग के एक उच्च अधिकारी थे, 'नवीन चन्द्रोदय' नाम का एक और हिन्दी व्याकरण प्रकाशित किया।

१—टॉमस रोएवक 'दि ऐनल्स ऑफ दि कॉलिज ऑफ फोर्ट विलियम' (१८१९), पृ० २६१

२—कामता प्रसाद गुरु 'हिन्दी व्याकरण', स० १९२७, भूमिका, पृ० ६

३—वही, पृ० ६

इस मे सस्कृत व्याकरण की पद्धति का भी थोडा वहुत अनुसरण किया गया था। इसके अनन्तर प० हरिगोपाल पाध्ये की 'भाषा तत्व दीपिका' प्रकाशित हुई। पाध्ये जी महाराष्ट्री थे, इसलिये उन्होंने मराठी व्याकरण के पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग किया था, किन्तु उनकी विवेचना अग्रेजी व्याकरण के ढग की थी।

सन् १८७५ मे राजा शिव प्रसाद ने अपना 'हिन्दी व्याकरण' नामक ग्रथ प्रकाशित किया। यह प्रयत्न, शिक्षा-सस्थाओ के लिये किया गया था, इस लिए उसमे, विशेष विद्वता पूर्ण विवेचना नही थी। राजा साहब की विवेचना अग्रेजी पद्धति की थी, साथ ही उन्होने सस्कृत व्याकरण के सूत्रो का भी अनुकरण किया। उनका विचार था कि हिन्दी तथा उर्दू, दोनो को मिला-जुलाकर, एक भाषा वनायी जाय। इसीलिए उन्होने, अपने इस ग्रथ मे, उर्दू भाषा के व्याकरणिक सिद्धातो की भी, कुछ विवेचना की थी। भारतेन्दु जी ने भी शिक्षा-सस्थाओ के लिए एक हिन्दी व्याकरण के निर्माण का प्रयत्न किया था। शिक्षा सस्थाओ की सख्या निरतर वढती जा रही थी, और हिन्दी व्याकरण के ग्रथ भी वढते जाते थे। इस सम्वन्ध मे विशेष महत्व के ग्रथ थे—केशोराम भट्ट लिखित 'हिन्दी व्याकरण', रामचन्द्र सिंह का 'भाषा भास्कर', रामावतार शर्मा कृत 'हिन्दी व्याकरण', विश्वेश्वर दत्त शर्मा का 'भाषा तत्व प्रकाश' आदि। इस क्षेत्र मे सव से अधिक महत्व का ग्रथ सन् १६२० मे प्रकाशित कामता प्रसाद गुरू का 'हिन्दी व्याकरण' था। यह ग्रथ भी अग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर ही लिखित है।

हिन्दी के इस व्याकरण के ऊपर, अग्रेजी प्रभाव की विवेचना करने के पूर्व, पाश्चात्य विद्वानो के हिन्दी व्याकरण के सिद्धान्तो के विश्लेषण को देख लेना आवश्यक है। इस क्षेत्र मे प्रथम ग्रन्थ जॉन वीम्स कृत 'ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ इन्डो-आर्यन लैंगवेजेज ऑफ इण्डिया' था। इस ग्रथ मे, उत्तर भारत की सात भाषाओ हिन्दी, पजावी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उडिया, तथा वंगाली के व्याकरणिक नियमो की विवेचना की गई थी। यह ग्रथ तीन खडो मे प्रकाशित हुआ था प्रथम खड १८७२ मे, उसमें इन भाषाओ की ध्वनियो की विवेचना थी, द्वितीय, सन् १८७५ मे, उसमे सज्ञा, लिंग, रूप-विचार तथा सर्वनामो का विवेचन था, तथा तृतीय सन् १८६६ मे, उसमे क्रिया, कृदन्त, तद्धित, वाच्य आदि पर विचार किया गया था। वीम्स के इस ग्रथ के प्रथम खड के, एक दो वर्ष बाद, फादर एथरिंगटन का 'भाषा भाष्कर' प्रकाशित हुआ। यह ग्रथ हिन्दी में लिखा गया था, किन्तु उसमे अग्रेजी व्याकरण की शैली का अनुकरण था। कामताप्रसाद गुरु ने अपनी 'हिन्दी व्याकरण' की भूमिका मे लिखा है कि इस ग्रथ के प्रकाशन के वाद, हिन्दी व्याकरण के

सभ ग्रन्थो मे इसकी पद्धति का ही अनुसरण किया गया। इस ग्रंथ मे, जॉन क्रिश्चियन लिखित, हिन्दी के छन्द-शास्त्र पर भी एक प्रकरण था।

पाश्चात्य विद्वानो द्वारा लिखित हिन्दी के व्याकरणो मे सबसे अधिक महत्व पूर्ण सन् १८७५ मे प्रकाशित एस० एच० केलॉग का "हिन्दी व्याकरण" है। यह ग्रन्थ भी, अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर ही लिखा गया था, और उसमे विभिन्न शब्द-भेदो की विवेचना के साथ, वाक्य-विन्यास पर भी लगभग १०० पृष्ठो का एक प्रकरण था, अन्त मे २६ पृष्ठो के एक पूरक मे हिन्दी छन्द-शास्त्र पर भी विचार किया गया था। इसके अनन्तर ए० ई० र्‌यूडॉल्फ हॉर्नेली का ग्रंथ 'ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ गौडियन लेंगजेवेज विद स्पेशल रिफरेंस टू ईस्टर्न हिन्दी' १८८० प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ मे भी हिन्दी व्याकरण के सिद्धांतो पर थोडे से पृष्ठो मे विचार किया गया था। सन् १८९६ मे रेवरेण्ड ई० ग्रीव्स ने अपना ग्रंथ 'ग्रामर ऑफ माडर्न हिन्दी' प्रकाशित किया। इसके ठीक एक वर्ष पहले उन्होने छब्बीस पृष्ठो का एक छोटा सा ग्रन्थ 'नोट्स आन दि ग्रामर ऑफ तुलसीदासेज रामायण' प्रस्तुत किया था, उनके हिन्दी व्याकरण मे अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर, अंग्रेजी भाषा-भाषी लोगो के लिए, हिन्दी भाषा बोलने तथा लिखने के नियमो का विश्लेषण था।

अब कामता प्रसाद के 'हिन्दी व्याकरण' पर अंग्रेजी व्याकरण के प्रभाव का विश्लेषण किया जा सकता है। गुरु जी की यह हिन्दी व्याकरण सम्बन्धी सर्व प्रथम रचना नही थी, सन् १९०० मे उन्होने, अंग्रेजी व्याकरण की पद्धति पर 'भाषा-वाक्य पृथककरण' नामक एक ग्रन्थ प्रकाशित किया था। इसके अनन्तर उन्होने 'सरस्वती' मे, अंगरेजी से ग्रहण किये गए विराम चिह्नों के हिन्दी रचनाओ मे प्रयोग के सम्बन्ध मे, दो लेख लिखे थे। अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार तथा हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन के कारण, हिन्दी साहित्य की जो अभिवृद्धि हो रही थी, उसके लिए हिन्दी मे एक आदर्श व्याकरण की आवश्यकता थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' का सम्पादन भार ग्रहण करने के समय से ही, प्रकाशन के लिए आने वाले लेखो की व्याकरण सम्बन्धी भूलो को बडे परिश्रम के साथ, सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके इस प्रयास के फल-स्वरूप, हिन्दी भाषा बहुत व्याकरण सम्मत तथा व्यवस्थित होती जा रही थी। फिर भी एक आदर्श हिन्दी व्याकरण की आवश्यकता थी, जिसके अध्ययन मे नये लेखक भाषा का शुद्ध प्रयोग सीख सकें। इस आवश्यकता की पूर्ति कामता प्रसाद गुरु के 'हिन्दी व्याकरण' के प्रकाशन से हुई।

गुरु जी के इस ग्रंथ मे, पहले दो अध्यायो में, भाषा के साथ व्याकरण के सम्बन्ध, व्याकरण के अध्ययन की उपयोगिता तथा हिन्दी भाषा के विकास की एक

संक्षिप्त रूप रेखा प्रस्तुत की गयी है। इसके अनन्तर, हिन्दी वर्णमाला, शब्द-भेद तथा वाक्य रचना पर विचार है। शब्दो के भेद वही किये गये हैं, जो अंग्रेजी व्याकरणो मे मिलते हैं। शब्द के विभिन्न व्याकरणिक रूपो का विवेचन, 'रूपान्तर' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है, और आगे चलकर जो वाक्य-विन्यास से सम्बन्धित प्रकरण हैं, वह पूर्णत किसी अंगरेजी व्याकरण के आधार पर लिखित है। पहले उसमे, वाक्य मे शब्दो के क्रम पर विचार है, उसके बाद वाक्य के विभिन्न प्रकारो तथा उपवाक्य के विभिन्न प्रकारो का निरूपण है। इससे अनन्तर विराम-चिन्हो के प्रयोग के नियम दिये गये हैं। यह प्रकरण भी किसी अंग्रेजी व्याकरण से लिया गया है, क्योंकि हिन्दी भाषा मे विराम-चिन्हो का प्रयोग, अंगरेजी से ही आया है।

इस प्रसग को समाप्त करते हुए अंगरेजी से गृहीत शब्दो के व्याकरण की चर्चा आवश्यक है। अंग्रेजी से ग्रहीत शब्द मुख्यत सज्ञाए है। अन्य प्रकार के शब्द केवल अनुवादित रूप मे ही ग्रहण किये गये है। अंगरेजी की अनेक क्रियाये हिन्दी मे अनुवादित रूप मे ग्रहण की गयी है। अन्य प्रकार के शब्द भी इसी रूप मे ग्रहण किये गये हैं। किन्तु इस रूप मे भी, सज्ञाओ को छोडकर, अन्य प्रकार के शब्द बहुत कम ग्रहण किये गये हैं। हिन्दी सज्ञाओ के दो लिंग है, स्त्रीलिंग तथा पुल्लिग, इसीलिए अंग्रेजी के नपुंसक लिंग के शब्दो ने, हिन्दी मे इन्ही दो लिंगो मे से किसी एक को ग्रहण कर लिया है। अंग्रेजी से ली गयी नपुंसक लिंग की सज्ञाओ को, हिन्दी के दो लिंगो मे से किसी एक मे स्वीकार करते हुए, किसी विशिष्ट सिद्धान्त का पालन नही किया गया है। कामताप्रसाद गुरू ने अपने 'हिन्दी व्याकरण' मे कुछ सिद्धान्तो का उल्लेख अवश्य किया है आकारात शब्द जैसे सोडा, डेल्टा, केमरा आदि पुल्लिग माने गये हैं, ईकारात शब्द जैसे म्यूनिसीपैल्टी, लाईब्रेरी, डिक्शनरी आदि स्त्रीलिंग स्वीकार किये गये हैं। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके लिंग का निर्णय उन्ही से मिलते जुलते हिन्दी शब्दो के आधार पर किया गया है। कम्पनी, लैम्प, कमेटी आदि हिन्दी से मिलते जुलते शब्द—मण्डली, दिया, सभा आदि की भाँति स्त्रीलिंग माने जाते हैं। इसी प्रकार अंग्रेजी के कोट, बूट, लेक्चर शब्द हिन्दी के अंगरखा जूता तथा व्याख्यान से मिलते जुलते होने के कारण पुल्लिग स्वीकार किये गये है। किन्तु ये नियम प्रत्येक स्थिति मे लागू होते नही देखे जाते। अंग्रेजी से ग्रहण किये गये कुछ शब्द जैसे स्टेशन, टिकट और मोटर ऐसे हैं, जो दोनो लिंगो मे प्रयोग किये जाते है।

अंग्रेजी से गृहीत शब्दो के बहु वचन बनाने मे, अंग्रेजी के 'नोट्स' शब्द को छोड कर, जो अपने मौलिक रूप मे ग्रहण कर लिया गया है, हिन्दी शब्दो के साथ

लागू होने वाले नियम ही कार्य करते हैं। अंग्रेजी से लिये गये शब्दो के रूपो का निर्माण भी हिन्दी के शब्दो की भांति ही किया जाता है। हिन्दी मे भाववाचक संज्ञाएं 'ई' अथवा 'ईय' लगाकर बनाई जाती हैं। अंग्रेजी शब्दो के साथ भी इनका प्रयोग करके डाक्टरी, कलक्टरी, जजी, योरोपीय, इंगलैंडीय आदि भाव वाचक संज्ञाएं बनाई गई हैं।

वाक्य-विन्यास

वाक्य-विन्यास के अन्तर्गत, वाक्य मे शब्दो के अनुक्रम तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार किया जाता है, अथवा वाक्य रचना के नियमो का निर्धारण होता है। वाक्य रचना के नियम प्रत्येक भाषा के अपने अलग अलग होते हैं। हिन्दी तथा अंग्रेजी की वाक्य रचना मे शब्दो के क्रम इस प्रकार है अंग्रेजी, कर्त्ता+क्रिया +कर्म तथा हिन्दी, कर्त्ता+कर्म+क्रिया। किंतु शब्द-क्रम सम्बन्धी ये विधान प्रत्येक परिस्थिति मे लागू नही होते। आधुनिक युग मे, हिन्दी भाषा का विकास, विशेष रूप मे, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे हुआ है, इस लिए स्वीकृत शब्द-क्रम भिन्न होते हुए भी अंग्रेजी की वाक्य व्यवस्था कभी कभी हिन्दी रचनाओ मे भी मिल जाती है। यह विशेष रूप से, उन लेखको की रचनाओ मे देखने को मिलता है, जो अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य का अध्ययन करके हिन्दी के क्षेत्र मे आये हैं।

हिन्दी के वाक्य-विन्यास पर, अंग्रेजी के वाक्य-विन्यास के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए, पहले हमे अंग्रेजी की वाक्य व्यवस्था के सिद्धांतो का परिचय प्राप्त करना चाहिए। सी० एलफान्जो स्मिथ ने अपने ग्रन्थ 'स्टडीज इन इंगलिश सिन्टैक्स' मे लिखा है कि उसकी सबसे अधिक व्यापक विशेषता है

"Its tendency to operate at close quarters, to span only limited areas, and to make its laws of concord depend not so much on logic as on proximity"[1]

इसी लेखक के अनुसार

"Another characteristic of English syntax, closely related to the proceding and equaly operative on the development of the language, is the controling influence exerted by the position of words in a sentence"[2]

आगे चल कर इस द्वितीय विशिष्टता की व्याख्या करते हुये लिखा गया है

"Subject and object for example have preemted places,—the

---

१ सी० एलफान्जो स्मिथ 'स्टडीज इन इंगलिश सिन्टैक्स १९०६ पृ० ६०

२—वही, पृ० ६०

subject before the predicate and object after the predicate For long continuance in these places, or rather the place itself becomes actively subjective or objective, so that if an objective case remain long in the position of the subject, it begins to be looked upon as the subject and may chage to fit its new relationship "[1]

हर्वर्ट रीड ने अंग्रेजी की गद्य शैली की विवेचना करते हुए इस स्थिति को अभिव्यञ्जना की आवश्यकताओ अथवा लेखक के वांछित प्रभाव से प्रसूत माना है।[2] अब देखना है कि अंग्रेजी की वाक्य व्यवस्था की इन विशेषताओ ने हिन्दी की वाक्य व्यवस्था को किस सीमा तक प्रभावित किया है।

अंग्रेजी वाक्य-विन्यास का प्रभाव सबसे अधिक, स्पष्टता के साथ अंग्रेजी से अनुवादित रचनाओ मे है। अंग्रेजी के उपन्यासकार राइडर हैगर्ड की एक रचना, 'शी' का अनुवाद, हिन्दी मे 'श्री' अथवा 'अवश्य माननीय' नाम से हुआ था। इस अनुवाद के प्रथम वाक्य मे ही अंग्रेजी ढग की व्यवस्था देखी जा सकती है

"इस किस्से को अपने पाठको के सन्मुख उपस्थित करने के समय, जो मेरे विचार से मानुषी अनुभवो मे सबसे ज्यादा अद्भुत और विचित्र बोध होता है, मै यह बतलाना अपना धर्म समझता हूँ कि मुझे इस किस्से से क्या सम्बन्ध है।"[3]

इस प्रकार के वाक्य, जिनमे अंग्रेजी वाक्य-विन्यास का ग्रहण स्पष्ट है, उन रचनाओ मे भी मिलते हैं जो अंग्रेजी की रचनाओ को आदर्श मानकर लिखी गयी थी। इस तथ्य का स्पष्टीकरण श्रीनिवासदास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८४) के निम्नलिखित वाक्य से हो जाता है

"आपके कहने के बमूजिब किसी आदमी की बातो से उसका स्वभाव, नही जाना जाता, फिर उसका स्वभाव जानने के लिये क्या उपाय करें लाला मदन मोहन ने तर्क की।"[4]

इस प्रकार की वाक्य रचना यह स्वत ही स्पष्ट कर देती है कि वह किसी अन्य भाषा से ग्रहण की गई है, क्योंकि इसमे हिन्दी गद्य का प्रवाह देखन को नही मिलता।

हिन्दी रचनाओ मे सामान्यत वाक्यो मे शब्दो का क्रम कर्त्ता+कर्म+क्रिया होता है, किन्तु इस नियम के अपवाद भी कभी कभी देखने को मिलते है। ओटो

१—सी०एलफान्जो स्मिथ 'स्टडीज इन इ गलिश सिन्टैक्स' (१९०६), पृ० ६०
२—हरबर्ट रीड 'इन्गलिश प्रोज स्टाइल', पृ० ९९
३—कन्हैया लाल 'श्री या अवश्य माननीय' (१९०२), पृ० १
४—श्री निवास दास • 'परीक्षा गुरू' (१८७४), पृ० ३६

जेसपर्सन ने वाक्यो की रूप-रेखा के सम्बन्ध मे विचार करते हुए लिखा है

"No grammatical rules of word order can however, be strictly observed in all cases, there is a certain freedom in that respect, and much depends on what is at every moment uppermost in the mind of the speaker He will always tend to pronounce first what is most actual to him, and, on the other hand, he may sometimes on purpose more or less consciously, hold back an idea so as to produce a greater effect if its appearance is prepared in the right way "[१]

हिन्दी के लेखको ने भी, जब उन्होंने, पाठको के ऊपर कोई विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है, शब्द-क्रम के स्वीकृत विधान की अवहेलना की है। जेसपर्सन का मत है कि शब्द-क्रम मे यह परिवर्तन साधारण वाक्य के केवल प्रारम्भ अथवा अन्त मे ही किया जा सकता है।[२] हिन्दी के लेखको ने भी, स्वीकृत शब्द-क्रम मे, अधिकाश मे, इन्ही स्थलो पर परिवर्तन किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के 'नाटक' शीर्षक लेख का प्रथम वाक्य है

"नाटक शब्द का अर्थ है नट लोगो की क्रिया"[३]

लेखक ने इस वाक्य मे, नाटक शब्द के अर्थ पर विशेष बल देने के लिए, उसे क्रिया के पूर्व न रख कर, क्रिया के बाद स्थान दिया है। निम्नलिखित वाक्य मे लेखक ने कर्म को सर्व प्रथम स्थान दिया है, क्योकि वह उसे विशेष महत्व देना चाहता है

"धोखा वह किसी को नही देता।"[४]

इस प्रकार के वाक्य हिन्दी की रचनाओ मे बहुत देखने को मिलते है। अंग्रेजी मे इस प्रकार की वाक्य रचना विशेष प्रचलित थी, इसलिए यह हिंदी मे अंग्रेजी से आयी होगी।

साधारण वाक्य की रचना मे, केवल शब्द-क्रम ही परिवर्तित किया जा सकता है, किन्तु मिश्रित तथा सयुक्त वाक्यो मे उपवाक्यो के क्रम, तथा उपवाक्यो मे शब्दो के क्रम को भी बदला जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन के काल मे, सबसे

१—ओटो जेसपर्सन 'एसेंशल्स ऑफ इगलिश ग्रामर' (१९३६), पृ० ९९

२—वही, पृ० ९९

३—श्यामसुन्दर दास सपादित 'भारतेन्दु नाटकावली' द्वितीय भाग, परिशिष्ट, पृ० ७८९

४—श्यामसुन्दर दास सपादित 'हिन्दी निबन्ध माला', प्रथम भाग (१९३३), पृ० ११

अधिक महत्व के प्रभाववादी लेखक, सरदार पूर्णसिंह थे। इनकी रचनाओ मे बहुत से ऐसे वाक्य हैं, जिनमे, प्रभाव विशेष उत्पन्न करने के लिए, शब्दो का क्रम बदल दिया गया है। इस सम्बन्ध मे, उनके निबन्ध 'मजदूरी और प्रेम' से निम्नलिखित वाक्य उद्धृत है

'विद्या यह नही पढा, जप और तप यह नही करता, सध्या वदनादि इसे नही आते, गिरजे, मन्दिर से इसे सरोकार नही, केवल साग पात खाकर ही यह अपनी भूख निवारण कर लेता है।"[1]

इस वाक्य मे, प्रत्येक उपवाक्य मे, कर्त्ता के पूर्व कर्म को स्थान दिया गया है, क्योकि लेखक कर्त्ता से अधिक कर्म को महत्व देना चाहता था।

हिन्दी के वाक्य-विन्यास पर अग्रेजी के वाक्य-विन्यास का प्रभाव, केवल शब्दो के क्रम को परिवर्तित कर देने तक ही सीमित नही रहा, उस के फल-स्वरूप हिन्दी मे एक नये प्रकार के उपवाक्य का सूत्रपात हुआ है जिस वाक्य मे, कर्त्ता को प्रथम स्थान देने के अनन्तर, सम्बन्धवाचक सर्वनाम के साथ, एक विशेषण उपवाक्य भी लिख दिया जाता है, वह व्यवस्था अग्रेजी से गृहीत है। कामताप्रसाद गुरु ने अपने 'हिन्दी व्याकरण' मे, वाक्य-पृथक्करण पर विचार करते हुए, इस प्रकार की वाक्य रचना के सम्बन्ध मे लिखा है कि वह अग्रेजी प्रभाव से पूर्व, हिन्दी गद्य मे, प्रचलित नही थी, और सर्व प्रथम लल्लू जी लाल के 'प्रेम सागर' (१८१०) मे देखने को मिली।[2] उन्होने पद-टिप्पणी मे यह भी लिखा है कि लल्लू जी लाल ने सम्भवत इस प्रकार की वाक्य रचना अग्रेजी से ग्रहण की हो।[3] गुरु जी इस सम्बन्ध मे निश्चित नही थे कि इस प्रकार का वाक्य-विन्यास अग्रेजी से गृहीत है अथवा हिंदी भाषा ने स्वय ही विकसित किया है। किन्तु इस प्रकार की वाक्य रचना, 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के विद्यार्थियो द्वारा प्रस्तुत किये गये निबन्धो मे बहुधा देखने को मिलती है, लल्लू जी लाल ने इसलिए ज्ञात या अज्ञात रूप से उसे उन्ही निबन्धो से ग्रहण किया होगा। इस कॉलेज के सन् १८०२ के वाद-विवाद मे डब्ल्यू० बी० बेली द्वारा प्रस्तुत निबन्ध के इस वाक्य मे उसी प्रकार की व्यवस्था है

"हिन्दू भी जो कदरे इम्तियाज रखता हो या मुसलमानो से जिसको कुछ ऐलाका

१—श्यामसुन्दर दास सपादित . 'हिन्दी निबन्ध माला', प्रथम भाग (१९३), पृ० १०-११

२—कामता प्रसाद गुरू 'हिन्दी व्याकरण' (१९२७), पृ० ६०७

३—वही, पृ० ६०७

है थोडी बहुत हसविहाल अपने नही हो सकता कि न जाने ।"[१]
इस प्रकार की वाक्य रचना, इस निवन्ध मे अन्य कई स्थानो पर भी है । 'प्रेम सागर' के दूसरे ही पृष्ठ पर, इसी प्रकार की योजना का एक वाक्य है

"यह पाप रूप, यह काल आवरण, डरावनी सूरत जो आपके सन्मुख खडा है सो पाप है ।"[२]

यह पहले ही लिखा जा चुका है, कि इस प्रकार की वाक्य रचना, अग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी मे नही मिलती, और इसका सर्व प्रथम प्रयोग 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के विद्यार्थियो की रचनाओ मे है, इसलिए यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है, कि लल्लू जी लाल ने, उनके निकट सम्पर्क, मे होने के कारण, इसे उन्ही की रचनाओ से ग्रहण किया होगा।

इस प्रकार की वाक्य रचना, राजा शिवप्रसाद की रचनाओ मे भी मिलती है। उनकी 'राजा भोज का सपना' शीर्षक कहानी मे इस प्रकार की व्यवस्था का एक वाक्य है

"उस बडे मन्दिर की जिसके जल्द बना देने के वास्ते सरकार से हुक्म हुआ है आज नीव खुद गई ••।"[३]

राजा साहब की यह रचना किसी अग्रेजी ग्रथ के आधार पर लिखित कही जाती है,[४] इसलिए यह पूरणत सम्भव है कि इस प्रकार की वाक्य व्यवस्था अग्रेजी से ग्रहण की गई हो । अन्य लेखको, की रचनाओ मे भी इस प्रकार के वाक्य देखने को मिलते हैं। उन्होने या तो सीधे अग्रेजी से, अथवा अग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत राजा शिवप्रसाद जैसे लेखक से ग्रहण किया होगा ।

अग्रेजी की कुछ रचनाओ मे, एक विचित्र प्रकार की वाक्य रचना, जिसमे कर्त्ता अथवा क्रिया की एक विस्तृत सूची होती है, मिलती है। हरवर्ट रीड ने वर्ड्सवर्थ तथा वर्क की रचनाओ से, कुछ ऐसे वाक्य उद्धृत किये है, जिनमे कर्त्ताओ की सूची है।[५] हिन्दी मे इस प्रकार की वाक्य व्यवस्था सरदार पूर्णसिंह तथा बालकृष्ण भट्ट की

१—डॉ० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय 'ग्रोथ एण्ड डेवलपमेंट ऑफ हिन्दी लिट्रेचर (१८५०-१६००),' टकित प्रवन्ध, एपेन्डिक्स, पृ० ३१२

२—कामताप्रसाद गुरु 'हिन्दी व्याकरण,' पृ० ६०७

३—श्यामसुन्दर दास सपादित · 'हिन्दी निबध माला', प्रथम भाग, पृ० १५

४—डॉ० माताप्रसाद गुप्त 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', पृ० २५५

५ —हरबर्ट रीड : 'इंगलिश प्रोज स्टाइल' (१६५६), पृ० ४३

रचनाओ मे है। इस बात की सम्भावना अधिक है कि हिन्दी लेखको ने इस प्रकार की वाक्य रचना अंग्रेजी के प्रसिद्ध वक्ता वर्क के भाषणो के अध्ययन से ग्रहण की हो, क्योकि उसके व्याख्यान इन लेखको के समय मे हिन्दी-प्रदेश मे शिक्षा-संस्थाओ के माध्यम से प्रचलित हो गये थे। सरदार पूर्णसिंह के निम्नलिखित वाक्य मे कर्त्ताओ की सूची देखने को मिलती है

"पशुओ को चराना, नहलाना, खिलाना, पिलाना, उनके बच्चो की अपने बच्चो की तरह सेवा करना, खुले आकाश के नीचे उनके साथ रातें गुजार देना, क्या स्वाध्याय से कम है।"[1]

प्रासंगिक उपवाक्य (Parenthetical clause)—जो कि एक वाक्य के भीतर व्याकरण के नियमो से पूर्णत स्वतन्त्र एक छोटा-सा वाक्य होता है—का प्रयोग भी हिन्दी लेखको ने अंग्रेजी प्रभाव से ही ग्रहण किया है। निम्नलिखित वाक्य मे जो 'प्रकृति सौन्दर्य' शीर्षक एक निबन्ध से लिया गया है, सूचीमय वाक्य की विशेषता तथा प्रासंगिक उपवाक्य, दोनो ही देखे जा सकते है

"प्रचंड ऊर्मिमय गम्भीर घोषी महासागर का प्रथम दर्शन करने, निर्जन घोर-घोर अरण्य मे ' जहा चिडिया पख नही मारती प्रथम ही प्रवास करने, पृथ्वी के ऊँचे पहाडो की चोटियो के स्फोट के कारण महाभयकर ज्वालामुखी के डरावने मुख से पृथ्वी के पेट से बह निकलते हुए पत्थर, मिट्टी, धातु इत्यादि पदार्थो के रस के प्रवाह को प्रथम ही देखने अथवा नितात शीत के कारण वर्फ से ढके हुये स्फटिकमय प्रदेश मे चलने से जो नया और अपूर्व अनुभव प्राप्त होता है उसका कुछ अकथनीय सस्कार मन पर होता है।"[2]

ऊपर के अवतरण मे प्रासंगिक उपवाक्य बिन्दुओ के बीच मे है। इसका प्रयोग, वाक्य मे सामान्यत उस समय किया जाता है, जब किसी विशिष्ट शब्द अथवा उप-वाक्य की अलग से व्याख्या करने की आवश्यकता होती है। इस प्रकार प्रासंगिक उपवाक्यो का प्रयोग महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा सरदार पूर्णसिंह की रचनाओ मे बहुधा देखने को मिलता है।

विधेयांशो की व्याख्या करते हुए अग्रलिखित वाक्य का उदाहरण देकर

"Mount Blank appears,—still, snowy and serene"

जेसपर्सन ने लिखा है

"Sentences of this kind may be considered the last link of a

१—श्यामसुन्दर दास सपादित 'हिन्दी निबंध माला', प्र०भा०, पृ० ११

२—वही, पृ० ४३-४४

long series, beginning with descriptions which stood really outside the sentence as an after thought (in extrapositions) "१

इस प्रकार की अतिरिक्त स्थितियो (extraposition) के प्रयोग हिन्दी रचनाओ मे भी देखे जाते हैं

"एक क्षण के अनन्तर वाटिका मे एक साधु आया, सिर पर जटाये, शरीर पर भस्म रमाये।" २

और क्योकि इस प्रकार की वाक्य रचना पहले के साहित्य मे देखने को नही मिलती, यह जान बूझ कर या अनजाने अग्रेजी प्रभाव से ही ग्रहण की गई होगी।

एक अन्य प्रकार के विधेयाशो का प्रयोग भी अग्रेजी से ग्रहण किया गया है, जिन्हे जेसपर्सन ने 'quasipredicatives' की सज्ञा दी है। इस प्रकार के विधेयाश के प्रयोग मे वर्णन वाक्य का आवश्यक भाग होता है और क्रिया भी अपना स्वाभाविक वल नही खोती।[3] निम्नलिखित वाक्य में इस प्रकार के विधेयांश का प्रयोग देखा जा सकता है

"When sorrows come, they come not single spies, but in battalions ' ४

हिन्दी मे इस तरह के विधेयाश का प्रयोग निम्नलिखित वाक्य मे किया गया है

"यहा की मूर्तिया बोल रही हैं वे जीती जागती है, मुर्दा नही।" ५

अग्रेजी के लेखको ने कभी कभी अपने वर्णन को स्पष्टता प्रदान करने के लिए वाक्य के कर्त्ता और कर्म, दोनो का लोप कर दिया है। इस प्रकार की वाक्य-रचना यदा-कदा ही देखने को मिलती है। सरदार पूर्णसिंह ने ऐसे वाक्य का भी एक उदाहरण प्रस्तुत किया है

"इस सफेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिर पर, एक हाथ मे दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा, दूसरे हाथ मे मक्खन की हाडी।"६

१—ओटो जेसपर्सन 'एसेन्शल्स ऑफ इगलिश ग्रामर' (१९३७), पृ० १२४

२—प्रेमचन्द · 'प्रेमपूर्णिमा' (१९४६), पृ० १२६

३—ओटो जेसपर्सन · एसेन्शल्स ऑफ इगलिश ग्रामर', पृ० १२४

४—वही, पृ० १२४

५—श्यामसुन्दर दास (सम्पादित) 'हिंदी निबन्ध माला', द्वितीय भाग (१९३३), पृ० २८-२९

६—वही, पृ० १८-१९

कथा-साहित्य मे ऐसी वाक्य-रचना सामान्यत मिलती है। हिन्दी कथा-साहित्य के विकास का अभी प्रारम्भ ही हुआ था, इसलिए ऐसी वाक्य-रचना हिन्दी-लेखको की रचनाओ मे यदा कदा ही देखने को मिल जाती थी।

कर्त्ता और क्रिया से शून्य वाक्यो पर विचार करने के अनन्तर अव्यवस्थित वाक्यो (amorphous sentences) जिनमे कि केवल एक ही सदस्य होता है, यद्यपि उसमे कई शब्द हो सकते हैं, को भी देख लेना चाहिए। जेसपर्सन ने ऐसे वाक्यो की रचना पर विचार करते हुए लिखा है

"While the sentences of complete predicational nexuses are (often at any rate) intellectual and formed so as to satisfy strict requirements of logicians, amorphous sentences are more suitable for the emotional side of human nature When anyone wants to give vent to strong feeling, he does not stop to consider logical analysis of his ideas, but language furnishes with a great many adequate means of bringing the state of his mind to the consciousness of his hearers or readers," [1]

इस प्रकार के अव्यवस्थित वाक्यो के अंग्रेजी भाषा के उदाहरण निम्नलिखित है

'Yes!' 'Good-bye!' 'Thanks!' 'What!' 'Nonsense!' 'Out with your suspicions!' 'Why all this fuss!'" [2]

हिन्दी लेखको ने भी अपनी रचनाओ मे इस प्रकार के अव्यवस्थित वाक्यो का प्रयोग किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा अन्य लेखको के नाटको के पात्रो ने अवसर अपने भावो को इसी प्रकार के वाक्यो द्वारा प्रकट किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ के कुछ अव्यवस्थित वाक्य निम्नलिखित है

'छि छि!' 'निखट्टू नैपाली टट्टू!' 'मरकट्टा बैल!' 'बहुत ठीक!' 'क्या! नग क्या!' 'दु ख दु ख'! 'वाह'! आदि।

प्रेमचन्द जी ने अपनी कहानियो मे भी इस प्रकार के अव्यवस्थित वाक्यो का प्रयोग किया है

"हा!' 'बिल्कुल बेकसूर'! 'अच्छा अच्छा!' 'तुम्हारा सिर!' 'अरे!' राम राम!' 'उफ!' 'आकाक्षा की प्रबलता!' तथा अन्य।

हिन्दी के अन्य लेखको की रचनाओ मे भी इस प्रकार के वाक्य देखे जा सकते है, किन्तु यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इनके प्रयोग मे अंग्रेजी प्रभाव का

१—ओटो जेसपर्सन 'एसेन्शल्स ऑफ इगलिश ग्रामर (१९३७), पृ० १०५

२—वही, पृ० १०५

विशेष हाथ नही है, क्योकि ऐसे वाक्य सामान्य बोलचाल मे पहले भी प्रयोग मे आते रहे होगे। विस्मय सूचक चिह्न के साथ इनका लिखा जाना अवश्य अंग्रेजी प्रभाव से ग्रहण किया गया होगा।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी के वाक्य-विन्यास ने हिन्दी के वाक्य-विन्यास को पर्याप्त रूप मे प्रभावित किया है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी मे केवल काव्य रचनाए ही प्रस्तुत की गई थी। कुछ गद्य रचनाएँ भी लिखी गई थी, किन्तु उनमे गद्य का रूप बहुत अव्यवस्थित तथा शिथिल मिलता है। अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी गद्य के विकास को विशेष बल मिला और उस ने अपनी अभिवृद्धि के लिए कभी कभी अंग्रेजी ढग की वाक्य रचना का भी अनुकरण किया। अंग्रेजी ढग की वाक्य-रचना से प्रभावित होकर हिन्दी भाषा में नवीन भावो, नये विचारो, जीवन के नये तथा विभिन्न पहलुओ को प्रगट करने की शक्ति की अभिवृद्धि हुई। इसी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी लेखको ने व्याकरण मे स्वीकृत वाक्य-रचना के सिद्धान्तो की, भाषा के हितो को बिना किसी प्रकार की हानि पहुचाये, उपेक्षा करना सीखा था। व्याकरण मे स्वीकृत नियमो की उपेक्षा करके उन्होने हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को बढा दिया था।

५ विराम-चिह्न तथा अनुच्छेद

आज हिन्दी के सामान्यत प्रचलित विराम-चिह्नो, अल्प-विराम, अर्ध-विराम, प्रश्न-वाचक, विस्मय-वाचक, निर्देशक आदि का प्रयोग भी अंग्रेजी से ही आया है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी मे, केवल । तथा ॥ का ही प्रयोग होता था, जो क्रम से किसी काव्य रचना की प्रथम पक्ति, तथा रचना की समाप्ति के बोधक होते थे। अंग्रेजी भाषा के साथ निकट सम्पर्क के अनन्तर उसके ये विराम चिह्न भी हिन्दी मे प्रयोग मे आने लगे। अनुच्छेदो का विधान भी हिन्दी ने अंग्रेजी से ही ग्रहण किया है। अंग्रेजी के विराम-चिह्न, हिन्दी मे किस प्रकार प्रयोग मे आने लगे, इसी का विवरण हम यहा उपस्थित कर रहे हैं। अंग्रेजी मे अनुच्छेदो को भी एक प्रकार का विराम ही माना गया है[1] इसलिए हिन्दी मे अंग्रेजी प्रभाव से आयी हुई अनुच्छेदो की व्यवस्था पर भी यहाँ विचार-विमर्श होगा।

अंग्रेजी मे विराम-चिन्हो का प्रयोग तर्क, भौतिक आवश्यकताओ तथा रचना की गति की दृष्टि से प्रेरित माना जाता है। तर्क से प्रेरित विरामो को, रूपविधान के विराम भी कहा गया है।[2] हरबर्ट रीड ने लिखा है

१—हरबर्ट रीड 'इगलिश प्रोज स्टाइल' (१९३७), पृ० ५५
२—वही, पृ० ४७

'Punctuation by structure is logical, it serves to indicate and help the sense of what is being said It marks off the process of thought outlines the steps of arguement, in fact, orders and controls the expression in the interests of meaning "[१]

भौतिक आवश्यकताओ से प्रेरित विरामो को, श्वास की गति से निर्णीत विराम भी कहा गया है, वह यह मान लेता है कि जो कुछ लिखा जा रहा है वह चाहे अनजाने ही हो, वास्तव मे बोला जा रहा है, और जो कुछ बोला जा रहा है, उसमे श्वास की गति के आधार पर विराम होने चाहियें। एक लिखित रचना भी इस प्रकार एक मौन अथवा कल्पित व्याख्यान है और इसलिये उसमे भी भौतिक आवश्यकताओ से प्रेरित विराम होने चाहिए [२] रचना की गति से प्रेरित विरामो का प्रयोग बहुत ही कम, मिल्टन, रस्किन आदि एक दो लेखको की रचनाओ मे ही, मिलता है।[3] इन तीन प्रकार के विरामो म भौतिक आवश्यकताओ से प्रेरित विराम अंग्रेजी मे सब से अधिक प्रचलित रहे है और उनके सम्बन्ध मे हरवर्ट रीड का कथन है

"Each stop—comma, semi colon, colon, full-stop,—represents a degree of pause, it has a certain time value and is inserted to represent a proportionate duration "[४]

आगे यह देखा जायेगा कि हिन्दी रचनाओ मे कहा तक विरामो का प्रयोग इन तीन प्रकार की आवश्यकताओ से प्रेरित रहा है और इनमे से कौन सब से अधिक प्रेरणा प्रदान करने वाली रही है।

अंग्रेजी से लिये गये विराम-चिन्हो का प्रयोग सर्व प्रथम हमे 'फोर्ट विलियम कॉलेज के द्वारा प्रकाशित की जाने वाली रचनाओ मे मिलता है। इस सस्था के सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रकाशन जिनमे इन चिन्हो का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है, लल्लू जी लाल कृत 'प्रेम सागर' तथा सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' थे। 'प्रेम सागर' के प्रथम पृष्ठ में ही अल्प-विराम, अर्ध-विराम तथा पूर्ण-विराम—इन तीन विराम-चिन्ह का प्रयोग किया गया है और दूसरे पृष्ठ मे दो अन्य—प्रश्नवाचक तथा विस्मय सूचक चिन्हो का प्रयोग है। बाद के पृष्ठो मे इनका प्रयोग व्यापक रूप से किया गया है, जहा कही तर्क के आधार पर वे आवश्यक रहे है। 'प्रेमसागर' वस्तुत एक गद्य रचना है, किन्तु उसमे स्थान-स्थान पर कई पद्य भी है। इन पद्यो मे अर्ध-विराम तथा

१—हरवर्ट रीड 'इंगलिश प्रोज स्टाइल' (१९३७), पृ० ४७

२—वही, पृ० ४८

३—वही, पृ० ४९

४—वही, पृ० ४७

पूर्ण-विराम इन्ही दो चिन्हो का प्रयोग किया गया है, किन्तु पृष्ठ १७८ पर प्रश्नवाचक चिह्न, १९२ पर विस्मय-बोधक चिह्न तथा १९६ पर अर्ध-विराम भी प्रयोग मे लाये गये है। 'नासिकेतोपाख्यान' मे भी इन्ही विराम-चिह्नो का प्रयोग हुआ है। ये दोनो ही रचनाये 'फोर्ट विलियम कॉलिज' के प्राध्यापको के, जो कि अग्रेज थे, निरीक्षण मे लिखी जाकर, उसी के अधिकारियो द्वारा प्रकाशित की गयी थी। इस प्रकार पूर्ण निश्चय के साथ यह कहा जा सकता है कि इन रचनाओ मे ये विराम-चिह्न उन अग्रेज प्राध्यापको की प्रेरणा से प्रयोग मे लाये गये होगे, जिनके निरीक्षण मे ये लिखी गई थी। यही कारण है कि इन रचनाओ मे पूर्ण-विराम का प्रयोग, उसके हिन्दी रूप मे नही, वरन् अग्रेजी रूप मे किया गया है।

'फोर्ट विलियम कॉलिज' की इन रचनाओ को देखने के अनन्तर अब यह देखना चाहिये कि हिन्दी के प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्तण्ड' मे इन विराम-चिह्नो का प्रयोग किस प्रकार किया गया था। इसके प्रारम्भिक अको मे। तथा ॥ चिह्नो का ही प्रयोग किया गया था, जो पहले से काव्य रचनाओ मे प्रचलित चले आ रहे थे। इन मे से कभी पहले का और कभी दूसरे का प्रयोग, अनुच्छेद की समाप्ति पर किया गया है, किन्तु आगे के अको मे पहले का प्रयोग वाक्य की समाप्ति पर और दूसरे का अनुच्छेद के अन्त तथा रचना की समाप्ति पर होने लगा था। यह साप्ताहिक-पत्र था, हिन्दी के प्रथम दैनिक-पत्र 'समाचार सुधावर्षण' का प्रकाशन सन् १८५४ से प्रारम्भ हुआ था। इसके प्रारम्भिक अको मे केवल पूर्ण-विरामो का प्रयोग किया गया था, किन्तु आगे के अको मे अल्पविराम, अर्धविराम, प्रश्नवाचक चिह्न भी प्रयोग मे आने लगे थे। हिन्दी-प्रदेश की सर्व प्रथम पत्र-पत्रिकाओ 'कविवचन सुधा' तथा 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' आदि मे अधिकाश मे पूर्ण-विरामो का ही प्रयोग हुआ था, किन्तु कुछ स्थानो पर अल्पविराम तथा अर्धविराम भी प्रयोग मे लाये गये थे। इन विरामो का प्रयोग कभी तो तर्क और कभी श्वास की गति के आधार को लेकर हुआ था।

हिन्दी के कुछ प्रमुख लेखको ने इन विराम-चिह्नो का प्रयोग किस प्रकार किया है, यह भी देख लेना चाहिये। इस अध्ययन को व्यवस्थित रूप देने के लिए, इसे तीन कालो—प्रारम्भिक काल, सक्रान्ति युग तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी का युग मे—विभक्त किया जा सकता है। प्रारम्भिक काल के प्रमुख लेखक राजा शिवप्रसाद (१८५३-९५), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-८५), तथा श्रीनिवास दास (१८५०-८७), थे। राजा शिवप्रसाद ने सामान्यत छोटे छोटे वाक्य लिखे थे। इसलिए उनकी रचनाओ में अधिकाश मे वाक्य के अन्त का बोध कराने के लिए पूर्ण-विराम का प्रयोग मिलता

है, किन्तु उन्होने अल्पविराम, अर्धविराम, कोष्ठक तथा निर्देशक के भी प्रयोग किये है। उन्होने सामान्यत प्रासगिक उपवाक्य को कोष्ठक मे रख दिया है और कभी कभी किसी विशिष्ट शब्द के पर्यायवाची को भी उन्ही के भीतर स्थान दे दिया गया है। निर्देशक का प्रयोग किसी उद्धरण के पूर्व अथवा किसी विशिष्ट शब्दावली या उपवाक्य के वास्तविक अर्थ की व्याख्या करते हुए किया गया है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राजा शिवप्रसाद ने अपनी रचनाओ मे विराम चिन्हो का प्रयोग बहुत कुछ उसी प्रकार किया है, जैसे कि वे अग्रेजी की रचनाओ मे प्रयोग मे लाये जाते थे। इनके प्रयोग के सम्बन्ध मे उनके विचार स्पष्ट थे।

किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विराम-चिह्नो के सम्बन्ध मे, जैसा कि इनकी रचनाओ को देखने से स्पष्ट है, कोई स्पष्ट विचार नही थे। निम्नलिखित पक्तियो मे जो कि उनके निबन्ध 'क्षत्रियो की उत्पत्ति' का प्रथम अनुच्छेद है, केवल अनुच्छेद की समाप्ति पर ही पूर्ण-विराम का प्रयोग किया गया है

"मेरी बहुत दिनो से इच्छा थी कि इस जाति का पुरावृत्त सग्रह करू परन्तु मुझे इसमे कोई सहायक न मिला और जिन जिन मित्रो ने मुझ से पुरावृत्त देने को कहा था वे इस विषय मे असमर्थ हो गये और इसी से मेरा भी उत्साह बहुत समय तक मन्द पडा रहा परन्तु मेरे परम मित्र ने मुझे इस सम्बन्ध मे फिर उत्साहित किया और कुछ ऐसी सहायता भी मिल गई कि मैं फिर से इस जाति के समाचार अन्वेषण मे उत्सुक हुआ।'[१]

इस पूरे अनुच्छेद मे, जिसे एक वाक्य का रूप दिया गया है, पूर्ण-विराम का प्रयोग करके कई वाक्य बनाये जा सकते थे, तथा अन्य भी कई विराम चिन्हो का प्रयोग किया जा सकता था। किन्तु यह सब इसलिए नही हो सका क्योकि लेखक को इनके प्रयोग के नियमो का स्पष्ट ज्ञान नही था। भारतेन्दु जी ने कभी कभी अपनी रचनाओ मे पूर्ण-विराम का प्रयोग विशेष रूप से किया है

"अकबर अति बुद्धिमान और परिणामदर्शी था। आलस्य तो उसे छू नही गया था। प्रथमावस्था मे तो कुछ भोजन पानादि का व्यसन भी था पर अवस्था बढने पर वह बडा ही सावधान हो गया था।"[२]

विस्मयादिबोधक चिह्न के प्रयोगमे उनकी विशेष रुचि थी

१—रामबहिर्नसिह सम्पादित 'हरिश्चन्द्र कला', द्वितीय भाग, 'क्षत्रियो की उत्पत्ति' पृ० १

२—वही, 'मुगलराजत्व का सक्षिप्त इतिहास' पृ० १४

(१) "वही नैपोलियन इङ्गलेंड के एक गाव मे एक छोटे से घर मे मरा ! ! !"[1]
(२) "हाय! हाय! कैसा दारुण समय हुआ है ! !"[2]
(३) "हा! ईश्वर फिर यह दिन न लावे ! !"[3]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ मे प्रयुक्त अन्य विराम-चिह्न, अल्पविराम, निर्देशक तथा अवतरण चिन्ह थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे अर्धविराम के प्रयोग का विशेष ज्ञान नही था। उनके नाटको मे इसका प्रयोग यदा कदा ही हुआ है और कुछ मे तो हुआ ही नही है। केवल अपनी एक रचना 'दिल्ली दरबार दर्पण' मे, एक स्थान पर, बारह पक्तियो मे अर्धविराम का प्रयोग उ होने चौदह बार किया है,[4] किन्तु यह सभवत उन पक्तियो के अंग्रेजी से प्रभावित होने के कारण है। अपनी रचनाओ मे कुछ स्थानो पर उन्होने प्रश्नवाचक चिह्नो का भी प्रयोग किया है।

श्रीनिवास दास ने अपने उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८४) की भूमिका मे विराम-चिह्नो के प्रयोग के सम्बन्ध मे भी थोडा सा विवरण दिया था। प्रथम अनुच्छेद मे अवतरण चिह्नो के प्रयोग के सम्बन्ध मे तथा दूसरे अनुच्छेद मे अल्पविराम, अर्ध-विराम, व्याख्या चिह्न (Colon), पूर्ण-विराम, प्रश्नवाचक चिह्न, विस्मयादि बोधक चिह्न, निर्देशक आदि के प्रयोग के विषय मे लिखा गया है। किन्तु उनकी रचनाओ मे केवल पूर्ण विराम, अवतरण चिह्न, विस्मयादि बोधक चिह्न, अल्पविराम, प्रश्नवाचक चिह्न तथा निर्देशको का ही प्रयोग किया गया है। अर्धविराम का प्रयोग उनकी रचनाओ मे बहुत ही कम हुआ है। उनके तीन सौ पृष्ठो के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' मे इस विराम-चिह्न का प्रयोग केवल आठ बार ही किया गया है, और इनमे से भी कई स्थानो पर उसका प्रयोग सही नही है, जैसा कि निम्नलिखित अवतरणो से स्पष्ट हो जाता है

(१) "मैं यह नही कह सकता जो बहकाते होगे, अपने जी मे आप समझते होगे• • • ।"[5]

(२) "मैं आपका शत्रु नही, मित्र हूँ परन्तु आपको ऐसा ही जचता है ।"[6]

१—रामवहिन सिंह सपादित 'चरितावली', पृ० १०६
२—वही, पृ० १२२
३—वही, पृ० १३०
४—वही, 'दिल्ली दरबार दर्पण', पृ० ७
५—श्रीनिवास दास 'परीक्षा गुरु', पृ० ३५
६—वही, पृ० १३६

(३) "जहा तक औरो के हक मे अन्तर न आये, वे अपने ऊपर दु:ख उठाकर भी परोपकार करते है।"[1]

(४) "वह लोगो की देखा देखी नही, अपनी बुद्धि से व्यापार करता था।[2]

(५) "वह मन्त्री था इस लिए तनदुरुस्त था वह अपने कामो का बोझा हरगिज औरो के सिर नही डालता था, हा यथाशक्ति वाजवी बातो मे औरो की सहायता करने को तत्पर रहा था ••।"[3]

ये उद्धरण, केवल यह स्पष्ट नही करते, कि श्रीनिवास दास को अर्धविराम के प्रयोग के नियमो का विशेष ज्ञान नही था, वरन् यह भी प्रकट करते है कि उन्हे विराम चिह्नों का सही प्रयोग विशेष ज्ञात नही था। इन वाक्यो मे से पहले, दूसरे और पाँचवें जहा तक वे दिए गये है, पूर्ण हो गये हैं, किन्तु लेखक ने उन्हे, दो एक वाक्य और जोडने के बाद पूर्ण-विराम का प्रयोग करके समाप्त किया है। उनकी रचनाओ मे बहुत से स्थानो पर यह देखने को मिलता है कि पाँच छ वाक्यो के बाद पूर्ण विराम का प्रयोग किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समान श्रीनिवास दास को भी विस्मयादि-बोधक चिह्न के प्रयोग के प्रति विशेष रुचि प्रतीत होती है, क्योकि उन्होने भी उन्ही की भाति एक ही स्थान पर दो-दो तीन-तीन बार उसका प्रयोग किया है।

सक्राति अथवा परिवर्तन के युग के प्रमुख लेखको, बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४), प्रताप नारायण मिश्र (१८५६-९४), राधाकृष्ण दास (१८६५-१९०७) तथा बालमुकुन्द गुप्त (१८६५- १९०७) ने अपनी रचनाओ में अधिकाश मे अल्पविराम तथा पूर्णविरामो का प्रयोग किया है। इन्हे पूर्णविराम के प्रयोग का स्पष्ट ज्ञान था। इनकी रचनाओ मे अर्धविरामो का भी यदा कदा प्रयोग किया गया है, और वह उचित स्थानो पर हुआ है। किन्तु इन लेखको ने, उन अधिकाश स्थलो पर, जहा इसका प्रयोग होना चाहिए था, अल्पविराम के प्रयोग से ही काम चला लिया है। कभी कभी इन लेखको ने अपनी रचनाओ मे अवतरण चिह्नो, निर्देशको प्रश्न-वाचक तथा विस्मयादि-बोधक चिह्नो का भी सही प्रयोग किया है। इन विराम-चिह्नो के प्रयोग कभी तो तर्क के आधार पर किये गये हैं, और कभी श्वास की गति मे विराम का बोध कराने के लिए।

तर्क के आधार पर विराम-चिह्नो का सबसे अधिक प्रयोग महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा उनके युग के अन्य लेखको की रचनाओ मे मिलता है। द्विवेदी जी सामान्यत

१—श्रीनिवास दास 'परीक्षा गुरु', पृ० १६७

२—वही, पृ० १७३

३—वही, पृ० १७५

छोटे-छोटे वाक्य लिखा करते थे, जिनके अन्त मे पूर्णविराम का प्रयोग किया जाता था, किन्तु जब वे लम्बे वाक्य लिखते थे तो अपने भावो अथवा विचारो को और अधिक स्पष्टता प्रदान करने के लिए, अल्पविराम, अर्धविराम, निर्देशको आदि का प्रयोग कर देते थे। निर्देशको का प्रयोग अधिकाँश मे उन्होने प्रासगिक उपवाक्य के प्रारम्भ तथा अन्त मे किया है। उनकी रचनाओ मे प्रश्नवाचक चिह्न का भी प्रयोग हुआ है, किन्तु केवल उन्ही स्थानो पर, जहा उसकी विशेष आवश्यकता रही है। पर्याय-वाची शब्दो और कभी-कभी प्रासगिक उपवाक्यो को उन्होने कोष्ठको के भीतर रख दिया है। अवतरण चिह्नो का प्रयोग किसी उद्धरण के प्रारम्भ तथा अन्त मे किया गया है। भावुकता के प्रवाह मे आकर उन्होने भी पहले के लेखको की भाति एक ही स्थान पर विस्मयादि, बोधक चिन्ह का प्रयोग, दो-दो तीन-तीन बार कर दिया है, जैसा कि उनके निबन्धो, 'कवियो की उर्मिला विषयक उदासीनता' तथा 'नल का दुस्तर दूतकार्य' मे देखा जा सकता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग के अन्य महत्व पूर्ण लेखक 'मिश्रबन्धु', श्यामसुन्दर दास, सरदार पूर्ण सिह, प्रेमचन्द आदि थे। इनमे से 'मिश्रबन्धु' तथा श्यामसुन्दर दास ने, अपनी रचनाओ मे अधिकतर अल्पविराम तथा पूर्णविरामो का ही प्रयोग किया है, किन्तु अर्धविराम, व्याख्या-चिह्न, निर्देशक, विस्मयादि-बोधक, तथा अवतरण चिह्न भी उनकी रचनाओ मे सही रूप मे प्रयोग किये गये देखे जा सकते हैं। विराम-चिह्नो के प्रयोग मे इन लेखको ने तर्क की दृष्टि से कार्य किया है। सरदार पूर्णसिह की रचनाओ मे, अंग्रेजी से लिये गये सभी विराम-चिह्नो का प्रयोग मिलता है, किन्तु कभी कभी उन्होंने, जहा अर्धविराम का प्रयोग होना चाहिए था, वहा अल्प-विराम से ही काम निकाला है। प्रेमचन्द जी ने भी अपनी रचनाओ मे सभी विराम-चिह्नो का प्रयोग किया है, और वह अधिकाश मे सही ही हुआ है।

काव्य रचनाओ मे विराम-चिह्नो के प्रयोग का सूत्रपात भी 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के लेखको ने ही किया था, किन्तु वह बहुत समय तक प्रचलित नही हो सका। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी काव्य रचनाओ मे एक-आध स्थल पर अल्पविराम का प्रयोग कर दिया है। भारतेन्दु जी स्वय, तथा उनके युग के अन्य लेखको ने, पहले से चले आते हुए। तथा ॥ के प्रयोग को ही प्रचलित रक्खा था। श्रीधर पाठक पहले कवि थे, जिन्होंने कि इन्हें छोडकर इनके स्थान पर अंग्रेजी के विराम चिह्नो का प्रयोग आरम्भ किया। उन्होंने अपनी काव्य रचनाओ मे अल्पविराम, विस्मयादि-बोधक तथा प्रश्नवाचक चिह्नो का प्रयोग किया। अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप मुक्त-छन्द की रचनाओ का प्रारम्भ हो जाने से, अंग्रेजी से लिये गये विराम-चिह्नो का प्रयोग

बहुत अधिक आवश्यक हो गया था, और लोचन प्रसाद पाण्डेय तथा जयशंकर प्रसाद ने, श्रीधर पाठक द्वारा प्रयुक्त विराम-चिह्नों के अतिरिक्त, पूर्णविराम, निर्देशक तथा अवतरण चिह्नों का भी, अपनी छन्दोबद्ध तथा मुक्त छन्द की रचनाओं मे, विशेष रूप से दूसरे प्रकार की रचनाओं में, प्रयोग किया।

किसी रचना का अनुच्छेदों मे विभाजन भी, जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, विराम के प्रयोग का ही एक विधान है, और क्योंकि अनुच्छेदों की व्यवस्था करना भी अंग्रेजी प्रभाव से ही सीखा गया था, इसलिए इस सम्बन्ध मे भी यहा पर विचार हो जाना चाहिए। विराम-चिह्नों के प्रयोग की ही भाँति किसी रचना के अनुच्छेदों मे विभाजन मे तर्क, भौतिकता तथा भाषा की गति की आवश्यकताओं के ही अनुसार कार्य किया जाता है। हिन्दी भाषा मे प्रस्तुत की जाने वाली रचनाओं को अनुच्छेदों मे विभाजित करने की परम्परा का प्रारम्भ भी 'फोर्ट विलियम कॉलेज' के लेखकों ने ही किया था। लल्लू जी लाल ने अपने 'प्रेम सागर' तथा सदल मिश्र ने अपने 'नासिकेतोपाख्यान' मे, जो अनुच्छेदों की व्यवस्था की है, वह तार्किक आवश्यकताओं पर आधारित है। राजा शिव प्रसाद ने भी तर्क की आवश्यकताओं के आधार पर ही अपनी रचनाओं को अनुच्छेदों मे विभाजित किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा श्रीनिवास दास को, जिस प्रकार विराम चिन्हों के प्रयोग के नियमों का ज्ञान नही था, उसी प्रकार वे अनुच्छेदों के सही प्रयोग के विषय मे भी अनभिज्ञ थे। इसी कारण उनके अनुच्छेद कभी तो बहुत छोटे हो गये हैं, इतने कि तीन चार को मिलाकर एक सही अनुच्छेद बन सके, और कभी इतने बडे हो जाते हैं कि उनमे कई अनुच्छेद बनाये जा सकते हैं।

सक्रांति युग के लेखकों, बाल कृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र तथा राधाकृष्ण दास ने, अपनी रचनाओं को, तर्क के आधार पर अनुच्छेदों मे विभाजित करने का प्रयास किया है। बाल मुकुन्द गुप्त भावात्मक शैली के लेखक थे, इस लिए उनकी रचनाओं मे हमे, लय तथा गतिमय अनुच्छेद देखने को मिल जाते हैं। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कभी तर्क के आधार पर और कभी श्वास की आवश्यकता के लिए अपनी रचना को अनुच्छेदों मे विभाजित किया है। मिश्र-बन्धुओं ने, अपनी रचनाओं मे, अनुच्छेदों की व्यवस्था तर्क के आधार पर—एक अनुच्छेद मे एक भाव का पूर्ण विकास हो—की है, इसीलिए उनकी रचनाओं मे बडे लम्बे-लम्बे, कभी कभी तो तीन-तीन पृष्ठ के अनुच्छेद, मिलते हैं। प्रेमचन्द तथा सरदार पूर्णसिंह ने भी, अपनी रचनाओं को, तर्क के आधार पर ही अनुच्छेदों मे विभाजित किया है, किन्तु उन्होंने मनुष्य की भौतिक सीमा, श्वास की अवधि का भी, पूर्ण ध्यान रक्खा है, इसी लिए उनके अनुच्छेद विशेष लम्बे नही हो गये हैं। सरदार पूर्णसिंह भावुक मनोवृत्ति

के लेखक थे, इसलिए उन्होने भी कभी-कभी बालमुकुन्द गुप्त की भाति लय तथा गति से युक्त अनुच्छेद लिखे है।

इस अध्ययन को समाप्त करते हुए यह कहा जा सकता है कि अग्रेजी के विराम-चिन्हों को ग्रहण करने से हिन्दी गद्य के विकास को विशेष गति मिली थी। उन्होने हिन्दी मे लिखी जाने वाली रचनाओ को अधिक तर्क-पूण तथा बोधगम्य बना दिया था। अनुच्छेदो की व्यवस्था से भी रचना के विभिन्न भागो, तर्को तथा विषय के विविध पक्षो को अधिक स्पष्टता प्रदान करने मे सहायता मिली थी। किसी विषय पर लिखे गये निबन्ध मे, किस भाव, तक अथवा पक्ष का क्या महत्व है, उनसे सबधित अनुच्छेदो के बडे अथवा छोटे होने से स्पष्ट हो जाता था। इस प्रकार यह कहा जा सकता है, कि विराम-चिह्नो के प्रयोग तथा अनुच्छेदो की व्यवस्था से, किसी विषय की निश्चित रूपरेखा तथा उतार-चढावो को समझने मे, विशेष सहायता मिलने लगी, और यह हिन्दी गद्य के लिए विशेष लाभप्रद सिद्ध हुई।

६ शैली

शैली के सम्बन्ध मे विचार करते हुए पाश्चात्य आलोचक बफून ने लिखा है

"Style consists in the order and movement which we introduce into our thought"[१]

अर्थात शैली उन क्रमिक तथा गतिशील विधान मे निहित है, जिनका उपयोग हम अपने भावो तथा विचारो को प्रकट करते हुए करते हैं। इस प्रकार शैली के दो पक्ष होते है एक, वह क्रम जो कि लेखक अपनी भाषा को प्रदान करता है, तथा दूसरा, वह गति जिसका कि उपयोग वह किसी विषय से सम्बन्धित अपने भावो तथा विचारो को प्रकट करते हुए अपनी भाषा मे करता है। हरबर्ट रीड ने इनमे से प्रथम के लिए रचना-विधान (Composition), तथा द्वितीय के लिए अलकरण (Rhetoric) सज्ञाओ का प्रयोग किया है। अग्रेजी की गद्य शैली का अध्ययन करते हुए उन्होने रचना के अन्तर्गत शब्दो, उपमानो, रूपको, वाक्य-व्यवस्था, अनुच्छेदो तथा इनके सयोजन पर विचार किया है, और अलकरण के अन्तर्गत उन्होने विभिन्न प्रकार की शैलियो, व्याख्यात्मक, कथात्मक आदि का विवेचन किया है जो कि लेखक की समय-विशेष की मनोवृति तथा व्यक्तिगत विशेषताओ से प्रेरित होती है। आगे यह देखा जायेगा कि हिन्दी के लेखको की शैली के ये दोनो पक्ष कहा तक अग्रेजी से प्रभावित हुए हैं। कवियो तथा गद्य लेखको की शैली मे मूलगत अन्तर होता है—कवि भावुक मनोवृत्ति के होते है और गद्य लेखक तार्किक—इसलिए काव्य शैली तथा गद्य शैली दोनो पर अग्रेजी प्रभाव का अध्ययन अलग अलग किया जायेगा।

१—हरबर्ट रीड · 'इगलिश प्रोज स्टाइल' पृ० १६, भूमिका भाग मे उद्धृत

क—काव्य

यदि अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व की, तथा उसके बाद लिखी गई काव्य रचनाओ को एक साथ रख कर देखा जाय, तो अंग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी कविता को कहाँ तक परिवर्तित कर दिया है, यह पूर्णत स्पष्ट हो जायगा। जहाँ तक शब्दो [काव्यात्मक], उपमानो तथा रूपको का सम्बन्ध है, जिन्हे कि सयुक्त रूप से 'काव्य भाषा' की सज्ञा दी जा सकती है, अग्रजी प्रभाव के ठीक पूर्व के हिन्दी कवियो ने उसे, सस्कृत से सीधे अथवा अपभ्रश भाषाओ के माध्यम से ग्रहण किया था। मुसलिम शासन के युग मे बहुत से अरबी तथा फारसी के शब्द भी हिन्दी भाषा ने ग्रहण कर लिये थे, किन्तु उन्होने विशेष काव्य सौन्दर्य नही धारण कर पाया था। इस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी की काव्य-भाषा एक प्रकार से 'प्रति बद्ध भाषा' थी, जिसका कि प्रयोग उस युग के प्रत्येक कवि ने किया था। उस युग मे उस प्रकार की काव्य प्रतिभा का अभाव था, जो कि पुराने शब्दो से भी नवीन भावनाओ को जागृत करती है, और नये उपमानो तथा रूपको के प्रयोग को प्रचलित करती है। उस युग के कवि, अपनी रचनाओ मे अलकारो का प्रयोग, काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि के लिए नही, वरन् साहित्यिक कौशल के प्रदर्शन के लिए किया करते थे। अंग्रेजी प्रभाव के बाद के युग मे, हिन्दी कवियो को हम इस प्रतिबद्ध शैली को छोडकर, एक स्वाभाविक शैली ग्रहण करते हुए पाते हैं।

आधुनिक हिन्दी कविता मे, स्वाभाविक शैली का सर्व प्रथम उपयोग, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कुछ रचनाओ मे देखने को मिलता है। भारतेन्दु जी ने अपनी अधिकाश काव्य रचनाओ मे भक्ति तथा रीति युग की भावनाओ को ही अभिव्यक्त किया है, और इन्ही युगो की काव्य पद्धति का भी उपयोग किया है, किन्तु उनकी लिखी हुई कुछ ऐसी भी रचनायें है, जिनमे आधुनिक युग की भावधारा के अनुकूल स्वाभाविक शैली का उपयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से उन्ही का विशेष महत्व है। अपनी 'प्रात समीरण' शीर्षक रचना मे उन्होने प्राकृतिक वातावरण का एक यथातथ्य चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इसी प्रकार 'भारत भिक्षा', 'भारत वीरत्व,' आदि रचनाओ मे भी, जो कि भावपूर्ण शैली मे लिखी गई हैं तथा जिनमे भारतवर्ष के पुरातन वैभव का स्मरण है, स्वाभाविक शैली का ही उपयोग हुआ है। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस स्वाभाविक शैली के ग्रहण के क्रम को और आगे बढाया था, और अग्रेजी के प्रसिद्ध कवि गोल्डस्मिथ की स्वाभाविक शैली का अनुकरण करते हुए 'जीर्णजन पद' नामकी एक लम्बी रचना लिखी थी। यह रचना पूर्णत गोल्डस्मिथ के 'दि डेजर्टेड विलेज' की पद्धति पर लिखित है।

इन कवियो ने अपनी रचनाओ के माध्यम से, हिन्दी कविता को जो नवीन स्वरूप प्रदान किया था और, उसके विकास की गति बिल्कुल नई दिशा की ओर परिचालित की थी, उसके फलस्वरूप, कविता मे थोडा बहुत रूखापन आ गया था। आगे चलकर श्रीधर पाठक तथा लोचनप्रसाद पाण्डेय ने, हृदय की प्रेरणा से लिखी गई अपनी रचनाओ द्वारा, हिन्दी कविता मे फिर से कोमलता तथा स्निग्धता की अवतारणा की। हिन्दी के ये कवि, अपनी शैली की दृष्टि से अंग्रेजी के कवियो टॉमसन, गोल्डस्मिथ, वर्ड्स्वर्थ तथा बायरन से प्रभावित थे। हिन्दी कविता के क्षेत्र मे जयशकर प्रसाद के आगमन के साथ वर्ड्स्वर्थ, शैली तथा कीट्स की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का प्रारम्भ भी, हो गया था। हिन्दी के ये कवि, कितनी सीमा तक अंग्रेजी के कवियो से प्रभावित हुए थे, इसका विस्तृत विवरण तो अगले प्रकरण मे दिया जायेगा, यहाँ हम केवल उनके ऊपर पडने वाले भाषागत प्रभाव का वर्णन करेंगे।

अंग्रेजी के कवियो ने, शैली की दृष्टि से, अपनी भावनाओ को ओड, सॉनेट ब्लैक-वर्स (अमित्राक्षर छन्द), एलेजी (शोककाव्य) आदि रूपो मे अभिव्यक्त किया था। अंग्रेजी के कवियो के सम्पर्क मे आकर, हिन्दी के कवियो ने भी इन नवीन साहित्यिक रूपो का थोडा बहुत उपयोग किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'भारत भिक्षा', 'भारत वीरत्व' तथा 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' शीर्षक तीन ओड लिखे थे। सॉनेट की रचना हिन्दी मे सर्व प्रथम श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ की रचना 'दि ट्रेविलर' के हिन्दी अनुवाद 'श्रांत पथिक' के समर्पण मे की थी। इसके अनन्तर लोचनप्रसाद पाण्डेय तथा जयशकर प्रसाद ने बहुत से सॉनेट लिखे। हिन्दी मे अमित्राक्षर छन्द का प्रारम्भ जयशकर प्रसाद ने किया था। उन्होने तो इस शैली मे एक छोटा सा नाटक 'करुणालय' भी लिखा था। लोचनप्रसाद पाण्डेय ने भी इस शैली मे कुछ रचनायें प्रस्तुत की थी। हिन्दी मे प्रथम शोक-काव्य (एलेजी), बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निधन पर लिखा था। उसके अनन्तर श्रीधर पाठक तथा जयशकर प्रसाद ने भी कुछ इसी प्रकार की रचनाए लिखी। अंग्रेजी के एक एपीटैफ (शोकोद्गार) का हिन्दी रूपान्तर श्रीधर पाठक ने प्रकाशित कराया था, और उसके बाद 'श्रीधर' ने अपने चारण नामक कथा-काव्य मे, एक मौलिक शोकोद्गार लिखा था। यह कथा-काव्य, सर वाल्टर स्कॉट के 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रैल' के अनुकरण मे लिखा गया था। अंग्रेजी प्रभाव के इस पक्ष की अगले प्रकरण मे विस्तृत रूप से विवेचना की जायेगी।

अंग्रेजी प्रभाव के कारण हिन्दी कविता ने, किस प्रकार अपनी काव्य-भाषा को

वदल दिया था, और अग्रेजी के कुछ अलकारो का प्रयोग सीख लिया था, इसके सवन्ध मे भी कुछ विचार कर लेना चाहिए। नवीन काव्य भाषा की खोज का प्रारम्भ तो उसी दिन से हो गया था, जव से हिन्दी-प्रदेश मे नवयुग का सूत्रपात हुआ था, किन्तु इस प्रयास मे सफलता, हिन्दी कविता के क्षेत्र मे, जयशकर प्रसाद के आविर्भाव से ही मिली थी। निम्नलिखित पक्तियो मे, जो कि उनकी काव्य रचनाओ से ली गई हैं, ऐसे उपमान हैं तथा शव्दावलिया है, जिनका हिन्दी मे पहले प्रयोग नही हुआ था, कम से कम उस अर्थ मे तो नही ही हुआ था, जिसमे कि यहाँ पर हुआ है

(१) "हे कल्पना सुखदान। तुम मनुज जीवन प्राण॥"[१]
(२) "यह नीरस है तरू जानत ना। अति कोमल जानि अजान वना॥"[२]
(३) "अरे नहिं जानत फूल अजान। यहै करिहै तव मर्दन मान॥"[३]
(४) "प्रथम भाषण ज्यो अधरान मे। रहत है तव गु जन प्रान मे॥"[४]
(५) "प्रभो ? प्रेममय प्रकाश तुम हो, प्रकृति पद्मिनी के अंशुमाली॥"[५]
(६) "मनोवेग मधुकर सा फिर तो गूंज के।
मधुर मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा॥"[६]
(७) "यद्यपि है अज्ञात ध्वनि कोकिल तेरी मोदमय॥"[७]

इन अवतरणो मे 'कल्पना सुख' अग्रेजी की एक शव्दावली 'Pleasures of fancy' का अनुवाद प्रतीत होता है, जो कि अग्रेजी के कवि कीट्स की एक रचना का शीर्षक है। 'अजान' का प्रयोग अग्रेजी के शव्द 'Innocent' के स्थान पर किया गया जान पडता है। इसी प्रकार 'प्रथम भाषण' 'First utterance', 'प्रेममय प्रकाश' 'light of love', 'स्वर्गीय गान' 'heavenly music' तथा 'अज्ञात' 'Unknown' के रूपातर प्रतीत होते हैं।

जयशकर प्रसाद की रचनाओ के सभी काव्यात्मक शव्द अग्रेजी से ही नही ग्रहण किये गये थे, उनमे से कुछ को उन्होंने वगला काव्य से भी ग्रहण किया था। फिर वे

१—जयशकर प्रसाद 'चित्राधार' (१९१८), पृ० १४१
२—वही, पृ० १५१
३—वही, पृ० १५२
४—वही, पृ० १६५
५—जयशकर प्रसाद 'कानन कुसुम' (१९१२), पृ० २
६—वही, पृ० १६
७—वही, पृ० ४८

स्वय भी तो स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति के कवि होने के कारण पुरा ने शब्दो को नवीन भावात्मकता प्रदान करने, नये उपमान खोजने तथा नई शब्दावलियो का निर्माण करने की प्रतिभा से वे सम्पन्न थे। अपनी इस प्रतिभा को उन्होने, अग्रेजी तथा बगला के कवियो, विशेष रूप से रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओ के अध्ययन से और भी विकसित कर लिया था। इस प्रकार जयशकर प्रसाद ने हिन्दी को जो काव्य-भाषा प्रदान की थी, वह विस्तृत अध्ययन तथा विचार-विमर्श से प्रसूत थी।

जयशकर प्रसाद की रचनाओ के वे शब्द, जिनमे काव्य-तत्व निहित हैं, और जिन्होने आगे चल कर काव्य-भाषा का रूप धारण किया था, निम्नलिखित वर्गो मे विभक्त किये जा सकते है

(१) नये विशेषण कल्पित, पुलकित, आनदित, पल्लवित, मुकुलित, कुसुमित रञ्जित, प्रेममय, सुखमय, प्रभातिक,

(२) ध्वन्यानुकरण मूलक शब्द तरग, तरगिणी, वीचीविल्लोल, हिलोर, खिल-खिल, कलकल, गूज, निनाद, गम्भीर,

(३) नवीन भावात्मकता से अनुप्राणित शब्द मधुर, कोमल, आनन्द, विमल, अमल, चपल, तरल, अजान, असीम, सुषमा, प्रकाश, विकास, कल्पना, प्रतिभा, अभिराम, सुगन्ध, मञ्जुल, नीरव, सुमन, क्लात, शिथिल, प्रभञ्जन, स्पन्दन, स्पर्श,

(४) शब्द युग्म नीरवप्रेम, मधुराक्षर, स्पन्दनहीन, मधुग्रन्थ, छविधाम तथा अन्य।

इन शब्दो तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दो के काव्य-भाषा के रूप मे उपयोग मे हिन्दी कविता मे पूर्णत नवीन जीवन का सूत्रपात हो गया था, और वह नव युग की भावना से अनुप्राणित हो गई थी।

हिन्दी कवियो ने अग्रेजी से तीन अलकार, मानवीकरण (Personification) विशेषण विपर्यय (Transfered epithet) तथा ध्वन्यानुकरण (Onomatopoeia) ग्रहण किये हैं। इनमे से प्रथम, मानवीकरण का प्रयोग, अग्रेजी प्रभाव के पूर्व भक्तिकालीन तथा रीतियुगीन रचनाओ मे भी मिलता है, किन्तु तब वह अलकार के रूप मे स्वीकार नही किया जाता था। आधुनिक हिन्दी काव्य मे, अलकार के रूप मे, इसका सर्व प्रथम प्रयोग श्रीधर पाठक की रचनाओ मे देखने को मिलता है, जो कि अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो से प्रभावित है। काश्मीर के सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है

"प्रकृति यहा एकान्त बैठि निज रूप सवारति।
पल पल पलटति भेस क्षणिक छवि छिन छिन धारति॥"[१]

इन पक्तियो मे प्रकृति को नारी का रूप प्रदान कर दिया गया है। जयशकर प्रसाद की रचनाओ मे इस अलकार का प्रयोग और भी अधिक मिलता है, क्योकि उन्होने स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति को विशेष रूप से ग्रहण किया था। निम्नलिखित पक्तियो मे मलयानिल का मानवीकरण है

"अहो विमल मलयानिल नेकधीर धरि आओ।
कावेरी के रम्य तीर सो वेगि न धाओ॥
बरबस कुल कामिनी अचल को नाहि उडाओ।
नव मुकुलित मजरी अहै इत धीरे आओ॥"[२]

इसी प्रकार आगे की पक्तियो मे उद्यानलता को नारी के रूप मे देखा गया है

"सुमनावलि सो लदि मोद भरी,
पतिया सो लखात नवीन हरी।
भरि अक अहो तुम भेटति को,
तरू के हिय दाह समेटति को॥"[३]

निम्नलिखित पक्तियाँ सध्यातारा को सम्बोधित करके लिखी गई है

"सन्ध्या के गगन मह सुन्दर बरन
को हौ झलकत तुम अमल रतन।"[४]

विशेषण विपर्यय अलकार का प्रयोग केवल जयशकर प्रसाद ने ही किया था और उसे हम निम्नलिखित पक्तियो मे देख सकते है

(१) "तब मधुर ध्यान ललाम।"[५]
(२) "वह सुधारत मजुल नेम को।
लहत है जब नीरव प्रेम को॥"[६]
(३) "प्रभो प्रेममय प्रकाश तुम हो।[७]

१—श्रीधर पाठक 'काश्मीर सुषमा', पृ० १
२—जयशकर प्रसाद 'चित्राधार' (१६१८), पृ० १४७
३—वही, पृ० १५१
४—वही, पृ० १६०
५—वही, पृ० १४१
६—वही, पृ० १६५
७—जयशकर प्रसाद 'काननकुसुम' (१६१२), पृ० १

(४) "आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमे,
खुली आख आनन्द दृश्य दिखला दिया ।"[१]

इन पक्तियो मे प्रयुक्त विशेषण, मधुर, नीरव, प्रेममय तथा आनन्द, जिन भावनाओ को जागृत करते हैं, उनके अनुसार, जिन शब्दो के साथ उनका प्रयोग हुआ है, उनसे अधिक, उपस्थित अथवा अन्तर्हित अन्य शब्दो के साथ सम्बन्धित हैं । 'मधुरध्यान' शब्दयुग्म मे मधुर शब्द, ध्यान किये जाने वाले व्यक्तियो के साथ अधिक सम्बन्धित प्रतीत होता है, स्वय ध्यान के साथ उतना नही । यह शब्दयुग्म अग्रेजी के सयुक्त-शब्द Sweet rememberance का अनुवाद भी प्रतीत होता है । इसी प्रकार 'नीरव प्रेम' मे, जो कि सम्भवत Silent love का हिन्दी रूपान्तर है, 'नीरव' शब्द, प्रेम से अधिक, एक दूसरे को प्रेम करने वाले व्यक्तियो से सम्बन्धित है । 'प्रेममय प्रकाश' मे, प्रेम की भावना, प्रकाश के साथ उतनी सम्बन्धित नही है, जितनी 'प्रभो' के साथ, जिससे प्रेममय रूप मे देखा गया है । 'आनन्द दृश्य' मे आनन्द शब्द, दृश्य से अधिक द्रष्टा की मानसिक प्रसन्नता से सम्बन्धित है । इस अलकार के प्रयोग से काव्य-रचनाओ मे और अधिक ध्वन्यात्मकता अथवा व्यञ्जना शक्ति आ गयी है, और जयशकर प्रसाद ने इसका प्रयोग करके हिन्दी भाषा की व्यञ्जना शक्ति की ही अभिवृद्धि की है ।

ध्वन्यानुकरण अलकार के प्रयोग से, जिसमे शब्दो की ध्वनि, भाव को प्रति-ध्वनित करती है, काव्य रचनाओ मे एक नवीन सगीतात्मकता उत्पन्न हो जाती है । प्रसाद जी की रचनाओ मे इस अलकार के भी उदाहरण देखने को मिल जाते हैं

"तरग तरल चपल चपल लेत हिलोर अपार ।
कूलन सो मिली करैं खिल खिल तटन विस्तृन धार ।।
वृत्ति वेगवति चलत ज्यो अति मनुजता बस होत ।
तरगिनि धारा चलत अपारा चारु कल कल होत ।।"[२]

इन पक्तियो मे चपल चपल, हिलोर, खिलखिल तथा कलकल शब्द ध्वन्यानुकरण मूलक ही हैं ।

जहाँ तक काव्य-शैली का सम्बन्ध है यह कहा जा सकता है कि सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य जयशकर प्रसाद ने किया था । उन्होने एक नवीन काव्य-भाषा का

१—जयशकर प्रसाद 'काननकुसुम' (१९१२), पृ १५
२—जयशकर प्रसाद · 'चित्राधार' (१९१८), पृ० १५०

सूत्रपात किया था, और उसके माध्यम से हिन्दी कविता को नवजीवन प्रदान किया था। प्रसाद जी ने ही अपनी रचनाओ मे, अग्रेजी काव्य के अलकारो का प्रयोग करके, हिन्दी कविता को एक नये प्रकार की लाक्षणिकता तथा ध्वन्यात्मकता प्रदान की थी। काव्य शैली मे परिवर्तन के क्रम का आरम्भ तो उसी दिन से हो गया था, जब से नवयुगीन प्रवृत्तियो ने हिन्दी साहित्य मे प्रविष्ट होना आरम्भ किया था, किन्तु हिन्दी के कवि, अपनी वर्षो से प्रचलित, विशेष परिश्रम-लब्ध, शैली को छोडकर, यथातथ्य वर्णन की प्रवृत्ति को ग्रहण कर रहे थे, इसलिए उनकी रचनाओ में कुछ नीरसता आ गई थी, और उनमे काव्यतत्व का भी कुछ अभाव हो गया था। श्रीधर पाठक तथा लोचन प्रसाद पाण्डेय ने, अपनी रचनाओ से आधुनिक हिन्दी कविता मे फिर से काव्यतत्व का सचार आरम्भ कर दिया था, किन्तु वास्तविक काव्य सौन्दर्य तो जयशकर प्रसाद की रचनाओ मे ही देखने को मिला। जयशकर प्रसाद जी ने हिन्दी की काव्य-भाषा के निर्माण मे जो योग दिया था, उसके सम्बन्ध मे वही कहा जा सकता है, जो अग्रजी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ० जॉनसन ने ड्राइडन के सम्बन्ध मे कहा था

"He found it (ie the language of poetry) brick, and he left it marble"

अर्थात उसने काव्य-भाषा को ईटो के रूप मे पाया था और उसे सगमर्मर बनाकर छोडा। यह कथन ड्राइडन से कही अधिक प्रसाद जी के सम्बन्ध मे उचित कहा जा सकता है।

ख—गद्य

हिन्दी मे विभिन्न प्रकार की गद्य शैलियो के विकास मे भी अग्रेजी प्रभाव का थोडा बहुत योग रहा है। हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्य आदर्शो के निर्माण का अध्ययन करते हुए, यह बताया जा चुका है, कि किस प्रकार अग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप तथा अग्रेजी भाषा और साहित्य के सपर्क से, हिन्दी मे विभिन्न साहित्यिक रूपो का विकास प्रारम्भ हुआ था। विभिन्न साहित्यिक रूपो के प्रयोग से ही, विभिन्न प्रकार की शैलियो के विकास को प्रेरणा मिली। शैली के दो पक्षो, रचना-विधान तथा अलकरण मे से प्रथम की विवेचना हम, हिन्दी के शब्द-समूह, शब्दावलियों, मुहावरो, कहावतो, व्याकरण, वाक्य रचना तथा विराम-चिह्नो के प्रयोग मे अग्रेजी प्रभाव का अध्ययन करते हुए कर चुके है, इसीलिए आगे हम हिन्दी की गद्य शैली के अलकारिक पक्ष पर ही अग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करेगे।

यूनान के प्रसिद्ध विचारक अरस्तू ने अलकरण पर विचार करते हुये उसकी परिभाषा की थी

इस दृश्य की यथार्थता और अधिक सुन्दर रूप मे नही प्रस्तुत की जा सकती थी। जो कुछ छूटा जा रहा था उसे भी लेखक ने प्रासंगिक उपवाक्य मे दे दिया है। राजा शिव प्रसाद के बाद के सभी कथाकारो ने अपनी रचनाओ मे वस्तुओ तथा दृश्यो के इसी प्रकार के यथातथ्य वर्णन प्रस्तुत किये हैं। देवकी नन्दन खत्री (१८६१-१९१३), भी ने जिन्होने अधिकाश मे फारसी कथा साहित्य तथा भारतीय जन कथाओ से प्रभावित होकर लिखा था, अपनी रचनाओ मे प्राकृतिक दृश्यो के इसी प्रकार के यथातथ्य वर्णन दिये हैं, और यह उनकी रचनाओ पर अंग्रेजी के उपन्यासकार रेनाल्ड के प्रभाव के कारण सम्भव हुआ है। किशोरी लाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) तथा गोपालराम गहमरी (१८६६-१९४१) की रचनाओ मे इस प्रकार के वर्णन, अंग्रेजी के लेखको के साथ उनके निकट सम्पर्क के कारण और भी अधिक देखने को मिलते हैं।

कथात्मक शैली का उपयोग करते हुए घटना की गतिमयता को प्रस्तुत करने मे और भी अधिक कौशल का उपयोग अपेक्षित होता है, इसलिये इस प्रकार की कथात्मक शैली का विकास हिन्दी मे कुछ विलम्ब से हुआ था। सर्व प्रथम इसका प्रयोग प्रेमचन्द जी ने अपनी रचनाओ मे किया। निम्नलिखित पंक्तियो मे उन्होने एक गाव मे मिठाई बेचने वाले के आने के समय का अच्छा वर्णन किया है

"मगल का शुभ दिन था, बच्चे बडी बेचैनी से अपने दरवाजो पर खडे गुरदीन की राह देख रहे थे। कई उत्साही लडके पेडो पर चढ गये थे और कोई-कोई अनुराग से विवश होकर गाँव से बाहर निकल गये थे। सूर्य भगवान अपना सुनहला थाल लिये पूरब से पच्छिम मे जा पहुचे थे कि गुरदीन आता हुआ दिखाई दिया। लडको ने दौड कर उसका दामन पकडा और आपस मे खीचा तानी होने लगी। कोई कहता था, मेरे घर चलो, कोई अपने घर का नेवता देता था। सब मे पहले भानु चौधरी का मकान पडा, गुरदीन ने अपना खोचा उतार लिया। मिठाइयों की लूट शुरु हो गई। बालको और स्त्रियो का ठट्ठ लग गया। हर्ष-विषाद, सतोष और लोभ, ईर्षा और जलन की नाट्य शाला सज गई। कानूनदा वितान की पत्नी भी अपने तीनो लडको को लिये हुए निकली। ज्ञान की पत्नी भी अपने दोनो लडको के साथ उपस्थित हुई। गुरदीन ने मीठी बातें करनी शुरु की। पैसे चोली मे रक्खे, धेले धेले की मिठाई दी, धेले-धेले का आशीर्वाद। लडके दाने लिये उछलते कूदते घर मे दाखिल हुए, अगर गाँव मे कोई ऐसा बालक था जिसने गुरदीन की उदारता से लाभ न उठाया हो तो वह बाके गुमान का लडका धान था।"[1]

१—प्रेम चन्द 'प्रेमपूर्णिमा' (१९४६), आठवा सस्करण, पृ० ३८

इस अवतरण मे घटना की गतिशीलता को प्रस्तुत करने के लिए छोटे-छोटे वाक्यो का द्रुत गतिक प्रवाह प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार की शैली जीवन-वृत्त, इतिहास, यात्रा-विवरण तथा अन्य वर्णनात्मक रचनाओ के लिए भी उपयोगी होती है, क्योकि इनमे भी कथात्मकता होती है। राधाकृष्णदास ने वाप्पा रावल का जीवन चरित्र लिखते हुए इसी प्रकार की शैली का उपयोग किया है।

विचारो के क्षेत्र मे चिन्तन के उपयोग से एक विशेष प्रकार की शैली उत्पन्न होती है जिसे 'अतिवृत्त' कहते है। इस प्रकार की शैली की दो विशेषताये है—वस्तु-प्राधान्य तथा वन्धन-निरपेक्षिता। वस्तु-प्राधान्य से तात्पर्य दृष्टिगत वस्तुओ का स्पष्ट चित्रण है, और वन्धन-निरपेक्षिता का भाव, स्थान और काल के वन्धनो से मुक्त स्मरण शक्ति का उपयोग माना जाता है। अग्रेजी के लेखको मे, जोनेथन स्विफ्ट (१६६७-१७४५) ने अपनी 'गूलिवर्स ट्रैवल्स' मे इसी प्रकार की शैली का उपयोग किया है। हिन्दी मे इस प्रकार की शैली का सूत्रपात वालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) तथा कार्तिक प्रसाद खत्री (१८५१-१९०४) ने अपने निवन्धो 'कलिराज की सभा' तथा 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' मे किया था, जो सन् १८७३ की 'हरिश्चन्द्र मैगजीन के कुछ अको मे प्रकाशित हुए थे। इस प्रकार की शैली की विशेषताये 'कलिराज सभा' शीर्षक निवन्ध से ली गई निम्नलिखित पक्तियो से स्पष्ट हो जायेंगी

"भुठाई की नेव पर बनी, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य की दीवालो से घिरी एक वडी विस्तृत सभा है जिसके चारो ओर चार फाटक है जिसके यह नाम हैं, नास्तिकता, अल्पज्ञता, कौमूर्यता, और पाखड उस सभा के वीच मे एक लोहे का सिहासन है जिस पर बुद्धि के कूर, मन से चूर, सत्पथ से दूर, आखो के सूर, क्रोध मे भग, मुह के जरे, भले को वूरे, भुठाई पर कमर कसे, गणिकाओ मे फसे, पाप के वाप, डसने को साप, जालसाजो के सिरताज, कल्लेदराज, धरम के गाज, कलयुगराज आज की प्रजा पर विराजमान है।"[1]

उस निवन्ध मे, जिससे यह अश अवतरित है, तथा 'कलिराज की सभा' मे भी, जोनेथन स्विफ्ट के 'गूलिवर्स ट्रैविल्स' की व्यगात्मक शैली का उपयोग है। 'कलिराज की सभा' में तो ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे महापुरुष पर भी वडा तीखा व्यग है।

चिन्तन के साथ रागात्मकता के सयोग से, शैली के जिस आविष्कारात्मक या काल्पनिक विधान की सृष्टि होती है, वाल मुकुन्द गुप्त के निबन्धो मे, उसका उपयोग है। अपने

---

१ 'हरिश्चन्द्र मैगजीन', सख्या १, पृ० ५८

निवन्ध सग्रहो 'शिव शम्भु के चिट्ठे' (१९०६) और 'चिट्ठे और खत' (१९०८) मे, उन्होने अग्रेजी के निवन्धकारो एडिसन और स्टील के 'सर रोजर डे' कोवरले' की भाँति, 'शिवशम्भु' नाम के एक चरित्र की सृष्टि की है। गुप्त जी का यह चरित्र, सर रोजर की अनुकृति नही, वरन् अपनी निज की विशेषताओ से ओत-प्रोत है, किन्तु इन दोनो साहित्यिक चरित्रो के निर्माण की मूल भावना एक ही है इनके निर्माता स्पष्ट रूप से अपनी बात नही कहना चाहते थे, इसीलिये उन्होने, विशिष्ट चरित्रो का आविष्कार करके, उनके माध्यम से, अनेक घटनाओ तथा जीवन के विभिन्न पक्षो पर अपने विचार प्रकट किये है।

मनोभावनाओ की विचार पूर्ण अभिव्यक्ति, जिसे हरवर्ट रीड ने 'प्रातिभ-विधान' कहा है,[1] सरदार पूर्णसिंह की रचनाओ मे अनेक स्थलो पर देखने को मिलती है। इस प्रकार की रचना शैली की मूल विशेषता, आवेग पूर्ण स्थिति की गीतात्मक अभिव्यक्ति है। सरदार जी भावुक प्रकृति के लेखक थे, और उनके सभी निवन्ध जैसे 'मजदूरी और प्रेम' 'नयनो की गगा' आदि, जीवन का भावनापूर्ण तथा साथ ही विचारात्मक चित्र उपस्थित करते है। उनके निवन्ध 'आचरण की सम्यता' की निम्न लिखित पक्तियो मे, विपय से सम्वन्धित भावो की, विचार पूर्ण एव गीतात्मक विधान मे अभिव्यक्ति है

"जिस समय आचरण की सम्यता ससार मे आती है उस समय नीले आकाश से मनुष्य को वेद ध्वनि सुनाई देती है, नर नारी पुष्पवत खिलते जाते है, प्रभात हो जाता है, प्रभात का गजर वज जाता है नारद की वीणा अलापने लगती है, ध्रुव का शख गूज जाता है, प्रह्लाद का नृत्य होता है, शिव का डमरू वजता है, कृष्ण की वसुरी की धुन प्रारम्भ हो जाती है। जहा ऐसे शब्द होते है, जहा ऐसे पुरुप रहते हैं, जहा ऐसी ज्योति होती है, वही आचरण की सम्यता का सुनहरा देश है यही देश मनुष्य का देश है"।[2]

सरदार पूर्णसिंह ने अपने भावों को विचारात्मकता के साथ अभिव्यक्त करते हुए कुछ स्थलो पर अपनी रचना शैली मे अपने व्यक्तित्व की भी प्रतिष्ठा कर दी है। अभिव्यञ्जना प्रणाली के इसी व्यक्तित्व से अनुप्राणित विधान को देखकर ही, शैली को व्यक्ति का आत्मरूप कहा गया है। अभिव्यञ्जना के सभी विधान, किसी न किसी रूप मे आत्मगत होते हैं, किन्तु इस प्रणाली मे लेखक की अपनी विशेषताए और भी निखर कर प्रगट होती है। इसकी आधार भूत वृत्तिया, अपनी व्यक्तिगत प्रति-

१—हरवर्ट रीड : 'इगलिश प्रोज स्टाइल', ० ८६

२—श्यामसुन्दर दास सपादित 'हिन्दी निबध माला' द्वितीय भाग, पृ० २०६-७

क्रियाओं के प्रति सजगता तथा आत्माभिव्यक्ति नहीं वरन् आत्म-प्रसार की विधि से उनकी अभिव्यक्ति की क्षमता है। सरदार जी की निम्नलिखित पंक्तियों में इन दोनों वृत्तियों का प्रकाशन है

"उधर प्रभात ने अपनी सफेद किरणों से अंधेरी रात पर चाँदी सी छिड़काई, इधर मेरी प्रेयसी, मैना अथवा कोयल की तरह, अपने बिस्तर से उठी। उसने गाय का बछड़ा खोला, दूध की धारों से अपना कटोरा भर लिया। आते आते अन्न को अपने हाथों से पीस कर सुफेद आटा बना लिया। इस सुफेद आटे से भरी हुई छोटी सी टोकरी सिर पर, एक हाथ में दूध से भरा हुआ लाल मिट्टी का कटोरा, दूसरे हाथ में मक्खन की हाँडी। जब मेरी प्रिया घर की छत के नीचे इस तरह खड़ी होती है, तब वह छत के ऊपर की श्वेत प्रभा से भी आनन्द दायक, बल दायक, बुद्धि दायक जान पड़ती है। उस समय वह उस प्रभा से भी अधिक रसीली, अधिक रंगीली, जीती-जागती, चैतन्य और आनन्दमयी प्रातःकालीन शोभा सी लगती है। मेरी प्रिया अपने हाथ से चुनी हुई लकड़ियों को अपने दिल से चुराई हुई एक चिनगारी से लाल अग्नि में बदल देती है। जब वह आटे को छलनी से छानती है तब मुझे उसकी छलनी के नीचे एक अद्भुत ज्योति की लौ नजर आती है। जब वह उस अग्नि के ऊपर मेरे लिए रोटी बनाती है तब उसके चूल्हे के भीतर मुझे तो पूर्व दिशा की नयी लालिमा से भी अधिक आनन्ददायिनी लालिमा देख पड़ती है। मेरे गुरु ने इसी प्रेम से संयम करने का नाम योग रखा है। मेरा यही योग है।"[1]

लेखक के आत्मप्रसार का स्वरूप प्रगट करने वाली इस अभिव्यञ्जना प्रणाली की एक और विशेषता है, जो उसकी वाग्भंगिमा से सम्बन्धित है। वाग्भंगिमा से तात्पर्य, उक्ति के विशेष प्रकार के विधान से है, और सामान्यतः प्रत्येक लेखक की अपनी अलग वाग्भंगिमा होती है। सरदार पूर्णसिंह जी ने भी अपने निबन्धों में अपनी विशिष्ट वाग्भंगिमा विकसित की है। अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवि कीट्स और छायावाद के उन्नायक प्रसाद जी की भांति, उन्हें भी नवीन शब्द-युग्मों के निर्माण तथा प्रचलित शब्दों में नवीन अर्थ प्रतिष्ठा की रुचि रही है। अपनी ये दोनों प्रवृत्तियां, सम्भवतः उन्होंने, प्रसिद्ध अमरीकी कवि वाल्ट ह्विटमैन के अध्ययन से विकसित की थीं। इस कवि के सम्बन्ध में उन्होंने, उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का उद्घाटन, तथा काव्य रचनाओं का प्रभावात्मक अनुशीलन उपस्थित करते हुए 'सरस्वती' में एक निबन्ध भी लिखा था। उनकी रचनाओं में प्रयुक्त शब्द-युग्म हैं

आध्यात्मिक शोभा, अनाथ आत्मा, अनाथ नयन, अनाश्रित जीवन, आलस्य सुख,

---

1—श्यामसुन्दर दास (सं०) 'हिन्दी निबन्ध माला' द्वितीय भाग, पृ० १८-१९

ईश्वरीय जीवन, चेतन्य पूजा दिखावटी जीवन, दिव्य परिवार, निष्काम सेवा, प्रेम मजदूरी, मानसिक जुआ, मानसिक महाभारत, मानसिक शोभा, मौन आचरण, मौन जीवन, मौन पदार्थ, मौन प्रार्थना मौन भाषा, मौनमयी भाषा मौनरूपिणी सुगधि, शारीरिक राज्य, शुद्ध पूजा, सफेद ईश्वर आदि ।

नवीन अर्थ से अनुप्राणित शब्दो मे, 'प्रेम' को हम सदा, उसके सामान्य वासनात्मक सम्बन्धो से मुक्त, एक पवित्र भावना के तात्पर्य में प्रयुक्त देखते है । सरदार जी की रचनाओ में नवीन भावभगिमा से अनुप्राणित कुछ अ य शब्द आनन्द, दिव्य, मौन, जीवन आदि हैं ।

अभिव्यञ्जना कौशल के शेष दो प्रकार, वाग्वैदग्ध्य और पारम्परिक-उक्ति-विधान, प्रस्तुत अध्ययन की अवधि तक हिन्दी मे विशेष विकसित नही हुए थे । इन दोनो रचना प्रणालियो का जो थोडा-बहुत विकास हुआ भी था, वह अग्रेजी प्रभाव से नही वरन् स्वत उद्भूत था । वाग्वैदग्ध्य को हरबर्टरीड ने विषय की महानता से अनुप्राणित अभिव्यञ्जना का विधान कहा है ।[1] यह अभिव्यञ्जना कौशल शब्दगत तथा अर्थगत दोनो ही प्रकार का होता है ।[2] शब्दगत वाग्वैदग्ध्य, शक्तिहीन और बाल्य कल्पना मात्र होता है ।[3] गोविन्द नारायण मिश्र और सत्यनारायण 'कविरत्न' की रचनाओ मे, इसी प्रकार उक्ति कौशल है, किन्तु उनके पीछे अग्रेजी प्रभाव की कोई प्रेरणा नही है । वाग्वैदग्ध्य का दूसरा प्रकार, जिसमे लेखक के विचार उभर कर आते है, वास्तविक वाग्वैदग्ध्य है प्रसाद जी अपनी स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति को लेकर यदा कदा उसकी अभिव्यक्ति करने लगे थे । इसी प्रकार चरित्र अथवा आत्मगत शील की रागात्मक अभिव्यक्ति,पारम्परिक उक्ति-विधान या आत्म सस्कार, कभी-कभी प्रेमचन्द जी की रचनाओ मे भी प्रगट होने लगा था ।

अभिव्यञ्जना कौशल के दो प्रकार, वाग्वैदग्ध्य और पारम्परिक-उक्ति-विधान हिन्दी मे इसलिए विकसित नही हो सके थे, क्योकि चरित्र अथवा आत्मगत शील, जो इनकी मूल प्रेरणा है, उन दिनो स्वय अग्रेजी प्रभाव की छाया मे रूपातरित हो रहा था । जब तक वह इस रूपातरण को प्रक्रिया को पूरा न कर ले, तब तक यह सभव ही कैसे था कि वह रागात्मकता के साथ अपनी अभिव्यक्ति करे । इसीलिए

१—हर्बर्ट रीड 'इगलिश प्रोज स्टाइल', पृ० १८६

२—वही, पृ० १८६

३—वही, पृ०१८६-८७ मे लारेंन्स स्टर्न के उद्धरण मे इसी रचना शैली का प्रयोग है ।

प्रसाद और प्रेमचन्द ने इन दोनो अभिव्यञ्जना प्रणालियो के प्रयोग मात्र आरम्भ किये थे, कालान्तर मे जब नवीन चरित्र पर्याप्त विकसित हो गया, तो इन दोनो लेखको ने उनके अधिक सशक्त प्रयोग उपस्थित किये ।

निष्कर्ष

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के अब निष्कर्ष दिये जा सकते हैं। हिन्दी का शब्द-भंडार, इस प्रभाव के फल-स्वरूप, सीधे तथा अनुवादित दोनो प्रकार के ग्रहणो से, अभिवर्धित हुआ है। अंग्रेजी से अनुवादित रूप मे गृहीत शब्दावलियो की संख्या भी पर्याप्त रही है। प्रयोग अथवा मुहावरो के सम्बन्ध मे हम पहले कह चुके हैं कि प्रत्येक भाषा मे इनका अपना स्वय विकास होता है, किन्तु आधुनिक काल मे हिंदी भाषा विशेष रूप से उसका खडी बोली रूप, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे विकसित हुआ, इसलिए कुछ अंग्रेजी मुहावरे भी उसमे अनुवादित हो कर आ गये है। इसी प्रकार अंग्रेजी की कुछ कहावते भी अनुवादित रूप मे ग्रहण कर ली गई है। हिन्दी के व्याकरणिक नियमो की खोज और उन्हे लिखित रूप देने का प्रयास सर्व प्रथम पाश्चात्य विद्वानो ने ही किया था, और उन्होने संस्कृत व्याकरण की नही, वरन् अंग्रेजी की पद्धति अपनायी थी। उनके बाद जब स्वय यहाँ के लोगो द्वारा इस दिशा मे प्रयास हुए तो भी अंग्रेजी की पद्धति का ही उपयोग किया गया। अंग्रेजी साहित्य से निकट संपर्क के कारण अंग्रेजी का वाक्य-विधान भी, जाने-अनजाने हिन्दी लेखको की रचनाओ मे आता रहा। विराम-चिन्हो के प्रयोग और अनुच्छेदो की व्यवस्था भी अंग्रेजी से हिन्दी मे आये हैं। हिन्दी के गद्य और पद्य की विभिन्न रचना शैलियो पर भी अंग्रेजी का पर्याप्त प्रभाव है।

अंग्रेजी प्रभाव के इतने व्यापक स्वरूप का सम्मिलित प्रतिफल यह हुआ है कि हिन्दी भाषा ने जीवन के विभिन्न पक्षो तथा ज्ञान-विज्ञान की अनेक धाराओ को अभिव्यक्त करने की शक्ति अर्जित कर ली है। यद्यपि यह नही कहा जा सकता कि अंग्रेजी प्रभाव के बिना हिन्दी भाषा मे यह शक्ति उत्पन्न ही न हुई होती, तथापि, जो वस्तु स्थित है, उसमे अंग्रेजी प्रभाव का पर्याप्त योग है। सम्भवत इस प्रभाव की अनुपस्थिति मे, हिन्दी मे नवीन साहित्यिक रूपो का इतना द्रुतगति पूर्ण विकास न हो पाता। हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति, अंग्रेजी प्रभाव को आत्मसात करके, कितनी बढ गई है, यह आगे के प्रकरणो से भली प्रकार स्पष्ट हो जायगा।

७

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव

हिन्दी भाषा पर अंग्रेजी प्रभाव के इस विश्लेषण के अनन्तर, हिन्दी के विभिन्न साहित्यिक रूपों पर इस प्रभाव का अध्ययन प्रारम्भ किया जा सकता है। प्राय सभी देशो के साहित्य का प्रारम्भ काव्य रचनाओ से ही हुआ है, इसलिए प्रस्तुत अध्ययन का प्रारम्भ भी हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना से किया जा सकता है। अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व, हिन्दी साहित्य ने मुख्यत अपने काव्य-रूप को ही विकसित किया था, इसलिए प्रारम्भ म ही हिन्दी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण, इस प्रभाव की विभिन्न वृत्तियो को स्पष्ट कर देगा। यह उस ऐतिहासिक अध्ययन की परम्परा के भी अनुरूप होगा, जिसे हम प्रारम्भ मे ही प्रस्तुत कर चुके है।

अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से प्रसूत सबसे अधिक महत्वपूर्ण तथा मूलभूत परिवर्तन साहित्य निर्माण के केन्द्रो का परिवर्तन रहा है। अंग्रेजी प्रभाव के सम्पर्क से पूर्व राज-सभाए तथा नवाबो के दरबार साहित्य निर्माण के केन्द्र थे। अंग्रेजी प्रभाव के प्रारम्भ तथा प्रसार ने केवल उनका महत्व ही नही, वरन् बहुत कुछ उन्हे भी समाप्त कर दिया, और उनके स्थान पर नवीन साहित्यिक केन्द्रो की स्थापना की परिस्थितिया उत्पन्न की। यह हम पहले ही देख चुके हैं कि अंग्रेजो की शासन प्रणाली, हिन्दी-प्रदेश की इसके पूर्व की शासन प्रणालियो से किस प्रकार भिन्न थी। अंग्रेजी शासन ने

अपने को सुदृढ करने के लिए एक नवीन सामाजिक वर्ग, मध्यम वर्ग, को विकसित किया था। हम देख आये हैं कि इस नवीन सामाजिक वर्ग, मध्यम वर्ग, के लोगो ने ही नवीन साहित्यिक-केन्द्रो की स्थापना की थी। इस वर्ग के लोगो के, तथा पहले के साहित्यिक-केन्द्रो के लोगो के, बौद्धिक तथा साहित्यिक दृष्टिकोणो मे विशेष अन्तर था। पहले के हिन्दी कवियो को राजाओ अथवा नवावो तथा उनके सभासदो की रुचि-अरुचि को देखना पडता था, उन्हे अपने अन्तर की भावनाओ को यदा कदा ही अभिव्यक्त करने का अवसर मिलता था। किन्तु अब वे अपनी निज की भावनाओ को स्वतन्त्रता के साथ अभिव्यक्त कर सकते थे, यदि उनकी अभिव्यक्तियो से अंग्रेजी साम्राज्य के लिए किसी प्रकार के अहित की सम्भावना न हो।

हिंदी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव का केवल यही रूप नही रहा है। अंग्रेजो द्वारा स्थापित शिक्षा-सस्थाओ के माध्यम से अंग्रेजी कविता के साथ स्थापित सम्पर्क, तथा अंग्रेजी कविता का अध्ययन भी, हिन्दी काव्य पर अपनी स्पष्ट छाप छोड गए हैं। हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव का यही सबसे महत्व पूर्ण पक्ष रहा है और आगे हम उसी का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे है।

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी, वस्तुत अंग्रेजी कविता के प्रभाव के विश्लेषण के लिए, अंग्रेजी कविता का अध्ययन आवश्यक है। अंग्रेजी कविता के सम्यक अध्ययन के बिना इस प्रभाव के सम्बन्ध मे निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता। इसी लिए आगे हम सबसे पहले अंग्रेजी कविता, विशेष रूप से उसके उन युगो का अध्ययन प्रस्तुत करेंगे, जिनकी रचनाए हिन्दी-प्रदेश में पढी गयी थी। इसके अनन्तर अंग्रेजी से अनुवादित रचनाओ का अध्ययन होगा, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि अंग्रेजी कविता की कौन सी धाराए तथा प्रवृत्तिया हिन्दी-प्रदेश के लोगो को रुचिकर हुई थी। हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव के साथ साथ, कुछ अन्य प्रभाव भी कार्य करते रहे थे, उनका भी विश्लेपण किया जायगा। यह विश्लेषण अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख विशेपताओ को और भी अधिक स्पष्ट कर देगा, और तभी हिन्दी के विभिन्न कवियो पर अंग्रेजी प्रभाव की भली प्रकार विवेचना हो सकेगी। प्रारम्भ मे हम अंग्रेजी काव्य की विशेषताए प्रस्तुत कर रहे है।

अंग्रेजी काव्य

हिन्दी-प्रदेश के लोगो का, अंग्रेजी कविता के साथ प्रथम सम्पर्क, नवीन शिक्षा-सस्थाओ के माध्यम से हुआ था। इन शिक्षा-सस्थाओ के विभिन्न पाठ्यक्रमो मे निर्धारित अंग्रेजी कवि थे मिल्टन ('पैरेडाइज लॉस्ट' 'लिसिडस', 'ल' एलेग्रो' तथा 'इल पेन्सोरोजो'), पोप ('दि टेम्पिल ऑफ फेम', 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म', तथा 'एसे

ऑन मैन'), जॉनसन, ('दि वैनिटी ऑफ ह्यमन विशेज' तथा 'लन्दन'), गोल्डस्मिथ ('दि हरमिट', 'दि डेजर्टेड विलेज' तथा 'दि ट्रेविलर,), टॉमसन ('दि सीजन्स') ग्रे ('एलेजी रिटेन इन एक न्ट्री चर्चयार्ड), काउपर ('दि टास्क'), वर्ड्सवर्थ ('एक्सकर्शन', 'टु ए हाइलैन्ड गर्ल', 'दि रीपर', 'दि कुक्कू' तथा अन्य बहुत सी रचनाए), स्काट ('दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल' 'मैरमिअन' 'दि लेडी ऑफ दि लेक), बायरन ('चाइल्ड हेराल्डस पिलग्रिमेज'), शैली ('एडोनेस' 'टु दि स्काईलाक' तथा अन्य), कीट्स ('एनडिमियन' 'स्लीप एन्ड विउटी' तथा अन्य), टेनिसन ('दि प्रिन्सेस' 'एनक आर्डेन 'दि लेडी ऑफ शेलाट्' तथा अन्य) मेकाले ('लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम') तथा कुछ अन्य। अमरीका के दो प्रसिद्ध कवि लागफेलो तथा वाल्ट ह्विटमैन की रचनाए भी हिन्दी-प्रदेश मे पढी गई थी। श्रीधर पाठक ने 'लागफेलो की इवैन्जेलीन' का हिन्दी अनुवाद सन् १८६६ ई० मे प्रकाशित किया था, और सरदार पूर्णसिंह ने 'सरस्वती' पत्रिका के १६१२ के एक अक मे 'अमरीका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन' शीर्षक एक निबंध लिखा था।

इन समस्त कवियो तथा इनकी रचनाओ के अध्ययन का तात्पर्य अंग्रेजी कविता के विकास के तीन विशिष्ट युगो के सम्पर्क मे आना था। इन तीन युगो मे प्रथम को हम स्वच्छन्दतावाद के पूर्व का युग (Pre Romantic Age) कह सकते है। इस युग के कवियो मे जॉन मिल्टन (१६०८-७४) का नाम सर्व प्रथम आता है, उसके अनन्तर एलेकजेन्डर पोप (१६८८-१७४४), सैमुअल जॉनसन (१७०६-८४), ऑलिवर गोल्डस्मिथ (१७२८-७४), जेम्स टॉमसन (१७००-४८), विलियम काउपर (१७३१-१८००) तथा टामस ग्रे (१७१६-७१) के नाम आते है। स्वच्छन्दतावाद के पूर्व के इन कवियो की रचनाओ मे, वास्तविक काव्यात्मक भावनाओ की अभिव्यक्ति के स्थान पर तर्कशीलता पर अधिक बल दिया गया है। इसके बाद आने वाले युग को हम स्वच्छन्दतावादी कवियो का युग (Romantic Age) कह सकते है। स्वच्छन्दतावादी कवि विलियम वर्ड्सवर्थ (१७७०-१८५०), पर्सी बुशे शेली (१७६२ १८२२), जॉन कीट्स (१७६५-१८२१), वाल्टर स्कॉट (१७७१-१८३२), तथा जार्ज गार्डन बायरन (१७८७-१८२४) ने अपनी रचनाओ मे तर्कशीलता के स्थान मे अपनी आन्तरिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया है। इन सभी कवियो मे प्रकृति के प्रति, उसके नयन-रजन दृश्यो के लिए नही वरन् उसे जीवन पर एक प्रभाव के रूप मे स्वीकार करके, विशेष अनुराग था। स्वच्छन्दतावाद के बाद के युग (Post Romantic Age), के कवियो एलफ्रेड टेनिसन (१८०९-६२), मेथ्यू आर्नल्ड आदि की रचनाओ मे भी, यद्यपि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिया देखने को मिलती है, किन्तु उन्होने जो कुछ

कहा है, उसके स्थान पर कैसे कहा है, अर्थात् अभिव्यजना की रीति पर, विशेष बल दिया है। इन तीनो युगो की काव्यगत विशेषताओ की अभी कुछ और स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

मिल्टन से लेकर ग्रे तक, स्वच्छन्दतावाद के पूर्व के युग के कवियो ने, जैसा पहले कहा जा चुका है, अपनी निज की भावनाओ को अभिव्यक्त करने के स्थान पर, तर्कशीलता को अधिक प्रश्रय दिया है, और इस प्रकार उन्होने जनसाधारण मे प्रचलित ज्ञान और वार्ताओ को लेकर अपनी रचनाए लिखी है। मिल्टन ने अपनी काव्य रचनाओ मे जीवन को एक ऐसे सघर्ष के रूप मे प्रस्तुत किया है, जिसमे सद्वृत्तियाँ असद् वृत्तियो को पराजित करने का प्रयास कर रही हैं। अपने पैरेडाइज लॉस्ट' ('स्वर्ग से पतन') नामक महाकाव्य के प्रारम्भ मे ही उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया है कि वे इस काव्य-ग्रन्थ को मनुष्य के आगे ईश्वरीय मार्ग का औचित्य सिद्ध करने के लिए लिख रहे हैं।[1] पोप ने अपनी प्रत्येक पक्ति मे सदाचार अथवा साहित्यिक आदर्श की शिक्षा दी है। जॉनसन ने अपने दो व्यग-काव्यो 'लन्दन' तथा 'दि वैनिटी ऑफ ह्यूमन विशेज' मे अपने युग की कुत्सित तथा असद् वृत्तियो पर तीव्र आक्रोश प्रगट किया है, और सद् वृत्तियो के उत्थान के लिए आवाज उठाई है।[2] गोल्डस्मिथ ने अपनी दो प्रसिद्ध रचनाओ 'दि ट्रेविलर' तथा 'दि डेज़र्टेड विलेज' मे अपने समय के सामाजिक तथा आर्थिक पतन के प्रति विशेष चिन्ता प्रदर्शित की है। टॉमसन ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'दि सीजन्स' मे, प्रकृति के प्रति विशेष आकर्षण व्यक्त किया है, और साथ ही शोषितो तथा प्रताडितो के लिए समवेदना तथा सहानुभूति की भावनाए प्रगट की हैं। उन्होने अपनी कुछ रचनाओ मे देश-भक्ति की भावना को भी व्यक्त किया है। काउपर ने अपने 'दि टास्क' मे प्रकृति के प्रति और तीव्र आकर्षण प्रगट किया है, किन्तु वह, स्वत प्रकृति के प्रति आकर्षण है, उसके उस स्वरूप के प्रति नही, जो मनुष्य मे भावनाए जागरूक करने मे समर्थ होता है। ग्रे ने अपनी 'एलेजी' मे गाव के निकट के एक कब्रिस्तान के बीच, शोक विह्वल तथा चिन्तन की मुद्रा मे खडे होकर वहा पडे हुए लोगो की स्थिति की तुलना, उन महान जीवनधाराओ से की है, जिनसे नियति ने उन्हे अलग कर दिया था। ये सभी काव्य रचनाए वस्तु-प्रधान हैं, अर्थात् किसी वस्तु-स्थिति अथवा यथार्थ को लेकर लिखी गई है। इनमे से प्राय प्रत्येक रचना मे जो मानवतावादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त हुआ है, वह केवल कवि

1—To justify the ways of God to man

2—To raise for good the supplicating voice

विशेष द्वारा गृहीत उस युग की तर्कशीलता का उन्मेष है।

इसके बाद आने वाले स्वच्छन्दतावादी युग के वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स आदि कवियो ने अपनी आन्तरिक अनुभूतियो को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया, तथा प्रकृति को जीवन पर एक विशिष्ट प्रभाव के रूप मे स्वीकार करके, उसके प्रति विशेष अनुराग को वाणी दी। वर्ड्सवर्थ ने अपनी रचनाओ मे अपने अन्तरग जीवन को अभिव्यक्त किया है, अथवा साधारण जनो और सामान्य वस्तुओ को लेकर उनके प्रति अपनी आन्तरिक भावनाओ को प्रगट किया है। अपनी रचना 'एक्सकर्शन', एक आत्मकथात्मक काव्य मे, वर्ड्सवर्थ ने अपने प्रारम्भिक जीवन की स्मृतियो तथा अपनी काव्यात्मा के विकास को प्रस्तुत किया है। इस रचना से यह भी प्रगट होता है कि वर्ड्सवर्थ ने बचपन के दिनो मे ही प्रकृति के प्रति आकर्षण तथा अनुराग का अनुभव किया था, और इस प्रकार सगृहीत अनुभूतियो को ही आगे चल कर अपनी काव्य रचनाओ मे अभिव्यक्त किया था। प्रकृति को उन्होने जीवन के ऊपर, एक नैतिक तथा आध्यात्मिक प्रभाव के रूप मे, स्वीकार किया था। स्कॉट ने आख्यानक काव्यो मे साहसिकता तथा स्वच्छन्दता (Chivalary and Romance) के पुरातन ससार को, उसकी पूर्ण रगीनी के साथ प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इन रचनाओ मे पुरातन को कल्पना की दृष्टि से अनुरजित करके बडी जगमगाहट के साथ उपस्थित किया गया है। अपनी इन्ही रचनाओ मे स्कॉट ने यदा कदा देश-भक्ति की भावना को भी अभिव्यक्त किया है। बायरन ने अपनी रचना 'चाइल्ड हेराल्डस पिलग्रिमेज' ('Childe Herold's Pilgrimage) मे अपनी यात्रा के विवरण को, एक साहसिकता तथा स्वच्छन्दता के आख्यान के रूप मे, प्रस्तुत किया है। अपनी यात्रा का वर्णन करते हुए उन्होने सागर, सरिताओ, प्राकृतिक दृश्यो, नगरो, भग्नावशेषो, नर-नारियो, प्राय मार्ग की उस प्रत्येक वस्तु का वर्णन प्रस्तुत किया है, जो एक स्वच्छन्दतावादी कवि की काव्य प्रतिभा को जागरुक करने मे समर्थ हुई है। कभी कभी बायरन ने इन वस्तुओ अथवा दृश्यो के प्रति अपने निज के विचार भी प्रगट किये है। शेली ने वस्तुत अपनी प्रत्येक रचना के माध्यम से, इस महान सदेश को प्रस्तुत किया है कि यदि मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर दिया जाय, तो जीवन सुदर, और यह ससार रहने योग्य हो जायगा। कीट्स ने अपनी रचनाओ से सौन्दर्य के प्रति अनुराग की भावना जगाने का प्रयत्न किया। उनकी सभी रचनाओ मे हमे एक गम्भीर पीडा की भावना परिव्याप्त मिलती है। स्वच्छन्दतावादी कवियो के इस अध्ययन मे यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि ये सभी कवि 'स्वच्छन्दतावादी' कहे गये है, तथापि प्रत्येक कवि की अपनी अलग विशेषताए हैं। किन्तु एक वर्ग मे

स्थान पाने के कारण ये सामुहिक रूप से शास्त्रीय-पद्धति की नियम-बद्धता तथा सायान्यता के प्रति विद्रोह, और एक मौलिक, स्वच्छन्द, चित्रोपम तथा कल्पना-प्रधान अभिव्यजना प्रणाली के प्रति अनुराग प्रगट करते है।

इसके अनन्तर स्वच्छन्दतावादोतर (Post-romantic) युग के कवि आते हैं जिनमे हिन्दी-प्रदेश के लोगो ने सबसे अधिक टेनिसन का अध्ययन किया था। ब्राउनिंग, रोजेटो और स्विनबर्न की भी कुछ रचनाए पढी गई थी। इन कवियो ने वर्ड्सवर्थ, शेली तथा कीट्स की स्वच्छन्दतावादी परम्परा को आगे बढाया था, तथा साथ ही अपने चारो ओर के कठोर यथार्थ की उपेक्षा कर के, स्वप्नो तथा भावजगत् में आश्रय लेने का प्रयत्न किया था। यह प्रवृत्ति एक बड़े सामाजिक परिवर्तन के कारण उत्पन्न हुई थी। इन कवियो का जीवन काल, उन्नीसवी शताब्दी, नवीन खोजो औद्योगीकरण तथा व्यापार के प्रसार का युग रहा था। इन नूतन शक्तियो ने एक द्रुत गति पूर्ण सामाजिक परिवर्तन के युग का सूत्रपात किया था। उस युग के कवियो ने, परिवर्तित होती हुई सामाजिक परिस्थितियो के साथ चलने मे अपने को असमर्थ पाकर, अपनी रचनाओ मे अपने चारो ओर के जीवन को अभिव्यक्त करना ही छोड दिया था, और अपने स्वप्नो तथा भाव-दृश्यो को ही प्रगट करने लगे थे। टेनिसन के सम्बन्ध मे कहा जाता है कि उसने औद्योगीकरण तथा अर्थोत्पादन के प्रसार की उपेक्षा करके, स्वप्न के जगत को प्रश्रय दिया था। ब्राउनिंग भी अपनी समस्त आशावादिता के साथ, पलायनवादी ही था, क्योकि उसने भी अपनी रचनाओ में, अपने चारो ओर के कठोर यथार्थ के स्थान पर, केवल अपने भाव-दृश्यो का ही वर्णन किया है। रोजेटी ने भी इसी प्रकार अपनी कविताओ मे, अपने व्यक्तिगत ससार के विषय मे ही कहा है और सघर्ष तथा कोलाहल से भरे हुए सामाजिक जीवन की उपेक्षा की है। स्विनबर्न ने भी सासारिक जीवन की उपेक्षा करके प्रतीकवाद तथा काव्य-कौशल के प्रदर्शन का आश्रय लिया है। किन्तु इस पलायनवादी प्रवृत्ति के होते हुए भी, इन कवियो ने, काव्य-कला को निखार कर, अग्रेजी कविता के विकास मे अपने लिए एक विशिष्ठ स्थान बना लिया है। हिन्दी के रीतियुग के कवियो ने भी काव्य-कला को निखारने का प्रयास किया था, किन्तु उनमे तथा अग्रेजी के इन स्वच्छन्दतावादोत्तर कवियो में विशेष अन्तर है रीतियुग के कवियो ने शास्त्रीय-पद्धति का अनुसरण करते हुए काव्य कला को निखारा था, किन्तु अग्रेजी के इन कवियो ने काव्य रचनाओ को नये-विधानो तथा नवीन अलकारो से सवारने का प्रयत्न किया था। इन कवियो के प्रयत्न के फलस्वरूप ही अग्रेजी कविता मे और अधिक सगीतात्मकता तथा सम्मोहन की सृष्टि हुई थी।

अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद

हिन्दी-प्रदेश मे पढे गये अंग्रेजी के कवियो के इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी कवियो ने अभी तक इन पद्धतियो को ग्रहण नही किया था। अपने आध्यात्मिक दृष्टिकोण के कारण, धर्म-निरपेक्ष भावना का उनके लिये कोई महत्व ही नही था, और इसीलिए उन्होने इस प्रकार की भावनाओ को अपनी रचनाओ मे अभिव्यक्त ही नही किया था। परम्परा के भार से वे इतने बोझिल हो गये थे कि नवीन प्रयोगो की ओर उनकी कोई रुचि ही नही रही थी। इन परिस्थितियो मे अंग्रेजी की काव्य रचनाओ को हिन्दी मे अनुवादित करना भी दुष्कर रहा होगा। हिन्दी भाषा मे अभी तक इस प्रकार की भावनाये अभिव्यक्त ही नही हुई थी, इस लिए हिन्दी के कवियो को अंग्रेजी कविताओ को अनुवादित रूप मे प्रस्तुत करने मे कठिनाई हुई होगी। अंग्रेजी से अनुवादित प्रारम्भिक रचनाओ को देखने से यह भय सत्य सिद्ध होता है। सम्भवत इसी कारण अंग्रेजी से हिन्दी मे अनुवादित रचनाओ की संख्या थोडी ही है।

अंग्रेजी कविताओ के हिन्दी अनुवाद सर्व प्रथम लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा गुरू' (द्वि स १८८२) मे मिलते है। इस उपन्यास के दो चरित्र शम्भू दयाल तथा ब्रज किशोर अंग्रेजी साहित्य मे विशेष परिचित हैं, और अपनी बात-चीत मे अपने विचारो की पुष्टि के लिए, ये चरित्र, अंग्रेजी के साहित्यकारो की सूक्तिया प्रस्तुत करते रहते हैं। सर्व प्रथम शम्भू दयाल ने शेक्सपियर के प्रसिद्ध नाटक 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' की पोर्शिया की कही हुई कुछ पंक्तियाँ तथा उनका हिन्दी रूपान्तर प्रस्तुत किया है। यह अनुवाद कुंडलिया छन्द मे मध्ययुगीन शैली मे प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में आगे चलकर काउपर तथा बायरन की कुछ पंक्तियो के अनुवाद भी मिलते है। ये अनुवाद भी पुराने छन्दो तथा मध्ययुगीन भाषा मे ही है। इन रचनाओ के भाव मध्ययुगीन हैं, इसलिए ये रूपान्तर निर्जीव नही हैं।

अंग्रेजी से हिन्दी मे अनुवाद के यही सर्व प्रथम प्रयास थे। अंग्रेजी कविताओ के हिन्दी अनुवाद व्यवस्थित रूप मे गोल्डस्मिथ की रचनाओ के रूपान्तर से प्रारम्भ हुए, इस कवि की हिन्दी में सर्व प्रथम अनूदित रचना 'हरमिट' थी, जिसे किन्ही लोचन प्रसाद ने खडी बोली हिन्दी मे 'योगी' नाम से प्रकाशित किया था। अनुवादक ने रचना को सजीवता प्रदान करने के लिए उसमे भारतीय वातावरण की सृष्टि कर दी थी। श्रीधर पाठक (१८५९-१९२८) ने इस रचना का एक अन्य अनुवाद खडी

१—यह रचना अप्राप्य है केवल कुछ उद्धरण अयोध्यानाथ खत्री के 'खडी बोली का पद्य' (लन्दन संस्करण, १८८८) मे ही देखने को मिलते है।

बोली हिंदी मे ही 'एकान्तवासी योगी' (१८८६) नाम से प्रस्तुत किया। इस रूपातर मे मूल रचना की सगीतात्मकता तथा मधुर प्रवाह का भली प्रकार निर्वाह है। पाठक जी ने मूल का पूर्णत अनुसरण करते हुये भी शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद की पद्धति को नही ग्रहण किया है जिससे उनका अनुवाद असुन्दर होने से बच गया है। पाठक जी ने मूल रचना की अन्तर्धारा को इतना अधिक आत्मसात् कर लिया था कि वे अपनी ओर से भी कुछ पक्तिया बढा सके। इन पक्तियो से इस कथा-काव्य का सौन्दर्य और भी अभिवर्द्धित हो गया है।

इस प्रथम प्रयत्न की सफलता से प्रोत्साहित होकर श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ की दो अन्य रचनाओ 'दि डेजर्टेड विलेज' तथा 'दि ट्रेविलर' के हिन्दी अनुवाद 'ऊजड ग्राम' (१८८९) तथा 'श्रान्त पथिक' (१९०२) प्रस्तुत किये। प्रथम का अनुवाद उन्होने व्रजभाषा मे किया था और द्वितीय का खडी बोली मे। ये दोनो अनुवाद शब्द-प्रति-शब्द किये गए थे और इनमे से प्रथम की सफलता के विषय मे लन्दन की एक पत्रिका ने निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित की थी

"A very successful translation of the 'Deserted Village' into Hindi has just made its appearence It reads with perfect fluency and sonority in Its Hindi dress, indeed, had an Indian composed an orginal poem on English village life, he could not havo put together a more finished production"[1]

गोल्डस्मिथ की दूसरी रचना के अनुवाद मे भी श्रीधर पाठक को इसी प्रकार की सफलता मिली।

पाठक जी ने अंग्रेजी की कुछ मुक्तक कविताओ के भी अनुवाद प्रस्तुत किये ग्रे की रचना 'शेफर्ड एन्ड दि फिलॉस्फर' को 'गडरिया और आलिम (१८८४), लॉगफेलो की 'इवैंजेलीन' को 'अजलैना' तथा पर्नेल की 'हरमिट' को 'योगी' के रूप मे। अंग्रेजी के एक समाधि-लेख (एपीटैफ) को उन्होने 'शव शिलालेख' शीर्षक से अनुवादित किया। इन अनुवादो मे भी उन्होने मूल की भावधारा को भली प्रकार अभिव्यक्त किया है।

पाठक जी के इन अनुवादो के अनन्तर, जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' ने पोप के 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म' को 'समालोचनादर्श' नाम देकर प्रस्तुत किया। यह अनुवाद व्रजभाषा मे किया गया था, और फारसी की 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' मे प्रकाशित हुआ था। यह शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद था, केवल अन्त मे रत्नाकर जी ने अपनी ओर से चौबीस पक्तिया और जोड दी थी। हिन्दी आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव का

१— 'ऐलन्स इडियन मेल', लन्दन, १७ फरवरी १८९०

विश्लेषण करते हुए, इस अनुवाद पर पुन विचार किया जायगा।

अंग्रेजी की प्रसिद्ध रचना ग्रे की 'एलेजी' के हिन्दी मे तीन अनुवाद किये गये। सर्व प्रथम अनुवाद आबू पर्वत के विद्या रसिक ने 'ग्रामस्थ शवागार लिखित शोकोक्ति' (१८९७) के रूप मे प्रस्तुत किया था। इसके अनन्तर कामता प्रसाद गुरु ने 'सरस्वती' के सन् १९०८ के एक अंक में इसका एक अनुवाद प्रकाशित किया। इस अनुवाद को लोचन प्रसाद पाडेय ने अपने काव्य-सकलन 'कविता कुसुम माला' (१९१०) मे भी स्थान दिया था। तृतीय अनुवाद किन्ही महेशचन्द्र ने किया था, और वह एक स्वतन्त्र पुस्तिका के रूप मे प्रकाशित हुआ था (१९१५)। इन तीन अनुवादो मे प्रथम तो सस्कृत के शार्दूल विक्रीडित छन्द मे था और पूर्णत असफल रहा था। प्रथम छन्द मे ही अनुवादक ग्रामीण वातावरण प्रस्तुत करने मे असफल रहा है।[1] वह बडी सरलता के साथ गिरजाघर की घटा-ध्वनि के स्थान पर मन्दिर के घन्टे के स्वर का उल्लेख कर सकता था। ग्रामीण वातावरण की अन्य सभी वस्तुओ—गायो, बकरियो आदि के चरागाहो से लौटाने, दिन भर के कठिन परिश्रम के बाद किसान के हल लेकर वापस आने, तथा सन्ध्या होने पर चारो ओर से अधकार के घिरने आदि से तो वह भली प्रकार परिचित रहा होगा। फिर भी वह ग्रामीण सध्या का दृश्य-विधान प्रस्तुत करने मे सफल नही हुआ है, और उसकी इस असफलता का कारण सम्भवत यह रहा है कि हिन्दी मे इसके पूर्व इस प्रकार के वातावरण का इतना यथार्थ चित्रण प्रस्तुत ही नही किया गया था। द्वितीय अनुवाद मे, शब्द-प्रति-शब्द निर्वाह के साथ भारतीय वातावरण को भी ग्रहण कर लिया गया है, मिल्टन और क्रामवेल के स्थान पर अयोध्यानाथ, शिव प्रसाद, राणा प्रताप, मानसिह आदि नाम दे दिये गये हैं। तृतीय अनुवाद में मूल रूप को ही बनाये रक्खा गया है।

ग्रे के इसी शोक-काव्य के समान मेकाले का कथा-काव्य 'लेज ऑफ एन्शेंट रोम' के भी हिन्दी मे तीन अनुवाद हुए। सबसे पहले इस काव्य-ग्रन्थ के एक कथा-प्रसग 'होरेशस' का अनुवाद, मैनपुरी के 'मिशन हाई स्कूल' के अंग्रेजी के अध्यापक, छगा लाल मिश्र ने, सन् १९०३ मे किया था, द्वितीय, इटावा के 'गवर्नमेंट हाई स्कूल' के अध्यापक बच्चन पाण्डेय ने सन् १९११ मे किया, तृतीय सन् १९१२ मे रघुनाथ प्रसाद कपूर द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस ग्रन्थ की पहली कथा मे, होरेशस द्वारा रोम

१—सध्या भास्वर नाद ने दिवस का अस्तान्त दिया बजा।
   डों डों रामत गाय बैल बन से आने लगे गाव मे॥

की ओर जाने वाले पुल के, शत्रुओ से वीरता के साथ सरक्षण का वर्णन है। इस प्रकार के कथा-प्रसग, राजस्थान के चारणो की रचनाओ मे भी प्राप्त होते है, इस लिए हिन्दी कवियो का उसकी ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। मेकाले ने अपने इस काव्य-ग्रन्थ मे रोम के भूले हुए वीर-गीतो की परम्परा को अग्रेजी भाषा मे पुन जीवित करने का प्रयत्न किया था। हिन्दी कवियो द्वारा प्रस्तुत किये गये इस ग्रन्थ के ये सभी अनुवाद, यदि खडी बोली मे होते तो उनमे मूल की भावना का भली प्रकार निर्वाह हो जाता। सबसे पहला अनुवाद, अवधी बोली मे है, फिर भी अनुवादक को मूल की भावना को व्यक्त करने मे यदा कदा सफलता मिली है। इस अनुवाद मे व्यक्ति-वाचक सज्ञाओ को छोडकर अग्रेजी का एक 'कप्तान' शब्द ही है। अग्रेजी के सयुक्त शब्द City fathers के स्थान पर हिन्दी के 'पच' शब्द का प्रयोग किया गया है। दूसरे अनुवाद मे प्रारम्भ मे मगलाचरण की चार पक्तियाँ है, और उसके बाद समस्त कथा चौपाई छन्द मे प्रस्तुत की गई है। इस अनुवाद मे मूल की भावना का भली प्रकार निर्वाह नही हो सका है, अनुवादक ने अपनी ओर से भी कुछ पक्तिया लिख दी है। अपने अनुवाद को हिन्दी पाठको के लिए विशेष ग्राह्य बनाने के लिये अनुवादक ने 'मेघनाथ समवीर', 'रुस्तम ज्वान', 'हनुमत सम' आदि शब्दावलियो का प्रयोग किया है। फिर भी उसने अग्रेजी के कुछ शब्दो—सिटी फादर्स, कौन्सिल आदि—का अपने मूल रूप मे प्रयोग किया है। अनुवादक ने जिस स्वच्छन्द वृत्ति को ग्रहण किया है, उसके साथ ये शब्द किसी प्रकार खपते नही। इन त्रुटियो के होते हुए भी इस अनुवाद मे प्रवाह है, इसलिये इस प्रयत्न को असफल नही कहा जा सकता। तीसरा अनुवाद खडी बोली मे है, और सम्भवत इसलिए विशेष सफल है।

अग्रेजी की कुछ और काव्य रचनाएँ हिन्दी मे अनुवादित होकर 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुई थी। सर वाल्टर स्कॉट के गीत 'लव ऑफ दि फॉदरलैंड' का अनुवाद 'स्वदेश प्रीति' शीर्षक देकर किया गया था। ग्रे की 'दि नाइटऐंगिल एन्ड ग्लोवर्म' का 'बुलबुल और जुगनू' जेम्स टायलर की 'माई मदर' का 'मेरी मैया', सेद के 'स्कॉलर' का 'पुस्तकावलोकन प्रेमी विद्वान', शेक्सपियर के 'फ्रेन्डशिप' का 'मित्रता', केम्पबेल की 'लार्ड उलिन्स डॉटर' का 'लार्ड उलिन कुमारी', टामस मूर के 'दि लास्ट रोज ऑफ समर' का 'ग्रीष्म का अन्तिम गुलाव', लागफेलो के 'दि सॉय ऑफ लाइफ' का 'जीवन गीत, वर्ड्सवर्थ के 'दि एफ्लिकशन ऑफ मारग्रेट' का 'माता का विलाप', पोप के 'दि हैपीनेस ऑफ रिटायरमेन्ट' का 'एकान्तवास का सुख', बायरन के 'फेयर दी वेल' का 'आशीर्वाद' इत्यादि। इनमे से अधिकाश अनुवादो को लोचनप्रसाद पाडेय ने, अपने काव्य सकलन 'कविता कुसुम माला'

मे भी स्थान दिया था। प्रत्येक अनुवाद अलग-अलग व्यक्तियो द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

लोचन प्रसाद पाडेय ने स्वय भी कुछ अंग्रेजी कविताओ के रूपान्तर किये थे वे अनुवाद उनके अपने काव्य-सग्रह 'माधव मजरी' (१९१४) मे प्रकाशित हुए। इन अनुवादो मे मूल लेखक का नाम नही, केवल मूल शीर्षक दे दिये गये है। अंग्रेजी की 'दि बी' शीर्षक रचना का अनुवाद 'मधुमक्खी' किया गया था, 'ग्रेकफुलनेस' का 'निहोरा', 'दि थी रूल्स' का 'नियमत्रय, 'दि चाइल्ड एन्ड दि बर्ड' का 'चिडिया और बालिका', 'दि वैस्प एन्ड दि बी' का 'मधुमक्खी और बरैया', 'द ट्रेवलरस रीटर्न' का 'घर का प्रभाव' तथा 'होम' का 'घर'। आगे चलकर 'सरस्वती' पत्रिका मे कुछ और अनुवाद प्रकाशित हुए थे, उनमे से विशेष महत्वपूर्ण जेम्स टॉमसन के 'रूल ब्रिटेनिया', का 'इग्लैंड का राष्ट्रीय गीत' तथा अमरीकी कवि लोएल की एक रचना का रूपान्तर 'स्वदेश' थे। ये सभी रूपान्तर सफल कहे जा सकते हैं, क्योकि इनमे मूल रचना की भावना का भली प्रकार निर्वाह है

इन रूपान्तरो के हिन्दी कविता के विकास पर प्रभाव के सम्बन्ध मे, श्रीधर पाठक द्वारा गोल्डस्मिथ के 'दि हरमिट' के हिन्दी रूपान्तर पर एक समाचार-पत्र मे प्रकाशित टिप्पणी दर्शनीय है।

"ऊजड ग्राम केवल हिन्दी जानने वालो को यह दिखलावेगा कि योरोपीय कवियो का क्या गुण है,। शब्दाडम्बर बाहुल्यता, कृत्रिमता कितनी स्वल्प इनकी कविताओ मे होती है। मातृभूमि का प्रेम, पदार्थो का, मनुष्यो का, समाजो का यथावत वर्णन, मनुष्यो के प्रति दया, इनकी रचनाओ मे कितनी झलकती है। ऐसी कवितायें हम लोगो के चित को उन्नत करती है, मनुष्यो मे प्रीति बढाती हैं और समाज का उपकार साधन करती हैं।"[1]

इस अनुवाद पर अंग्रेजी की पत्रिकाओ मे भी टिप्पणिया प्रकाशित हुई थी। उन्होने विशेष सम्भावनाएं प्रकट की थी। लन्दन से प्रकाशित 'दि इडियन मैगजीन' ने अपने जून १८८८ के सस्करण मे लिखा था

"This is a work the merit of which is not to be measured by its length It is obviously an attempt on the part of an observing man to lead his countrymen, from the extravagence of romance, induce them to realise the more satisfying beauties of nature the consequences of such a change of sentiment if ever accomplished would be most beneficial

---

१—श्रीधर पाठक 'मनोविनोद', तृतीय खण्ड, 'ओपीनियन्स ऐन्ड रिव्यूज', पृ० ४२

to India The exuberance of hyperbole which disfigures oriental verse and legend, lifts the mind into clouds of dreamland and weakens the practical virtues which make a people great The simplicity of the nature on the other hand, while satisfying and ennobling the heart, keeps the mind within the range of fact and probability" १

'अलीगढ इन्स्टीट्यूट गजट' ने अपने ६ जुलाई १८८६ के अंक मे लिखा था

Works such as these will not only make a valuable addition to Hindi literature They will give them an insight into that fine imagery, those delicate paintings of scenes and characters which are the peculiar attractions of English poetry They will lead them from the land of the wild, the fantistic, the supernatural and the impossible, with which so much of oriental poetry and romance abounds, into the regions of reason and reality and beauty"२

लन्दन मे प्रकाशित 'ऐलन्स इंडियन मेल' ने अपने फरवरी १७, १८९० के अंक मे इस अनुवाद से विशेष सम्भावनाये प्रकट की थी

"It is much to be hoped that other Indians, will take to heart the lesson silently rendered them by this masterly composition It teaches them to abandon mere word jingling and give their power to the production of a literature which shall reflect simple beauties of Nature, which shall call forth pure and noble thoughts, which shall raise the mental, moral and material condition of the country and which shall endure as memorial of patriotic labour" ३

यह देखने के पूर्व कि ये सम्भावनाये कहा तक पूर्ण हुई, हमे यह भी देख लेना चाहिए कि हिन्दी कविता पर अंग्रेजी कविता के साथ ही अन्य कौन से प्रभाव कार्य करते रहे। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायगा कि हिन्दी कविता ने अंग्रेजी कविता के संपर्क के अभाव मे भी, क्या नवीनतायें प्राप्त कर ली होती।

अन्य प्रभाव

अंग्रेजी प्रभाव के साथ सक्रिय अन्य प्रभाव, संस्कृत कविता तथा हिन्दी की विभिन्न ग्रामीण बोलियों के लोक-गीतो के प्रभाव रहे है। अंग्रेजी प्रभाव के विषय मे

१—श्रीधर पाठक 'मनोविनोद', तृतीय खण्ड, 'ओपीनियन्स ऐन्ड रिव्यूज', पृ० ४२

२—वही, पृ० ५०

३—वही, पृ० ५७

हम पहले ही कह चुके हैं, कि उसने अपने प्रारम्भ से ही, एक सास्कृतिक पुनरुत्थान तथा पुरातन साहित्य और कला के पुनर्जागरण का सूत्रपात किया था। इस प्रकार यह पूर्णत स्वाभाविक था, कि जब सस्कृत साहित्य के अध्ययन के प्रति पुन अनुराग उत्पन्न हो गया था तो उसका प्रभाव हिन्दी कविता के विकास पर भी अनुभूत होता। लोक-गीतो के प्रति आकर्षण भी अग्रेजी प्रभाव के ही फल-स्वरूप था। अग्रेजी प्रभाव के प्रसार ने, मध्य युग के साहित्य निर्माण के केन्द्रो राज-सभाओ को विनष्ट अथवा महत्त्व-हीन कर दिया था, इसीलिए हिन्दी के जो कवि अब भी कविता लिखना चाहते थे, वे लोक-गीतो के प्रति विशेष आकर्षण का अनुभव करते थे, क्योकि उनसे ही उन्हें काव्य निर्माण के लिए जीवित प्रेरणा प्राप्त होती थी। इस काल मे उर्दू कविता ने भी हिन्दी कविता को थोडा बहुत प्रभावित किया था, किन्तु यह प्रभाव कुछ विशेष कारणो से सफल न हो सका।

सस्कृत प्रभाव से हिन्दी कविता को इस काल मे प्रकृति के प्रति यथार्थवादी एवं चित्रोपम दृष्टि-कोण, वर्णनात्मकता तथा कुछ छन्द प्राप्त हुए। हिन्दी के प्रकृति परक काव्य को प्रभावित करने वाली सस्कृत रचनाओ मे, कालिदास के 'ऋतुसहार' का सबसे अधिक महत्व है। श्रीधर पाठक तथा मैथिलीशरण गुप्त ने इसके हिन्दी रूपान्तर भी प्रकाशित किये थे। भवभूति के 'उत्तर राम चरित्र' का हिन्दी रूपान्तर हुआ था इस रचना मे प्रकृति वर्णन का बाहुल्य है, इसलिए इस ने भी हिन्दी के प्रकृति काव्य को प्रभावित किया है। सस्कृत के इन कवियो का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण, शास्त्रीय पद्धति तथा राजाश्रित कवियो की कोटि का था, जिसमे जन-साधारण की भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए कोई स्थान ही नही था। हिन्दी के प्रकृति-काव्य पर, अग्रेजी कविता के प्रभाव का विवेचन करते हुए, इन कवियो के प्रभाव का भी उल्लेख होगा।

सस्कृत मे वर्णनात्मक काव्यो की सख्या पर्याप्त है, इसलिए सस्कृत साहित्य के प्रति पुन आकर्षण जागृत होने के अनन्तर, उसकी वर्णनात्मकता का हिन्दी काव्य को प्रभावित करना स्वाभाविक था। इतिवृत्तात्मक काव्य के प्रति आकर्षण, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-८५) के समय मे ही आरम्भ हो गया था। अम्बिकादत्त व्यास (१८६८-१९००) ने अपनी 'सुकवि सतसई' (१८८७) मे, 'अलौकिक लीला' शीर्षक देकर, कृष्ण के प्रारम्भिक जीवन का वर्णन किया था। अग्रेजी प्रभाव का अब तक विशेष प्रचार नहीं हुआ था, और फिर ये कवि इस काव्य से विशेष परिचित भी नही थे, इसलिए इनकी रचनाओ मे इतिवृत्तात्मकता, सस्कृत साहित्य के अध्ययन से ही आयी होगी।

आधुनिक हिन्दी कविता ने संस्कृत के छन्दो मे विशेष रूप से उसके वर्णिक वृत्तो को ग्रहण किया है। मध्ययुग मे हिन्दी कविता मे विशेष रूप से मुक्तक छन्दो का प्रयोग हुआ था, जिसमे कि प्रत्येक छन्द स्वतन्त्र होता है। संस्कृत कविता के प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी मे इतिवृत्तात्मक छन्दो का प्रयोग होने लगा, इस विधान मे छन्द एक दूसरे से सम्बन्धित होते हैं। संस्कृत काव्य मे वर्णवृत्तो अथवा वर्णिक छन्दो का प्रयोग कथात्मक तथा वर्णनात्मक दोनो ही प्रकार की रचनाओ मे हुआ है, संस्कृत प्रभाव ने इसलिए हिन्दी काव्य मे इन दोनो ही प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित किया।

लोकगीत, जैसा कि संज्ञा से ही स्पष्ट है, जन साधारण द्वारा गाये जाते है, इसलिये उनमे संगीतात्मक तत्व विशेष रूप से होता है। लोक गीतो की संगीतात्मकता ने भी हिन्दी काव्य को प्रभावित किया है। भारतेन्दु युग मे लोकगीतो के आदर्श को लेकर बहुत सी गीति रचनाए प्रस्तुत की गयी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने इस क्षेत्र मे विशेष कार्य किया।

अंग्रेजी के अतिरिक्त हिन्दी कविता पर अन्य प्रभावो का यह विश्लेषण, यह स्पष्ट कर देता है कि अंग्रेजी प्रभाव के बिना भी हिन्दी कविता मे कुछ नवीन प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो गयी होती। हिन्दी कविता मे प्रकृति के प्रति स्वाभाविक अनुराग, वर्णनात्मकता, संगीत-तत्व आदि की सृष्टि संस्कृत काव्य और लोकगीतो के सम्पर्क से भी सम्भव थी। हिन्दी कविता मे इन नवीनताओ की सृष्टि का जो वास्तविक स्वरूप है, उसमे अंग्रेजी प्रभाव, विशेष रूप से अंग्रेजी कविता के सम्पर्क का, वास्तविक योग रहा है। हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव के इसी रूप का विश्लेषण हम उपस्थित कर रहे हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिन्दी कविता के विकास मे नवयुग का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ से हुआ था। उन्होने केवल हिन्दी कविता ही नही वरन् हिन्दी साहित्य के अन्य रूपो तथा हिन्दी भाषा को भी नवजीवन प्रदान किया था। उनकी अधिकाश काव्य रचनाओ की भावना मध्ययुगीन है, किन्तु नवीन प्रवृत्तियो को लेकर लिखी जाने वाली काव्य रचनाओ की संख्या भी थोडी नही है। नवीन प्रवृत्तियो को अभिव्यक्त करने वाली विशेष महत्वपूर्ण रचनाएँ 'प्रात समीरण' (१८७४), 'भारत भिक्षा' (१८७५), 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' (१८७७), 'भारत वीरत्व' (१८७८), 'विजयिनी विजय पताका अथवा 'वैजयन्ती' (१८७८), 'जातीय संगीत' (१८८४), आदि हैं। इन रचनाओ की नवीन वृत्तियाँ प्रकृति के प्रति स्नेह, देश-भक्ति की भावना, वर्णनात्मकता तथा अंग्रेजी के एक काव्य रूप 'ओड' का अनुकरण कही जा सकती हैं।

'प्रात समीरण' शीर्षक रचना की निम्नलिखित पंक्तियो मे प्रात काल का बड़ा यथार्थ वर्णन है —

बजै सहनाई कहूँ दूर सो सुनाय भैरवी की तान लेत चित्त को चुराय।
उड़त कपोत कहूँ काग करैं रोर चुहू चुहू चिरैयन कीनो अति सोर॥
बोले तमचोर कहूँ ऊँचो करि माथ अल्ला अकबर करै मुल्ला साथ साथ।
बुझी लालटेन लिए झुक रहे माथ पहरु लटक रहे लम्बो किये हाथ॥[1]

इन पंक्तियो मे जो यथार्थवादी प्रवृत्ति है, वह अंग्रेजी प्रभाव से ही आयी हुई कही जा सकती है। संस्कृत काव्य मे भी प्राकृतिक दृश्यो के यथार्थ वर्णन मिलते है, किन्तु उनमे प्रकृति अधिकाश मे मानव चेष्टाओ की पृष्ठभूमि के रूप मे प्रस्तुत की गई है, उस प्रकार स्वतन्त्र विषय के रूप मे नही ग्रहण की गयी, जिस प्रकार हम उसे इन पंक्तियो मे देखते है। इस प्रकार के यथार्थवादी चित्रण को इसलिए संस्कृत काव्य से प्रेरित नही कहा जा सकता। ग्रे ने अपनी 'एलेजी' शीर्षक रचना की पहली चार पंक्तियो मे ग्रामीण सन्ध्या का वडा यथार्थवादी चित्र प्रस्तुत किया है। यह रचना शिक्षा संस्थाओ मे पाठ्यक्रम मे स्वीकृत थी, इसलिए इस वात की पूर्ण सम्भावना है कि भारतेन्दु जी ने इस रचना को स्वय पढा हो, अथवा अपने किसी ऐसे मित्र से, जिसने इसे पढा हो, उन्होने इसके प्रकृति सम्वन्धी दृष्टिकोण के सम्बन्ध मे सुना हो, प्रकृति के प्रति उनका नवीन दृष्टिकोण अंग्रेजी कविता के प्रभाव से ही उत्पन्न प्रतीत होता है।

भारतेन्दु की रचनाओ मे प्राप्त देश-भक्ति की भावना, दो प्रेरणाओ से उत्पन्न कही जा सकती है एक तो साम्राज्यवादी शोषण के फल-स्वरूप, जिसने उन्हे तथा उनके समकालीन अन्य हिन्दी लेखको को, अपने चारो ओर की कठोर वास्तविकताओं के प्रति जागरूक करके, देश-प्रेम की भावना से ओत-प्रोत कर दिया, तथा दूसरे अंग्रेजी की देश-भक्ति से परिपूर्ण काव्य-रचनाओ का अध्ययन। साम्राज्यवादी शोषण से प्रेरित देश-भक्ति की भावना ने उन्हे पुरातन गौरव का स्मरण दिलाया, अपने समय की, अपने चारो ओर की कठोर यथार्थताओ के प्रति जागरूक किया, तथा भविष्य के सम्वन्ध मे मार्ग खोजने की प्रवृत्ति उत्पन्न की। इस रूप मे देश-भक्ति की भावना, उनकी 'भारत-भिक्षा' तथा 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' आदि रचनाओ मे मिलती है। अंग्रेजी की देश-भक्ति से परिपूर्ण रचनाओ से ग्रहण की गई देश-प्रेम की भावना 'जातीय सगीत' जैसी रचनाओ मे है। इस रचना के शीर्षक से

१—'भारतेन्दु ग्रन्थावली', दूसरा खण्ड, पृ० ६८८

ही यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि राष्ट्रीय गीत की रचना कर रहा है। इस भाव-धारा का गीत हिन्दी मे अब तक लिखा ही नही गया था।

अंग्रेजी के विशिष्ट काव्य-रूप 'ओड' का अनुकरण उनकी 'भारत भिक्षा' 'भारत वीरत्व' 'विजयनी विजय पताका' अथवा 'वैजयन्ती' शीर्षक रचनाओ मे है। इस काव्य-रूप का प्रारम्भ यूनान मे हुआ था, और वहा से रोम, फ्रास आदि होते हुए वह इगलैण्ड पहुँचा। अपने जन्म की भूमि मे यह काव्य-रूप, विशेष सामाजिक उत्सवो पर, कई व्यक्तियो द्वारा सम्मिलित रूप से गाया जाता था। इगलैण्ड पहुचने पर, इसका यह रूप समाप्त हो गया, और वह केवल उदात्त विषय या भावनाओ तथा शैली की एक तुकान्त गीति रचना ही, कभी-कभी अतुकान्त भी, रह गयी, जो सम्बोधन (Address) के रूप मे होती थी।[1]

इस काव्य-रूप का छन्द-विन्यास भी कुछ विचित्र होता है प्रारम्भ मे स्ट्रोफी (Strophe), फिर ऐन्टी-स्ट्रोफी (Anti-strophe) और तब एपोड (Epode) होते है। यह क्रम इस काव्य-रूप मे कई बार मिलता है। यह काव्य रचना अपने मूल रूप मे सगीत तथा नृत्य के साथ प्रस्तुत की जाती थी। प्रोफेसर ब्रेसन के अनुसार

"The singer moved on one side during the strophe, retracing their step in the antistrophe and stood still during the epode "[2]

अंग्रेजी मे लिखे गये 'ओडो' मे मूल की यह भावना समाप्त हो गई है, केवल उसका बाह्य-रूप ही रह गया है, किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने जो 'ओड' लिखे हैं, उनमे मूल काव्य रूप की भावना थोडी बहुत देखने को मिल जाती है। उन्होने अपने सभी 'ओड' विशेष अवसरो पर गाये जाने के लिए लिखे थे। पहला 'ओड' 'भारत भिक्षा' सन् १८७५ मे लिखा गया था, जब प्रिंस ऑफ वेल्स, जो आगे चलकर एडवर्ड सप्तम हुए, भारतवर्ष आये थे, द्वितीय, 'भारत वीरत्व' सन् १८७८ के अफगान युद्ध के समय लिखा गया था, और तृतीय 'विजयिनी विजय पताका', अथवा 'वैजयन्ती' सन् १८८२ मे, अंग्रेजो के मिस्र मे विजय प्राप्त करने के उपलक्ष मे था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने यह काव्य - रूप सीधे अंग्रेजी साहित्य से नही ग्रहण किया था। इनमे से प्रथम 'ओड' 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' नामक भारतेन्दु की स्वसम्पादित पत्रिका मे प्रकाशित हुआ था, और उसके नीचे टिप्पणी थी कि यह हेमचन्द्र बनर्जी की एक बगला कविता का स्वतन्त्र हिन्दी रूपान्तर है। इस प्रकार यह काव्य-रूप हिन्दी साहित्य मे, बगला से ग्रहण किया गया कहा जा सकता है। इस काव्य-रूप

१—ए० आर० 'एनटि्वसिल दि स्टेडी ऑफ पोएट्री', पृ० ५९

२—वही, पृ० ५९ मे उद्धृत।

के विशिष्ट नामो के तीन छन्द 'स्ट्रोफी', 'ऐन्टी-स्ट्रोफी' तथा 'इपोड' हिन्दी मे 'आरम्भ', 'शाखा' तथा 'पूर्ण कोरस' कहे गये हैं। ये सज्ञाए भी मूल वगला कविता से ही ग्रहण की गई होगी। हिन्दी की इन तीनो कविताओ मे छन्दो के स्वीकृत क्रम की आवृति हुई है, किन्तु जहा तक विभिन्न छन्दो के विस्तार का सम्बन्ध है, उसमे समानता नही है, विभिन्न आवृतियो मे छन्द छोटे वडे होते गये है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की कविताओ पर, अग्रेजी प्रभाव के इस विवेचन के अनन्तर यह कहा जा सकता है कि वह उनकी रचनाओ मे विशेष स्पष्ट नही है। यह सभवत वल्लभ-सम्प्रदाय के परम्परागत प्रभाव के कारण है, जिसके वे प्रमुख उन्नायक थे। इस सम्प्रदाय की साहित्यिक रचनाए अधिकांश मे काव्य-रूप मे ही प्रस्तुत की गई थी, इसीलिए भारतेन्दु जी ने भी अग्रेजी प्रभाव को ग्रहण कर लेने पर भी इस सम्प्रदाय के पहले के कवियो की भाति काव्य रूप मे ही कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के क्रम को वनाये रक्खा। हिन्दी साहित्य मे विभिन्न गद्य-रूपो का विकास अग्रेजी साहित्य के विशेष सम्पर्क मे आकर ही हुआ था, इसीलिए उनकी गद्य रचनाओ मे प्रारम्भ से ही अग्रेजी प्रभाव की स्पष्ट छाप मिलती है। भारतेन्दु की काव्य रचनाओ मे अग्रेजी प्रभाव प्रकृति के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण, देश-भक्ति की भावना, इति-वृत्तात्मकता तथा अग्रेजी के एक विशिष्ट काव्य-रूप 'ओड' के अनुकरण तक ही सीमित है। इनमे से अन्तिम प्रभाव तो स्पष्ट रूप से वगला साहित्य के माध्यम से गृहीत कहा जा सकता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अग्रेजी काव्य के अध्ययन के विषय मे कुछ निश्चित रूप से ज्ञात नही है, इसलिए सम्भव है, अन्य प्रभाव भी वगला साहित्य के माध्यम से ग्रहण किये गये हो।

वद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'

जव श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ की प्रसिद्ध काव्य रचना 'दि डेजर्टेड विलेज' का हिन्दी रूपान्तर 'ऊजड ग्राम' (१८८९) प्रकाशित किया था, तो हिन्दी की एक पत्रिका ने टिप्पणी लिखी थी .

"पाठक जी आख फेरकर इधर भी देखें, अव ऊजड ग्राम इगलैण्ड मे नही नही है, उनकी जन्म भूमि हतभाग्य भारतवर्ष मे सर्वत्र हैं।"[1]

हिन्दी के कवियो ने इस तथ्य को भली प्रकार समझा था, और उन्होने गोल्डस्मिथ की इस रचना के प्रभाव को लेकर इसी प्रकार की कई काव्य रचनायें लिखी थी। सर्व प्रथम वालमुकुन्द गुप्त ने अपनी 'वनमहोत्सव' शीर्षक रचना की कुछ पक्तियो मे

१—'सुदर्शन', फरवरी, १९००

ग्रामीण जीवन के समाप्त-प्राय हर्ष और उल्लास पर आसू बहाये थे।[1] इस भावधारा की सबसे अधिक महत्वपूर्ण रचना बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की 'जीर्ण जनपद' थी। इस शीर्षक से ही स्पष्ट हो जाता है कि इसमे उजडते हुये ग्रामीण जीवन का वर्णन है, 'जनपद' शब्द का प्रयोग ग्राम के लिए किया गया है।

गोल्डस्मिथ की रचना का प्रधान वक्तव्य है व्यापार और वाणिज्य के प्रसार ने ग्रामीण जीवन के हर्ष और उल्लास को विनष्ट कर दिया है। कवि ने द्रुतगति पूर्ण औद्योगिक विकास के दुष्परिणामो को तीव्र सवेदना के साथ ग्रहण किया है। कवि अपने गाव ऑवर्न को पुन जाता है, और फिर वह वहाँ के पूर्व जीवन, पुरातन दृश्यो तथा पुराने आमोद-प्रमोदो का स्मरण करता है। किन्तु सब कुछ उसे परिवर्तित प्रतीत होता है समस्त भूमि पर एक ही व्यक्ति का अधिकार हो गया है, किसानो को बेदखल कर दिया गया है, और चारो ओर नष्ट-प्राय जीवन का ही रूप देखने को मिलता है। कवि के मन मे गाव के गिरजाघर के पादरी, स्कूल के अध्यापक आदि की स्मृतियाँ जागृत होती हैं और वह ऐसी सामाजिक स्थिति के प्रति तीव्र विरोध की भावना व्यक्त करता है, जिसमे धन

१—बाल मुकुन्द गुप्त 'स्फुट कविता', पृष्ठ ५९-६८। इस रचना मे गोल्डस्मिथ की रचना से सबसे अधिक मिलती हुई पक्तिया निम्नलिखित हैं

कहा गये वह गाव मनोहर परम सुहाने।
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने ॥
कपट द्वेष क्रूरता पाप अरु मद से निर्मल।
सीधे सादे लोग बसे जिनमे नहिं बल छल ॥
एक साथ बालिका और बालक जह मिलकर।
खेला करते औ घर जाते साझ पडे पर ॥
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई।
जिनके सपने मे भी पास कभी नहिं आई ॥
एक भाव से जाति छतीसो मिलकर रहती।
एक दूसरे का सुख दुख मिल जुल कर सहती ॥

\+ \+ \+

दिन दिन होती जिनकी सच्ची प्रीति सवाई।
एक चिह्न भी उसका नहिं देता दिखलाई ॥

'स्फुट कविता', पृ० ६०-६१

को मनुष्य से अधिक महत्व दिया जाता है। अपनी इस रचना को समाप्त करते हुए कवि ने कहा है कि धन प्राप्त कर लेना ही सुखानुभूति का प्रेरणा स्रोत, तथा व्यापारिक उन्नति ही राष्ट्र की महानता का दृढ आधार नही है। कवि ने व्यतीत ग्रामीण जीवन की प्रशसा भी बडी मार्मिक शब्दावली मे की है।

हिन्दी के इस काव्य-ग्रन्थ 'जीर्ण जनपद' का विन्यास भी कुछ इसी प्रकार का है। कवि, विशेष अवस्था प्राप्त करने पर अपने गाव दत्तापुर को पुन जाता है, और तब उसे वहाँ चारो ओर जो विनाश का दृश्य देखने को मिलता है, उसी का उसने इस रचना मे वर्णन किया है। उसने भी गोल्डस्मिथ की भाति, पहले के ग्रामीण जीवन के हर्ष, उल्लास और आनन्द क्रीडाओ का स्मरण किया है। उसने भी गोल्डस्मिथ की भाँति युवको की आनन्द-क्रीडा, धनिको के वैभव - विलास, मन्दिर के पूजन, स्कूल के अध्यापक, वृद्ध सैनिक, विभिन्न ऋतुओ की दृश्यावली, त्यौहार, फूले-फले उपवन, निकटवर्ती सरिता, सरोवर, शैशव के खेल-कूद, सभी को वह स्मरण करता है, और पुरातन जीवन के लिए तीव्र विषाद की भावना को वाणी देता है। आगे चलकर उसने इस व्यापक विनाश के कारणो का विश्लेषण करते हुए कहा है, कि यह सब इसलिए सम्भव हुआ है, क्योकि मनुष्य स्वार्थी हो गया है, और केवल अपने हित का ही चिन्तन करता है। गोल्डस्मिथ ने भी अपनी रचना को समाप्त करते हुए कुछ इसी प्रकार मन्तव्य दिया है।

हिन्दी की इस रचना पर गोल्डस्मिथ का प्रभाव स्पष्ट है। दोनों रचनाओ के विषय और विन्यास मे पर्याप्त समानता है, तथा अभिव्यजना प्रणाली मे भी काफी साम्य है। गोल्डस्मिथ ने अपने गाव के युवको की आनन्द-क्रीडाओ को इस प्रकार स्मरण किया है -

And all the village train from labour free
Led up their sports beneath the spreading tree
While many a pasttime circled in the shade
The young contending as the old surveyed
And many a gambol frolicked over the ground
And slights of art and feats of strength went round

× × × ×

These round thy bowers their cheerful influence shed
These were the charms but all these charms are fled

१—गोल्डस्मिथ · 'दि डेजर्टेड विलेज', पक्तियाँ ७–३४

प्रेमघन जी ने अपनी रचना मे इसी प्रसग की समृतियो को इस प्रकार प्रस्तुत किया है

"झिल्ली गन को सोर रोर चातक चहुँ ओरन।
सुनि सखीन सग सबै नवेली झूलन झूलन ॥
गावत झूलन सावन कजरी राग मलारहि।
करहि परस्पर चुहुल नवल चोचले वघारहि ॥
× × × ×
यो वह बालकपन कै क्रीडा कौतुक हम सब।
करत रहे जह सो थल हूँ नहि सूझि परत अब ॥"[1]

दोनो काव्य रचनाओ मे स्कूल के अध्यापक के सम्बन्ध मे लिखी गयी पक्तियो मे भी विशेप साम्य है। गोल्डस्मिथ ने लिखा था

"Beside yon struggling fence that skirts the way
With blossombed twigs unprofitably gay
There in his noisy mansion skill'd to rule
The village master taught his village school
A man severe he was and stern to view,
I knew him well and every truant knew
× × × ×
Full well they laughed with counterfeited glee
At all his jokes for many a jokes had he"[2]

हिन्दी कविता मे गाव के स्कूल के अध्यापक के विषय मे निम्नलिखित पक्तिया हैं

यही ठौर पर हुतो हाय वह मकतब खाना।
पढन फारसी बिद्या शिशुगन हेतु ठिकाना ॥
पढत रहे बचपन मे हम जहृ निज भाइन सग।
अजहु आय सुधि जाकी पुनि मन रगत सोई रग ॥
रहे मोलवी साहब जह के अतिशय सज्जन।
बूढे सत्तर वत्सर के पै ताऊ पुष्ट तन ॥
× × × ×

१—'प्रेमघन सर्वस्व', हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, पृष्ठ ४०
२—गोल्डस्मिथ 'दि डेजर्टेड विलेज', पक्तिया १९३-२०२

पढत कुरान शरीफ अजब मुख विकृत जनावत ।
जिहि लखि हम सब की न हसी रुकि सकत, बचावन ।।[१]

वृद्ध सैनिक के विषय मे लिखी गई पक्तियो मे दोनो रचनाओ मे सबसे अधिक साम्य है

"The broken soldier kindly bade to stay
Sat by his fire, and talked the night away
Wept over his wounds and tales of sorrow done
Shouldered his crutch, and show'd how fields were won'[२]

हिन्दी कविता मे उसके विषय मे पक्तिया है

वृद्ध वीर एक रह्यो सुभाव सरल तिन माही ।
जा ढिग हम सब बालक गन मिलि नित प्रति जाही ।।
वीर कहानी जो कहि हम सब के मन मोहै,
भारी भारी घाव जासु तन पै बहु सोहै ।।[३]

इन समानताओ के होते हुये भी, यह नही कहा जा सकता कि हिन्दी कविता, अ ग्रेजी काव्य रचना की अनुकृति मात्र है । 'प्रेमघन जी ने पुरातन ग्रामीण जीवन के हर्ष और आह्लाद के सस्मरण के लिए गोल्डस्मिथ की रचना से प्रेरणा अवश्य ली थी, किन्तु उनके सस्मरण सख्या मे अधिक और विस्तृत भी है, तथा उनमे भारतीय ग्रामीण जीवन का बडा यथार्थ चित्रण मिलता है। उन पक्तियो मे भी जो गोल्डस्मिथ की रचना की कुछ पक्तियो से मिलती हुई है, भारतीय तथा इग्लैण्ड के ग्रामीण जीवन का अन्तर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है । प्रेमघन जी की इस रचना पर कुछ स्थलो मे सर वाल्टर स्कॉट का भी प्रभाव है, विशेष रूप से उन पक्तियो मे, जिनमे कवि ने देश भक्ति की भावना को अभिव्यक्त किया है । उन पक्तियो पर स्कॉट के कथा काव्य 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल' के देश-भक्ति पूर्ण गीत का प्रभाव है ।

प्रेमघन जी की अन्य काव्य-रचनाओ मे अग्रेजी प्रभाव देखने को नही मिलता; केवल भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के निधन पर लिखी गई काव्य-रचना 'शोकाश्रु विन्दु' (१८८५) को हम अग्रेजी के एक विशिष्ट साहित्यिक रूप 'एलेजी' अथवा शोक-काव्य के ढग की रचना कह सकते हैं । अग्रेजी का यह विशिष्ट साहित्यिक रूप, जिसमे अपने किसी निकट सम्पर्क अथवा प्रिय व्यक्ति के निधन पर शोकोद्‌गार प्रकट किये

१—'प्रेमघन सर्वस्व' पृ० १९-२०
२—गोल्डस्मिथ 'दि डेजर्टेड विलेज', पक्तिया १५५-१५८
३—'प्रेमघन सर्वस्व, पृ० २८

जाते है, हिन्दी के लिए विलकुल नया था। तुलसीदास ने एक वार अपने अभिन्न मित्र टोडर के निधन पर अपने हृदय की शोक भावना को अभिव्यक्त करना चाहा था, किन्तु थोडी सी पक्तिया लिखने के बाद, उनकी लेखनी रुक गई, क्योकि उनके विचार से प्राकृत जन के गुण गान से सरस्वती को अत्यन्त पश्चाताप होता है। अग्रेजी प्रभाव के पूर्व इस दिशा मे और कोई प्रयत्न देखने को नही मिलता। अग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से ही हिन्दी कवियो ने यह सीखा है कि अपने निकट सपर्क अथवा प्रिय व्यक्ति के निधन से उत्पन्न शोक भावना को भी साहित्य में अमर बनाया जा सकता है। 'प्रेमघन' जी ने इस दिशा मे सबसे पहले प्रयत्न किया था। उनका यह शोक-काव्य यद्यपि अग्रेजी प्रभाव को लेकर लिखा गया है, तथापि उसमे उनकी अपनी निज की भावनाए अभिव्यक्त हुई हैं। उन्होने अग्रेजी के किसी शोक-काव्य का अनुकरण नही किया है। प्रथम प्रयास की अनगढता भी हमे उनकी इस रचना मे मिलती है।

श्रीधर पाठक

हिन्दी कविता पर अग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे, श्रीधर पाठक का विशेष योग रहा है। पाठक जी ने अग्रेजी काव्य का अच्छा अध्ययन किया था। जब उनका, गोल्डस्मिथ के 'दि डेजर्टेड विलेज' का हिन्दी रूपातर प्रकाशित हुआ था, तो हिन्दी की एक पत्रिका ने बडी महत्वपूर्ण टिप्पणी लिखी थी

"घोर दुर्भिक्ष और महामारी के समय जिस देश के कवि कुल कलक नायिका के रूप वर्णन मे मग्न हैं, वहाँ उजड ग्राम जैसे भावमय काव्य का पाठक जी ने अनुवाद कर डाला, यही आश्चर्य है।"

अब यह देखना है कि क्या यह आश्चर्यमय भावना उनकी अपनी मौलिक रचनाओ मे भी मिलती है ?

पाठक जी की काव्य रचनाओ का प्रथम सग्रह 'मनोविनोद' (१८८२) था, जिसे उन्होने अग्रेजी मे 'Mind's Delight' सज्ञा दी थी। इस काव्य सग्रह की रचनाओ के विषय 'मगलाचरण, 'वसतागमन', 'प्रेमाकुर', 'वसत राज्य', 'प्रिया विमर्ष', 'गोपिका गीत', 'ब्रज महिमा' तथा 'स्वभामिनी स्मरण' थे। इन शीर्षको को देखकर ऐसा लगता है कि इन रचनाओ मे विलकुल नए प्रकार की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई होगी। किन्तु रचनाओ को पढने पर हमे उनमे मध्य-युगीन भावनाओ का ही आधिक्य मिलता है। कुछ नए तत्व भी इन रचनाओ मे हैं, प्रकृति के प्रति यथार्थवादी दृष्टिकोण तथा व्यक्तिगत अथवा आन्तरिक भावनाओ की अभिव्यक्ति प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण, विभिन्न ऋतुओ पर लिखी गई रचनाओ मे अभिव्यक्त हुआ है, और व्यक्तिगत भावनाओ की अभिव्यक्ति 'स्वभामिनी स्मरण'

शीर्षक रचना मे सबसे अधिक है। यह रचना सभवत वर्ड्सवर्थ की इसी प्रकार की रचनाओ से प्रेरणा लेकर लिखी गई होगी, क्योकि हिन्दी मे उस समय तक इस प्रकार की काव्य रचना लिखने का प्रचलन नही था।

पाठक जी के दूसरे काव्य सग्रह 'मनोविनोद', द्वितीय खण्ड (१९०५) मे सगृहीत और सन् १८८७ मे लिखित 'जगत-सचाई-सार' शीर्षक कविता लॉगफेलो की प्रसिद्ध रचना 'ए साम आफ् लाइफ' के आधार पर रचित प्रतीत होती है। लॉगफेलो की रचना के प्रारम्भ के दो छन्द हैं

"Tell me not mournful numbers
'Life is but an empty dream'
For the soul is dead that slumbers
And the things are not what they seem
Life is real, life is earnest ,
And the grave is not its goal ,
'Dust thou art, to dust returnest'
Was not spoken of the soul "[१]

श्रीधर पाठक की रचना की प्रारम्भिक पक्तियाँ है

कहो न प्यारे मुझसे ऐसा झूठा है यह सब ससार
थोथा झगडा जी का रगडा, केवल दुख का हेतु अपार
माना हमने वस्तु जगत की नाशवान है निस्सन्देह
फिर भी तो छोडा नहि जाता पल भर को भी उनसे नेह

× × ×

जगत है सच्चा तनक न कच्चा समझो बच्चा इसका भेद
पीओ खाओ सब सुख पाओ कभी न लाओ मन मे खेद

× × ×

समझ के सारे जग को मिट्टी, मिट्टी जो कि रमाता है
मिट्टी करके सरबस अपना मिट्टी मे मिल जाता है।[२]

इस रचना की कुछ पक्तियाँ टॉमसन की 'स्प्रिग' ('Spring') शीर्षक काव्य रचना की कुछ पक्तियो से काफी मिलती जुलती हैं। पाठक जी की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओ पर टॉमसन की रचना 'सीजन्स' ('Seasons') का प्रभाव पर्याप्त रहा है, जो आगे के पृष्ठों मे स्पष्ट किया जायगा, इसलिए यह सम्भव है कि कवि इस रचना को लिखते

१—'पोएटिकल वर्क्स ऑफ लागफेलो', कॉलिन्स पिलग्रिम टाइप प्रेस, पृ० १९
२—श्रीधर पाठक 'जगत सचाई-सार', पृ० १-२

हुए भी, अंग्रेजी के इस कवि की कुछ पंक्तियो से प्रभावित हुआ हो। टॉमसन ने अपनी एक रचना में प्रकृति के विभिन्न तत्वो पर, वसन्त के प्रभाव का वर्णन करते हुए, उस सर्वशक्तिमान का गुणगान किया है, और कहा है कि यह सब उसी की अनुकम्पा से सम्भव हुआ है। पाठक जी ने भी इसी प्रकार अपने चारो ओरकी शोभा मे भगवान की महिमा के दर्शन किये हैं।

पाठक जी के इस द्वितीय काव्य सग्रह की अन्य रचनाओ पर भी अंग्रेजी प्रभाव है, विशेप रूप से विभिन्न ऋतुओ से सम्बन्धित काव्य रचनाओ पर। इन काव्य रचनाओ पर सस्कृत की प्रकृति सम्बन्धी रचनाओ का प्रभाव भी है। अंग्रेजी काव्य कृतियो मे टॉमसन के 'सीजन्स' और सस्कृत काव्य रचनाओ मे कालिदास के 'ऋतु सहार' का प्रभाव पाठक जी प्रकृति की परक रचनाओ पर निश्चित रूप से है। आधुनिक काल के पूर्व के हिन्दी कवियो मे प्रकृति को लेकर काव्य रचनाएँ लिखने मे 'सेनापति' को सबसे अधिक प्रसिद्धि मिली है। हिन्दी के कवि होने के कारण पाठक जी 'सेनापति' की काव्य-रचनाओ से भी परिचित रहे होगे। प्रकृति के प्रति इन तीनो कवियो के अपने अलग-अलग दृष्टिकोण थे। कालिदास की रचनाओ मे राजाश्रय मे पोपित शास्त्रीय पद्धति के कवि का दृष्टिकोण मिलता है, 'सेनापति' भी शास्त्रीय पद्धति के पुनर्जागरण युग के राजाश्रित कवि थे, किन्तु उनके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण में सम्पूर्ण मानव जीवन का ज्ञान परिलक्षित होता है। टॉमसन ने एक सवेदनशील व्यक्ति के रूप मे प्रकृति को देखा था, जो प्रकृति के सभी रूपो से काव्य निर्माण की प्रेरणा ग्रहण करता है। इन तीनो कवियो के अपने-अपने प्रकृति सम्बन्धी दृष्टि-कोणो को अभी और स्पष्ट करने की आवश्यकता है।

कालिदास ने अपने 'ऋतु सहार' मे विभिन्न ऋतुओ के वर्णन राजाश्रय मे पोषित होने वाले कवि के दृष्टिकोण से प्रस्तुत किये हैं। उन्होने विभिन्न ऋतुओ के केवल उन पक्षो का वर्णन किया है, जो शृगार भावना को जगाने मे सहायक होते हैं तथा कवि को अपनी काव्य-कला के प्रदर्शन का भी अवसर देते है। प्रत्येक ऋतु के दो पक्ष होते हैं, एक आनन्दमय और दूसरा विपादपूर्ण। कालिदास ने प्रकृति के, आनन्दप्रद पक्ष का ही विशेप वर्णन किया है। ऐश्वर्य और विभूति के सहारे प्रकृति के दूसरे पक्ष को भी आनन्दमय बनाया जा सकता है, और कालिदास समाज के उच्चवर्ग के कवि थे, इसलिए उन्होंने प्रकृति के विभिन्न ऋतुओ के विषाद पूर्ण पक्ष को भी अपनी काव्य रचनाओ मे आनन्दमय बनाकर प्रस्तुत किया है। प्रकृति के विषादोत्पादक पक्ष का भी उन्होने वर्णन किया है, किन्तु उसका सम्बन्ध भी शृगार भावना से है। उन्होंने विभिन्न ऋतुओ मे वियोगिनी नायिका को मिलने वाले कष्ट का वर्णन किया है। केवल ग्रीष्म ऋतु का वर्णन करते हुए उन्होने, साधारण मानव तथा कुछ अन्य जीव-

धारियो के कष्ट का वर्णन किया है, किन्तु ये वर्णन भी यथार्थता से समन्वित नही, वरन् कलात्मकता लिए हुए हैं।

अंग्रेजी प्रभाव के पूव के हिन्दी कवियो मे केवल सेनापति ने ही, प्रकृति के प्रति अनुराग की भावना को लेकर, काव्य रचनाए लिखी थी। 'सेनापति' भी राजाश्रय मे रहते थे, इसलिये उन्होने भी कालिदास की ही भाति प्रकृति का वणन किया है, केवल जनसाधारण की दु खानुभूति के वर्णन की प्रवृत्ति उनमे विशेष रही है।

अंग्रेजी कवि टॉमसन के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझने के लिए हमे उनकी रचना 'सीजन्स' की एक कविता के भाव-क्रम को देखना चाहिए। उनकी 'विन्टर' शीर्षक कविता का भाव-क्रम इस प्रकार है—"विषय की प्रस्तावना। विलिंगटन के अर्ल को सम्बोधन। शीत का प्रारम्भ, ऋतु के विकास क्रम के अनुसार आधी, वर्षा, हिम, आदि के वर्णन। हिम का प्रसार, एक मनुष्य का उसमे फस जाना और फिर मनुष्य जीवन के दुख और कष्टो का चिन्तन शीत ऋतु की एक सन्ध्या मे दार्शनिक, ग्रामीण-जनो आदि के जीवन के विवरण। एक नगर मे हिमपात ध्रुवक्षेत्र मे शीतऋतु। अन्त मे मनुष्य के भविष्य पर नैतिक दृष्टि से चिन्तन।" इस विवरण से यह प्रतीत होता है कि टॉमसन ने प्रकृति को अधिक व्यवस्थित रूप मे देखा था, तभी उन्होने उसके सुखद तथा दु खद दोनो ही पक्षो को प्रस्तुत किया है। टॉमसन की वर्णन पद्धति बडी वैज्ञानिक है, साथ ही उसमे कल्पना का भी प्रयोग है, और इन दोनो तत्वो के साथ लेखक के मानवतावादी दृष्टिकोण का समन्वय हो जाने से, उसकी रचनाओ का साहित्यिक महत्व विशेष हो गया है।

आलोचको का मत है कि टॉमसन ने अंग्रेजी काव्य के क्षेत्र मे प्रकृति को पुन प्रतिष्ठित किया था, जिससे कि पोप तथा उनकी धारा के अन्य कवियो ने उसे बहिष्कृत कर दिया था, और यह थॉमसन की प्रसिद्ध कृति 'सीजन्स' के अध्ययन का ही परिणाम था कि हिन्दी काव्य-जगत मे भी प्रकृति को पुन स्थान मिला। अंग्रेजी प्रभाव के अनन्तर हिन्दी काव्यलोक मे, श्रीधर पाठक पहले कवि थे, जिनके मन मे प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग था, और उनकी प्रकृति सम्बन्धी रचनाओ मे टॉमसन का प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट परिलक्षित होता है। पाठक जी ने कालिदास के 'ऋतु सहार' का भी अनुवाद किया था, किन्तु उनकी रचनाओ मे सस्कृत के इस कवि का प्रभाव नही मिलता। पाठक जी की प्रकृति सम्बन्धी रचनायें 'मेघागमन' 'घन विनय' 'शरद-समागत-स्वागत', 'हेमन्त', 'गुणवन्त-हेमन्त' आदि हैं। इन रचनाओ पर टॉमसन का प्रभाव प्रकृति के यथार्थ चित्रण, उसके सुखद तथा दु खद दोनो पक्षो के वर्णन तथा दु खितो और पीडितों के प्रति सम्वेदना एव सहानुभूति की

अभिव्यक्ति मे है। अंग्रेजी प्रभाव की ये प्रवृत्तिया और अधिक स्पष्ट हो जायेगी, यदि श्रीधर पाठक की इन रचनाओ का अध्ययन, उनके कालिदास के 'ऋतु-सहार' के अनुवाद के साथ किया जाये। सस्कृत के इस कवि ने वर्षा-ऋतु के दु खद पक्ष को प्रकट करने के लिए एक विरहिणी नायिका की वियोग व्यथा का वर्णन किया है।[1] किन्तु श्रीधर पाठक ने अपनी वर्षा, ऋतु विषयक रचना मे अपने युग की सामाजिक भावना से प्रेरित होकर एक बाल विधवा की मनोव्यथा का विवरण दिया है।[2] पाठक जी की इस रचना मे वर्षा का वर्णन बहुत यथार्थवादी है, और जिस प्रकार उन्होने बाल-विधवा की मानसिक व्यथा का बार बार उल्लेख किया है, उसमे टॉमसन का मानवतावादी एव व्यथितो और पीडितो के प्रति सम्वेदना एव सहानुभूति का दृष्टि-कोण दृष्टिगोचर होता है। यह मानवतावादी दृष्टिकोण उन्होने अपने युग के समाज-सुधार के आन्दोलन मे भी ग्रहण किया होगा, जो अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से उत्पन्न होकर, उसकी एक विशिष्ट धारा के रूप मे विकसित हो रहा था।

श्रीधर पाठक के मन मे प्रकृति के प्रति वास्तविक अनुराग प्रतीत होता है। टॉमसन की भाति प्रकृति के सूक्ष्माति-सूक्ष्म परिवतन को देखने की प्रवृत्ति भी उनमे थी। अपनी 'हेमन्त' शीर्षक रचना मे उन्होने हिमपात का बडा चित्रोपम वर्णन प्रस्तुत किया है। उसमे सूर्य की किरणो के स्पर्श से जो नये नये रग हिम मे उत्पन्न होते हैं, उनका भी वर्णन है

"पडने लगा तुषार बरफ पडने लगी,
अद्भुत शोभा के कौतुक करने लगी,
× × ×
घर पर, दीवारो पर, वन के पेड पर,
खेतो मे बागो मे उनकी मेड पर
जम कर धरती वहा अनेको आकृती
दृश्य बनाती विविध विलक्षण प्राकृती
ह्यां से उत्तर ओर दृष्टि जो कीजिये
अकथनीय छवि अवलोकन सुख लीजिये
स्वच्छ स्वेत हिमयुक्त हिमाचल चोटियाँ
रजतमयी कैलाश शिखर की जोटिया।"[3]

१—श्रीधर पाठक 'मनोविनोद', भाग २, पृ० ३३
२—श्रीधर पाठक 'धन विनय'
३—श्रीधर पाठक मनोविनोद', भाग २, 'हेमन्त', पृ० ३४

यह हिमालय पर हिम के दृश्य का वर्णन है, और टॉमसन की एक काव्य रचना 'विन्टर' की कुछ पंक्तियो से पर्याप्त साम्य रखता है।[1] श्रीधर पाठक की रचनाओ मे टॉमसन की पंक्तियो से बहुत अधिक साम्य खोजना निरर्थक है, क्योकि उन्होने अंग्रेजो के इस कवि की प्रेरणा से प्रकृति के प्रति विशेष अनुराग ग्रहण किया था, तथा उसके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण को भी थोड़ा बहुत अपनाया था। इसके अनन्तर वे स्वयं अपनी अनुभूति के आधार पर अपने देश की प्राकृतिक शोभा का वर्णन करने लगे थे। पाठक जी का प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण टॉमसन के दृष्टिकोण जैसा विस्तृत न था, इसीलिए एक तो उनकी रचनाये छोटी है, और दूसरे उनमे इस अंग्रेजी कवि के प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण की सभी विशेषताये नही आ पायी है।

पाठक जी की रचनाओ पर टॉमसन का प्रभाव एक अन्य प्रकार से भी है। यह हम पहले ही कह आये है, कि टॉमसन के लिखे हुए ब्रिटेन के राष्ट्रीय गीत 'रूल ब्रिटेनिया' का रूपान्तर हिन्दी मे हो चुका था। पाठक जी ने भी इसी प्रकार के कई गीत लिखे। इनके कुछ देश-भक्ति की भावना से ओत-प्रोत गीत 'मनोविनोद' के द्वितीय भाग मे प्रकाशित हुये थे, आगे चलकर इस भावना के सभी गीत 'भारतगीता' (१९१८) मे संकलित हुये। यदि हम इस संग्रह के सभी गीतो का सम्यक अध्ययन करे तो यह स्पष्ट हो जाता है, कि पाठक जी ने यह देश-भक्ति की भावना बंगला साहित्य के माध्यम से भी ग्रहण की थी। कुछ गीतो, जैसे 'जय जय भारत भूमि हमारी' तथा 'जय भारत जय' की तो भाषा भी बंगला की काव्य-भाषा से प्रभावित है।

अभी हमे पाठक जी की दो और काव्य रचनाओ 'काश्मीर सुषमा' (१९०४) तथा 'देहरादून' (१९१५) पर विचार करना है। अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से इन दोनो ही रचनाओ पर बायरन की विस्तृत काव्य रचना 'चाइल्ड हेरॉल्ड्स पिलग्रिमेज' का प्रभाव स्पष्ट है। 'काश्मीर सुषमा' पर यह प्रभाव उन विषयांतर के स्थलो मे है, जहाँ कवि ने अपने धर्म गुरु, उस देश की नारियो तथा महाराज आदि की प्रशंसा के गीत गाये हैं। बायरन ने भी अपनी उल्लिखित रचना मे इसी प्रकार विषयान्तर करके, स्थान-स्थान पर, विभिन्न देशो की सामाजिक व्यवस्था तथा शासन पद्धति के वर्णन किये है। 'चाइल्ड हेरॉल्ड' के प्रथम प्रकरण मे तेरहवे पद्य के अनन्तर कवि ने विषयान्तर करके अपनी मातृभूमि से विदा का गीत गाया है, तथा स्पेन पहुँचने पर वहाँ के सामाजिक जीवन तथा राजनीतिक व्यवस्था का वर्णन किया है। बायरन के इस

१—'दि कम्पलीट पोएटिकल वर्क्स आफ जे० थॉमसन', आक्सफोर्ड एडीसन (१९०८), पृ० १९४

प्रभाव के अतिरिक्त 'काशमीर सुषमा' की प्रकृति वर्णन की शैली पर टॉमसन का भी प्रभाव है। किन्तु इन दोनो प्रभावो के होते हुए भी 'काशमीर सुषमा' एक मौलिक रचना है, और पाठक जी के प्रकृति के प्रति सच्चे अनुराग से अनुप्राणित है।

पाठक जी की 'देहरादून' रचना का वर्णन क्रम 'चाइल्ड हेरॉल्डस् पिलग्रिमेज' से बहुत मिलता जुलता है। बायरन ने अपनी इस काव्य रचना मे एक ऐसे नवयुवक के मानसचित्रो को प्रस्तुत किया है, जो आनन्दातिरेक से विक्षुब्ध होकर विदेशो की यात्रा मे आश्रय लेता है। कवि ने हमारे मानस चक्षुओ के आगे हरे भरे भू-भागो, पर्वतो, नदियो, नगरो, ध्वंसावशेषो आदि, जो कुछ भी उसके कवि-मन को प्रभावित कर सका है, उसका दृश्य प्रस्तुत किया है, तथा इन सभी प्रकार के स्थानो से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की जीवन पद्धतियो पर भी अपने विचार प्रकट किये हैं। इस यात्रा-विवरण मे वर्णन के साथ विचाराभिव्यक्ति का क्रम बराबर चलता रहा है। कवि का मन प्राकृतिक शोभा के वर्णन मे तो विशेष रमा है, किन्तु उसने सकरी अँधेरी गलियो, युद्ध की सम्भावनाओ, स्वाधीनता खो कर जनता के मन मे जागृत होने वाले भावो आदि किसी को भी नही छोडा है। पाठक जी ने भी इसी प्रकार अपने देहरादून के यात्रा विवरण को, जहाँ वे विशेष अस्वस्थता के कारण ऋतु-परिवर्तन और स्वास्थ्य लाभ के लिए गये थे, प्रस्तुत किया है। बायरन की भाँति हिन्दी कवि ने, काव्यात्माओ का स्मरण नही किया है, वरन् इतिवृत्तात्मक ढग से सीधे यात्रा विवरण प्रारम्भ कर दिया है। बॉयरन तथा पाठक जी के यात्रा-वर्णनो का इसी इतिवृत्तात्मकता मे अन्तर है। पाठक जी कल्पना की ऊँची उडाने नहीं ले पाये है, वे वस्तु स्थिति के साथ बन्धे रहे हैं। बायरन की कल्पना मुक्त पखो के साथ आकाश मे विचरी है, साथ ही साथ उसने पुरातन को भी स्मरण किया है तथा वर्त्तमान स्थिति पर भी अपने विचार प्रकट किये है। पाठक जी ने भी एक स्थान पर राम का स्मरण किया है, किन्तु यह पुरातन स्मृति, विशेष रसमय नही है, इसीलिए उन्होने आगे इस स्मरण को छोड दिया है, और केवल वर्त्तमान पर ही अपने विचार प्रकट किये हैं।

कही कही पाठक जी की इस रचना की कुछ पक्तिया, बायरन की कुछ पक्तियो से मिलती हुई है, किन्तु काव्य दृष्टि के विभेद के कारण बहुत अधिक साम्य नही है। कुछ साम्य विषयान्तर के स्थलो पर भी मिलता है। बायरन ने जब विषयान्तर किया है, तो छन्द का रूप बदल कर अपनी मनोभावनाओ को अभिव्यक्त कर दिया है। प्रथम प्रकरण मे ही दो विषयान्तर के स्थल है। इस प्रकार के स्थलो पर कवि ने विषय को पूर्णत छोड दिया है। पाठक जी ने भी विषयान्तर किये हैं, किन्तु उन्होने विषय के सूत्र को बनाये रक्खा है। जब उनकी गाडी गगा के पुल पर है, वे

गगा जी के प्रति अपनी भक्ति भावना प्रकट करने लगते है। इसी प्रकार आगे चलकर उन्होने वाइसराय-भवन को देखकर अपने मनोभाव प्रकट किये है। अपने इस यात्रा-विवरण मे पाठक जी ने अंग्रेजो तथा भारतवर्ष के विभिन्न प्रदेशो बगाल, पजाब आदि के लोगो के विषय मे जो विचार प्रकट किये है, वे भी बॉयरन के 'चाइल्ड हेरॉल्ड' से प्रेरित हैं, यद्यपि उनकी वर्णन शैली पाठक जी की अपनी है।

श्रीधर पाठक जी की काव्य रचनाओ पर इस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव कई रूपो मे देखने को मिलता है। उसने उनके प्रकृति सम्बन्धी दृष्टिकोण को प्रभावित किया है, पीडितो और प्रताडितो के प्रति उनके हृदय मे सम्वेदना की भावना जगाई है, उनमे देश भक्ति जागरुक की है, तथा अपने देश की सामाजिक तथा राजनीतिक स्थिति पर विचार करने के लिए प्रेरणा प्रदान की है। इनमे से प्रथम का सबसे अधिक महत्व है, क्योंकि उसने उनके मन मे प्रकृति के प्रति वास्तविक अनुराग उत्पन्न करके, हिन्दी कविता के लिए एक नया विषय प्रदान किया था।

लोचन प्रसाद पाडेय

अंग्रेजी के कवि गोल्डस्मिथ की काव्य रचनाओ के अनुवाद के सम्बन्ध मे हम पहले विचार कर चुके है। उनकी रचना 'दि डेजर्टेड विलेज' के हिन्दी कविता पर प्रभाव का भी विवेचन किया जा चुका है। यहा हमें उनकी एक अन्य काव्य रचना 'दि ट्रेविलर' के प्रभाव का विश्लेषण करना है, जो लोचन प्रसाद पाडेय की 'प्रवासी' (१९०७) नामक काव्य ग्रन्थ पर स्पष्ट देखने को मिलता है। पाडेय जी के इस काव्य ग्रन्थ पर पोप के 'एसे ऑन मैन' का भी कुछ प्रभाव है। विशेष रूप से उसके चतुर्थ प्रकरण का, जिसमे कवि ने आनन्द की भावना को दृष्टि मे रखकर, प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक सम्बन्ध का दिग्दर्शन कराया है।

गोल्डस्मिथ ने 'दि ट्रेविलर' मे, अपने को एक ऐसे यात्री के रूप मे, जो वास्तविक और स्थायी आनन्द की खोज कर रहा है, आल्पस पर्वत श्रेणी की एक ऊंची चोटी पर प्रस्तुत किया है। उस स्थान पर बैठा हुआ वह यात्री, अपने चारों ओर के समस्त देशो को देखने की कल्पना करता है, और फिर बताता है कि जिस प्रदेश मे भी लोग रह रहे हैं उन्हें उसी का वातावरण आनन्दप्रद प्रतीत हो रहा है। अन्त मे उस यात्री का निष्कर्ष है, कि वह आनन्द जिसकी वह अब तक खोज कर रहा था, वाह्य जगत की वस्तु नही है, इसीलिये तो उसका प्रयत्न असफल रहा, आनन्द तो वास्तव में मनुष्य के अन्तमन मे सदा स्थित है।

पोप ने अपनी काव्य रचना, 'एसे ऑन मैन' में भी, इसी विषय को लिया है। किन्तु उनकी अभिव्यन्जना शैली काव्यात्मक न होकर, तर्क पूर्ण अधिक है। प्रारम्भ

मे उन्होने दर्शन ग्रन्थो द्वारा एव जनसाधारण के बीच प्रचलित आनन्द सम्बन्धी भ्रान्त धाराणाओं का विवेचन किया है, और तब उन्होने अपना विचार दिया है कि आनन्द की अनुभूति सभी लोग कर सकते है, ईश्वर ने उसे सबके लिए ही बनाया है। इसी जीवन-दर्शन को स्पष्ट करते हुए उन्होने कहा है कि आनन्द अथवा सुख की भावना सासारिक वैभव एव ऐश्वर्य मे उत्पन्न नही होती, सासारिक विभूति, सम्मान, कुलगत श्रेष्ठता यश, असाधारण प्रतिभा आदि भी मनुष्य को आनन्द प्रदान नही कर सकती। उनका अन्तिम निष्कर्ष है, आनन्द की अनुभूति मनुष्य पुण्य कर्मो के द्वारा ही कर सकता है।

लोचन प्रसाद पाडेय ने, अपनी 'प्रवासी' नामक काव्य रचना मे, अंग्रेजी के इन दोनो कवियो की विचार-परम्परा का समन्वय कर दिया है। किन्तु आनन्दानुभूति के सम्बन्ध मे अपने जीवन-दर्शन को प्रस्तुत करते हुए उन्होने अपने देश की परिस्थितियों का भली प्रकार ध्यान रखा है।[1] इस काव्य-रचना के प्रारम्भिक भाग मे, जहा कवि ने अपने गाव मे व्यतीत किए हुए प्रारम्भिक जीवन का स्मरण किया है,[2] वह, गोल्डस्मिथ की रचना के, अपने घर पर अपने भाइयो के साथ व्यतीत किये गये जीवन के सस्मरण[3] से बहुत मिलता जुलता है। पाडेय जी ने अपनी मातृ-भूमि के प्रति जिस भक्ति भावना को प्रकट किया है[4] वह भी गोल्डस्मिथ की उस तर्क परम्परा से मिलती हुई है जिसमे उन्होने कहा है कि मनुष्य सर्वोत्कृष्ट आनन्द का अनुभव उसी स्थान पर करता है, जहा उसका जन्म हुआ हो।[5] आगे चलकर पाडेय जी ने पोप की तर्क परम्परा ग्रहण करते हुए यह कहा है कि मनुष्य को आनन्द की अनुभूति, यश राज्याधिकार, ऐश्वर्य, ज्ञान तथा इसी प्रकार की अन्य सासारिक विभूतियो के अर्जन से नही हो सकती।[6] तुलनात्मक अध्ययन की प्रवृत्ति को लेकर इसके बाद उन्होने यह भी कहा है कि मनुष्य जीवन की सामान्य स्थितियो, निर्धनता, श्रमिक जीवन, किसानो के व्यवसाय आदि को ग्रहण करके भी आनन्द का अनुभव नही कर सकता[7]।

१—पाडेय जी ने, अपने देश की परिस्थितियो का ध्यान रखते हुए ही, समर्पित जीवन के साथ, विदेशो की यात्रा को भी उचित माना है।

२—लोचन प्रसाद पाडेय 'प्रवासी', पृ० १

३—गोल्डस्मिथ 'दि ट्रेवलर', पृ० ११-२२

४—लोचन प्रसाद पाडेय 'प्रवासी', पृ० ३

५—गोल्डस्मिथ ट्रेवलर', पृ० ७१—७३

६—लोचन प्रसाद पाडेय 'प्रवासी', पृ० ३, ५, ६, ७ और ८

७—वही, पृ० ५, ६ और ७

अन्त मे उनका निष्कर्ष है कि मनुष्य यदि स्वार्थ की भावना का परित्याग कर औरो के लिए सुख के आयोजन मे अपने को लगा दे तो आनन्द का अनुभव किया जा सकता है ।[1]

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोल्डस्मिथ, पोप और पाडेय जी के निष्कर्ष बहुत कुछ एक से है । गोल्डस्मिथ ने, अपने इस जीवन-दर्शन को, प्रारम्भ मे ही यह कहकर स्पष्ट कर दिया है, कि ससार मे, वास्तव मे, वही व्यक्ति बुद्धिमान है जिसके उद्योग से मनुष्य मात्र को सर्वाधिक सुख प्राप्त हो तथा जो निरन्तर इसी विचार मे तत्पर रहे ।[2] पोप ने इसी प्रकार के प्रयास को पुण्य कर्म की सज्ञा दी है ।[3] पाडेय जी ने उसे औरो के सुख के लिए अपने जीवन का पूर्ण समर्पण कहा है ।[4]

गोल्डस्मिथ और पोप के इस प्रभाव के विवेचन के पश्चात्, जब हम पाडेय जी की अन्य रचनाए उठाते हैं, तो उनकी 'मेवाड गाथा' पर हमे मेकॉले के 'लेज ऑफ एन्शेट रोम' का प्रभाव दिखाई देता है । मेकॉले ने अपनी इस काव्य रचना मे, रोम के प्राचीन वीर-गीतो से प्रेरणा लेकर, अंग्रेजी भाषा मे उन्हे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया था । मेकॉले के इस काव्य-ग्रथ मे प्रारम्भ मे चार वीर-गाथाए थी प्रथम वीर-गीत 'होरेशस' मे, इसी नाम के वीर पुरुष द्वारा, रोम पर टस्कनो के आक्रमण के समय, एक पुल की साहस पूर्ण सुरक्षा का वर्णन है, दूसरे वीर-गीत 'दि बैटिल ऑफ लेक रेजिलस' में, रोम के लोगो की, देवताओ की सहायता से, लातनी लोगो पर विजय का वर्णन है, 'वर्जिनिया' में एक ऐसे मार्मिक प्रसग का वर्णन है, जिसमे एक पिता अपनी पुत्री की सम्मान-रक्षा के लिए, उसका वध कर डालता है, चतुर्थ गाथा मे रोम के लोगो के सम्बन्ध मे एक दृष्टिहीन सन्त का भविष्य कथन है । मेकॉले ने आगे चल कर अपने इस ग्रन्थ मे दो गाथाए और जोडी थी जिनमे से एक मे फ्रान्स के एक ऐतिहासिक युद्ध का विवरण है, और दूसरे मे स्पेन के इतिहास प्रसिद्ध जहाजी बेडे आर्मडा के आने पर इगलैड के लोगो के मन मे जागृत हुई भावनाओ का वर्णन है । इस प्रकार इन नई गाथाओ का सम्बन्ध पुरातन रोम से किसी प्रकार नही है । मेकॉले के इस ग्रथ का 'मेवाड गाथा' पर प्रभाव भी पहली चार वीर-कथाओ तक ही सीमित है ।

१—लोचन प्रसाद पाडेय 'प्रवासी', पृ० १३
२—गोल्डस्मिथ . 'दि ट्रैवलर', पृ० ४३-४४
३—पोप : 'एसे ऑन मैन', पृ० ३८७
४—लोचन प्रसाद पाडेय : 'प्रवासी', पृ० १२

लोचन प्रसाद पाडेय की 'मेवाड गाथा' मे मध्य युग के राजपूत वीरो की असीम साहसिकता तथा अतुल पराक्रम के वर्णन है। प्रारम्भ मे विषय प्रवेश है, जिसमे काव्य-ग्रन्थ के प्रमुख रस देश भक्ति की भावना का वर्णन है। उसके बाद बारह वीर-कथाएँ है, जिनके, शीर्षक है—'आत्मत्याग', 'दुर्ग द्वार', 'आदर्श राज-भक्ति', 'प्रतापी प्रताप का प्रण', 'अलौकिक धैर्य', 'धैर्य परीक्षा', 'स्वामि-भक्त-मन्त्री', 'कृष्णा कुमारी', राणा संग्राम सिंह', 'राणा सज्जन सिंह', 'बाबू हरिश्चन्द्र' तथा 'प्रताप स्तव'। इन शीर्षको से उनकी कथा-वस्तु स्वयं ही स्पष्ट है। केवल यह बताना शेष रह जाता है, कि इतिहास प्रसिद्ध हल्दी घाटी के युद्ध का वर्णन 'आदर्श राजभक्ति' शीर्षक वीर-गाथा मे है। इस वीर गाथा मे उस प्रसग का वर्णन है, जिसमे झाला मान सिंह ने, अपने प्राणो को सकट में डालकर, राणा प्रताप सिंह के जीवन की रक्षा की थी। अन्य गाथाओ मे भी यह आत्म-बलिदान की भावना व्यक्त हुई है।

मेकॉले के काव्य-ग्रन्थ 'दि लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम' तथा पाडेय जी की काव्य रचना 'मेवाड गाथा' के नामो मे भी परस्पर काफी साम्य है। मेकॉले को रोम के साथ 'एन्शेन्ट' शब्द जोडने की आवश्यकता पडी है, किन्तु मेवाड तो मध्य युग के अपने राजपूत वीरो के साहस पूर्ण कार्यो के लिए ही प्रख्यात है, इसी लिए पाडेय जी को उसके साथ कोई विशेषण नही जोडना पडा है। मेकॉले की काव्य रचना मे आत्म-बलिदान की भावना को अभिव्यक्ति मिली है,[1] और ऐसे वीर कार्यो का वर्णन है, जिनकी शत्रु भी सराहना करते हैं[2] 'मेवाड गाथा' मे भी इन्ही दोनो भावनाओ को अभिव्यक्ति मिली है। आत्म-बलिदान और देश-भक्ति की भावना का तो विषय-प्रवेश मे ही वर्णन है,[3] और ग्रन्थ के मूल भाग म ये भावनाए अन्तर्धारा के रूप मे प्रवाहित है। विषय प्रवेश मे ही, ऐसे साहसपूर्ण कार्यो की ओर सकेत किया गया है, विपक्ष के लोग भी जिनकी सराहना करते है।[4] मूल काव्य-रचना मे भी यह भावना कई स्थलो पर अभिव्यक्त हुई है।[5]

पाडेय जी की 'मेवाड-गाथा' मेकॉले के 'लेज' मे कई स्थलो पर बहुत अधिक मिलती जुलती है। होरेशस जब, कई घण्टो तक पुल की रक्षा करने के अनन्तर, यह

---

१ मेकॉले 'दि लेज ऑफ एन्शॅट रोम', पृ० ३२० ३३१

२—वही, पृ० ४७७-८४

३—लोचन प्रसाद पाडेय 'मेवाड गाथा', पृ० ३

४—वही, पृ० ३

५—वही, पृ० २६

देखता है कि उसके पक्ष के लोगो ने पुल तोड दिया है, और शत्रु नदी को पार करके रोम नही पहुच सकते, तो टाइबर नदी को, पिता टाइबर कह कर सम्बोधित करता हुआ, अपना जीवन उसे अर्पित कर देता है।[1] 'मेवाड गाथा' मे भी इसी प्रकार का एक प्रसग है झाला मानसिह जब युद्ध-क्षेत्र मे घायल होकर गिरने लगते है, तो वे भी धरती को, माता सम्बोधित करते हुए, अपना शरीर अर्पित कर देते है। रोम[2] मे इस प्रकार के वीरता-पूर्ण और साहसिक कार्यो के दर्शन, रोम मे उस समय हुए थे जब वहा प्रजातन्त्र की व्यवस्था थी।[3] पाडेय जी ने इसी भावना को अवतरित करने के लिए 'राणा-सग्रामसिह' शीर्षक एक गाथा लिखी है। राणा सग्रामसिह अपने गुप्तचरो के द्वारा अपने शासन के सम्बन्ध मे जनसाधारण का मत सग्रह करते थे, और फिर जन-रुचि के अनुरूप अपनी राजनीति मे परिवर्तन कर दिया करते थे। इस प्रकार पाडेय जी ने राणा सग्रामसिह को एक गणतन्त्रवादी के रूप मे प्रस्तुत किया है।[4]

मेवाड को भी, रोम की भाति, भाग्य-चक्र की प्रेरणा से दुर्दिन देखने पडे, किन्तु उस समय भी पुराने वीरो की गाथाए, जनसाधारण को, साहसिक कार्यो के लिए प्रेरणा प्रदान करती रही। मेकॉले ने रोम के दुर्दिन का एक चित्र 'वर्जीनिया' शीर्षक गाथा मे प्रस्तुत किया है, जिसमे एक पिता, अपनी पुत्री की सम्मान रक्षा के लिए अपने हाथो से ही उसका वध कर डालता है। पाडेय जी ने, 'कृष्णा कुमारी' शीर्षक गाथा मे, इसी प्रकार का एक प्रसग लिया है। इन दोनो गाथाओ मे थोडा सा अन्तर भी है। 'वर्जीनिया' के सम्मान की रक्षा के लिए उसके पिता को उसका वध करना पडा था कृष्णा कुमारी ने अपनी तथा अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए स्वय ही विषपान किया है। कृष्णा कुमारी के पिता भीमसिह ने, पुरातन गौरव का स्मरण करते हुए, प्रस्तुत परिस्थितियो की ह्रासोन्मुख प्रवृत्ति पर आसू बहाए हैं।[5] यह प्रसग भी 'वर्जीनिया' मे वर्णित इसी भाव धारा की पंक्तियो से बहुत मिलता-जुलता है।[6]

पाण्डेय जी की 'मेवाड गाथा' का, यह मेकॉले के 'लेज' से बहुत मिलता जुलता रूप, वास्तव मे पूर्णन अग्रेजी कविता के अनुकरण के कारण ही नही है। पाण्डेय जी

१—मेकॉले वि लेज ऑफ एन्शेंट रोम', पृ० ४६५-६६
२—लोचन प्रसाद पाण्डेय : 'मेवाड गाथा', पृ० ३३
३—मेकॉले · 'वि लेज ऑफ एन्शेंट रोम', पृ० २५८-६३
४—लोचन प्रसाद पाण्डेय · 'मेवाड गाथा', पृ० ७२
५—वही, पृ० ६५-६६
६—मेकॉले · 'वि लेज ऑफ एन्शेंट रोम', 'वर्जीनिया', पृ० १०१-११०

स्वय काव्य प्रतिभा से सम्पन्न थे, और राजपूतो की वीरता का प्रसग भी काव्य प्रेरणा का 'अच्छा स्रोत है।'[1] इन्ही दोनो प्रेरणाओ से इस काव्य रचना मे मौलिकता की पर्याप्त रूप मे अभिव्यक्ति हुई है। पाण्डेय जी सस्कृत काव्य की परम्परा मे पोषित हिन्दी के कवि थे। सस्कृत साहित्य मे वीरो के चार प्रकार—शूर वीर, दानवीर, कर्मवीर, और दयावीर स्वीकार किये गये हैं।[2] पाण्डेय जी ने अपने इस ग्रन्थ मे इनमे से तीन के उदाहरण प्रस्तुत किये है।

अग्रेजी प्रभाव पाण्डेय जी की अन्य काव्य रचनाओ पर भी मिलता है। पहले हम उनके काव्य सकलन 'कविता कुसुम माला' (१९१०) मे सकलित उनकी अपनी रचनाओ को लेते हैं। इन काव्य रचनाओ मे वे श्रीधर पाठक की भाँति, और कही-कही उनसे भी अधिक, प्रकृति-प्रेम से ओत-प्रोत, दिखाई देते है। उनका यह प्रकृति-प्रेम अग्रेजी के दो कवियो टॉमसन और गोल्डस्मिथ से प्रभावित है। प्रकृति का यथार्थ चित्रण, जिसमे उसके आनन्द-दायक और भयोत्पादक दोनो ही रूप आ जाते हैं, पाण्डेय जी ने टॉमसन से ही सीखा है। गोल्डस्मिथ का प्रभाव ग्रामीण जीवन के मर्मस्पर्शी चित्रण मे है।

पाण्डेय जी की प्रकृति सबन्धी काव्य रचनाये 'पल्ली-चित्र', 'वर्षा ऋतु मे ग्राम दृश्य', 'वसन्त-स्वागत', 'वर्षा', 'हेमन्त', 'प्रभात', 'मध्याह्न', तथा 'सध्या' हैं। इन काव्य रचनाओ मे ग्रामीण जीवन के जो चित्र प्रस्तुत किये गये हैं, उनमे तथा गोल्डस्मिथ की रचनाओ मे प्राप्त इसी प्रकार के चित्रो मे, पर्याप्त अन्तर है। फिर भी गोल्डस्मिथ का प्रभाव पाण्डेय जी की रचनाओ पर स्पष्ट झलकता है। गोल्डस्मिथ की काव्य रचनाओ मे, उस ग्रामीण जीवन के सस्मरण हैं, जब औद्योगीकरण का प्रसार जिसकी सजगता और वेग को विनष्ट नही कर पाया था। पाण्डेय जी ने भी उस ग्रामीण जीवन का चित्रण किया है, जिसमे हास्य और विनोद की भावनाएँ तरगित हो रही थी। गोल्डस्मिथ ने 'दि डेजटड विलेज' मे पहले के ग्रामीण जीवन के सुखद सस्मरण दिये है, और प्रस्तुत परिस्थितियो मे उसे विच्छिन्न होते हुए देखकर आँसू वहाये हैं। पाण्डेय जी ने ग्रामीण जीवन की केवल मधुर और आनन्दमय धारा का चित्रण किया है। फिर भी दोनो काव्य रचनाओ मे कई स्थलो पर वहुत निकट का साम्य है।

१—राजपूतो के वीररसात्मक-कृत्यो मे, पुरुषो के साथ स्त्रियो के भी पराक्रम के वर्णन हैं, किन्तु रोम की गायाओ मे केवल पुरुषो के शौर्य के प्रसग हैं।

२—विद्यापति ' 'पुरुष परीक्षा'

पाण्डेय जी की इन प्रकृति सम्बन्धी रचनाओ पर टॉमसन का प्रभाव, विशेष रूप से उनकी ऋतु-वर्णन सम्बन्धी कविताओ मे मिलता है। पाण्डेय जी ने वर्षा, हेमन्त और वसन्त, इन तीन ऋतुओ पर काव्य रचनाएँ लिखी हे। अपनी 'वर्षा' शीर्षक रचना मे उन्होने, प्रकृति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया हे, तथा यह दिखाया है कि बादलो से बरसती हुई जलधारा ने किस प्रकार, प्रखर ताप से मुक्ति दी है और इस जगत मे जड और चेतन दोनो मे ही एक नये जीवन की भावना का सचार किया है। वर्षा के प्रभाव से धरती ने तो अपना रूप ही बदल दिया है। 'वसन्त' का वर्णन करते हुए प्रारम्भ मे उसका स्वागत किया गया है, और फिर प्रकृति के क्षेत्र मे इस ऋतु के द्वारा लाये गये परिवर्तनो का वर्णन है। पाण्डेय जी ने वसन्त कालीन प्राकृतिक शोभा के जो चित्र प्रस्तुत किये है, वे कई स्थलो पर टॉमसन की 'स्प्रिंग' शीर्षक काव्य रचना से मिलते हुए हैं।[1] पाण्डेय जी की इन रचनाओ मे प्रकृति के आनन्द की भावना जगाने वाले रूप का ही वर्णन है। प्रकृति का दूसरा स्वरूप, जो हमारे हृदय मे भय की भावना का सचार करता है, उनकी 'हेमन्त' शीर्षक रचना मे प्रकट हुआ है। इस काव्य रचना मे उन्होने यह दिखाया है कि शीत के प्रकोप ने दीन-हीन लोगो के लिये जीवन यापित करना अत्यन्त दुष्कर कर दिया है।[2] टॉमसन की रचनाओ मे भी दीन-हीनो के प्रति इसी प्रकार की सम्वेदना और सहानुभूति की भावना देखने को मिलती है। हो सकता है, पाण्डेय जी ने टॉमसन से जहाँ प्रकृति के यथार्थ चित्रण की प्रणाली ग्रहण की थी, उसी के साथ यह सहानुभूति की भावना भी ग्रहण की हो।

पाण्डेय जी के प्रभात, मध्याह्न तथा संध्या के वर्णनो मे टॉमसन के साथ वर्ड्सवर्थ का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। प्रारम्भ की कुछ पक्तिया, ग्रे की 'एलेजी' की प्रारम्भिक पक्तियो से भी कुछ मिलती-जुलती हैं।[3] इन रचनाओ मे टॉमसन का प्रभाव प्रकृति के यथार्थ चित्रण[4], तथा दीन-दुखियो के प्रति सम्वेदना और सहानुभूति की भावना मे है।[5] वर्ड्सवर्थ का प्रभाव, उन स्थलोपर है जिनमे कवि प्राकृतिक शोभा मे

१—'दि कम्प्लीट पोएटिक वर्क्स ऑफ जेम्स टॉमसन', ऑक्सफोर्ड सस्करण (१६०८), 'दि सीजन्स', 'स्प्रिंग', पंक्तिया ८७-८६

२—लोचन प्रसाद पाण्डेय 'कविता कुसुम माला', 'हेमन्त', पृ० ८७-८८

३—वही, 'सध्या', पृ० ६२

४—वही, 'प्रभात', पृ० ६४-६५

५—वही, 'मध्याह्न', पृ० ६६

अपने को पूर्णत खोया हुआ सा पाता है। इस प्रकार का एक स्थल है

'हुए अस्तगामी प्रखर कर हो शान्त रवि के।
लगे नाना दृश्य प्रबल हरने चित्त कवि के ॥'[1]

एक स्थान पर कवि ने, वर्ड्सवर्थ के कथन

'My heart leaps when I behold
A rainbow in the sky'[2]

की भावना को पूर्णत प्रतिध्वनित किया है

'लख कर नभ मे बादल रग विरग
पुलकित हो उठता है कैसा अग'[3]

प्रकृति की शोभा मे कवि का मन इतना अधिक रम गया था, कि अपनी 'भारत वन्दना' शीर्षक एक देश-भक्ति पूर्ण काव्य रचना मे वह, अपनी मातृभूमि की नैसर्गिक शोभा का ही वर्णन करता रहा है।

पाडेय जी की काव्य रचनाओ पर अग्रेजी प्रभाव कुछ और रूपो मे भी मिलता है। उन्होने सॉनेट एव अमित्राक्षर छन्द के भी कुछ प्रयोग उपस्थित किये। अग्रेजी के सॉनेट नामक काव्य रूप का प्रथम प्रयोग, श्रीधर पाठक ने अपने गोल्डस्मिथ के 'दि ट्रैविलर' नामक काव्य रचना के रूपान्तर के समर्पण मे प्रस्तुत किया था। पाश्चात्य साहित्य मे यह काव्य-रूप प्रारम्भ मे सगीतात्मक था, किन्तु अग्रेजी साहित्य तक आते आते उसकी सगीतात्मकता समाप्त हो गई थी, केवल उसकी अन्त्यानुप्रास की एक विशेष प्रकार की प्रणाली ही शेष रह गई थी, और वह भी कुछ परिवर्तनो के साथ। अभिव्यजना के इस विधान मे, अपने मूल रूप में जो सद्य भाव एव नवोन्मेष था, समय के विकास के साथ वह खो गया है, और अब उसमे एकान्त चिन्तन की वृत्ति प्रगट होती है। पाण्डेय जी के सॉनेटो, 'बाल्य-स्मृति और 'श्मशान' मे भी, चिन्तन परपरा को ही अभिव्यक्ति मिली है। अमित्राक्षर छन्द का प्रयोग भी, पाण्डेय जी के काव्य सग्रह 'माधव मजरी' (१९१४) की 'पल्ली कवि' शीर्षक रचना मे है।

पाण्डेय जी की काव्य रचनाओ का यह अध्ययन उन्हे प्रकृति के कवि के रूप मे

१—लोचन प्रसाद पाडेय : 'कविता कुसुम माला', 'प्रभात,' पृ० ९२

२—वही, 'सध्या', पृ० ९५

३—वही, 'भारत वन्दना', पृ० १७-१८

४—लोचन प्रसाद पाडेय : 'माधव मजरी', 'पल्ली कवि', पृ० ४८-५०

प्रगट करता है। प्रकृति के जिन पक्षो ने उन्हे विशेष आकृष्ट किया है, उनकी 'पल्ली कवि'[१] शीर्षक रचना से उनका परिचय मिलता है। पांडेय जी के मन मे, गोल्डस्मिथ की भांति, ग्रामीण जीवन के प्रति अगाध प्रेम था, उसकी सहजता और प्रकृति के साथ सामजस्य उन्हे विशेष प्रिय थे। उनकी रचनाओ मे ग्रामीण जीवन की बहुत अधिक दृश्यावलिया प्रस्तुत की गई है। पाण्डेय जी की अभिव्यजना प्रणाली मे भी, उनके प्रकृति के प्रति अपरिमित स्नेहभाव की झलक है। अपने इस प्रकृति प्रेम को उन्होने टॉमसन, गोल्डस्मिथ तथा वड्सवर्थ के अध्ययन से और अधिक सम्पुष्ट किया है। अंग्रेजी के इन कवियो का प्रभाव उनकी रचनाओ मे पर्याप्त स्पष्ट है।

'श्रीवर' कृत 'चारण'

'श्रीवर' जी ने अपनी इस कृति को 'एक काल्पनिक कथा-काव्य कहा है।[२] इस ग्रन्थ के अन्दर के प्रथम पृष्ठ पर रचना, लेखक एव प्रकाशक के नाम के साथ, शेक्सपियर की निम्नलिखित पक्तिया उद्धृत हैं

> The poet's eye in a fine frangy rolling
> Doth glance from heaven to earth and from earth to heaven,
> And, as imagination bodies forth,
> The forms of things unknown the poet's pen
> Turns them to shape and gives to airy nothing
> A local habitation and a name[३]

कवि ने इन पक्तियो के मूल भाव को अपनी रचना मे पूर्णत आत्मसात किया है। यद्यपि कवि का कथन है कि उसकी इस रचना के केवल दसवें परिच्छेद मे ही पर वाल्टर स्कॉट के 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल' का प्रभाव है,[४] तथापि अंग्रेजी के इस

१—लोचन प्रसाद पाडेय 'माधव मजरी', 'पल्ली कवि', छन्द स० ५

२—श्रीवर 'चारण', मुख पृष्ठ

३—शेक्सपियर 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम', अंक ५ दृश्य १ प० १२-१७

४—प्राक्कथन मे कवि ने लिखा है- "यह पुस्तक उस समय लिखी गई थी, जिस समय मैं प्रयाग के गवनमेंट स्कूल का विद्यार्थी था। पुस्तक प्राय अपनी मूल अवस्था मे उपस्थित की गई है। केवल एक ही विशेष परिवर्तन किया गया है। यह परिवर्तन दसवें परिच्छेद मे है। प्रसिद्ध कवि सर वाल्टर स्काट के ले को पढ़कर यह असम्भव था कि मैं यह तथा कुछ और परिवर्तन न करता।"

कथा काव्य का सस्पर्श इस काव्य-ग्रंथ के सम्पूर्ण संविधान पर दृष्टिगोचर होता है। कुछ स्थानों पर भाव-साम्य भी है। इसी प्रकार का साम्य अनेक स्थलों पर मेकॉले की रचना 'लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम' से भी है। प्रारम्भिक अंश पर गोल्डस्मिथ का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। किंतु इन प्रभावों से ओत-प्रोत होते हुए भी 'चारण' एक मौलिक कथा-काव्य है। कवि जो कुछ पढ़ता है, उसका प्रभाव उसकी अपनी रचनाओं में तो प्रगट होना ही रहता है, जो अनुकर्त्ता होते हैं, उनकी रचनाओं में ग्रहण स्पष्ट दृष्टिगत है। मौलिक प्रतिभा सम्पन्न कवि ग्रहण में भी आत्मतत्व की प्रतिष्ठा कर देते हैं। 'चारण' इसी प्रकार की मौलिक कृति है।

'श्रीवर' जी के इस कथा काव्य के प्रारम्भ में मंगला चरण नहीं है यह भारतीय काव्य परम्परा से विद्रोह स्वरूप है। इस काव्य का प्रारम्भ सीधे एक राजपूत युवक के जंगल में भटक जाने के प्रसंग से होता है। मार्ग खोजते-खोजते बहुत थक जाने पर उसे एक कुटिया दिखाई देती है। उसके द्वार पर एक प्रकाशमय व्यक्तित्व का वयोवृद्ध व्यक्ति बैठा हुआ है। वह उस नवयुवक को आश्रय देता है, और कंद मूल फल ग्रहण करने के लिए कहता है। गोल्डस्मिथ की रचना 'हरमिट' का प्रारम्भ भी ठीक ऐसे ही प्रसंग में है।

इस काव्य के दूसरे परिच्छेद में, वयोवृद्ध व्यक्ति ने अपने को चारण बताया है। अपने इस परिचय में उसने जो कुछ कहा है,[1] वह स्कॉट द्वारा दिये गये अपने 'मिंसट्रेल' के परिचय[2] से पर्याप्त मिलता जुलता है। वह वृद्ध व्यक्ति चारण है और एक साधारण-सी झोपड़ी में रहकर पुराने योद्धाओं की कथाएं गाता है स्कॉट की रचना का वाचक भी ऐसा ही चरित्र है।[3] स्कॉट का मिन्सट्रेल वयोवृद्ध होने के कारण कथा कहते-कहते बीच २ में थक कर रुक जाता है,[4] चारण भी वार्धक्य के कारण इसी प्रकार रुकता २ अपनी कथा कहता रहा है।[5] चारण ने, चांदनी रात के मधुर मादक वातावरण में अपनी कथा आरम्भ की है। चांदनी रात का यह शब्द-चित्र,[6] स्कॉट की रचना में प्राप्त रात्रि की शोभा के विवरण[7] से मिलता जुलता है।

१—श्रीवर 'चारण, पृ० ४-५
२—सर वाल्टर स्कॉट 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल', पृ० १-२
३—वही, पृ० ४८।
४—वही, पृ० ८।
५—श्रीवर 'चारण', पृ० २९-३१
६—वही, पृ० ८।
७—सर वाल्टर स्कॉट 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल, द्वितीय सर्ग, छन्द सं० १

इसी प्रकार आठवे परिच्छेद मे प्रेम के सम्बन्ध मे प्रगट किए गये मनोभाव[1] भी स्कॉट के इसी विषय पर अभिव्यक्त विचारो[2] के पर्याप्त समान है। दशम् परिच्छेद मे चारण के निधन पर शोकोदगार प्रकट करते हुए, सम्पूर्ण प्रकृति शोक-विह्वल दिखाई गयी है।[3] स्कॉट ने भी एक स्थल पर इस प्रकार की भावनाए अभिव्यक्त की हैं,[4] और उनका प्रभाव 'चारण' के कवि ने इस स्थल के विषय मे स्वय ही स्वीकार किया है।[5] हिन्दी के इस काव्य-ग्रन्थ की स्कॉट की रचना से इतनी अधिक समानता, कवि के अंग्रेजी रचना से पूर्व परिचय के कारण निश्चित रूप से उसके प्रभाव स्वरूप कही जा सकती है।

हिन्दी के इस कथा-काव्य का विषय, लोचन प्रसाद पाडेय की 'मेवाड गाथा' की भाति, राजपूतो की शौर्य एव वीरत्व का वर्णन है, और जिस प्रकार 'मेवाड गाथा' पर मेकॉले की रचना, 'लेज़ ऑफ एन्शंट रोम' का प्रभाव है, चारण पर भी उसका कुछ प्रभाव दृष्टि-गोचर होता है। अत्यधिक साम्य के दो स्थल हैं एक तो वह, जिसमे कवि ने स्त्रियो द्वारा, जयमल और पत्ता के वीर-कार्यो के गायन की बात कही है,[6] और दूसरा, जहा अमरसिह के घोडे की मूर्ति के निर्माण का विवरण है।[7] मेकॉलि की 'दि लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम' का प्रभाव इन दोनो ही स्थलो पर है।

ओवर जी ने अपने इस कथा-काव्य की समाप्ति, एक समाधि-लेख से की है। राजपूत नवयुवक ने, चारण के देहावसान के अनन्तर, उसके लिए चिता सजायी है, और उसके शरीर के भस्मीभूत हो जाने पर, उसके फूलो को एक मजूषा मे रखकर, उनके ऊपर एक समाधि का निर्माण कराया है। उसी समाधि पर शिला-लेख है

"पथिक खडा हो क्षणिक यहा पर कर दर्शन निज जन्म सुधार
हुई धन्य यह भूमि सुकवि का शेष हृदय अपने मे धार।
इस पावन स्थान बीच चारण को भस्म उपस्थित है
मातृभूमि की सुखद गोद मे उसका शेष सुरक्षित है
वह जग को हिन्दू वीरो की पावन कीर्ति सुनाता था।

१—ओवर 'चारण', पृ० २८
२—सर वाल्टर स्कॉट . 'दि ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल', तृतीय सर्ग, छन्द स० ११
३—ओवर 'चारण', पृ० ३५
४—सर वाल्टर स्कॉट 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल,' कैन्टो फिफ्थ, स्टेन्जा १और१२
५—ओवर 'चारण', प्राक्कथन
६—वही, पृ० १४
७—वही, पृ० २६

जननी जन्म-भूमि यश गाते अपनी आयु विताता था ।
उसकी नस-नस मे व्यापित था धर्म स्वजाति देश अभिमान
निशिवासर गाया करता था जिनका यह कल कीरति गान ।
उसका जीवन चन्दन सा था दिव्य परम पर उपकारी
सज्जन गुण की खानि रहा वह कवि कुल मुकुट शोक हारी ।
पथिक झुका सिर इस समाधि पर थोडे फूल चढाता जा
वृद्ध अमर कवि को थोडा सा आदर मान दिखाता जा[1]"

पथिक को सम्बोधित यह समाधि-लेख, निश्चित रूप से अंग्रेजी प्रभाव से प्रेरित है, हिन्दी मे इस प्रकार का प्रयास पहले नही हुआ था । मध्य-युग की समाधियो या मकबरो पर केवल उनके निर्माता, निर्माण-काल एवं जिनकी स्मृति मे वे बनवाये गये हैं उनके नाम ही का उल्लेख है । अंग्रेजी मे इस प्रकार की काव्योक्तियो की परम्परा रही है, इसलिए इन पंक्तियो पर अंग्रेजी प्रभाव स्वीकार किया जा सकता है ।

'चारण' के कवि ने एक दो स्थलो पर प्रकृति-चित्रण की, विशेष रूप से भू-खण्ड-चित्रण की विधि का प्रयोग किया है । यह प्रकृति चित्र दृष्टव्य है

'हुई घूमते उसको सध्या एक तलैटी दिखलायी
सुन्दरता निज जहा प्रकृति ने भली भाति थी दरसायी ।
तीन ओर थे दुर्गम पर्वत हरियाली जिन पर छायी
जिनके शिखरो पर किरीट सी छवि पडो ने थी पायी ।
भाति भाति के रग बिरगे खिले फूल छवि पाते थे
लाखो पारिजात भी जिनके सम्मुख शीश झुकाते थे ।
वहा बीच मे वक्र चाल का झरना झर झर झरता था
× × × ×
आस-पास फल लदे वृक्ष को देख भूख लग आती थी,
ईश्वर की अपार महिमा की याद हृदय को आती थी ।"[2]

अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य का भी कुछ प्रभाव 'चारण' पर है । स्वच्छन्दतावाद जीवन को भावना और कल्पना से अनुरंजित करके देखने का दर्शन है । यह जीवन-दर्शन प्रकृति के प्रति स्नेह भाव जगाता है, पुरातन के प्रति अनुरक्त करता है, और आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहन देता है । अंग्रेजी काव्य मे स्वच्छन्दता-

---

१ – श्रीवर 'चारण', पृ० ३७ ।
२—वही, पृ० १२

वादी प्रवृत्तियो के अभ्युदय से प्रकृति के प्रति स्नेह भाव की अभिवृद्धि हुई थी, और लोकोत्तर तत्वो के प्रति भी अनुराग सजग हुआ था। अंग्रेजी काव्य के सम्पर्क से, हिन्दी कवियो के मन मे प्रकृति स्नेह की भावना पर्याप्त बढी थी, तथा लोकोत्तरता के प्रति भी आकर्षण जगा था। यह हम पहले कह आये है, कि स्कॉट की प्रेरणा से कवि ने चारण के निधन पर सम्पूर्ण प्रकृति को शोक विह्वल दिखाया है। मनुष्य के हर्ष-विषाद मे प्रकृति की यह सहानुभूति अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियो मे से है, और इस कथा-काव्य मे उसके और भी कई उदाहरण हैं। अपना परिचय देते हुये चारण ने, नवयुवक से कहा है

"तारो पर जब बीन के मेरे चचल उंगली पडती है
आप पास की कली अधखिली चट से तब खिल पडती है।
हो प्रसन्न मेरे रागो से सरिता राग मिलाती है
मधुर समीर पक्षिया होकर मेरी तान सुनाती है।"[१]

कल्पना का यह स्वच्छन्द विहार, उन स्थलो पर और भी दर्शनीय है जहा कवि कॉलरिज की भांति स्वप्न-द्रष्टा हो उठा है। वयोवृद्ध चारण, यह सुनाने के अनन्तर, कि किस प्रकार कमलावती ने अपने पति की प्राण-रक्षा के लिए, उनके शरीर का विष चूस लिया था, बडा श्रमित हो उठा है, और उसकी आखो मे स्नेहाश्रु उमड आये है। इसी भाव-विह्वल स्थिति मे वह स्वप्न-द्रष्टा हो उठा है, और उसे अपनी पत्नी और पुत्री के आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए, अपने को आहुति कर देने की दृश्यावली दिखाई देने लगी है

"प्रिय गृहणी का चित्र कि जिसने देख मुगल का नगर प्रवेश
किया अग्नि मे कूद समर्पण प्राण हृदय मे रख देवेश।
उस ज्वाला की धधक हृदय मे आज तलक धधका करती
जला रही है हृदय जलाकर राख उसे वह है करती।
देखा उसको भास हुआ मानो कन्या का मुख उज्ज्वल
उसे देख पडता उस स्थल पर जहा बहे झरना निर्मल।
साहस द्योतक वही शुभ्र मुख वही नेत्र जो दुर्दिन भी
विचलित हुए न, सिवा प्रेम के रस जिनमे नही बहा कभी।
वही ललाट केश वे काले वे ही कोमल कर जिनने
वार एक पकडी कटार थी निज सतीत्व रक्षा करने।

१—श्रीधर 'चारण', पृ० ७

जिसने अपने हाथ रगे थे वार एक रक्त-द्वारा
दुष्ट मुगल अत्याचारी को जिसने निज कर से मारा।"[1]

स्वप्न की यह दृश्यावली, कॉलरिज के 'दि राइम ऑफ दि एन्शेन्ट मेरीनर की दृश्यावली से पर्याप्त भिन्न है। वह तो पूर्णत कल्पना प्रसूत थी, यह यथार्थ है। इस अध्ययन के आधार पर इतना ही कहा जा सकता है, कि 'चारण' के कवि ने अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रधान प्रवृत्तियो को आत्मसात तो किया है, किन्तु उन्हे अपनी प्रतिभा के अनुरजन के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है।

जयशकर प्रसाद

प्रसाद जी की रचनाओ मे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तिया और भी अधिक निखर उठी है। उन्होने आत्मानुभूति को अधिक सजगता के साथ अभिव्यक्ति दी है, एव कल्पना को स्वच्छन्द विहार का अवसर दिया है। प्रकृति उनके लिए इस जगत की कठोरताओ मे पलायन का अवलम्ब रही है। पुरातन के प्रति अनुराग भी उनकी रचनाओ मे घनीभूत हो उठा है। रहस्यवादी अनुभूतियाँ भी उनमे अधिक प्रगट हुई है।

प्रसाद ने अपना कवि जीवन व्रजभाषा की रचनाओ से प्रारम्भ किया था, किन्तु कुछ ही समय बाद वे खडी बोली मे लिखने लगे। उनकी आरम्भिक रचनाए काशी की 'इदु' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। पुस्तक रूप मे उनकी प्रथम प्रकाशित रचना 'प्रेम राज्य' (१९१०) है। इसके पूर्व लिखित उनकी कविताए, अन्य साहित्यिक रूपो के प्रयोगो के साथ 'चित्राधार' (१९१८) नाम से प्रकाशित हुई था।[2] 'कानन कुसुम' (१९१२) उनका प्रथम काव्य सग्रह था। उनकी अन्य काव्य पुस्तकें, जिन पर हमे यहा विचार करना है 'प्रेम पथिक' (१९१३), 'महाराणा का महत्व' (१९१४), एव 'झरना'[3] (१९२७) है। ये सभी रचनाए, सर्व प्रथम 'इन्दु' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। हम पहले कह आये है, कि इस पत्रिका के प्रथम अक मे, स्वच्छदवाद का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ था। हिन्दी कविता मे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का समारम्भ, इस पत्रिका से, और प्रसाद की इन रचनाओ से ही हुआ।

१—श्रीवर 'चारण', पृ० ३२-३३

२—प्रसाद जी के 'चित्राधार' सग्रह मे उनकी बीस वर्ष की अवस्था तक रचनायें समृद्धित है • प्रसाद जी का जन्म सन्१८८९ मे हुआ था, इस प्रकार उसमे सन् १९०९ तक की रचनाऐं है।

—इस सग्रह मे प्रसाद जी की सन् १९१४ से १७ तक की रचनाएँ हैं।

प्रसाद जी की प्रथम प्रकाशित काव्य-पुस्तक 'प्रेम-राज्य' की सज्ञा अंग्रेजी, शब्दावली 'किंगडम ऑफ लव' का अनुवाद प्रतीत होती है। इस काव्य ग्रन्थ का कथा सूत्र, अपने बाह्य-विधान मे ऐतिहासिक प्रतीत होते हुए भी, काल्पनिक है। दक्षिण मे विजय नगर और अहमदाबाद राज्यो की बीच सन् १५६५ मे लडा गया युद्ध ही, इतिहास की दृष्टि से सत्य है। कहानी साधारण है, केवल अभिव्यंजना के विधान मे, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो का उपयोग ही दर्शनीय है। प्राकृतिक शोभा के वर्णन के साथ इस काव्य ग्रन्थ का आरम्भ होता है, और उप सहार मे विश्व-प्रेम की स्वीकृति है। अभिव्यंजना का स्वरूप भी, इतिवृत्तात्मक नही, वरन् भावात्मक है। इस प्रकार इस रचना के अंतरग एवं वहिरंग दोनो ही पर स्वच्छन्दतावाद का अनुरंजन है।

प्रसाद जी की 'चित्राधार' मे सगृहीत सभी रचनाएँ जो उनकी प्रारम्भिक कृतिया है, ब्रजभाषा मे है, किन्तु उनमे नवीन भाव-जगत मुखरित हुआ है। अधिकाश रचनाएँ प्रकृति परक हैं। उनमे, कुछ मे तो विभिन्न ऋतुओ के वर्णन है, जैसे 'शारदीय शोभा,' 'रस ल-मजरी', 'वर्षा मे नदी कूल', 'नीरद', 'नीरद', 'इन्द्र-धनुष', और 'शरद पूर्णिमा', तथा कुछ में दिवस के विभिन्न प्रहरो की प्राकृतिक शोभा का वर्णन है, जैसे 'प्रभात', 'रजनी', 'चन्द्र', 'प्रभात-कुसुम', 'सन्ध्या-तारा' और चन्द्रोदय। इस सग्रह की दो रचनाओ 'नीरव-प्रेम' और 'विस्मृत-प्रेम' मे स्नेहभाव की महिमा गायी गई है। 'कल्पना-सुख' शीर्षक मे, विषयानुरूप कल्पना के आनन्द का विवरण है।

प्रसाद की प्रारम्भिक कृतियो के इस सकलन मे, उनका 'प्रकृति सौन्दर्य' शीर्षक एक निबन्ध भी है। वह सर्वप्रथम, 'इन्दु' की प्रथम कला, प्रथम किरण मे प्रकाशित हुआ था उसमे प्रसाद के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण का निर्वचन है। इस निवन्ध मे प्रकृति का मानवी करण करके, उसे सम्बोधित करते हुए प्रसाद जी ने लिखा है कि वर्षा के विभिन्न विभागो मे, वह जो दृश्य उपस्थित करती है, उनके लिए वे प्रेरणा-प्रद होते हैं। अन्त मे प्रसाद जी का कथन है कि प्रकृति के सुखद एव भयोत्पादक दोनो ही रूप उनके मन मे विस्मय की भावना जगाते हैं। सम्पूर्ण निवन्ध का मूल सूत्र है कि प्रकृति के प्रांगण में जो कुछ भी सुन्दर है, वह उन्हे आत्म विभोर एवं आह्लादित कर देता है। प्रसाद का यह प्रकृति-दर्शन उनकी रचनाओ के अनुशीलन से और भी स्पष्ट हो जायगा।

प्रसाद जी ने 'चित्राधार' मे सगृहीत रचनाओ मे प्रकृति वर्णन मे एक तो भू-खण्ड चित्रण की पद्धति अपनायी है, और दूसरे, प्रकृति के विभिन्न स्वरूपो को मानवीय चेतना मे ओत-प्रोत कर दिया है। भू खण्ड-चित्रण की पद्धति की उपयोग

'शरद पूर्णिमा'[1] और 'वर्षा मे नदी का कूल'[2] शीर्षक रचनाओ मे है। आन्तरिक स्पर्श से पुनन्वित शब्दावली मे शरद पूनो की मधुर मादक शोभा का वणन मन को सचमुच आनन्द विभोर कर देता है।

'सुपुरव माहि उग्यो छविधाम।
कला विखरावत है अभिराम॥'
अकाम विभामत पूरन चन्द।
समीरन डोलत मन्द हि मन्द॥
न बोलत हैं कछु कोकिल कीर।
सबै चुप साधि रहे धरि धीर॥
कबौ हिलि जात अहै द्रुम पात।
समीर जबै तिनमे सरसात॥
सुधा बरसावत है नभ चन्द।
मनो प्रकृती हिय धारि आनन्द॥
सुमोहन मन्त्र सुधारि सराग।
बिखेरत है जग माहि पराग॥"[3]

प्रकृति का यह भावन शब्द-मित्र, स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन से स्पन्दित है। इसी दृष्टि से सम्पन्न होने के कारण, प्रकृति प्रसाद जी को मानवीय चेतना से समन्वित प्रतीत हुई है। फिर भी अभी कवि के मन मे, प्रकृति के दृश्यमान स्वरूप का सम्मोहन है, इसीलिए वह, इस रचना मे फिर तथ्य-परक वर्णन की ओर अग्रसर हो उठा है।

"नदी, धरनी, गिरि, कानन देश।
सुछाजत है सवही नव भेश॥
धरे सुख सो सबही शुभ रूप।
लखात मनोहर और अनूप॥"[4]

इन पक्तियो मे यथा-तथ्य वणन की प्रवृत्ति तो है, किन्तु भाषा का सविधान कवि के मानसिक स्पर्श को लिए हुए है, और यह कवि की स्वच्छन्दतावादी मनोवृत्ति के कारण है

भूखड-चित्रण की पद्धति मे ही लिखी गई दूसरी रचना, 'वर्षा ऋतु मे नदी कूल'

१—जयशकर प्रसाद 'चित्राधार', पृ० १५६
२—वही, पृ० १५०
३—वही, पृ० १५६
४—वही, पृ० १५६

बगला के त्रिपदी और अंग्रेजी के सॉनेट के सम्मिलित संविधान में है —

"सघन सुंदर मेघ मनोहर गगन सोहन हेरि।
धरा पुलकित अति अनन्दित रूप धर्‌यो चहु फेरि॥
लता पल्लवित राजै कुसुमित मधुकर सो गुंजित।
सुखमय शोभा लखि मन लोभा कानन नव रंजित॥
बिज्जुलि मालिनि नव कदम्बिनि सुन्दर रूप सुधारि।
अमल अपारा नव जलधारा सुधा देत मनु ढारि॥
सुखद शीतल करन हीतल विमल अनिल वीर।
तरंगिनी कूल आइ अनुकूल चलत मेटत पीर॥
तरंग तरल चपल चपल लेत हिलोर अपार।
कूलन सो मिलि करत खिल-खिल तटन विस्तृत धार॥
वृत्ति वेगवति चलत ज्यो अति मनुज तावश होत।
तरंगिनि धारा चलत अपारा चारु कल कल होत॥
कूल तरु-श्रेनी अति सुख देनी सुन्दर रूप विराजै।
वर्षा तटिनि के पट मनोहर चारु किनारी राजै॥"[१]

वर्षा काल मे नदी की शोभा का यह वर्णन भी, स्वच्छन्दतावादी भावना से ओत-प्रोत है, उसी के कारण तो कवि ने वाह्य-दृश्यावली के साथ-साथ, अपने मनोजगत को भी झाकी दी है।

प्रकृति मे मानवीय चेतना का संस्कार 'चित्राधार' की 'रसाल मजरी', 'उद्यान लता', 'प्रभात कुसुम', 'नीरद' एव 'सन्ध्या तारा' शीर्षक रचनाओ मे है। इन कविताओ मे मलयानिल, आम्र मजरी, उद्यान लता, उसके निकट के वृक्ष, प्रभातिक कुसुम, बादल एव सन्ध्या तारा का मानवीकरण कर दिया गया है। प्रकृति के विभिन्न रूपो को मानव-स्वरूप प्रदान करने की यह प्रवृत्ति, अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो की प्रेरणा से है।[२] इस सग्रह की एक रचना मे कवि ने वर्ड्सवर्थ की भांति, मनुष्य

१—जय शकर प्रसाद 'चित्राधार', पृ० १५०

२—प्रकृति का मानवीकरण संस्कृत काव्य मे भी बहुत स्थलों पर है कालिदास का मेघदूत इस साहित्यिक प्रवृति का सबसे सुन्दर उदाहरण है। किन्तु यह मानवीकरण मानवीय क्रिया कलापों के प्रकरण मे है। अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति को आलम्बन रूप मे ग्रहण कर, मानवीय रूप मे देखा गया है। प्रसाद एव अन्य आधुनिक कवियो का प्रकृति का मानवीकरण भी इसी कोटि का है; इसलिए उसे अग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित कहा जा सकता है।

द्वारा प्रकृति के विभिन्न स्वरूपो के विनाश के प्रयास के प्रति, विक्षोभ प्रकट किया है

"सरिता सुकूलन मे तापसी बने से तरु।
सरल सुभाव खडे हृदय उदार ते ॥
छाया देत काहू कू हृदय जिन तापति है।
तीछन दिवाकर ते दुखित दवारते ॥
नवल प्रमोद सो करत हिय मोदमय
सुन्दर सुस्वादु फल देत निज द्वार ते ॥
स्वारथ मे मूढ़ नर थोडे निज लाभ हेतु
तऊ ताहि काटत हैं कठिन कुठार ते ॥"[1]

प्रसाद जी की रचनाओ मे अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो से अनेक स्थलों पर पर्याप्त साम्य है, किन्तु यह सीधे अंग्रेजी कविता के अध्ययन से आया हुआ नहीं प्रतीत होता। प्रसाद जी की काव्य-भाषा पर, बगला की आधुनिक काव्य-भाषा का पर्याप्त प्रभाव है। बगला की आधुनिक कविता, इस समय तक, अंग्रेजी कविता के प्रभाव को ग्रहण कर चुकी थी, इसलिए यह पूर्णत सम्भव है कि हिन्दी कविता मे, अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्रभाव, बगला के माध्यम से आया हो। बगला के दो आधुनिक कवियो माइकल मधु सूदन दत्त (१८२४-७३) और रवीन्द्रनाथ ठाकुर (१८६१-१९४१) ने आधुनिक हिन्दी कविता के विकास-क्रम को प्रभावित किया है। माइकल का प्रभाव, मैथिली शरण गुप्त की रचनाओ मे है, और रवीन्द्रनाथ का स्वय प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त आदि पर। रवीन्द्रनाथ स्वय अंग्रेजी की स्वच्छन्दतावादी धारा के कवियो से प्रभावित थे।[2] उनकी रचनाओ के अनुशीलन से हिन्दी मे भी इस साहित्यिक प्रवृत्ति की रचनाओ को बल मिला।

अंग्रेजी साहित्य की स्वच्छन्दतावादी धारा की, प्रकृति के विभिन्न रूपो मे मानवीय चेतना की प्रतिष्ठा के अतिरिक्त, कुछ अन्य प्रवृत्तिया भी हैं कल्पना का मुक्त विहार, आत्मानुभूति की अभिव्यञ्जना पर बल, रहस्यमयता का अनुभव, स्वच्छन्द प्रेम की भावना आदि। प्रसाद के 'चित्राधार' की रचनाओ मे इन प्रवृत्तियो को भी अभिव्यक्ति मिली है। 'कल्पना सुख'[3] शीर्षक रचना मे कवि ने कल्पना के आनन्द

१—जयशकर प्रसाद 'चित्राधार', पृ० १७३

२—रवीन्द्रनाथ की रचनाओ पर, अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी काव्य के प्रभाव का विश्लेषण, 'कैलकटा रिव्यू' के सन् १९३३ के अको मे, श्री विनायक सान्याल एव श्री जयत कुमार दासगुप्त द्वारा लिखित निबन्धो में है।

३—वही, पृ० १४१-४२

एव आह्लाद का वर्णन किया है। कीट्स की रचना 'दि रेल्म ऑफ फैन्सी' से वह इतनी मिलती जुलती है कि यह समानता अनायास प्रसूत नही प्रतीत होती। आत्मानुभूति को अभिव्यक्त करने की प्रबल लालसा की झलक, 'मानस'[1] शीर्षक रचना मे है, जिसमे हृदय के सागर मे कल्पना और बुद्धि दोनो को हसो की भाति विहार करते हुए प्रदर्शित किया गया है। मानस की तरगें, जिनमे आत्मानुभूति सजग होती है, कवि का कथन है, सख्यातीत एव अनन्त हैं। प्रकृति के मधुर, मादक वातावरण में, कवि को भावोल्लास का अनुभव होता है यह भी कवि की स्वानुभूति के प्रति सजगता का परिचायक है। रहस्यात्मक अनुभूतियो का प्रकाशन भी, अनेक स्थलो पर, अधिकाश मे, प्रकृति परक रचनाओ मे है। प्रभात कुसुम को सम्बोधित करते हुए कवि ने प्रश्न किये है, कहो तुमने कौन सा शुभ रूप देखा है जो इतने प्रसन्न हो उठे हो? कौन सा प्रकाश तुम्हे प्राप्त हुआ, जो तुम मे इतना विकास सम्भव हो गया?[2] इसी प्रकार सध्या तारा को सबोधित करते हुए कवि ने प्रश्न किया है सध्या के गगन मे अमल रतन की भाति झलकते, सुन्दर वर्ण के तुम कौन हो?[3] स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा की चौथी प्रवृत्ति, स्नेह भाव की अपार महिमा का गायन, 'नीरव प्रेम' शीर्षक कविता मे है। इस रचना मे उद्दाम शृगार भावना, रगीन कल्पना विधान एव प्रकृति के प्रति प्रबल अनुराग का योग है

"नवल दम्पति केलि विनोद मे,
जब विमोहत हैं नव मोद मे।
प्रथम भाषण ज्यो अवरान मे,
रहत हैं तब गूँजत प्रान मे।
तिमि कहो तुम हू चुप धीर सो,
विमल नेह कथान गम्भीर सो।
कछु कहो नहि पै कहि जात हौ,
कछु लहो नहि पै लहि जात हो।
कवि नियोजित सुन्दर कल्पना,
जब धरै प्रतिमा छवि अल्पना।
जलद माल तरगिनि धार मे,

१—जयशंकर प्रसाद 'चित्राधार', पृ० १४३
२—वही, पृ० १५२
३—वही, पृ० १६०

प्रविसि फूलन मे कछार मे ।
तरल वीचि निनादन मे कढै,
प्रकृति के मधुराक्षर को पढै ।[1]

प्रसाद जी की रचनाओ मे इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद की सभी प्रवृत्तियो को अभिव्यक्ति मिली है।

स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन का प्रकृति के प्रति असीम स्नेह, प्रसाद मे विशेष रूप से प्रकट हुआ है। प्रकृति के मनोहारी वातावरण मे उन्हे वर्ड्सवर्थ की भाति, उन्हे असीम उल्लास का अनुभव होता है तभी तो प्रभात सुमन ने अपनी शोभा से एव अपने पास बहती हुई समीर को सुगन्ध-स्नात करके, उन्हे मुग्ध कर लिया है

"धरे हिय माहि असीम अनन्द,
सने सुचि सौरभ, सो मकरद।
समीरन मे सुषमा भरि देत,
प्रभातिक फूल हियो हरि लेत।"[2]

इसी प्रकार, वर्षा के रगीन बादलो से भरे आकाश तथा कुसुमित लताओ से भरे भूखड ने भी, उनको सम्मोहित कर लिया है।[3] आगे की रचनाओ मे उनका प्रकृति के प्रति यह स्नेह-भाव और भी सशक्त होकर अभिव्यक्त हुआ है।

प्रसाद जी के दूसरे काव्य-सग्रह 'कानन-कुसुम' (१९१८) मे, अग्रेजी प्रभाव, सर्वप्रथम सॉनेट की विधा के अनेक प्रयोगो मे दृष्टव्य है। इस काव्य विधा की रचनाये 'सरोज', 'रमणी हृदय', 'प्रियतम', 'मोहन', 'नही डरते', 'महाकवि तुलसीदास' और 'गौ' हैं। 'मकरद बिन्दु', स्फुट मुक्तक रचनाओं के सग्रह मे भी, एक सॉनेट है। अमित्राक्षर या अतुकान्त छन्द की भी अनेक रचनाये हैं—'प्रथम प्रभात,' 'निशीथ नदी', 'चित्रकूट', 'भारत', 'शिल्प-सौदर्य', 'वीर बालक' और 'श्री कृष्ण जयन्ती'। अभिव्यञ्जना के ये दोनो विधान, अग्रेजी प्रभाव से ही गृहीत हैं। अमित्राक्षर छन्द का उपयोग, प्रसाद जी ने अपने एक गीति-नाट्य 'करुणालय' मे भी किया था, उसमे इस विधा के बगला से ग्रहण की बात भी कही थी।

प्रसाद जी का प्रकृति-दर्शन भी इस सग्रह की रचनाओ मे परिवर्तित हुआ है। प्रकृति के मनोरम वातावरण मे अब वे, और भी अधिक उल्लास का अनुभव करते

१—जयशकर प्रसाद 'चित्राधार', पृ० १६६-१६७
२—वही, पृ० १५२
३—वही, पृ० १६०

है। वह उनमे नवीन भावनाओ का सचार करती है, एव उनकी समस्त चेतना को आत्मसात कर लेती है। प्रकृति के एकान्त शोभा-भवन मे, कवि को इस ससार के हलचल और कोलाहल से विश्राम मिलता है, एव शान्ति की उपलब्धि होती है। इसी जीवन-दशन को लेकर, एक स्थल पर कवि ने, श्रान्त पथिक से अपने मन के भार को छोड कर, प्रकृति के प्रागण मे विश्राम लेने के लिए कहा है। यह आह्वान ठीक उसी प्रकार है, जिस प्रकार वर्डस्वर्थ ने 'दि टेबल्स टर्न्ड' मे अपने मित्र से अपनी पुस्तके छोडकर, सध्या कालीन शोभा को देखने का आग्रह किया है। वर्डस्वर्थ के लिए प्रकृति विश्व के सभी मनीषियो से कही अधिक महान आदर्शो की निर्देशिका रही है प्रसाद जी ने भी 'सरोज' मे प्रकृति से शिक्षा ग्रहण करने का भाव प्रकट किया है। प्रकृति के प्रागण मे रहस्यात्मक अनुभूतियो का ग्रहण भी अनेक स्थलो पर है।

स्वच्छन्दतावाद की अ य प्रवृत्तियो मे, अन्तर्जगत के उद्घाटन की भावना, प्रकृति के प्रागण मे होने वाले परिवर्तनो के लिए, मनोवैज्ञानिक उपमानो की अवतारणा मे है। आकाश मे चन्द्रमा का अवतरण कवि को, मनुष्य के मन मे नवीन आशा के अभ्युदय की भाँति प्रतीत होता है।[1] कृष्ण के जन्म के समय चारो ओर फैला हुआ अन्धकार, प्रसाद जी को, कस के मानसिक उद्वेलन की भाँति प्रतीत हुआ है।[2] स्वच्छन्दतावाद की एक अन्य विशेपता, रूमानी भावना, प्रकृति की विभिन्न दृश्यावलियो के लिए सयोजित रूमानी उपमाओ मे दशनीय है। पर्वत उपत्यका मे तुमुल निनाद के साथ बढ़ती हुई नदी, कवि को घू घट की ओट मे हसती रूपसी की भाँति प्रतीत हुई है।[3] इसी भावना की अभिव्यक्ति 'चित्रकूट' शीपक रचना मे उस स्थल पर भी है, जहा राम और सीता प्रकृति के मधुस्नात वातावरण मे आत्मविभोर होकर एक दूसरे के प्रति अपने स्नेह भाव को प्रकट करने लगे है।[4] कवि की कल्पना शक्ति का भी

१—धीरे धीरे नयी आशा से मन मे।
क्रीडा करने लगे स्वच्छ स्वछन्द गगन मे।
जयशकर प्रसाद 'काननकुसुम', पृ० ६५

२—कस हृदय की दुश्चिन्ता सा जगत मे
अधकार है व्याप्त घोर घन है उठा।
—वही, पृ० १२३

३—स्रोतस्विनी हरियालियों मे कर रही कलरव महा।
ज्यों हरे घूँघट ओट मे है कामिनी हँसती अहा॥
वही, पृ० ५३

४—वही, पृ० ६६

विकास हुआ है वर्षा के रगीन बादलो मे उसे अब अनेक आकृतिया दिखाई देने लगी है,[१] और वन थली, परम मनोहर राज भवन की भाँति प्रतीत होने लगी है।[२]

पुरातन के प्रति अनुराग, जो स्वच्छन्दतावाद की प्रधान प्रवृति मे से एक है, और जिसे 'चित्राधार' मे विशेष अभिव्यक्ति नही मिली थी, इस सग्रह मे बडी शक्ति के साथ व्यक्त हुआ है। 'रामायण' एव 'महाभारत' के महान दिनो की स्मृति से, कवि का मन आनन्द विभोर हो उठता है,[३] किन्तु मध्ययुग के व्यापक सास्कृतिक सहार का स्मरण, विक्षुब्ध कर जाता है।[४] 'शिल्प सौन्दर्य' शीर्षक रचना मे प्रसाद जी ने, कीट्स की भाँति सुन्दरता के प्रति अनुराग प्रगट किया है। दिल्ली मे प्रवेश के अनन्तर, सूर्यमल, मोती मस्जिद मे खडा, उसे विनष्ट करने की बात सोचता हुआ, अन्त मे यह निर्णय करता है कि वह उसे धराशायी नही करेगा, कारण एक सुन्दर वस्तु सदा के लिये विनष्ट हो जायेगी।[५]

प्रसाद जी के कथा-काव्य 'प्रेम-पथिक' (१९१३) पर अंग्रेजी प्रभाव और अधिक स्पष्ट है। यह काव्य रचना पहले ब्रजभाषा (१९०५) और उसके बाद खडी बोली (१९०८) मे लिखी गई। यह गोल्डस्मिथ की रचना 'हरमिट' के आदर्श पर लिखित है।[६] गोल्डस्मिथ का कथानक है एक नवयुवक वन प्रान्तर मे भटक कर एक तपस्वी के आश्रम मे पहुचता है। तपस्वी का प्रश्न कि वह इतना दुखी क्यो है ? वह नवयुवक अपने को एक दुखिया नारी प्रगट करता है, और बताता है कि अपने प्रेमी एडविन के वियोग मे वह बहुत विक्षुब्ध है। उसे आशका है कि वह दिवगत हो चुका है। तपस्वी उसकी दुख-गाथा सुनकर, यह उद्घाटित करता है कि वही एडविन है, और तब दोनो प्रतिज्ञा करते हैं कि अब एक साथ ही रहेगे। प्रसाद ने इस कथा को पूर्णत भारतीय रूप देने के लिए, उसमे कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिये है।

१—जयशकर प्रसाद 'कानन कुसुम', पृ० ५२

२—वही, पृ० ९६

३—इस प्रसग मे 'कानन कुसुम' की 'चित्रकूट', 'भरत', 'कुरुक्षेत्र' एव 'श्री कृष्ण जयन्ती' कविताएँ द्रष्टव्य हैं।

४—इस सबध मे द्रष्टव्य है, 'वीर बालक' और 'शिल्प सौन्दर्य'।

५—जयशकर प्रसाद 'कानन कुसुम', पृ० १०९

६—गोल्डस्मिथ के इस ग्रन्थ की प्रेरणा से हिन्दी मे कुछ और कथा-काव्य भी लिखे गये रामचन्द्र शुक्ल का 'शिशिर पथिक' (१९०८) इसी प्रकार की रचना है।

प्रसाद जी के 'प्रेम पथिक' का कथानक है प्रकृति के सुरम्य प्रागण मे एक सरिता के तट पर एक छोटे से कुटीर मे एक तापसी रहती है। उसके यहा एक दिन एक अन्य पथिक आश्रय लेता है। तापसी उस भद्र पथिक से विश्राम करने का आग्रह करने के साथ-साथ अपनी जीवनकथा सुनाने का भी निवेदन करती है। पथिक कुछ विश्राम करने के अनन्तर अपनी कथा आरम्भ करता है: वह अपने पिता के साथ 'आनन्द नगर' मे रहता था। पास ही एक सज्जन रहते थे, जिनके एक कन्या थी, और उसे वे बडे स्नेह से पुतली कहते थे। हम दोनो के पिताओ मे घनिष्टता थी, और हम लोग भी साथ २ खेला करते थे। एक बार मेरे पिता बडे अस्वस्थ हुये और उन्होने मुझे पुतली के पिता को सौप दिया। उसके बाद वे एक दिन दिवगत हो गये। भाग्य की प्रेरणा से फिर हम दोनो साथ-साथ रहने लगे, और साथ-साथ ही प्रकृति के प्रागण मे क्रीडा करते हुये बढने लगे। हम दोनो अकसर चादनी रात की मधुर शोभा का पान करते थे, एव प्रभात की मादक वेला मे फूलो को चुनते थे। इस निरन्तर के सम्पर्क से धीरे २ हमारे मन में प्रणय अकुरित होने लगा, और एक बार तो मैंने उससे विवाह की भी इच्छा प्रकट कर दी। किन्तु भाग्य का विधान, एक दिन उसका और किसी के साथ सम्बन्ध हो गया, और तभी मैने घर छोड दिया। यह कथा प्रसग समाप्त होते ही तापसी ने पथिक को 'किशोर' कह कर सम्बोधित किया, और पूछा, कि क्या अब भी वह पुतली की याद करता है? पथिक ने तत्काल पहचान लिया कि वह तो उसकी बाल-सखी चमेली (पुतली) है, और फिर इसी नाम से उसे पुकारा। चमेली ने तब अपने जीवन का शेष प्रसग सुनाना आरम्भ किया उस सबन्ध से, उसकी स्वच्छन्द प्रकृति, पूर्णत कुठित हो गई थी। उसे अपने पति की दासी रूप मे सेवा करनी होती थी, और फिर भी वह उसे प्यार नही करता था। कुछ ही दिनो मे उसका निधन हो गया और वह विधवा हो गयी। उसके बाद उसे वैधव्य-यज्ञ मे प्रज्वलित होना पडा, जिससे एक वयोवृद्ध पुण्यात्मा ने उसका उद्धार किया। उसी पुण्यात्मा ने उसे यह स्थान भी बताया था, जहा वह अब रह रही है। यहा उसकी कथा समाप्त होती है, और उसको आखो मे आसू भर आते हैं। किशोर भी उसको शोक विह्वल देखकर बरस पडता है। कुछ समय बाद किशोर उस निस्तब्धता को भग करके गम्भीर स्वर मे कहता है इस ससार के सुख और दुख तो क्षण-भगुर हैं, इसलिये हमे अपने को उनके प्रभाव मे मुक्त कर लेना चाहिये, तथा 'विश्व प्रेम' के आदर्श को अपनाकर स्वय को 'विश्वात्मा' को समर्पित कर देना चाहिये। जीवन का यही पथ हमे अमर उल्लास एव परम शान्ति का अनुभव करा सकता है। तापसी को यह जीवन-दर्शन स्वीकार है, और फिर दोनो के दृग तारक स्थिर दृष्टि से अरुणोदय

देखने लगते हैं।

प्रसाद के 'प्रेम पथिक' की कथा के इस सविधान मे स्वच्छन्दतावाद की स्पष्ट झलक है, और अपने इसी स्वरूप मे वह, गोल्डस्मिथ की सीधी सरल गति से चलने वाली कथा से भिन्न है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन की अभिव्यक्ति, इस काव्य रचना मे तीन रूपो मे है। एक तो सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोहात्मक उक्तियो मे, दूसरे प्रकृति के प्रागण मे उल्लास के अनुभव, और तीसरे विश्वप्रेम के आदर्श के सन्देश मे। सामाजिक मर्यादा के प्रति विद्रोह की अभिव्यक्ति अनेक स्थलो पर है। एक, पुतली के अपरिचित व्यक्ति के साथ विवाह के प्रति विक्षोभ मे,[१] दूसरे, विवाहिता नारी के दासी रूप चित्रण मे,[२] एव तीसरे, वैधव्य क पीडित एव अभिशप्त जीवन के दिग्दर्शन मे।[३]

प्रसाद जी ने, 'प्रेम पथिक' मे, प्राकृतिक शोभा के प्रति जिस मनोभाव को प्रकट किया है, उसमे उनका प्रकृति-परक दृष्टि-कोण और विकसित प्रतीत होता है। अब उन्हे केवल किसी भूखण्ड का सौन्दर्य सम्मोहित नही कर पाता, वरन् वर्डस्वर्थ की भाँति उन्हे प्रकृति से शिक्षा मिलती है। 'प्रेम पथिक' की चमेली, वर्डस्वर्थ की लूसी ग्रे की भाँति, प्रकृति के स्नेह पूर्ण सम्पोषण मे बडी हुई है।[४] किशोर ने भी एक स्थान पर, अपने चरित्र निर्माण मे, प्रकृति का योग स्वीकार किया है।[५] प्रसाद जी ने प्रकृति को, मानवीय रूप मे, मनुष्य के प्रति सम्वेदना से भी समन्वित दिखाया है।[६] प्रकृति के प्रति इस परिवर्तित दृष्टि-कोण ने अभी तक प्रसाद जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को आत्मसात नही किया था, इसलिए उनकी पहले की प्रकृति-परक दृष्टि भी अनेक स्थलो पर अभिव्यक्त हो गयी है।

प्रसाद जी के प्रकृति-दर्शन ने, 'प्रेम पथिक' मे विश्व-प्रेम का जो व्यापक रूप

१—'पुतली ब्याही जायेगी जिससे वह परिचित कभी नहीं।'
—जयशकर प्रसाद 'प्रेम पथिक', पृ० १३

२—फिर भी लक्ष्मी दोनो घर की पत्नी उनकी दासी थी।'
—वही, पृ० १६

३—वही, पृ० २०

४—उस नैसर्गिक सुरभि पूर्ण उस रूपवती का क्या कहना,
जिसे कि प्रकृति मालिनी बन कर अपने हाथ सजाती है।
—वही, पृ० २

५—वही, पृ० १४

६—वही, पृ० २२

ग्रहण कर लिया है, वह कीट्स के सौन्दर्यवादी दृष्टि-कोण से पर्याप्त साम्य रखता है। प्रकृति का रमणीय वातावरण, कीट्स के लिए, इस जगत की कठोर वास्तविकताओ से, शान्तिनिकेतन के रूप मे था प्रसाद ने भी उसे उसी रूप मे ग्रहण किया है। किशोर के माध्यम से अपने 'विश्व-प्रेम' के दर्शन की व्याख्या करते हुए उनके शब्द हैं

"आत्म समर्पण करो उसी विश्वात्मा को पुलकित होकर
प्रकृति मिला दो विश्व प्रेम मे विश्व स्वय ही ईश्वर है।
× × ×
क्षण भगुर सौन्दर्य देख कर रीझो मत, देखो! देखो!!
उस सुन्दरतम की सुन्दरता विश्वमात्र मे छाई है।
× × ×
न्यौछावर कर दो उस पर तन मन जीवन, सर्वस्व, नही
एक कामना रहे हृदय मे, सब उत्सर्ग करो उस पर।"[1]

चमेली इस 'जीवन दर्शन' को महज रूप मे स्वीकार कर लेती है और उसी के प्रवाह मे कहती है

चलो मिले सौन्दर्य प्रेम निधि मे ....
जहा अखड शान्ति रहती है वहा सदा स्वच्छन्दता रहे।[2]

इसके अनन्तर दोनो आत्म विभोर होकर अरुणोदय देखने लगते हैं। यह जीवन-दर्शन, निश्चित रूप से, प्राकृतिक शोभा की उपासना का दर्शन है।

अन्य कवि

अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से विशेष महत्व के कवियो पर हम विचार कर चुके, अब इस काल के दो कवियो, अयोध्या सिंह उपाध्याय (१८६५-१९४७) और मैथिली शरण गुप्त (१८८६) पर विचार-विमर्श शेष है, इन कवियो का स्थान काव्य-कला की दृष्टि से तो विशेष महत्व का है। किन्तु अंग्रेजी प्रभाव इनकी रचनाओ मे स्पष्ट नही है। फिर भी इतना तो स्वीकार करना ही पडेगा, कि अंग्रेजी प्रभाव की सशक्त धारा ने इन्हे भी आन्दोलित किया है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने अपनी काव्य रचनाओ मे, आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टि-कोण से, पहले कृष्ण लीला, और उसके बाद राम-चरित्र का नवीन सस्करण उपस्थित किया। उनके 'प्रिय प्रवास' (१९१४) के नायक कृष्ण, सूरदास एव मध्यकालीन अन्य

१—जयशकर प्रसाद 'प्रेम पथिक', पृ० २४-२५
२—वही, पृ० २६

भक्त कवियो के लीला पुरुषोत्तम नही, वरन् आधुनिक लोक-मगल की भावना से ओत-प्रोत महापुरुष है। कवि ने इसीलिए उनके जीवन के अनेक लोकोत्तर प्रसगो को बुद्धि-ग्राह्य बनाकर प्रस्तुत किया है। उपाध्याय जी की राधा भी इसी विचारधारा के अनुरूप, 'रति नागरी' एव 'विरह विदग्धा' नही, वरन् लोक-सेवा मे अपनी मनोव्यथा का उन्नयन करने वाली नारी हैं। उपाध्याय जी के प्रकृति के प्रति यथार्थवादी दृष्टि-कोण में भी, अंग्रेजी काव्य की कुछ प्रेरणा सम्भव है।

मैथिली शरण गुप्त ने भी, उपाध्याय जी की भान्ति, आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टि-कोण एव लोक-सग्रह के आदर्श को लेकर, पुरातन एव मध्यकालीन आख्यानो के पुनर्नवीकरण प्रस्तुत किये है। इस प्रक्रिया के लिए उन्होने, अंग्रेजी काव्य के सीधे सम्पर्क के स्थान पर, बगला के आधुनिक काव्य के माध्यम से उसका सस्पर्श ग्रहण किया है। बगला के आधुनिक कवियो मे माइकल मधुसूदन दत्त से ये विशेष प्रभावित हैं। इस कवि के अध्ययन से ही उन्होने, जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टि-कोण, पुरातन का नवीन रगो मे अनुरजित करके देखने की वृत्ति, प्रकृति के प्रति परिवर्तित दर्शन एव वर्णनात्मकता के प्रति विशेष रुचि ग्रहण की है। बगला के इस कवि की कृतियो में भी, 'मेघनाद वध' से गुप्त जी विशेष प्रभावित है उनके 'जयद्रथ-वध' (१६११) एव 'साकेत' (१६३२) पर इस महाकाव्य का पर्याप्त प्रभाव है। बगला का यह महाकाव्य, पश्चिम के कवियो होमर, दान्ते एव मिल्टन के विशेष प्रभाव से ओत-प्रोत है, और गुप्त जी ने इन प्रभावो को उसके माध्यम से आत्मसात किया है।

निष्कर्ष

हिन्दी कविता पर अंग्रेजी प्रभाव का जो अध्ययन हमने अभी किया है, उसमे यह स्पष्ट हो जाता है, कि इस प्रभाव ने हिन्दी कविता को रीति युग के मुगल शासन के अन्तिम दिनो के, राजाश्रित कवियो की प्रदर्शनात्मक एव अत्यधिक परिश्रम साध्य रचनाशैली से मुक्त किया था। हिन्दी कविता के विकास मे, अंग्रेजी प्रभाव का अपना योग, तीन रूपो मे मिलता है एक, उसके फलस्वरूप उत्पन्न नवीन वातावरण ने हमारे जीवन दर्शन को अधिक यथार्थवादी, अधिक पार्थिव बना दिया, हिन्दी कविता उसके कारण इतिवृत्तात्मक हो गई एव उसका रचना विधान सहज हो गया, दूसरे, अंग्रेजी कवियो के सम्पर्क से, स्वदेशानुराग का विकास हुआ, पुरातन, विशेष रूप से, पूर्व के साहसपूर्ण दिनो के प्रति रुचि उत्पन्न हुई, प्रकृति के प्रति स्नेह-भाव जागा, और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियो को प्रोत्साहन मिला, तीसरे, लोकोत्तरता के स्थान पर लोक-सभव के प्रति आकर्षण बढा। अंग्रेजी प्रभाव का प्रथम सस्पर्श

भारतेन्दु जी एव उनके युग के अन्य कवियो को मिला, जिसकी प्रेरणा से उन्होंने अपने चारो ओर के वस्तुगत यथार्थ को वाणी देना प्रारम्भ किया। अग्रेजी कवियो के सम्पर्क का प्रभाव, श्रीधर पाठक की रचनाओ से आरम्भ हुआ। पाठक जी ने अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन मे, गोल्डस्मिथ की रचनाओ के अनुवाद प्रस्तुत किये, उसके अनन्तर टॉमसन के प्रकृति के प्रति दृष्टिकोण का प्रभाव आत्मसात किया, और अपने अन्तिम दिनो मे वायरन का भी कुछ प्रभाव अपनाया। लोचन प्रसाद पाडेय की कृतियो मे अग्रेजी कविता का प्रभाव कुछ और अभिवर्धित हुआ। प्रारम्भ मे उन्होंने 'मेवाड गाथा' मे, मेकाले की प्राचीन के यशोगान की पद्धति अपनायी, किन्तु आगे चलकर उनका विकास प्रकृति के कवि के रूप मे हुआ। पाडेय जी ने प्रकृति के प्रति अपने स्नेह-भाव को, गोल्डस्मिथ, टॉमसन एव वर्डस्वर्थ के अध्ययन से भी सम्पुष्ट किया। पाँडेय जी के 'प्रवासी' पर, पोप के नीतिपरक जीवन-दर्शन का भी कुछ प्रभाव है। प्रसाद जी की रचनाओ मे प्रारम्भ से ही स्वच्छन्दतावादी साहित्य-दर्शन का उपयोग मिलता है। उनकी काव्य रचनाओ पर अग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियो का भी कुछ सस्पर्श है उनकी अनेक प्रवृत्तियो को प्रसाद की कृतियो मे अभिव्यक्ति मिली है। अग्रेजी काव्य के सम्पक से हिन्दी मे कुछ काव्य विधाए —सम्बोधनगीत (ओड), चतुर्दशपदी (सॉनेट), अमित्राक्षर छन्द (ब्लेक वर्स), गीति-विधान (लिरिक), शोक काव्य (एलेजी), समाधि लेख (एपीटॅफ) आदि भी आई है। पश्चिम के बुद्धिवादी दृष्टिकोण ने भी हिन्दी कविता को प्रभावित किया है अयोध्या सिह उपाध्याय के 'प्रिय प्रवास', मे यह प्रभाव दृष्टव्य है उसमे कृष्ण की अवतारणा दैवी विभूति के रूप मे नही, वरन् लोक-मगल की भावना से समन्वित महामानव के रूप मे है।

अग्रेजी प्रभाव ने इस प्रकार काय करते हुए, अपने क्रमिक विकास मे, हिन्दी कविता के वाह्य स्वरूप एव अन्तर्धारा को पूणत. परिवर्तित कर दिया है। उसने हिन्दी कविता को वस्तुपरक एव उसके अभिव्यञ्जना विधान को सरल बना दिया है। इसके अनन्तर उसने आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति, एव अन्तर-जगत के उद्घाटन को प्रोत्साहन दिया, और स्वच्छन्दतावाद के पथ पर अग्रसर होने की रुचि जगायी। अग्रेजी काव्य के सम्पर्क के फलस्वरूप ही, हिन्दी कवियो मे प्रकृति के प्रति अनुराग की अभिवृद्धि हुई है, और उसे काव्य रचना क स्वतन्त्र विषय का स्थान मिला है। प्रकृति का जीवन पर विशिष्ट प्रभाव के रूप मे ग्रहण भी, अग्रेजी काव्य के सम्पर्क से ही सम्भव हुआ है। अग्रेजी के कवियो मे गोल्डस्मिथ, टॉमसन और वर्ड्सवर्थ ने हिन्दी कविता को विशेष प्रभावित किया है। पोप, मेकाले और वायरन की कुछ काव्य कृतियो की भी हिन्दी कविता पर स्पष्ट छाप है। कविता तो वस्तुत कवि की अपनी

भावना एवं कल्पना की भाषा है, इसलिए अंग्रेजी कवियों का हिन्दी कविता पर यह प्रभाव अनुकरणात्मक नहीं, वरन् अन्तर-ग्रहण के रूप में है, आत्मसात होकर आया है।

: ८ :

हिन्दी नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव

साहित्य के विकास-क्रम मे दृश्य-काव्य अर्थात् नाटको का प्रारम्भ श्रव्य या पाठ्य-काव्य के अनेक रूपो के बाद हुआ है। हिन्दी साहित्य मे तो श्रव्य-काव्य के पर्याप्त विकास के बाद ही नाटकीय रचनाए देखने को मिली। हिन्दी नाटको का प्रारम्भ तो वास्तव मे आधुनिक काल मे अग्रेजी प्रभाव के आगमन के बाद हुआ है। साहित्य मे, नाट्य-रूप के विकास मे, विलम्ब का सामान्य कारण तो सम्भवत नाट्य-कला का एक मिश्र कला होना रहा है . लेखक, अभिनेता, निर्देशक, चित्रकार, सगीतज्ञ और भी न जाने कितनो की प्रतिभा तथा कौशल के सयोग से नाटक प्रस्तुत किया जाता है। काव्य के अन्य रूपो की सृष्टि के लिए इस प्रकार के योग की आवश्यकता नहीं होती, इसीलिए तो उनका विकास पहले हुआ। परन्तु नाटकीय वृत्ति मनुष्य के चरित्र में अन्तर्निहित है, इसीलिए जब काव्य की सृष्टि हो गई, और उसमे कथा-तत्व का भी सूत्रपात हो गया, तो मनुष्य की नाट्य-वृत्ति भी अपनी अभिव्यक्ति के लिए मार्ग खोजने लगी। आदिम युग मे जब काव्य-रूप की सृष्टि हो रही थी, कविता व्यक्ति की नही, वरन् समुदाय की वस्तु थी। आदिम कविता का सृजन, अवकाश के क्षणो मे, महोत्सवों तथा इसी प्रकार के अवसरों पर, गाने के लिए हुआ था। इसीलिए जब उसमे कथा-तत्व का समावेश हुआ, तो मनुष्य की नाटकीय वृत्ति भी अभिव्यक्त होने का प्रयत्न

करने लगी, और फिर काव्य-रूप मे नाटक का विकास आरम्भ हो गया। इसीलिये इस साहित्यिक रूप की अधिकाश प्रारम्भिक कृतिया काव्य-रूप मे हैं। गद्य मे नाटकीय रचनाओ का विकास और वाद को हुआ।

यह विवेचना हमारे सामने कुछ स्वाभाविक से प्रश्न उपस्थित करती है हिन्दी साहित्य मे नाटको के प्रारम्भ मे एक विस्तृत काल, शताब्दियो का समय क्यो लग गया? अग्रेजी प्रभाव के पूर्व वास्तव मे नाटक कही जा सकने वाली रचनाओ का अभाव क्यो है? अग्रेजी प्रभाव मे कौन सी ऐसी शक्ति थी कि उसने इस साहित्यिक रूप के विकास को सम्भव बना दिया? तथा इसी प्रकार के कुछ और प्रश्न। हिन्दी नाटको पर अग्रेजी प्रभाव की व्याख्या करने के पहले इन प्रश्नो पर विचार करना आवश्यक है।

हिन्दी मे नाटकीय रचनाओ के विलम्ब से प्रारम्भ होने के सम्बन्ध मे हम पहले भी विचार कर चुके है, इसका सबसे प्रधान कारण हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ के काल मे हिन्दी-प्रदेश मे मुसलमानी राज्य का स्थापन कहा जाता है। यह सही है कि इस्लाम के प्रवर्तको ने नाट्य-कला को समाज के लिये हानिकर माना था, और उसे अपने धर्मावलम्बियो के लिए वर्जित कर दिया था,[1] इसीलिए तो अरबी तथा फारसी भाषाओ मे नाटक नही लिखे गये थ। किन्तु वास्तविकता यह है कि इस्लाम के प्रवेश के बहुत पूर्व जैन तथा बौद्ध धर्मो के नैतिक आदर्शो के प्रचार ने, भारतीय नाट्य परम्परा को शिथिल कर दिया था। राजपूत काल मे गृह-युद्धो का जो अविच्छिन्न क्रम चला, उसने इस रस अथवा आनन्दवादी साहित्यिक विधा के निर्माण को पूर्णत अवरुद्ध सा कर दिया था। इस्लामी राज्य की स्थापना से यह अवरोध और दृढ हो गया। मुगल शासको, अकबर (१५५६–१६०५), जहागीर (१६०५-१६२७) तथा शाहजहा (१६२७-१६५८) ने सगीत को विशेष प्रोत्साहन दिया, किन्तु नाटकीय रचनाओ के प्रति उनका दृष्टिकोण भी पहले जैसा ही बना रहा। उस युग मे राज दरबार ही साहित्य निर्माण के केन्द्र थे, जब देश के शासक ही नाट्य कला के विरुद्ध थे, तो उसका विकास किस प्रकार सम्भव होता।

किन्तु, उस युग का शासन चाहे कितना भी दृढ रहा हो, वह भारतीय जनता की

१—डॉ० सैयद अब्दुल लतीफ ने, अपने ग्रन्थ 'दि इन्फ्लुएस ऑफ इंगलिश लिटरेचर ऑन उर्दू लिटरेचर' (लदन विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० के लिए स्वीकृत प्रबन्ध) मे, अग्रेजी प्रभाव के पूर्व उर्दू साहित्य मे नाटको के अभाव पर विचार करते हुए, इस तथ्य का उल्लेख किया है। पृ० ९७–९८

नाटकीय प्रवृत्ति का पूर्णत: दमन नहीं कर सका। उसकी यह प्रवृत्ति राम-लीला राम-लीला आदि के रूप मे प्रकट होती रही, और यदा-कदा इन लीलाभिनयो को लिपि बद्ध करने का प्रयास भी किया जाता रहा। फिर भी, सस्कृत नाटको की महान परम्परा, शासको के विरोधी दृष्टिकोण के कारण तो बाधित हो ही गई। हिन्दी के साहित्यकार, उस समय, सस्कृत साहित्य की शास्त्रीय पद्धतियो का अनुसरण कर रहे थे, उन्होंने जनसाधारण एव भक्तो के इन सीधे सादे नाटकीय प्रदर्शनो की ओर विशेष रुचि नही प्रकट की। इसीलिए अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व ऐसी रचनाए नही के बराबर हैं, जिन्हें वास्तव में नाटक कहा जा सकता है, अथवा जिन मे भारतीय नाट्य शास्त्र के सूक्ष्म विधान का अनुसरण है।

सस्कृत साहित्य की नाटकीय परम्परा का हिन्दी मे अनुसरण नही किया जा सका, इसका एक कारण सस्कृत नाट्य-शास्त्र की जटिलता भी है। सस्कृत नाटक, अपने विकास-क्रम मे राजाश्रय ग्रहण करके, अत्यन्त सूक्ष्म शिल्प समन्वित तथा विद्वत्तापूर्ण हो गया था। मुसलमान शासको ने नाट्य-कला को अपना सरक्षण तो प्रदान किया नही, इसलिए राज-सभाओ मे आश्रय पाने वाले कवियो ने भी इस दिशा मे प्रयोग नही किये। सामान्य जनता के पास, साहित्य के इस रूप को प्रोत्साहित करने के लिए न तो अपेक्षित योग्यता ही थी, और न वह इसके विस्तृत रगमचीय प्रबन्ध की ही व्यवस्था कर सकती थी। इसीलिए जनसाधारण ने अपने नाटकीय प्रदर्शनो मे, सस्कृत नाटको की जटिल पद्धति का परित्याग कर, सरल विधियो का अनुसरण किया।

अब केवल एक ही प्रश्न पर विचार करना शेष रह गया है अंग्रेजी प्रभाव किस प्रकार हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप के विकास को प्रोत्साहन देने मे सफल हुआ? भारतवर्ष मे अंग्रेजो की विजय, शस्त्रो तथा कूटनीति के बल पर, केवल राजनीतिक विजय ही नही थी, वह एक सास्कृतिक विजय भी थी। आधुनिकता से अत्यन्त ओत-प्रोत एक राष्ट्र ने, एक ऐसे देश पर विजय प्राप्त की थी, जहा के लोग अभी तक मध्ययुग के वातावरण मे ही जीवन व्यतीत कर रहे थे। इसलिए इस सशक्त प्रभाव के प्रसार के साथ, जो कुछ मध्ययुगीन था, सभी तिरोहित होने लगा। अंग्रेजी प्रभाव ने पुनरुत्थान तथा नवजागरण के लिये जिस क्रम का सूत्रपात किया था, उसके फलस्वरूप पुरातन साहित्य तथा कला कृतियो के प्रति लोगो की रुचि बढ़ी, तथा नयी दिशाओ मे भी प्रयोग आरम्भ हुए। पुनरुत्थान की भावना ने तो, सस्कृत नाटको को फिर प्रकाश मे ला दिया। बहुत से सस्कृत नाटको का हिन्दी मे अनुवाद हुआ, और उनका प्रभाव भी हिन्दी नाटककारों ने ग्रहण किया। नवजागरण की भावना ने प्रयोगो को प्रोत्साहित किया, और इस दिशा मे अंग्रेजी प्रभाव ने, अंग्रेजी नाटको के माध्यम से

निश्चित योग प्रदान किया।

अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी नाटक

हिन्दी के हस्तलिखित ग्रथो के विभिन्न विवरणो मे, आगे लिखे ग्रथो का नाटको के रूप मे उल्लेख है • केशवदास कृत 'विज्ञान गीता', हृदयराम कृत 'करुणाभरण', हृदयराम पजाबी कृत 'हनुमन नाटक', यशवन्तसिंह कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय', नेवाज कवि कृत 'शकुन्तला', देवकृत 'देवमाया प्रपच', विश्वनाथ कृत 'आनन्द रघुनन्दन', मजु कृत 'रघुनाथ रूपक', कृष्ण शर्मा साधु कृत 'रामलीला विहार', ब्रजवासी दास कृत 'प्रबोध चन्द्रोदय' इत्यादि। इनमे से प्रथम तीन तो विक्रम सवत् की सत्रहवी शताब्दी, दूसरे तीन, अठारहवी शताब्दी, तथा शेष उन्नीसवी शताब्दी की रचनाए है।

इन रचनाओ के प्रथम अवलोकन से ही यह स्पष्ट हो जाता है कि ये केवल नाममात्र के लिए नाटक हैं, इसमे नाटकीय रचनाओ के सामान्य तत्वो - अक, दृश्य, वार्तालाप आदि का निर्वाह भी नही है। इनमे से प्रथम, केशवदास की 'विज्ञान गीता' को सम्भवत वार्तालाप रूप मे लिखित होने के कारण ही नाटक कह दिया गया है। सस्कृत नाटको की भाँति उसके प्रारम्भ मे कोई प्रस्तावना नही है, और फिर अक तथा दृश्यो के स्थान पर, उसका विभाजन प्रकाशो मे है। सम्पूर्ण ग्रन्थ मे इक्कीस प्रकाश हैं। कवि ने काम, रति, दम्भ, अहकार, राजा, रानी, चार्वाक, शान्ति, करुणा आदि की अवतारणा करके, उनकी बातचीत मे परम ज्ञान की व्याख्या कराई है। नेवाज कवि का 'शकुन्तलता', कालिदास के 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के आधार पर लिखित कथा-काव्य है, यद्यपि उसमे सर्गो के स्थान पर अको की व्यवस्था की गई है। विश्वनाथ कृत 'आनन्दरघुनन्दन' मे अवश्य नाटकीय तत्वो का निर्वाह है, किन्तु यह रचना भी सस्कृत नाटको की परम्परा मे न लिखी जाकर, रामलीला के प्रदर्शन के ढग मे लिखी गई है। शेष रचनाएँ भी इसी प्रकार की है।

मुगल शासन के अन्तिम दिनो की नाटकीय रचनाओ के देखने मे, यह स्पष्ट हो जाता है, कि मुसलमानो का शासन विशृखल होने के साथ-साथ, साहित्य के क्षेत्र मे नाटकीय रचनाओ को स्थान मिलने लगा था। इधर की खोजो के आधार पर कृष्ण-भक्त कवियो की कुछ बडी तथा छोटी नाटकीय रचनाएँ भी प्राप्त हुई है जिन मे लोक-नाटक से, साहित्यिक नाटक रूप ग्रहण करता हुआ प्रतीत होता है। इसलिए यदि अग्रेजी प्रभाव का आगमन न भी हुआ होता, तो भी हिन्दी नाटको का विकास सम्भव हो जाता। किन्तु वस्तु स्थिति के अनुसार, अग्रेजी प्रभाव ने अपने आगमन के बाद, और सस्कृत नाटको के प्रभाव को भी साथ लेकर, हिन्दी नाटको के विकास मे विशेष योग दिया है।

इस सम्बध मे एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख भी आवश्यक है मैथिली

साहित्य मे सस्कृत नाटको की परम्परा का निर्वाह हुआ है। मिथिला मे इस्लामी शासन के प्रवेश के पूर्व ही, विद्यापति तथा अन्य कवियो द्वारा, नाटक लिखे जा चुके थे। जब यह प्रदेश इस्लाम के प्रभाव मे आ गया, तो मैथिली साहित्यकारो ने, स्थानान्तरित होकर, अपनी नाट्यकला को बनाये रखा। किन्तु हिन्दी मे नाटको के विकास मे मैथिली भाषा की नाट्य-परम्परा का कोई योग नही है, इसीलिए उनकी विशेष चर्चा यहाँ अपेक्षित नही है।

अंग्रेजी प्रभाव की धाराएँ

हिन्दी नाटको पर अंग्रेजी प्रभाव चार प्रमुख धाराओ मे होकर आया है ( ) विभिन्न शिक्षा सस्थाओ के माध्यम एव स्वतन्त्र रूप से हिन्दी लेखको द्वारा अंग्रेजी नाटको का अध्ययन, (२) अंग्रेजी नाटको के हिन्दी रूपान्तर, (३) बगला नाटको के रूपान्तर, तथा (४) पारसी थियेटर कम्पनियो द्वारा शेक्सपिअर आदि के नाटको के हिन्दुस्तानी सस्करण।

हिन्दी-प्रदेश की विभिन्न शिक्षा सस्थाओ मे, लेखको के समयानुक्रम से, अंग्रेजी के अग्रलिखित नाटक पाठ्य-क्रम मे स्वीकृत रहे थे मार्लो कृत 'डॉक्टर फॉस्टस' तथा 'ऐलकेमिस्ट', शेक्सपिअर के लगभग सभी नाटक, बेन जॉनसन के 'एव्री मैन इन हिज ह्यूमर,' मिल्टन के 'कोमस' तथा 'सैम्सन एगोनिस्टिस', एडिसन का 'कैटो,' गोल्डस्मिथ का 'शी स्टूप्स टु काकर' तथा शेरिडन के 'दि राइवल्स' और 'दि स्कूल फॉर स्कैंडल'। इन रचनाओ मे मार्लो का 'डॉक्टर फॉस्टस' एक स्वच्छन्दतावादी दुखान्त नाटक है। शेक्सपिअर की रचनाएँ, प्राय नाटक की सभी कोटियो की—दुखान्तकी, सुखान्तकी, मिश्रान्तकी, ऐतिहासिक और प्रेमाख्यानात्मक हैं। शेक्सपियर ने अपने नाटको के रूप-विन्यास तथा विषय-वस्तु मे स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण अपनाया है, यद्यपि उसके कुछ नाटक ऐसे भी है, जिनमे उसने, शास्त्रीय पद्धति का अनुसरण किया है। मिल्टन का 'कोमस' एक विशिष्ट प्रकार की नाटकीय कृति है, जिसे पाश्चात्य साहित्य-शास्त्र मे मॉस्क कहा गया है। इस नाट्य-रूप मे सगीत, नृत्य तथा विशिष्ट रगमचीय प्रभावो का आयोजन होता है। मिल्टन की दूसरी कृति 'सैम्सन एगोनिस्टिस' शास्त्रीय पद्धति की एक दुखान्तकी रचना है। बेन जॉनसन की दोनो रचनाएँ हास्य-प्रधान सुखान्तकी है। एडिसन का 'कैटो' देशभक्ति की भावना से अनुप्राणित शास्त्रीय शैली का दुखान्तकी है। गोल्डस्मिथ और शेरिडन की रचनाएँ आचार-प्रधान सुखान्तकी की कोटि मे आती हैं।

अंग्रेजी की इन नाटकीय रचनाओ के विभिन्न प्रकारो को समझने के लिए, सबसे पहले, उन नाट्य-सिद्धान्तो को समझना आवश्यक है, जिनकी प्रेरणा से ये

लिखी गई थी। भारतीय नाट्य-शास्त्र रस को नाटक की मूल आत्मा मानता है, किन्तु पश्चिम मे अरस्तू ने 'कार्य' को, और आगे चल कर हीगेल ने 'सघर्ष' को नाटक का मूल तत्व कहा है। पश्चिम मे प्रारम्भ से ही, सिसेरो के इस कथन के आधार पर, कि 'नाटक जीवन की अनुकृति, व्यवहार का दर्पण तथा यथार्थ का प्रतिबिम्ब है', नाटकीय रचनाएँ, जीवन की वास्तविकता का प्रदर्शन रही है। भारतीय नाटककारो ने अब तक, जीवन के आदर्श स्वरूप के चित्रण की भावना को ग्रहण किया था, जिसमे जीवन जैसा है उसके स्थान पर, जैसा वह होना चाहिए, इस दृष्टिकोण को प्रश्रय दिया गया था। इसीलिए तो संस्कृत नाटको के विभिन्न प्रकारो का उद्देश्य केवल एक ही, लोकोत्तर आनन्द प्रदान करना है। पाश्चात्य नाटको के उद्देश्य अलग-अलग है मनोरजन, समाज सुधार की भावना को उत्पन्न करना, देशभक्ति जगाना इत्यादि।

पाश्चात्य नाटक के, इस मूल तत्व सघर्ष को लेकर ही, विभिन्न नाट्य भेदो की सृष्टि हुई है। दुखान्तकी मे सदा ही बाह्य शक्तियो, आतरिक वृत्तियो अथवा दोनो के बीच, सघर्ष चलता है, सुखान्तकी मे भी इसी प्रकार, विभिन्न व्यक्तियो अथवा स्त्री-पुरुषो के बीच, या व्यक्ति और समाज मे सघर्ष का चित्रण होता है। दुखान्तकी रचना मे इस सघर्ष से अरस्तु के अनुसार, आतंक और करुणा की भावनाएँ जगाकर विरेचन की प्रक्रिया सम्पन्न होनी चाहिए, और सुखान्तकी मे इसी प्रेरणा से, हास्य या विनोद की अवतारणा होनी चाहिए।[1]

अंग्रेजी नाटको मे यह सघर्ष का तत्व, तीन रूपो में देखने को मिलता है दो बाह्य शक्तियो के बीच, जैसे 'किग लियर' मे, बाह्य एवं आन्तरिक शक्तियो के बीच जैसे 'हैमलेट' मे, और दो आन्तरिक प्रवृत्तियो के बीच जैसे 'मैकबेथ' मे। 'किंग लिअर' मे पिता और उसकी दो पुत्रियो के बीच सघर्ष दिखाया गया है। 'हैमलेट' को अपने चचा से सघर्ष करना पड़ा था, जिसने उसके पिता का वध कर डाला था, उसकी माता को मोहाविष्ट कर लिया था, और राज-सिंहासन भी हथिया लिया था। इसके अतिरिक्त उसमे हम अन्तर्द्वन्द्व भी देखते है। मैकबेथ मे बुद्धि और मन के बीच द्वन्द्व का, अथवा केवल आन्तरिक सघर्ष का चित्रण है। कुछ विचारको ने तीन अन्य प्रकार के नाटकीय सघर्षो का प्रतिपादन किया है (१) दो व्यक्तियो अथवा दो बाह्य शक्तियो का सघर्ष, (२) एक व्यक्ति का समाज के साथ सघर्ष, तथा (३) एक ही व्यक्ति मे चलने वाला, अन्तर्द्वन्द्व जैसे आत्मबल और महत्वाकाक्षा के बीच का सघर्ष। पहले

१—एलरडाइस निकल 'दि थिअरी ऑफ ड्रामा', पृ० ९२

हमने जिन तीन नाटको के उदाहरण दिये है, सघर्ष के इन नये प्रकारो के लिए भी, अनुक्रम से उन्हें उपस्थित किया जा सकता है।

सघर्ष के इस सामान्य तत्व को लेकर अंग्रेजी साहित्य मे तीन नाट्य सिद्धान्तो का उपयोग मिलता है शास्त्रीय, स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थवादी। यथार्थवादी नाटको को पश्चिम मे, समस्या नाटक की सज्ञा दी गई है, क्योकि इनमे किसी न किसी सामाजिक समस्या पर विचार-विमर्ष होता है। शास्त्रीय सिद्धान्तो पर आधारित नाटको मे, मिल्टन के 'सैम्सन एगोनिस्टिस' तथा एडिसन के 'कैटो' के नाम लिये जा सकते हैं, जिनमे स्थान, समय और क्रिया के सकलनो का निर्वाह है। शेक्सपियर के नाटक स्वच्छन्दतावादी सिद्धान्त के सबसे सुन्दर उदाहरण हैं, उनमे शास्त्रीय सिद्धान्तो की अवहेलना देखने को मिलती है। यथार्थवादी नाटकीय दृष्टिकोण का उपयोग बेन जॉनसन, गोल्डस्मिथ तथा शेरिडन की रचनाओ मे किया गया है।

अंग्रेजी नाटको के अनुवाद

हिन्दी-प्रदेश की विभिन्न शिक्षा सस्थाओ के पाठ्य-क्रम मे स्वीकृत अंग्रेजी नाटको मे से कुछ हिन्दी मे रूपान्तरित भी हुए। हिन्दी मे अनुवादित होने वाला सर्व प्रथम अंग्रेजी नाटक, एडिसन का 'केटो' था, जिसे अलीगढ के एक वकील तथा 'भारतबन्धु' नामक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक श्री तोताराम जी ने सन् १८७८ मे रूपान्तरित किया था। यह शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद है, और उसका नाम 'केटो कृतान्त' रख दिया गया है। इस सज्ञा का अर्थ केटो का अन्त है, और इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि अनुवादक इस रचना के प्रति उसके दुखान्तकी होने के कारण ही आकर्षित हुआ था। अपने इस अनुवाद की भूमिका मे लेखक ने लिखा है कि उसने इस का रूपान्तर सस्कृत मे भी किया था, किन्तु उसकी कोई प्रति प्राप्त नही है।

इसके अनन्तर शेक्सपियर की नाटकीय रचनाएँ हिन्दी मे अनुवादित हुई। सर्व प्रथम मुंशी इमादाद अली ने 'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स' का रूपान्तर 'भ्रम जालक' (१८७९) प्रकाशित किया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी शेक्सपियर के एक नाटक 'दि मर्चेन्ट ऑफ वेनिस' का रूपान्तर 'दुर्लभ बधु' नाम से प्रस्तुत किया। इस अनुवाद का एक दृश्य उन्होंने अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र चन्द्रिका' मे भी प्रकाशित किया था। शेक्सपियर की रचनाओ का नियमित तथा व्यवस्थित रूप से रूपान्तर, लाला सीताराम ने सन् १८८५ मे प्रारम्भ किया, और सन् १९१५ तक उन्होंने, ग्यारह नाटको के अनुवाद उपस्थित किये। उन्होंने भी सर्व प्रथम शेक्सपियर के 'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स' का रूपातर 'भूल भुलैयाँ' प्रस्तुत किया। इसके बाद उन्होंने 'मच एडो एबाउट नथिंग' को 'मनमोहन का जाल', 'दि टेम्पेस्ट' को 'जगल मे मगल', 'रोमिओ एँड जूलियट'

को 'प्रेम पूर्णिमा', 'एज यू लाइक इट' को 'अपनी अपनी रुचि' संज्ञाएँ देकर प्रकाशित किया। 'हेमलेट', 'किंग लिअर', 'ओथेलो', 'जूलियस सीजर' तथा 'सिम्बेलीन' के अनुवाद, उन्होंने मूल संज्ञाओं में ही प्रकाशित किये। लाला जी के इन अनुवादों के अतिरिक्त शेक्सपियर के नाटकों के कुछ और रूपांतर भी प्रकाशित हुए पुरोहित, गोपीनाथ ने 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' को 'प्रेम लीला' (१८९९), 'एज यू लाइक इट' को 'मनभावन' (१९१६) के रूप में प्रस्तुत किया। 'ओथेलो' का एक हिन्दी रूपान्तर उसकी मूल संज्ञा में, गोविन्द प्रसाद घिल्डियाल ने १९१६ में प्रस्तुत किया। इन समस्त अनुवादों में लाला सीताराम के अनुवाद सर्वोत्तम हैं। उनमें रचना के मूल भाव को बनाये रखने का प्रयत्न किया गया है। लाला जी में काव्य प्रतिभा का अभाव था, और यही उनके अनुवादों की सबसे बड़ी कमी है।

अंग्रेजी से कुछ और नाटक भी हिन्दी में अनुवादित हुए थे, जैसे फ्रांस के प्रसिद्ध हास्य तथा व्यंगपूर्ण नाटककार मोलियर की रचनाएँ। सर्वप्रथम लल्ली प्रसाद ने मोलियर के एक नाटक का रूपान्तर 'ठोक पीट कर वैद्यराज' (१९१२) नाम से किया था। इसके बाद जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर के कई नाटकों के रूपान्तर किये—'मार मार कर हकीम', 'आंखों में धूल', 'हवाई डाक्टर' तथा 'नाक में दम'। ये सभी अनुवाद पहले 'इन्दु' मासिक पत्रिका में प्रकाशित हुये थे।

बंगला से अनुवाद

हिन्दी में बंगला से अनुवादित नाटकों की संख्या बहुत अधिक है, और उनके माध्यम से हिन्दी नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव भी विशेष रूप से आया है। भारतेन्दु की सबसे पहली नाटकीय रचना 'विद्यासुन्दर', बंगला की एक इसी नाम की यतीन्द्र मोहन ठाकुर की रचना से गृहीत है। इस रचना की बाहरी रूप-रेखा पर अंग्रेजी प्रभाव निश्चित रूप से स्वीकार किया जा सकता है। उसमें संस्कृत नाटकों के ढंग की प्रस्तावना नहीं है, और न भरत-वाक्य आदि की ही व्यवस्था है। किन्तु इस नाटक की प्रणय-गाथा और उसका स्वरूप-विधान संस्कृत नाटकों की पद्धति में है।

बंगला के प्रमुख नाटककार, जिनकी रचनाएँ हिन्दी में अनुवादित हुई, माइकल मधुसूदन दत्त द्विजेन्द्र लाल राय, रवीन्द्र नाथ ठाकुर तथा काशीप्रसाद विद्याविनोद हैं। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की एक नाटकीय रचना 'विधवा विवाह' तथा रामगोपाल विद्यान्त के 'रामाभिषेक' नाटक के भी हिन्दी रूपान्तर हुए थे। इनमें से प्रथम, जैसा कि उसके नाम से ही प्रकट है, समाज सुधार की भावना से लिखित रचना है, और दूसरी पश्चिम के दुखांतकी नाटकों की शैली में है। माइकल मधुसूदन दत्त की तीन नाटकीय रचनाएं हिन्दी में अनुवादित हुई, 'कृष्णाकुमारी' (१८८८) पद्मावती'

(१८८८)तथा 'वीरनारी' (१८८६)। इन तीनो रचनाओ मे पश्चिम की शास्त्रीय तथा स्वच्छन्दतावादी शैलियो का अपूर्व सयोग है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की नाटकीय रचनाओ मे सर्वप्रथम 'चित्रागदा' का हिन्दी रूपान्तर देखने को मिला। गोपाल राम गहमरी ने, इस काव्य-रूपक को, पद्य मे ही रूपान्तरित किया था। काव्य प्रतिभा के अभाव के कारण, उनका यह अनुवाद विशेष सफल नही रहा था। बगला से अनुवादित होने वाले नाटको मे सबसे अधिक सख्या द्विजेन्द्रलाल राय की रचनाओ की है।

द्विजेन्द्र लाल राय के नाटको के हिन्दी रूपातर का कार्य सन् १६१६ मे नाथूराम प्रेमी ने प्रारम्भ किया था, और सन् १६२० तक उन्होने उनके तेरह नाटको का अनुवाद कर डाला था। रायबाबू की रचनाए लगभग सभी नाट्य-रूपो मे हैं कुछ ऐतिहासिक नाटक है, कुछ पौराणिक आख्यानो को लेकर लिखी गई हैं, कुछ प्रहसन हैं, और कुछ सामाजिक समस्याओ पर आधारित है। समयानुक्रम से उनके हिन्दी मे अनुवादित नाटक है 'दुर्गादास'(१६१६), 'मेवाड पतन' (१६१३), 'शाहजहा' (१६१७), 'नूरजहा' (१६१८), 'तारावाई' (१६१८), 'भीष्म (१६१८), 'चन्द्रगुप्त' (१६१८), 'सीता' (१६१८), 'मूर्ख मडली' (१६१८), 'भारत रमणी' (१६१६), 'पाषाणी (१६२०), तथा 'सिहल विजय' (१६२०)। इन रचनाओ मे शेक्सपियर की स्वच्छन्दतावादी नाट्य शैली का अनुसरण है, तथा कथोपकथनो पर स्वच्छन्दतावाद के पुनर्जागरण के कवियो—वर्डस्वर्थ, शेली आदि का भी कुछ प्रभाव है। सस्कृत नाटको की शास्त्रीय पद्धति की, इनमे पूर्णत उपेक्षा की गयी है। क्षीरोद प्रसाद के भी दो नाटक 'खाजहा' और 'चादबीबी' अनुवादित हुए थे। ये दोनो रचनाए भी द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटको की शैली मे है, किन्तु इनमे ऐतिहासिक सत्य के निर्वाह का अधिक प्रयत्न किया गया है।

बगला से अनुवादित इन नाटकीय रचनाओ ने, हिन्दी नाटकों के विकास मे, कई प्रकार से योग दिया है। सबसे पहले एक पडोसी भाषा की नाटकीय रचनाओ के विकास को देखकर हिन्दी लेखको को इस दिशा मे प्रयत्न करने के लिए प्रेरणा मिली। बगला भाषा मे नाटको के विकास को विशेष प्रोत्साहन, अग्रेजी प्रभाव से प्राप्त हुआ था, इसलिये प्रकारान्तर से हिन्दी नाटको का विकास भी इस प्रभाव से प्रोत्साहित स्वीकार किया जा सकता है। बगला रगमच की स्थापना तथा विकास मे, अग्रेजी प्रभाव का विशेष योग रहा था, और बगला भाषा से अनुवादित एक नाटक मे यह उल्लेख है, कि हिन्दी-प्रदेश मे, हिन्दी रगमच की स्थापना का प्रयत्न, बगाल से आकर यहाँ बस गये लोगो ने भी किया था। अग्रेजी साहित्य के विभिन्न नाट्य भेदो का परिचय प्राप्त कर के, तथा बगला साहित्य के सम्पर्क से यह जानकर कि भारतीय

साहित्य मे उन्हे ग्रहण किया जा सकता है, बगला से अनुवादित इन नाटकों ने, हिन्दी नाटको के लिए, अंग्रेजी प्रभाव के ग्रहण का कार्य और सुगम बना दिया।

पारसी रगमच

हिन्दी-प्रदेश मे नाटकीय प्रदर्शनो के प्रति रुचि उत्पन्न करने का कार्य पारसी थियेटर कम्पनियो के नाटको द्वारा सम्पन्न हुआ। इन कम्पनियो की स्थापना सर्व प्रथम बम्बई मे हुई थी, और इनके द्वारा विभिन्न भारतीय भाषाओ मे शेक्सपियर की, तथा अंग्रेजी और अन्य यूरोपीय भाषाओ की नाटकीय रचनाओ के प्रदर्शन प्रस्तुत किये जाते थे। ये नाटक कम्पनियाँ, देश के विभिन्न भागो मे घूमती रहती थी, और जिस प्रदेश मे पहुचती था, उसी की भाषा मे अपने नाटक प्रस्तुत करती थी। इसी प्रकार घूमती फिरती कुछ नाटक कम्पनियाँ, हिन्दी-प्रदेश मे भी आई थी, और उन्होने हिन्दुस्तानी या उर्दू मे, क्योंकि उसे ही उन दिनो इस क्षेत्र की सामान्य भाषा समझा जाता था, बहुत से नाटक प्रस्तुत किये थे। इन नाट्य प्रदर्शनो की भाषा कुछ भी रही हो, इतना निश्चित रूप से स्वीकार किया जा सकता है, कि इनके द्वारा हिन्दी नाटको के विकास को विशेष प्रेरणा तथा प्रोत्साहन मिला।

हिन्दुस्तानी भाषा मे नाटकीय रचनाएँ प्रस्तुत करने वाली पारसी थियेटर कम्पनियो मे, 'पारसी एलफ्रेड ड्रामेटिक कम्पनी', 'बाम्बे पारसी कम्पनी', 'इम्प्रेस थिएट्रिकल कम्पनी', 'न्यू पारसी विक्टोरिया कम्पनी' इत्यादि के नाम लिये जा सकते हैं। इन कम्पनियो द्वारा पाश्चात्य साहित्य मे प्रचलित लगभग सभी प्रकार के नाट्य-रूप अभिनीत हुए। शेक्सपियर के नाटक तो इन थियेटर कम्पनियो को विशेष पसद थे, इसीलिए उसके तो लगभग सभी नाटको को इन्होने अपने रगमच पर ग्रहण किया था। पारसी रगमच पर गृहीत[1] शेक्सपियर के सुखांत नाटक हैं 'मुरादे शक' ('दि विंटर्स टेल', १८९५), जुल्मे नाहक' ('सिम्बेलीन', १८९५), 'दिल फरोश' ('दि मर्चेंट ऑफ वेनिस,' १९००), 'हुस्नारा' ('दि मेजर फॉर मेजर', १९००), 'भूल भुलैया' ('ट्वेल्फ्थ नाईट', १९०५) तथा 'गोरख धन्धा' ('ए कॉमेडी ऑफ एरर्स', १९१२)। 'सिम्बेलीन' तथा 'दि मेजर फॉर मेजर' के एक-एक रूपान्तर और हुए थे, जिनकी सज्ञाए थी, 'मीठा जहर' तथा 'शहीदे नाज'। इन गृहीत रूपो मे 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' का रूपातर सबसे अधिक सफल कहा जाता है।[1] इन गृहीत रूपो का मूल्याकन करते हुए यह कहा गया है, कि अनुवाद कर्त्ता ने अत्यधिक स्वच्छन्दता से कार्य किया है। उसे अंग्रेजी का ज्ञान तो नही के बराबर था। कही से उसने शेक्सपियर के नाटको की कहानिया सुन ली थी, या अपनी ही भाषा मे उन्हे

१—आर० के० याज्ञिक 'दि इडियन थियेटर', पृ० १५०

पढ कर, उनके कुछ प्रसगो को लेकर, अपनी ओर से नाटक लिख डाले थे। शेक्सपियर के विभिन्न पात्रो के चरित्रो की सूक्ष्म प्रवृत्तियाँ, इन नाटको मे बिल्कुल ही नही आने पाई है, सुखान्त नाटको को ग्रहण करते हुए जिनमे स्वय ही हास्य के प्रसग होते है, अलग से भी प्रहसन जोड दिये गये है। इन बेढगे रूपातरो का किसी सिद्धान्त के आधार पर अध्ययन सम्भव ही नही है।[1]

शेक्सपियर के दुखान्तकी नाटको मे सबसे पहले 'रोमिओ ऐंड जूलियट' को 'बज्मे फानी' (१८९०) के रूप मे, पारसी रगमच पर ग्रहण किया गया। इसके अनन्तर गृहीत दुखान्त नाटक, 'खूने नाहक' ('हेमलेट', १८९८) 'शहीदे वफा' ('ओथेलो,' १८९८), 'जनूने वफा' ('टाइटस एड्रोनियस' १९००), 'हार जीत' ('किंग लियर', १९०२) तथा 'काली नागिन' ('एन्टोनी ऐन्ड क्लेओपेट्रा', १९०६) थे। इनमे से 'ओथेलो' और 'एन्टोनी ऐंड क्लेओपेट्रा' के एक एक रूपान्तर और हुए थे 'सफेद खून', तथा 'जान मुरीद'। 'रिचर्ड थर्ड' तथा 'किंग जॉन', दोनो के कथानको से थोडा थोडा लेकर, एक और नाटक पारसी रगमच पर प्रस्तुत किया गया था, 'सैदे हवस'। शेक्सपियर के दुखान्तकी नाटको के ये सभी गृहीत रूप श्रमफल है, और यह इसलिये है, क्योकि ग्रहण-कर्त्ताओ ने शेक्सपीयर की शैली की सभी विशेषताओ का परित्याग कर दिया है। सवादो का सौन्दर्य तो पूर्णत विनष्ट हो गया है। ग्रहणकर्त्ता न तो जीवन के व्यापक स्वरूप को देख पाये है, और न महान् चरित्रो मे विरोधी प्रवृत्तिया तथा अन्तर्द्वन्द्व। चरित्र-चित्रण मे उनका प्रयत्न, सश्लिष्ट पात्रो की सृष्टि के स्थान पर, वर्गीकृत चरित्रो के निर्माण की ओर रहा है।[2] प्रत्येक नाटक मे जो कई कई भयकर रोमाचकारी दृश्यो की अवतारणा कर दी गई है, वे आतकित करने के स्थान पर हसाते हैं।[3] इसीलिये इन रचनाओ का साहित्यिक मूल्य विशेष नही है।

शेक्सपियर की इन रचनाओ के अतिरिक्त पारसी रगमच पर कुछ अग्रेजो तथा अन्य यूरोपीय भाषाओ के नाटक भी प्रस्तुत किये गये थे। फ्रास के प्रसिद्ध हास्य तथा व्यग्य पूर्ण नाटककार मोलियर की रचनाएँ भी पारसी कम्पनियो द्वारा विशेष रूप से ग्रहण की गईं।[4] किन्तु न जाने क्यो, हिन्दुस्तानी भाषा के रगमच पर उन्हे स्थान नही मिला। हिन्दुस्तानी भाषा के नाटककारो ने तो रेनाल्ड् के सस्ती वृत्ति के उपन्यासो से सबसे अधिक सामग्री ग्रहण की। उसमें उन्हे ऐसे रोमाचकारी कथानक प्राप्त हुए

१—आर० के० याज्ञिक 'दि इडियन थियेटर', पृ० १५०-५१
२—वही, पृ० १८१
३—वही, पृ० १८१
४—वही, पृ० १८५

जिनमे कामुकता, हत्या, अस्वाभाविक अपराध, रहस्य, षडयंत्र आदि का प्राधान्य था। प्रेक्षकों की निम्न-वृत्तियो के पोषण के लिए, लेखक इधर उधर से भी प्रसग जोड दिया करते थे।[1] इसी प्रकार इन लेखको ने, हचिन्सन की 'हिस्ट्री आफ आल नेशन्स' से कई रोमाचकारी प्रसगो को लेकर, नाटक लिख डाले थे।[2] सोहराब- रुस्तम तथा 'एनक आडन' की कथाओं ने भी पारसी रगमच पर स्थान पाया था।[3]

शेक्सपियर के अतिरिक्त अंग्रेजी के अन्य नाटककारो की रचनाएँ भी, जो पारसी रगमच पर अपनाई गई, सभी नाट्य-रूपो के अन्तर्गत आती है। सुखान्तकी नाटको मे डब्लू०टी० मानरीव की 'दि ज्युएस' के दो रूपान्तर हुए थे 'करिश्मए कुदरत उर्फ अपनी या परायी' तथा 'यहूदी की लडकी'।[4] लॉर्ड लिटन की 'दि लेडी ऑफ लियॉन्स' का रूपान्तर 'धूपछाँव' किया गया, तथा एच०ए० जोन्स के 'दि सिलवर किंग' का रूपान्तर मूल नाम से ही हुआ था। दुखान्तकी नाटको मे ब्यूमॉन्ट और फ्लेचर की एक रचना का अनुवाद 'जंजीरे गौहर', मेसिन्जर और डेकर के 'दि वरजिन मार्टयर' का 'हूरे अब्र' तथा शेरिडन के 'पिनेरो' का 'असीरे हिर्स' किया गया था। फ्रास के प्रसिद्ध उपन्यासकार एलेकजेण्डर डयूमा की एक रचना 'दि टॉवर ऑफ नास्ल' को भी पारसी-रगमच पर 'खूने जिगर' सज्ञा देकर ग्रहण किया गया था। इन रचनाओ को, ग्रहण-कर्ताओं ने अपनी ओर से सुखान्त बना दिया है, जो बडा अस्वाभाविक लगता है। कामुकता, हत्या, रहस्य, अपराध आदि के तत्वों को पूर्णत बना रहने दिया है। इन रचनाओ को देखकर ऐसा लगता है कि पारसी रगमच के नाटककारो ने हत्या, प्रतिशोध, तथा भयानकता को ही दुखान्तकी नाटको के मूल तत्व समझ रखा था, और इसलिए उन्होने ऊहात्मक शैली मे एक के बाद दूसरे भयोत्पादक दृश्यो की अवतारणा की है।[5]

पारसी रगमच के इन नाटको का हिन्दी नाटको के विकास मे विशेष योग रहा है। इनसे प्रेरणा लेकर हिन्दी मे नाटको का विकास प्रारम्भ हुआ। पाश्चात्य नाटको मे मूल तत्व सघर्ष का परिचय, हिन्दी लेखकों को इन पारसी नाटको मे उसके ग्रहण से भी हुआ था। किन्तु ये नाटक साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त निम्नकोटि के थे,

---

१—आर०के० याज्ञिक 'दि इण्डियन थियेटर', पृ० १८५

२—वही, पृ० १८४

३—वही, पृ० १८४

४—वही, पृ० २१५-१६

५—वही, पृ० २१६

इसलिए उन्होने हिन्दी रंगमंच के विकास को बाधित भी किया। इन नाटको मे जीवन का जिस हल्केपन के साथ चित्रण किया गया है, उसकी प्रतिक्रिया को लेकर भी कुछ लेखको ने हिन्दी मे अच्छे नाटक लिखे।

हिन्दी नाटको पर अंग्रेजी प्रभाव ने, जिन धाराओ मे होकर कार्य किया है उन्हे देखने के अनन्तर, अब अलग अलग नाटककारो पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना की जा सकती है। यह प्रभाव नाट्य-रूप, विषय-वस्तु तथा रचना-शैली तीनो पर ही देखा जा सकता है। सबसे पहले हम भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की नाटकीय रचनाओ को लेते हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

हिंदी नाटको पर अंग्रेजी प्रभाव का प्रारम्भ, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ से होता है। भारतेन्दु जी ने सस्कृत नाट्य शास्त्र तथा पश्चिम के नाट्य-सिद्धान्तो का अच्छा अध्ययन किया था। अपने 'नाटक' शीर्षक विस्तृत निबन्ध मे उन्होने, भारत तथा पश्चिम के नाट्य सिद्धातो की विवेचना की है, और उसके बाद दोनो के नाटको का इतिहास दिया है। इस सम्बन्ध मे उनकी सन् १८६५ की बंगाल यात्रा विशेष महत्व-पूर्ण है। इस यात्रा मे ही उन्होने अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा से बंगला नाटक के विकासोन्मुख रूप से परिचय प्राप्त किया था।[१] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का पहला नाटक 'विद्यासुन्दर', एक बंगला नाटक का ग्रहण है, इसलिये यह कहा जा सकता है, कि उन्हे बंगला नाटको के सम्पर्क से ही, हिन्दी मे नाटक लिखने की प्रेरणा मिली थी।

इस प्रकार, बंगला साहित्य के माध्यम से, प्रकारान्तर से, अंग्रेजी प्रभाव ग्रहण करने के साथ-साथ, अंग्रेजी साहित्य के सीधे सम्पर्क से भी, उन्होने कुछ प्रभाव ग्रहण किया था। अपने एक मित्र बालेश्वर प्रसाद के अनुरोध से उन्होने, शेक्सपीयर के 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' का रूपान्तर 'दुर्लभ बन्धु' (१८८०) किया था। उनके इन मित्र ने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे बी० ए० किया था, इसलिए वे सम्भवत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अंग्रेजी नाटको के अध्ययन मे सहायक भी रहे होगे। यह शब्द-प्रति-शब्द अनुवाद है, किन्तु स्थान और व्यक्तियो के नाम का, पाठको की दृष्टि से, भारतीय-करण कर दिया गया है। इसी प्रकार एन्टोनियो, सलरिनो तथा मोलेरिनो, अनन्त, सरल और सलोने हो गये हैं, पोर्शिया और नेरिस्सा, पुरश्री और नरश्री हो गई है, तथा वेनिस, वंशनगर हो गया है। इस परिवर्तन के होते हुये भी, इस अनुवाद मे मूल नाटक की भावना सुरक्षित रही है।

१--श्यामसुन्दर दास 'भारतेन्दु नाटकावली', प्रस्तावना, पृ० १८

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की प्रथम नाटकीय रचना, 'विद्यासुन्दर' के वाह्य-रूप से ही यह प्रकट हो जाता है, कि लेखक ने अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करना प्रारम्भ कर दिया है। इस रचना के प्रारम्भ में, संस्कृत नाटको के ढंग की कोई प्रस्तावना नही है, और अंको तथा दृश्यो के लिए, केवल अंको और गर्भांको की व्यवस्था है। विष्कम्भक, प्रवेशक आदि सब छोड दिये गये है। इस नाटक मे केवल तीन अंक और दस दृश्य है, फिर भी इसे नाटक कहा गया है। यदि संस्कृत नाट्य-शास्त्र का अनुसरण किया गया होता तो नाटक संज्ञा प्राप्त करने के लिए, इसमे पाँच या अधिक अंको की अवतारणा की गई होती। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंग्रेजी नाटक के वाह्य-रूप को, निरन्तर परिवर्तित होने वाले दृश्यो के रूप मे समझा था, जिसमे एक एक अंक मे कई-कई दृश्यो की व्यवस्था होती है।[1] अपने इस नाटक मे उन्होंने इसी पद्धति को ग्रहण किया है। नाटक की समाप्ति पर कोई भरत-वाक्य भी नही है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अन्य नाटक, जिनमे अंग्रेजी नाटको की वाहरी रूप-रेखा को ग्रहण किया गया है, 'भारत जननी' (१८७७) तथा 'नील देवी' (१८८१) है। इनमे से पहली रचना को उन्होंने 'ऑपरा' कहा है और दूसरी को 'गीति-रूपक', यद्यपि काव्य और संगीत की प्रधानता के कारण दोनो ही ऑपरा है, गीति-रूपक तो उसी की हिन्दी संज्ञा मात्र है। 'भारत जननी' के प्रारम्भ मे लेखक, संस्कृत नाटको के सूत्रधार को नही छोड सका है, किन्तु इसने जो कुछ कहा है उसमे अंग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न नवीन भावना अभिव्यक्त हुई है। उसने कहा है

> "जगत पिता जग जीवन जागो मंगल मुख दरसाओ।
> तुव सोये सवही मनु सोये तिन कहं जागि जगाओ॥
> अव विनु जागे काज सरत नहिं आलस दूरि वहाओ।
> हे भारत भुवनाथ भूमि निज वूडत आनि वचाओ॥

भारत भूमि और भारत सन्तान की दुर्दशा दिखानी ही इस 'भारत जननी' की इतिकर्तव्यता है और आज जो यह आर्य वंश का समाज यह खेल देखने को प्रस्तुत है, उसमे से एक मनुष्य भी यदि इस भारत भूमि को सुधारने मे एक दिन भी यत्न करे तो हमारा परिश्रम सफल है।"[2]

संस्कृत नाटको के प्रभाव मे लिखी गई रचना मे इस प्रकार की भावधारा का मिलना असम्भव था। दूसरे नाटक 'नीलदेवी' मे सूत्रधार की भी अवतारणा नही है। उसमे

१—श्यामसुन्दर दास 'भारतेन्दु नाटकावली,' परिशिष्ट, पृ० ७९५

२—व्रजरत्न दास 'भारतेन्दु नाटकावली, द्वितीय भाग, 'भारत जननी' पृ० २२७

प्रारम्भ मे तीन अप्सराएं प्रस्तुत की गई हैं, जो रानी की यश-गाथा गाती हैं। इस प्रकार का प्रारम्भ पारसी रंगमच के किसी नाटक से गृहीत प्रतीत होता है। भारतेन्दु जी का एक और नाटक 'सती प्रताप' जो अपूर्ण है, इन्ही रचनाओ की शैली मे ऑपरा के रूप मे है इस रचना मे भी काव्य एव सगीत की प्रधानता है, और इसे भी लेखक ने गीति-रूपक कहा है।

भारतेन्दु जी की कुछ और नाटकीय रचनाओ का वाह्य-रूप अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है। 'भारत दुर्दशा' के प्रारम्भ मे भी, यद्यपि लेखक ने उसे नाट्य-रासक या लास्य-रूपक कहा है, सस्कृत नाटको के ढग की प्रस्तावना नही है। नाटक का प्रारम्भ दो पक्तियो के मगलाचरण से हुआ है और उसके बाद एक योगी अथवा सन्यासी ने कुछ पक्तिया गाई है, जिनमे देश-भक्ति की भावना अभिव्यक्त हुई है। इस प्रकार का प्रारम्भ भी सम्भवत लेखक ने किसी पारसी या बगला नाटक से लिया है। इस नाटक मे गर्भांक नही है, केवल दृश्यो[1] की योजना है। अन्त मे भरत-वाक्य भी नही है। 'अधेर नगरी' के प्रारम्भ मे भी कोई प्रस्तावना नही है और न मगलाचरण ही है। इस नाटक का प्रारम्भ सीधे मुख्य पात्रो के प्रवेश से होता है और अत मे भरत-वाक्य की भी कोई व्यवस्था नही है।

भारतेन्दु जी ने अपने 'नाटक' शीर्षक निवन्ध मे, नये नाटको के उद्देश्य के सबध मे विवेचना करते हुए, समाज-सस्कार तथा देशवत्सलता की भावनाओ का उल्लेख किया है।[2] हिन्दी नाटककारो के लिए ये नये विषय थे, और इनके लिए सामग्री भी नई ही अपेक्षित थी। समाज-सस्कार के विषय को अपनाने से, सामयिक सामाजिक जीवन से भी लेखक सामग्री लेने लगे। देशभक्ति की भावना भी, इतिहास के पृष्ठो तथा सामयिक जीवन दोनो से ही, अपनी अभिव्यक्ति के लिए सामग्री ग्रहण कर सकती थी। भारतेन्दु जी ने अपनी नाटकीय रचनाओ मे इन दोनो ही भावनाओ को अभिव्यक्त किया है।

समाज-सस्कार की भावना भारतेन्दु जी के दो नाटको में प्रकट हुई है, 'वैदिकी हिंसा, हिंसा न भवति' (१८७३) तथा 'अधेर नगरी' (१८८४) मे। इनमे से पहले मे उन्होने हिन्दुओ की मासाहार वृत्ति पर व्यग किया है, और दूसरे मे, सामन्तो के जीवन मे उत्पन्न ह्रासोन्मुख वृत्तियो पर प्रकाश डाला है। अपने अपूर्ण नाटक 'प्रेम योगिनी' के तीन अको मे, जो एक दूसरे मे पूर्णत असम्बन्धित हैं, उन्होने अपने नगर, काशी अथवा बनारस के जीवन की सामाजिक विकृतियो का उदघाटन

१ यह 'दृश्य' शब्द बगला नाटकों से ग्रहण किया गया है।

२—श्यामसुन्दर दास 'भारतेन्दु नाटकावली', परिशिष्ट, पृ० ७६७

किया है। इन तीनो रचनाओ म जीवन का यथार्थवादी दृष्टिकोण से चित्रण है, तथा इनमे समाज सुधार की भावना भी अभिव्यक्त हुई है। लेखक की यह कामना रही है कि ये सामाजिक विकृतिया किसी प्रकार भी दूर हो जाए।

भारतेन्दु जी ने उस भावना को कितना आत्मसात कर लिया था, यह 'नीलदेवी' के समर्पण की इन पक्तियो से भली प्रकार स्पष्ट हो जाता है

"जिस भाति अग्रेज स्त्रिया सावधान होती हैं, पढी लिखी होती है, घर का काम काज सभालती ह, अपने सन्तान गण को शिक्षा देती ह, अपना स्वत्व पहचानती है, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति समझती है, उसमे सहायता देती है और अपने समुन्नत जीवन को व्यर्थ गार्हस्थ्य और कलह मे नही खोती, उसी भाति हमारी गृह देवता भी वर्तमान हीनावस्था का उल्लघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करे यही लालसा है।"[1]

आगे उन्होने कहा है कि भारतीय नारी की प्रगति को सामाजिक परम्परा के अन्ध-विश्वासो ने बाधित कर रखा है। भारतीय नारी प्राचीन युग मे महान थी, और आज भी वह महान हो सकती है, यदि वह बीते हुए युगो की 'नीलदेवी' जैसी महान नारियो के पदचिह्नो पर चले।

देशभक्ति की भावना भारतेन्दु जी के तीन नाटको 'भारत जननी (१८७७) 'भारत दुदशा' (१८८०) तथा 'नील देवी' मे अभिव्यक्त हुई है। 'भारत जननी' मे प्रारम्भ मे भारत माता सोई हुई दिखाई गयी हे, उसके चारो ओर उसकी सन्ताने भी सोई हुई पडी है। इसके अनन्तर भारत सरस्वती, भारत दुर्गा, तथा भारत लक्ष्मी आती है और भारत के पुरातन वैभव पर आसू बहाकर चली जाती हे। भारत माता जागती है, और अपनी सन्तानो को भी जगाने का प्रयत्न करती है। वह उनसे सगठित होकर, प्रगति के पथ पर बढने के लिए कहती है। किन्तु सन्ताने अपनी असमर्थता प्रकट करती है। अन्त मे धर्म का प्रवेश होता है। वह भारत जननी मे आत्म विश्वास की भावना जगाता है। इस उद्बोधन से उसका आत्मबल सजग होता है। अपनी सतानो से भी वह धर्म धारण करके, सगठित होकर, प्रगति के पथ पर अग्रसर होने के लिए कहती है। दूसरे नाटक 'भारत दुर्दशा' मे लेखक ने भारतवर्ष के सामाजिक जीवन मे उत्पन्न विकृतियो के प्रति अपने हृदय की शोक-भावना को अभिव्यक्त किया है। अपने तीसरे नाटक 'नील देवी' मे लेखक ने, इस भावना को प्रकट किया है, कि यदि हमारे उद्धार की आशा नही है तो हमे आत्म-बलिदान कर देना चाहिए।

१—ब्रजरत्न दास 'भारतेन्दु नाटकावली', प्रथम भाग, पृ० ५०३-४

भारतेन्दु जी की नाटकीय रचनाओ के विषय निरूपण मे, अंग्रेजी प्रभाव, 'भारत दुर्दशा' तथा 'नील देवी' मे है। सस्कृत नाट्य-शास्त्र के अनुसार नाटक सुखान्त होना चाहिए, और इस उद्देश्य के निर्वाह के लिए कथा-वस्तु का विकास इस प्रकार का होना चाहिये कि नाटक की समाप्ति सुख अथवा आनन्द की भावना से हो। किन्तु भारतेन्दु जी के ये दोनो नाटक दु खान्तकी है 'भारत दुर्दशा' मे भारत भाग्य को भारत के भविष्य के प्रति निराश होकर अन्त मे आत्महत्या करते दिखाया गया है, और 'नील देवी' मे, जिसे उन्होने स्वय ही दु खान्त कहा है, परिस्थितियो की प्रेरणा से, नायक तथा नायिका दोनो की ही मृत्यु हो गयी है। पाश्चात्य नाट्य-सिद्धान्त के अनुसार ये दोनो ही वास्तविक दु खान्तकी रचनाएँ नही है, कारण, लेखक ने भय और करुणा की भावनाएँ तो जगाई है, किन्तु उनके भली प्रकार विरेचन का प्रयास नही किया है। भारतेन्दु जी वस्तुत उसी रचना को दु खान्तकी समझते थे, जिसमे प्रधान चरित्र या चरित्रो का निधन दिखा दिया जाय, और उनकी इसी धारणा के अनुसार उनकी ये दोनो रचनाए दु खान्तकी है।

भारतेन्दु जी के प्रतीकवादी नाटको 'भारत जननी' और 'भारत दुर्दशा' पर अगेजी प्रभाव एक और रूप मे भी है इन दोनो रचनाओ पर अग्रेजी साहित्य के प्रारम्भिक दिनो के आचाराकियो (Moralities) की भी छाया है। यह प्रभाव बगला नाटको के माध्यम से आया हुआ कहा जा सकता है भारतेन्दु जी की पहली प्रतीकवादी रचना एक बगला नाटक का ग्रहण है। बगला मे सर्व प्रथम सस्कृत के प्रतीकवादी नाटको एव अग्रेजी के आचाराकियो के प्रभाव को लेकर आधुनिक राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत नाटकीय रचनाए प्रस्तुत की गई थी। भारतेन्दु जी की 'भारत जननी' ऐसी ही एक रचना का ग्रहण है। 'भारत दुर्दशा' मे उन्होने इसी दिशा मे अपना एक मौलिक प्रयोग प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु जी के इस प्रतीकवादी नाटक पर मिल्टन के 'पॅरडाइज लॉस्ट' की भी हल्की सी छाया है। भारतेन्दु जी की पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे अग्रेजी के इस महाकाव्य के प्रारम्भिक अश से प्रेरित दो निबन्ध प्रकाशित हुए थे 'कलिराज की सभा' एव 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न'। भारतेन्दु जी की 'भारत दुदशा' के, जीवन के असद पक्ष को प्रकट करने वाले, सत्यनाश फौजदार, अ धकार आदि चरित्रो के परिचय एव सवादो मे, इन दोनो निबन्धो की छाया है। भारतेन्दु जी की 'चन्द्रावली नाटिका' वैसे तो भक्ति एव रीति कालो की मिली-जुली प्रवृत्तियो को लेकर लिखित है, किन्तु उसमे वनदेवी, वर्षा एव सध्या का मानवीकरण, शेक्सपीयर के 'दि मिड् समर नाइट्स ड्रीम' के अप्सराओ के जगत का स्मरण दिलाता है।

भारतेन्दु जी की नाटकीय रचनाओ पर अंग्रेजी प्रभाव की इस विवेचना के आधार पर यह कहा जा सकता है, कि उन पर यह प्रभाव बहुत निश्चित और स्पष्ट नही है। इस अस्पष्टता का कारण यह है, कि भारतेन्दु जी ने यह प्रभाव, अंग्रेजी साहित्य के सीधे सम्पर्क से बहुत अधिक न लेकर, बगला के माध्यम से ग्रहण किया था। इस प्रकार जो कुछ अंग्रेजी प्रभाव उनकी रचनाओ पर आया है, वह भारतीय रूप ग्रहण कर लेने के कारण बहुत प्रबल नही है, इसीलिये यह नही कहा जा सका है कि उनकी इस रचना पर अंग्रेजी के इस नाटक या लेखक का प्रभाव है। भारतेन्दु जी के नाटको पर जो कुछ अंग्रेजी प्रभाव है, वह अंग्रेजी के साहित्य-दर्शन एव अंग्रेजो के साथ आयी हुई नई विचारधारा का है, और वह भी अंग्रेजी साहित्य के सीधे सम्पर्क से उतना नही वरन् प्रकारान्तर से बगला के माध्यम से आया हुआ है।

श्रीनिवास दास

हिन्दी नाटको पर अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से श्रीनिवास दास की रचनाओ का विशेष महत्व है। श्रीनिवास दास जी (१८५७-८७) दिल्ली के अच्छे व्यापारी थ, किन्तु अपने व्यवसाय के बीच भी वे अपनी साहित्यिक प्रतिभा के लिए समय निकाल लेते थ। उन्होंने हिन्दी, उर्दू, फारसी, सस्कृत तथा अंग्रेजी भाषाओ एव उनके साहित्यो का, भली प्रकार अध्ययन किया था। उनके अंग्रेजी साहित्य के विस्तृत अध्ययन का परिचय उनके 'परीक्षा गुरु' (१८८२) उपन्यास की भूमिका से मिलता है। श्रीनिवास दास जी ने उसमे अंग्रेजी के उन अनेक लेखको एव रचनाओ का उल्लेख किया है, जिनसे उन्होने अपनी इस कृति के निर्माण मे सहायता ली है। उनके नाटको के पढने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि शेक्सपियर के नाटको का भी उन्होने अच्छा अध्ययन किया था।

श्रीनिवास दास जी के 'रणधीर और प्रेम मोहिनी' नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव सब से अधिक स्पष्ट है। शेक्सपियर के दुखान्तकी 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' से उसका कथानक बहुत कुछ मिलता जुलता है। रोमियो ऐण्ड जुलियट की कहानी है वरोना के दो प्रतिष्ठित एव प्रसिद्ध परिवारो मे परस्पर वैमनस्य है। उनमे से एक परिवार का एक नवयुवक, दूसरे परिवार की एक कुमारी के प्रति आकृष्ट हो जाता है। वह भी उसके प्रति अनुरक्त हो उठती है। किन्तु दोनो परिवारो की पारस्परिक शत्रुता के कारण, उनके इस प्रणय का अन्त अत्यधिक करुण, दोनो की मृत्यु मे, होता है। अपनी शत्रुता के इस भयकर परिणाम को देखकर दोनो परिवार अपना वैमनस्य समाप्त कर देते हैं। 'रणधीर और प्रेममोहिनी' की कथा भी बिलकुल यही है श्री निवास दास जी ने केवल वातावरण भारतीय कर दिया है, तथा और भी कुछ छोटे-मोटे परिवर्तन कर

दिये है । कथा का मूल-सूत्र, दो परिवारो का वैमनस्य, उनमे से एक के पुत्र का, दूसरे की पुत्रीसे प्रेम, उनका दु खमय अंत तथा फिर दोनो परिवारो मे मेल, यह सब समान है। अन्त मे दोनो की मूर्तियो का निर्माण भी कराया गया है। यह सादृश्य अकस्मात उत्पन्न नही हुआ, वरन् निश्चित रूप से शेक्सपियर की रचना विशेष के प्रभाव के कारण है।

श्री निवास दास जी के इस नाटक पर 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' का कुछ और भी प्रभाव है। प्रेममोहिनी का स्वप्न मे श्वेत हस देखने का प्रसग[1] 'रोमियो ऐण्ड जूलियट' की निम्नलिखित पक्तियो पर आधारित प्रतीत होता है

" 'Tis almost morning , I would have thee gone,
And get no further than a wanton's bird ,
Who let's it hop a little from her hand,
Like a poor prisoner in his twisted of gyves
And with a silk thread plucks it back again,
So loving—jealous of his liberty"[2]

श्रीनिवास दास जी ने इस भाव का प्रतीकवादी शैली मे प्रयोग किया है। प्रेममोहिनी स्वप्न मे एक हस देखती है। वह हस रणधीर का प्रतीक है, किन्तु आगे चलकर वह रणधीर को खो देगी इसलिए हस अदृश्य हो जाता है, और वह उसके लिए रोती रह जाती है।[3]

इस हिन्दी नाटक के तृतीय अंक का पचम दृश्य भी 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' के इसी अंक के, इसी दृश्य से, मिलता हुआ है। प्रात काल सन्निकट होने के कारण रोमिओ जूलियट से विदा लेना चाहता है, किन्तु वह किसी प्रकार उसे रोकना चाहती है, इसलिए कहती है .

"Will thou be gone ? It is not yet near day
It was the nightingale, and not the lark,
That pierced the fearful hollow of thine ear,
Nightly she sings on yon pomegranate tree,
Believe me, love, it was the nightingale "[4]

१—श्रीनिवास दास 'रणधीर और प्रेममोहिनी' पृ० ३४-३५

२—शेक्सपियर 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट', अंक दो, दृश्य दो, पक्तिया १७७-८२

३—श्रीनिवास दास 'रणधीर और प्रेममोहनी' पृ० ३४-३५

४—शेक्सपियर · 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट', अंक तीन, दृश्य पाच, प० १-५

प्रभात, वास्तव मे हो गया है, इसलिए रोमिओ समझाता हुआ कहता है

' "It was the lark the herald of the morn,
No nightingale, look, love, what invious streaks
Do lace the severing clouds in yonder east,
Night's candles are burnt out, and jocund day
Stands tiptoe on the misty mountain tops,
I must be gone and live or stay and die '[1]

जूलियट अब भी प्रभात होना स्वीकार नही करती है

"Yon light is not daylight, I know it ?
It is some meteor that the sun exhales,
To be, to thee, this night ι torch-bearer
And light thee on thy way to Mantua
Therefore stay yet, thou need'st not be gone "[2]

रणधीर भी जब प्रभात को सन्निकट देखकर,प्रेममोहिनी से विदा लेने लगता है, तो वह इसी प्रकार की उक्तियो से उसे रोकने का प्रयत्न करती है

"रणधीर [हे प्रिये देखो, सूर्योदय का समय हो गया, दीपक की ज्योति मद पड गई, हार के मोती शीतल हो गए, पक्षी चहचहाने लगे और कमल के चिकने चिकने पत्रो से ओस की बूद मोतियो की लडी के समान ढलकने लगी। अब तुम आज्ञा दो तो मैं भी जाकर स्नान करू।

प्रेममोहिनी ना प्राण प्यारे, अभी सूर्योदय का समय नही हुआ, आपके तेज से दीपक की ज्योति मन्द पड गई और,पुष्पो की शीतलता से मोती ठडे हो गए। पक्षी नही चहचहाते, रात्रि के कारण मीठे मीठे स्वरो से कोयल बोलती है। कमल के पत्रो पर ओस की बूद नही ढलकती, मेरे कपोलो पर आसू ढल आये हैं।"[3]

इस नाटक के अन्तिम दृश्य के, प्रथम अक मे मालती ने, रोमिओ के एक स्थान पर कहे हुए शब्दो की, आवृत्ति की है। जब जूलियट रोमिओ से कहती है, कि उसे सावधान रहना चाहिए, नही तो उसके परिवार के लाग उसका वध करवा देंगे, तो वह कहता है

A lack, there is more peril in thine eye
Than twenty of their swords"[4]

१—शेक्सपियर 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट' अक तीन, दृश्य पाच, प० १-५

२—वही, प १३-१६

३—श्रीनिवास दास 'रणधीर और प्रेममोहिनी' पृ० १००

४—शेक्सपियर 'रोमिओ ऐण्ड जूलियट', अक तीन, दृश्य पाच, प० ७१-७२

जब प्रेममोहिनी को देखते ही घायल रणधीर का देहान्त हो जाता है, तब मालती प्रेममोहिनी से कहती है

"राजकुमार के लिए वैरी के बाणो से तुम्हारे नेत्र अधिक पैने निकले"[१] यह रोमिओ के कथन का हिन्दी रूपान्तर मात्र है।

इतनी समानता को लेकर यह हिंदी नाटक, अंग्रेजी के नाटक की भांति, भाग्यचक्र और बाह्य- परिस्थितियो का दुखान्तकी है। पाश्चात्य नाट्य-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान निकल ने, अपने ग्रन्थ 'ब्रिटिश ड्रामा' मे शेक्सपियर की इस रचना की विवेचना करते हुए लिखा है

"The tragedy of 'Romeo and Juliet' might, after all have been a comedy Mercutio did not need to die, little lies between the two lovers and a healthy existence "[२]

इसी प्रकार, रणधीर के पिता के विलम्ब से पहुचने की क्या आवश्यकता थी, और यदि वे समय पर पहुँच गये होते तो दोनो प्रेमी जीवित रहकर सुखमय जीवन व्यतीत करते। किन्तु रोमिओ और जुलियट की भाँति भाग्यचक्र से ग्रस्त होकर इन दोनो प्रेमियो का अंत भी दुखमय हुआ है।

श्रीनिवास दास जी के इस नाटक पर शेक्सपियर का प्रभाव एक स्थान पर और मिलता है। प्रेममोहिनी के पिता से बातचीत करते हुए रणधीर कहता है

"जैसे आपके ऊंचे ऊंचे महलो पर सूर्य की धूप पडती है, वैसे ही हमारी गरीब की झोपडी मे भी सूर्य भगवान प्रकाश करते है। जैसे आपके कलशदार महलो पर घनघोर घटा जल बरसाती है, वैसे ही हमारी गरीब की झोपडी को भी अपार दया से सूखा नही रखती।"[३]

शेक्सपियर के एक नाटक 'दि विंटर्स टेल' मे पर्डिटा ने जो कुछ कहा है, यह उसी की प्रतिध्वनि है

"The self same sun that shines upon his court Hides not his visage from our cottage but, Looks on alike "[४]

जिन परिस्थितियो मे ये दोनो कथन प्रस्तुत किये गये हैं, वे भी बहुत मिलती जुलती हैं।

१—श्रीनिवास दास 'रणधीर और प्रेममोहिनी', पृ० १२८

२—एसरडाइस निकल 'ब्रिटिश ड्रामा', पृ० १७१

३—श्रीनिवास दास 'रणधीर और प्रेममोहिनी', पृ० ८०-८१

४—शेक्सपियर • 'दि विंटर्स टेल', अंक चार, दृश्य तीन, प० ४५५-५७

श्रीनिवास दास जी के एक अन्य नाटक 'सयोगिता स्वयवर' (१८८६) पर भी अंग्रेजी प्रभाव है। इस नाटक के प्रारम्भ में प्रस्तावना है, और अन्त मे भरत वाक्य। आरम्भ मे मगलाचरण सम्बन्धी भी कुछ पक्तिया हैं। इस प्रकार यह नाटक अपने बाह्य-रूप मे, तो पूर्णत भारतीय है, किन्तु इसमे प्रेम भावना का विकास जिस प्रकार दिखाया गया है, उस पर, अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है। इसके साथ-साथ इस नाटक के अन्तिम दो अको पर शेक्सपियर के 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' की स्पष्ट छाप है।

श्रीनिवास दास जी की इस रचना 'सयोगिता स्वयवर' पर शेक्सपियर के स्वच्छन्दतावादी नाटको का भी प्रभाव है। पृथ्वीराज को एक बार सयोगिता का रगमच पर आलिगन करते हुए दिखाया गया है।[1] इसी प्रकार एक दूसरे दृश्य मे सयोगिता पृथ्वीराज की गोद में लेटी हुई प्रदर्शित की गई है।[2] सस्कृत नाट्य-शास्त्र मे इस प्रकार के दृश्य वर्जित है, इसलिए लेखक ने काम-क्रीडा का यह चित्रण शेक्सपियर के नाटको से ग्रहण किया होगा। इस नाटक के एक पात्र द्वारा विवाह के सम्बन्ध मे प्रकट किये गए इस विचार मे भी अंग्रेजी प्रभाव द्रष्टव्य है -

"निसन्देह विवाह का विषय ऐसा कठिन है कि इसमे जन्म भर के लिए एक मनुष्य के प्रारब्ध के सग दूसरे की प्रारब्ध जोड दी जाती है, इस कारण कन्या की अनुमति विना सम्बन्ध करने से बडा अनर्थ हो जाता है।[3]

शेक्सपियर के 'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस' का प्रभाव सयोगिता स्वयवर के उत्तरार्ध मे है। सयोगिता, पोर्शिया की भाति पुरुष का वेश ग्रहण करके अपने प्रियतम की रक्षा करती है। इसी प्रकार, सयोगिता का पृथ्वीराज के साथ भागने का प्रसग, शाइलॉक की पुत्री जेसिका के अपने प्रेमी के साथ भागने के प्रसग के सदृश है। मुद्रिका का प्रसग भी लेखक ने शेक्सपियर के नाटक से ले लिया है, किन्तु उसे प्रस्तुत अपने ढग से किया है'।

श्रीनिवास दास जी ने दो और नाटक लिखे थे 'तप्ता सवरण' (१८७३) तथा 'प्रह्लाद चरित्र' (१८८८), किन्तु उन पर अंग्रेजी प्रभाव बिल्कुल ही नही है। अपने 'रणधीर और प्रेममोहिनी' नाटक मे अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करके श्रीनिवास दास जी ने, दुखान्तकी नाटक के स्वरूप को हिन्दी साहित्य मे स्पष्ट किया था। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत अपने नाटको मे उन्होने, सस्कृत नाट्य-शास्त्र के रस को छोडकर, पाश्चात्य नाटक के मूलाधार सघर्ष को अपनाया है। इसीलिए

१—श्रीनिवास दास 'सयोगिता स्वयवर', पृ० ५३
२—वही, पृ० ७७
३—वही, पृ० ६१-६२

उनकी कथावस्तु का विकास-क्रम—प्रारम्भ, प्रयत्न प्रात्याशा आदि अवस्थाओ मे नही, सघर्ष के आरम्भ, विकास एव उपसहार के विधान मे हुआ है।

केशव राम भट्ट

अंग्रेजी के सुखान्त नाटको, विशेष रूप से आचार-प्रधान सुखान्तकियो (Commedy of manners) ने भी, हिन्दी नाटक को प्रभावित किया है। केशवराम भट्ट ने हिन्दी मे दो आचार-प्रधान सुखान्तकी प्रस्तुत किये थे 'सज्जाद सुम्बुल' (१८७७) तथा 'शमशाद सौसन (१८८०)। किन्तु ये दोनो नाटक, बगला की दो नाटकीय रचनाओ 'शरत सरोजनी' तथा 'सुरेन्द्र विनोदिनी' पर आधारित है। इस प्रकार इनकी नवीन शैली सीधे अंग्रेजी से न ग्रहण की जाकर, प्रकारान्तर से बगला साहित्य से आई हुई कही जा सकती है।

अंग्रेजी साहित्य मे सुखान्तकी सज्ञा, उस नाटकीय रचना को दी गई है जिसमे सुख मे समाप्त होने वाले कथानक को, हलकी विनोद पूर्ण शैली मे प्रस्तुत किया जाता है।[१] आचार-प्रधान सुखान्तकी सज्ञा, सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्ध की नाटकीय रचनाओ को, जिनमे ईथरेज, विचरली काग्रीव आदि की कृतिया आती है, दी गई है। अठारहवी शताब्दी मे शेरिडन और गोल्डस्मिथ ने इस नाट्य परम्परा को पुनर्जीवित किया था। इन नाटककारो की रचनाओ मे चरित्रो की सामाजिक दुर्बलताओ का उद्घाटन किया गया है, कथावस्तु तथा परिस्थितियो का विनोदपूर्ण चित्रण नही है।[२] हिन्दी के इन दोनो नाटको मे इसी साहित्यिक शैली का अनुसरण किया गया है।

अंग्रेजी के सुखान्त नाटक की इस प्रवृत्ति को 'सज्जाद-सुम्बुल' मे, भारतीय तथा अंग्रेजी सभ्यता तथा सस्कृतियो के सघर्ष में अभिव्यक्त किया गया है। जीवन के जिस रूप का चित्रण इस नाटक में है, वह अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है। प्रथम पृष्ठ मे ही 'साइटिफिक एसोसियेशन' नाम की सस्था का उल्लेख है,[३] जिसमे 'मनुष्य बन्दर की सन्तान है', जैसे विषयो पर विचार-विमर्श होता है।[४] इस सस्था की एक बैठक मे, फ्रासीसी दार्शनिक ऑगस्त काम्ते का भी, वादविवाद के बीच, उल्लेख आया है।[५] इस नाटक के दो स्त्री चरित्र, सुम्बुल और गुलशन भी सुशिक्षित हैं। यह सब अंग्रेजी प्रभाव ही है, किन्तु अंग्रेजी विचारो और सस्कृति का प्रभाव है। नवयुग की इन नवीन भावनाओ के साथ भारतवर्ष के पुरातन विचारो और रूढियो का सघर्ष दिखाया गया

१—'दि कॉन्साइज ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी ऑफ इगलिश लिट्रेचर', पृ० ९९

२—वही, पृ० १००-१०१

३—केशवराम भट्ट 'सज्जाद सुम्बुल', पृ० १

४—वही, पृ० १

५—वही, पृ० ५९

है। नाटककार ने मध्यम मार्ग ग्रहण किया है। उसने दोनो के ही अतिवाद का मजाक उडाया है। वैज्ञानिक हेमचन्द्र, जो कि डार्विन के सिद्धान्त मनुष्य बन्दर की सन्तान है, का अनुयायी है, अपने इस विचार के पीछे पागल दिखाया गया है। जब कभी भी उसे किसी से बातचीत करने का अवसर मिलता है, वह घुमा फिराकर डार्विन के सिद्धान्त को ले आता है और यह लोगो को भला नही प्रतीत होता। कभी कभी तो लोग उसका मजाक बनाने के लिए उमसे यही प्रसग छेड देते है। वह बगाली है, इसलिए उनके हिन्दी उच्चारण से भी मनोरञ्जन होता है। हेमचन्द्र काफी पढा लिखा है, और आवश्यकता पडने पर तर्क-शास्त्र के सिद्धान्तो का भी उल्लेख कर सकता है।[1] किन्तु डार्विन के सिद्धान्त को अनावश्यक महत्व देकर, औरो को अपनी विचारधारा के प्रति अनुरक्त करने के स्थान पर, उनका मनोरजन मात्र करता है।

इस नाटक का एक और चरित्र, सज्जाद, अपनी गम्भीरता से लोगो को हसाता रहता है। एक बार वह 'साइटिफिक एसोसिएशन' की एक बैठक मे, एक निबन्ध पढता है, जिसका विषय है—सब बुराइयो की जड इश्क है। अपने इस निबन्ध मे यह कहकर, कि वैज्ञानिक पद्धति के अनुसरण से बिना विवाह के भी सन्तान होना सम्भव है, वह अच्छा मनोरजन करता है। आगे चलकर वह, उस समय फिर हमारी हसी का आलम्बन बनता है, जब वह स्वय अनग के बाण से घायल होता है और उसका मित्र अब्बास उसी निबन्ध को निकाल लाता है, तथा उसके कुछ विशिष्ट अश पढ कर सुनाता है। इसी प्रकार कुछ और चरित्रो की दुर्बलताओ का भी चित्रण करके उन्हे हँसी का पात्र बनाया गया है।

भारतीय तथा अंग्रेजी सभ्यता एव सस्कृतियो के सघर्ष का चित्रण करते हुए, लेखक ने मध्यम-मार्ग का अनुसरण किया है। पश्चिमी सस्कृति के अतिवाद पर लेखक ने कितना तीव्र व्यग्य किया है, यह तो देखा जा चुका, भारतीय सस्कृति के अतिवाद पर भी उसने तीव्र कशाघात किये हैं। मध्य युग की सामन्तवादी व्यवस्था ने नारी को पुरुष की काम वासना की तृप्ति का साधन मात्र समझा था। वह स्वय भी अपने को पुरुष की दासी समझने लगी थी।[2] इन विकृत विचारो के विरोध मे सुम्बुल का चरित्र प्रस्तुत किया गया है, वह सुशिक्षित है और सज्जाद जैसे उदात्त चरित्र के व्यक्ति की प्राण रक्षा करने की भी क्षमता रखती है। यदि वह न होती तो सज्जाद को अपने जीवन से हाथ धोना पडता। इस प्रसग की अवतारणा करके लेखक

१—केशवराम भट्ट 'सज्जाद सम्बुल', पृ० १२

२—केशवराम भट्ट के इस नाटक की नासीमन अपने को पुरुष का गुलाम समझती है।

ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है, कि पाश्चात्य सभ्यता मे कुछ अच्छाइया भी हैं, जो किसी भी व्यक्ति के चरित्र को उन्नत बना सकती है। उसके इस सद् पक्ष को हमे, भारतीय सभ्यता तथा सस्कृति मे ग्रहण करना चाहिए।

केशवराम भट्ट जी के इस नाटक पर गोल्डस्मिथ के प्रसिद्ध उपन्याम 'दि विकार ऑफ वेकफील्ड' का भी कुछ प्रभाव प्रतीत होता है। यह विचार कि नारी के अपहरण जैसे कुत्सित कर्म को भी, साहित्यिक रचना मे स्थान दिया जा सकता है, लेखक ने इस उपन्यास से ही ग्रहण किया होगा। यह विचार भी कि भाग्य का विधान अन्त मे सब कुछ ठीक कर देता है, गोल्डस्मिथ के इस उपन्यास से गृहीत प्रतीत होता है। अंग्रेजी उपन्याम मे विकार की एक लडकी फुसलाकर भगा ले जायी गई है, दूसरी का अपहरण हो गया है, और वह स्वय कर्ज के कारण कैद हो गया है। किन्तु सौभाग्य से सब ठीक हो जाता है। वह कैद से मुक्त होता है, उसकी बेटिया उसे फिर मिल जाती है और विवाह के अनन्तर वे सुख का जीवन व्यतीत करने लगती है। इसी प्रकार हिन्दी नाटक म सज्जाद की बहन का अपहरण हो जाना है, वह स्वय कैद कर लिया जाता है, और जिस लडकी से वह प्रेम करता था वह उसे छोडकर चली जाती है, तथा उसके देहान्त का समाचार आता है। किन्तु भाग्य की प्रेरणा से अत मे सब ठीक हो जाता है।

केशवराम भट्ट का दूसरा नाटक 'शमशाद सौसन' भी अंग्रेजी ढग का आचार-प्रधान सुखान्तकी है। इस नाटक की कथा-वस्तु तथा रचना-शैली भी पहले नाटक से मिलती जुलती है। इन दोनो नाटको का वाह्य-रूप भी, अंग्रेजी मे ग्रहण किया गया है, क्योंकि इनमे केवल अंको और दृश्यो की ही योजना है, प्रस्तावना, भरतवाक्य आदि नही हैं। इस प्रकार केशवराम भट्ट ने बगला के माध्यम से अंग्रेजी प्रभाव को अपनाकर, हिन्दी साहित्य को अंग्रेजी ढग के आचार-प्रधान सुखान्तकी नाटक प्रदान किये है, और यह उनका महत्वपूर्ण योग है।

जी० पी० श्रीवास्तव

शेक्सपियर की नाटकीय रचनाओं तथा इन आचार-प्रधान सुखान्तकियो के साथ, फ्रास के प्रसिद्ध हास्य लेखक मोलियर (१६२२-७३) का प्रभाव भी हिन्दी नाटको पर मिलता है। हिन्दी के नाटककारो ने इस फ्रासीसी लेखक की रचनाएँ अंग्रेजी मे पढी थी,[१] इसलिए अंग्रेजी प्रभाव के साथ, उसके प्रभाव का भी विवेचन किया जा रहा

१—मोलियर के प्रभाव से सबसे अधिक ओत-प्रोत, जी० पी० श्रीवास्तव ने, पश्चिम के इस नाटककार के सर्व प्रथम ग्रहण के परिचय मे स्पष्ट स्वीकार किया है—"इस नाटक का अनुवाद मैंने फील्डिग 'के मॉक डाक्टर' के आधार पर किया है।"

है। हिन्दी नाटक पर मोलियर का प्रभाव, सर्व प्रथम उसकी रचनाओ के स्वतन्त्र रूपान्तरो मे देखने को मिला। मोलियर का हिन्दी मे सर्व प्रथम रूपान्तरित नाटक 'ल मेकिन माल्ग्रे लेरी' था, जिसे हिन्दी मे 'मार मार कर हकीम' (१९११) संज्ञा दी गई थी। जी० पी० श्रीवास्तव ने, अपने इस रूपान्तर को, भारतीय वातावरण प्रदान कर दिया था। इसके वाद लल्ली प्रसाद पाडेय ने इसी रचना का रूपान्तर 'ठोक पीटकर वैद्यराज' (१९१६) उपस्थित किया। जी० पी० श्रीवास्तव ने आगे चलकर मोलियर की कुछ और रचनाओ का रूपान्तर किया 'लामॉर मेडिसा' का 'आँखो मे धूल (१९१२), 'ला मेडिसा वला' का 'हवाई डाक्टर' (१९१४) तथा 'ल मारिज फाम' का 'नाक मे दम' (१९१६)। मोलियर के दो प्रहसनो 'जान दाँदा' अथवा 'ल मारी कान्फादू' तथा 'ला जेल्युसी दु वारवाई' को मिलाकर, जी० पी० श्रीवास्तव ने एक और प्रहसन 'जवानी वनाम बुढापा' या 'मियाँ की जूती मियाँ के सर' लिखा था।

मोलियर की ये सभी नाटकीय रचनाएँ, जो हिन्दी मे अनुवादित हुई षडयन्त्र-प्रधान सुखान्तकियो की कोटि मे आती है। नाटककार ने इनमे उन व्यक्तियो पर व्यग किया है, तथा उनका मजाक वनाया है, जो वयोवृद्ध होने पर भी छोटी अवस्था की कुमारियो का पाणिग्रहण करना चाहते है। नवयुवको को इन वयोवृद्धो पर व्यग्य करते तथा मजाक बनाते हुए और षडयन्त्र करके कुमारियो का स्वय पाणिग्रहण करते हुए दिखाया गया है। एक नाटक मे वृद्धावस्था के विवाह के दुष्परिणाम का चित्रण है। इस प्रकार के कथानक भारतीय सामाजिक जीवन धारा से पूर्णत साम्य रखते थे, इसलिए इन रचनाओ के हिन्दी रूपान्तरो को पाठको ने वडी रुचि से अपनाया। नाटककारो ने भी इनसे पथ-निर्देश ग्रहण किया।

इस दिशा मे सर्व प्रथम प्रयास स्वय जी० पी० श्रीवास्तव ने किया। मोलियर की भाँति उन्होने भी, अपने देश के सामाजिक जीवन को लेकर, उसका व्यगात्मक चित्रण करते हुए, सामाजिक विकृतियो को दूर करने का प्रयत्न किया। अपने नाटक 'उलट फेर' (१९१८) मे उन्होने प्रचलित न्याय व्यवस्था की विकृतियो का उद्घाटन करते हुए, यह दिखाने का प्रयत्न किया है, वह अपराधो को रोकने के स्थान पर, उन्हे प्रोत्साहित करती है। मनुष्य के भविष्य पर, मोलियर के समान, श्रीवास्तव जी का भी अदम्य विश्वास है, और इसीलिए उन्होने इस समस्या से मुक्ति का एक मार्ग बताया है। उनका कहना है कि अगर भारतवर्ष मे औद्योगीकरण का प्रसार हो जाये, तो हमारे देश के साधारण जन को भी, जो निर्धनता के कारण अपराध करता है, उचित रूप से जीवन यापन का साधन प्राप्त हो जायगा। उनके अन्य नाटको 'दुमदार

आदमी' (१९१९) और 'मर्दानी औरत' (१९२०) मे भी सामाजिक विकृतियो के हास्यपूर्ण चित्रण के साथ, यही समाज-सस्कार की भावना अभि-यक्त हुई है।

अन्य नाटककार

अन्य नाटककारो मे केवल प्रताप नारायण मिश्र (१८५६-९४) राधाकृष्ण दास (१८६५-१९०७), बद्रीनाथ भट्ट तथा जयशकर प्रसाद (१८२९-१९३७) उल्लेखनीय है। प्रताप नारायण मिश्र ने अपने 'कलिकौतुक रूपक' (१८९०) मे सस्कृत नाटक की वाह्य रूप-रेखा का पूर्णत परित्याग कर, अग्रेजी प्रभाव को, समाज सुधार की भावना के रूप मे ग्रहण किया है। राधाकृष्ण दास ने चार नाटक 'दुखिनी वाला' (१८८०) 'धर्मालाप' (१८८५), 'राजस्थान केसरी' या 'महाराणा प्रताप सिंह (१८९८) तथा 'महारानी पद्मावती' लिखे थे। इनमे से पहला 'वाल विवाह' के विरुद्ध है, दूसरी रचना नाटक नही वरन् वार्तालाप मात्र है, और अतिम दोनो रचनाएँ ऐतिहासिक नाटक है। इन अत के दो नाटको के पात्र यदा कदा शेक्सपियर के चरित्रो की शैली मे वोलते है, किन्तु इन चरित्रो मे वर्गगत भावना है, शेक्सपियर के चरित्रो की भाति वैयक्तिकता नही।

वद्रीनाथ भट्ट की नाटकीय रचनाए 'कुरुवन दहन' (१९१२) 'चुगी की उम्मीदवारी' (१९१४) तथा 'चन्द्रगुप्त' (१९१५) है। इनमे अग्रेजी प्रभाव विशेष रूप से चन्द्रगुप्त' पर देखने को मिलता है। इस नाटक के प्रारम्भ मे महेन्द्र नाम का एक यूनानी व्यवसायी, अपने सामान से भरे जहाजो के डूबने की चर्चा करता है। इस प्रसग से सम्वन्धित सवाद निश्चित रूप से शेक्सपियर के 'दि मर्चेन्ट ऑफ् वेनिस' से लिए गये है। महेन्द्र और रणवीर की मित्रता, बिल्कुल उसी प्रकार की है, जैसी अन्तोनिओ और वसैनियो की थी। अन्तोनियो जिस प्रकार अपने मित्र की प्राण रक्षा के लिए, अपने प्राणो को भी होम करने को तत्पर दिखाया गया है, उसी प्रकार महेन्द्र भी रणधीर की जीवन-रक्षा के लिए तत्पर है। इस नाटक के सवादो की शैली पर भी कही २ शेक्सपियर का प्रभाव है।

जयशकरप्रसाद (१८८९-१९३७) के नाटको पर प्रारम्भ से ही अग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है। प्रसाद जी की प्रारम्भिक नाटकीय रचना 'प्रायश्चित्त' मे जयचन्द की उन्माद की स्थिति का चित्रण, शेक्सपियर के 'किंग लियर' की इस प्रकार की मन स्थिति के चित्रण से मिलता हुआ है। जयचन्द ने उन्माद की अवस्था मे रगमच पर ही आत्महत्या कर ली है यह प्रसग स्पष्ट रूप से अग्रेजी प्रभाव मे गृहीत है। 'करुणालय' (१९१४) अग्रेजी के गीति-नाट्य की शैली मे लिखित है। प्रसाद जी

की यह रचना अमित्राक्षर छन्द मे है, और यह स्वय लेखक के अनुसार, बगला के माध्यम से अग्रेजी प्रभाव को लेकर है। 'राज्यश्री' (१९१५) का वाह्य-रूप यद्यपि सस्कृत नाटको जैसा है, किन्तु उसमे द्वन्द्व (Duel) तथा युद्ध के दृश्यो की जो अवतारणा है, वह पाश्चात्य नाटक के मूल तत्व सघर्ष को लेकर है। उसकी गीत योजना भी शेक्सपियर के स्वच्छन्दतावादी नाटको की शैली मे है।

निष्कर्ष

हिन्दी नाटक पर अंग्रेजी प्रभाव की विभिन्न प्रवृत्तियाँ, इस विवेचना से, स्पष्ट हो जाती हैं। अंग्रेजी प्रभाव ने हिन्दी नाटक का ऐसा वाह्य-रूप प्रदान किया, जिसमे सस्कृत नाटको के ढग की जटिलता नही थी, इसलिए उसका सरलता से प्रयोग किया जा सकता था। अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप ही, हिन्दी नाटक सस्कृत नाट्य शास्त्र की प्रस्तावना नान्दी, अर्थोपक्षेपक—विष्कम्भक, प्रवेशक, चूलिका, अकमुख और अकावतार—आदि जटिलताओ से मुक्त हो सका है, और नाटक की रचना करना सरल हो गया है। अंग्रेजी प्रभाव की इस प्रवृत्ति से, हिन्दी मे नाटकीय रचनाओ के विकास को विशेष प्रेरणा मिली। अंग्रेजी नाटको के अध्ययन ने हिन्दी नाटककारो के जीवन के दृष्टिकोण को और व्यापक वनाया तथा विषय-वस्तु के क्षेत्र को भी विस्तृत किया। वह अब जीवन को, उसकी पूर्णता के साथ, प्रेरणाप्रद तथा निश्चेष्ट करने वाले दोनो स्वरूपो को देख सकता था। उसकी रचना-शैली मे भी इस प्रभाव ने एक परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात किया। वह अब दुखान्तकी तथा आचार-प्रधान एव षडयन्त्र-प्रधान सुखान्तकी रचनाएँ लिख सकता था।

पारसी थियेटर कम्पनियो का प्रभाव भी, अंग्रेजी प्रभाव का ही एक प्रकार रहा है, उसने हिन्दी नाटक को प्रोत्साहन देने के स्थान पर उसके विकास को अवरुद्ध करने का प्रयत्न किया था। पारसी रगमच पर प्रस्तुत किये गये अधिकाश नाटक अश्लील थे, इसलिये वे दर्शको की रुचि को विकृत तथा नाट्य-कला को अभद्र बनाते थे। यही कारण है कि पारसी रगमच, शेक्सपियर तथा अन्य महान् नाट्यकारो की रचनाओ को अपना कर भी, साहित्यिक महत्व की नाटकीय रचनाएँ नही प्रस्तुत कर सका। शेक्सपीयर के नाटको की समस्त साहित्यिक विशेषताएँ पारसी रगमच पर खो गई थी। इस रगमच पर प्रस्तुत किये जाने वाले मौलिक नाटको का भी साहित्यिक दृष्टि से विशेष महत्व नही है।

पारसी रगमच की इन विकृत रुचि की रचनाओ के ही कारण, हिन्दी लेखक, नाटकीय रचनाएँ लिखने की ओर विशेष प्रवृत्त नही हुए, फिर भी जो नाटकीय रचनाएँ प्राप्त है, उन पर अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है। हिन्दी नाटककारो ने कभी शेक्स-

पियर के प्रभाव को लेकर, जीवन के महान सत्यो को अभिव्यक्त किया है; कभी गोल्डस्मिथ और शेरिडन से प्रभावित होकर, अपने समय की सामाजिक विकृतियो का उद्घाटन किया है, तथा कभी फ्रास के प्रसिद्ध हास्य-लखक मोलियर से प्रेरणा लेकर, जटिल सामाजिक समस्याओ को, व्यग और हास्य के पैने अस्त्रो से सुलझाने का प्रयास किया है।

: ६ :

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव

कथा-कहानी कहने-सुनने की प्रवृत्ति मनुष्य मे आदिम काल से, भाषा का उद्भव हो जाने के अनन्तर, रही है, किन्तु उपन्यास की साहित्यिक विधा का अभ्युदय, प्राय सभी देशो के साहित्यो मे बहुत बाद को हुआ है। उपन्यास की विधा के इस विलम्ब से प्रारम्भ होने का कारण, उसके रचना विधान की जटिलता है। उपन्यास, जीवन अथवा जगत की कुछ घटनाओ का साधारण विवरण मात्र ही नही, वरन् उसके व्यापक स्वरूप, उसकी समस्त सूक्ष्मताओ एव जटिलताओ का वर्णन है। जीवन की चिर-प्रवहमान धारा का यह व्यापक एव सूक्ष्म चित्रण, मनुष्य एव उसके चारो ओर के जगत के भली प्रकार अनुशीलन की अपेक्षा रखता है। इस सम्यक अनुशीलन के लिए, जीवन की वास्तविकताओ के प्रति समुचित अनुराग आवश्यक है, और मनुष्य मे इस अनुराग का जागरण आधुनिक काल मे ही हो सका है। जीवन के व्यापक प्रवाह के, उसकी समस्त सूक्ष्मताओ के साथ चित्रण के लिए, भाषा भी पर्याप्त विकसित अपेक्षित होती है। साहित्य मे उपन्यास की विधा के विलम्ब से प्रारम्भ के यही कुछ कारण रहे है, और इन्ही तथा इसी प्रकार के कुछ अन्य कारणो से, हिन्दी मे भी इस साहित्यिक रूप का विकास विलम्ब से हुआ है।

हिन्दी मे इस साहित्यिक विधा का विकास, विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव के युग

में ही सम्भव हुआ है। इसके पूर्व भी कुछ प्रयोग हुये थे, किन्तु उस समय हिन्दी मे पद्य रूप की प्रधानता थी, इसलिये गद्य की इस साहित्यिक विधा का सूत्रपात नही हो सका।[1] उस समय तक उपन्यास की रचना के लिए अपेक्षित, आवश्यक सामाजिक पृष्ठ-भूमि, मानसिक चेतना एव भाषा-शैली का भी विकास नही हुआ था। हिन्दी-प्रदेश के लोगो मे, जीवन की वास्तविकताओ के प्रति, रुचि नही उत्पन्न हुई थी, और हिन्दी भाषा ने भी, जीवन को उसकी समस्त व्यापकता एव सूक्ष्मताओ के वर्णन करने की शक्ति नही अर्जित की थी। इन अभावो के होने हुए, इस साहित्यिक विधा का विकास किस प्रकार होता भी।

अंग्रेजी प्रभाव के आगमन से, हिन्दी-प्रदेश मे एक नवीन-युग, आधुनिक काल का सूत्रपात हुआ था। आधुनिक प्रवृत्तियो के जागरण के साथ, जनसाधारण की जीवन की यथार्थताओ के प्रति चेतना सजग होने लगी। अब तक लोग सम्पन्न तथा धन धान्य से पूर्ण रहे थे, इसलिये उनके पास चिन्तन तथा अपनी रचनाओ को अलकृत करने के लिये पर्याप्त समय रहा था। किन्तु अंग्रेजी साम्राज्यवाद की शोषण की नीति के फलस्वरूप, जो अंग्रेजी प्रभाव के साथ आई थी, लोगो को जीवन की कठोर वास्तविकताओ पर विचार करना आवश्यक हो गया। सात समुद्र पार से आये हुए अंग्रेजो को, तथा उनके ज्ञान-विज्ञान को देखकर, यहा के लोगो की दृष्टि का विस्तार हुआ, अपने देश एव ससार के सम्बन्ध मे भी उनकी धारणाएँ और स्पष्ट हुई। मुद्रण कला के प्रचार तथा उसके साथ पश्चिम की नई विचार पद्धति तथा वैज्ञानिकता के प्रसार ने, हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति को बढाया। इस प्रकार उपन्यास के विकास के लिए सभी आवश्यक तत्व जब एकत्र हो गये तो इस साहित्यिक रूप का विकास प्रारम्भ हुआ।

कथा-वार्ता की प्रवृत्ति मनुष्य मे आदिम युग मे ही देखने को मिलती है, इसलिये अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व भी हमे भारतीय भाषाओ मे उपन्यास अथवा विस्तृत आख्यान लिखने के प्रयत्न मिल जाते है। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' का ससार के उपन्यास साहित्य मे अपना विशिष्ट स्थान है। 'कथा-सरित-सागर' के वे प्रकरण, जो वत्सराज उदयन के जीवन से सम्बन्धित हैं, स्वतन्त्र रूप मे एक उपन्यास का रूप

१—डॉ० माता प्रसाद गुप्त ने 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', मे, जायसी के 'पद्मावत' एव अन्य सूफी कवियो की रचनाओं को, उपन्यास कोटि मे रक्खा है, किन्तु पद्य-बद्ध रूप मे, जीवन का भावना और कल्पना से अनुरंजित चित्रण प्रस्तुत करने के कारण, उन्हें कथा-काव्य ही कहना चाहिए।

ग्रहण कर सकते है। केवल संस्कृत मे ही नही, प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषाओ मे भी इस प्रकार के प्रयोग हुए थे। मध्य युग मे, इस्लामी सभ्यता के प्रवेश के अनन्तर, हिन्दी-प्रदेश के लोग फारसी के आख्यानो से भी परिचित हो गये थे। उस युग मे, हिन्दी साहित्य मे, गद्य-रूप मे आख्यान नही लिखे जाते थे, इसलिये इस प्रदेश के जनसाधारण, जिनके पास कथा-वार्ता का अनन्त भंडार था, अपनी सांझ तथा रात की बैठको मे, उनके कहने-सुनने का आनन्द लेते रहे होगे। यह विश्वास कि कहानियाँ दिन मे नही कही जानी चाहिएँ, इस विचार की पुष्टि करता है। किन्तु हिन्दी उपन्यास का विकास, इन कथा-वार्ताओ से नही हुआ है।

अंग्रेजी के उपन्यास साहित्य ने, मूल प्रेरणा तथा उसके बाद विकास मे भी विशेष योग प्रदान किया है। इस प्रकार हिन्दी उपन्यास का प्रारम्भ हो जाने के बाद, संस्कृत के कथा साहित्य, भारतीय जन-कथाओ तथा फारसी के आख्यानो ने भी उसके विकास मे योग दिया है।

हिन्दी उपन्यास के विकास मे अंग्रेजी प्रभाव का योग प्रस्तुत अध्ययन का विषय है, किन्तु इस प्रभाव की देन को, पूर्णतः स्पष्ट करने के लिए, यह आवश्यक है कि अन्य प्रभावो की मुख्य वृत्तियो की भी विवेचना की जाय। इसलिये अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख धाराओ की विवेचना के अनन्तर, अन्य प्रभावो की विवृत्ति की जायगी, और उसके बाद हिन्दी के उपन्यासकारो पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन होगा। इस प्रभाव की समष्टि रूप से विवेचना, निष्कर्ष मे प्रस्तुत की जायगी।

(१) अंग्रेजी प्रभाव की प्रमुख धाराएं

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव कई धाराओ मे होकर आया है (क) विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत अंग्रेजी उपन्यासो का अध्ययन, (ख) अंग्रेजी उपन्यासो के हिन्दी रूपान्तर, तथा (ग) बंगला उपन्यासो के रूपान्तर। हिन्दी उपन्यास पर बंगला उपन्यास का प्रभाव भी, प्रकारांतर मे अंग्रेजी प्रभाव ही है, क्योकि बंगला उपन्यास भी अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि है।

हिन्दी-प्रदेश के विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे, अंग्रेजी के निम्नलिखित उपन्यास, समय-समय पर स्वीकृत हुए थे डेनियल डेफो (१६६०-१७३१) का 'रॉबिन्सन क्रूसो' (१७१६) जेन ऑस्टिन (१७७५-१८१७) का 'प्राइड ऐंड प्रेजुडिस' (१८१३), सर वाल्टर स्कॉट (१७७१-१८३२) के 'आइवन हो' (१८२०) तथा 'केनिलवर्थ' (१८२१), चार्ल्स डिकेन्स (१८१२-७०) का 'ए टेल ऑफ टू सिटीज' (१८५९), विलियम मेकपीस थैकरे (१८११-६३) के 'वैनिटी फेयर' (१८४७-४८), 'हेनरी एस्मॉन्ड' (१८५२) तथा 'दि न्यूकम्स' (१८५३-५५), जॉर्ज इलियट (१८१९-८०) के 'आदम

वेदे' (१८५९), 'साइलस मार्नर' (१८६१), 'रोमोला' (१८६३), तथा 'मिडिल मार्च' (१८७१-२१), चार्ल्स रीड (१८१४-८४) का 'दि क्लाएस्टर ऐंड दि हर्थ' (१८६१) तथा टॉमस ह्यूजेज (१८२२-९६) का 'टॉम ब्राउन्स स्कूल डेज' (१८५७)।

इन उपन्यासकारो तथा उनकी रचनाओ के प्रभाव के विश्लेषण के लिए पहले इनका अपना अध्ययन अपेक्षित है। डैनियल डेफो का 'दि लाइफ ऐंड स्ट्रेंज सर्प्राइजिंग ऐडवेन्चर्स ऑफ रॉबिन्सन क्रूसो', जैसा उसकी सज्ञा से ही प्रतीत होता है एक साहसिकता पूर्ण कृत्यो का उपन्यास है। लेखक ने अपनी इस रचना मे जहाज दुर्घटना के अनन्तर, एक निर्जन टापू मे क्रूसो के जीवन-यापन के प्रयत्नो का वर्णन किया है। उसने वहा अपने लिए एक मकान बनाया, कुछ बकरिया पाली और एक नाव बनायी। कुछ वर्षो बाद एक अंग्रेजी जहाज उसका उद्धार करता है। जेन ऑस्टिन ने अपने उपन्यास 'प्राइड-ऐंड प्रेज्युडिस' मे, अपने युग के अंग्रेजी सामाजिक जीवन का चित्रण किया है, तथा यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि हमे अहकार तथा पूर्वाग्रह की वृत्तियो से बचना चाहिये, क्योकि ये दो सच्चे प्रेमियो को भी विलग कर देती है। स्कॉट ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासो मे, जिस युग को उन्होने लिया है, उसकी जीवन धारा का चित्रोपम वर्णन किया है। 'आइवन हो' मे धर्म-युद्धो के इतिवृत्त के अतिरिक्त सैक्सनो और नारमनो के पारस्परिक वैमनस्य तथा सघर्ष का वर्णन है। 'केनिलवर्थ' मे एलिजाबेथ के युग के सामन्ती जीवन का चित्रण है। चार्ल्स डिकेन्स ने 'ए टेल आफ टू सिटीज' मे, जो कार्लायल के 'फ्रेंच रिवोल्यूशन' पर आधारित है, दो शहरो, लन्दन तथा क्रान्ति के दिनो मे पेरिस के जीवन का चित्रण है। थैकरे ने अपनी कृतियो 'वैनिटी फेयर' तथा 'दि न्यूकम्स' मे अपने युग के सामाजिक जीवन को प्रस्तुत किया है; और 'हेनरी एस्मॉन्ड' नामक ऐतिहासिक उपन्यास मे, अट्ठारहवी शताब्दी के सामजिक जीवन का चित्रण है। थैकरे की भान्ति जॉर्ज इलियट ने भी अपनी कृतियो मे सामाजिक तथा ऐतिहासिक दोनो प्रकार के कथानको को ग्रहण किया है। 'आदम बेदे' तथा 'साइलस मानर' मे इग्लैंड के ग्रामीण जीवन का बडा यथार्थ और विशद चित्रण है। इसके अनन्तर लेखिका ने एक ऐतिहासिक उपन्यास लिखा—'रोमोला' जिसमे उसने पुनरुत्थान के युग की इटली का सुन्दर चित्रण किया है। 'मिडिल मार्च' मे उसने फिर सामाजिक जीवन को लेकर कई परिवारो के जीवन का चित्रण किया है। चार्ल्स रीड ने अपने 'दि क्लॉएस्टर ऐंड दि हर्थ' मे एक ऐतिहासिक कथानक लिया है। इरैसमस के माता पिता को, उसके जन्म के पूर्व जो कष्ट भोगने पड़े थे, उनका विवरण दिया है। टॉमस ह्यूजेज ने अपने 'टॉम

ब्राउन्स स्कूल डेज' मे अपने समय के स्कूलो के जीवन का वर्णन किया है ।

इन उपन्यासकारो ने उपन्यास कला के विकास मे जो कुछ योग दिया उसे भी देखना चाहिए। इससे विवेचना से उनकी अपनी साहित्यिक विशेषताएं भी प्रगट हो जायेंगी । डेफो अपनी रचना 'राबिन्सन क्रूसो' मे, एक सूक्ष्म निरीक्षक के रूप मे प्रगट होता है, साथ ही उसमे उसकी यथार्थ और विशद चित्रण की प्रतिभा भी देखने को मिलती है । उसमे मध्यम वर्ग की जीवन धारा का बडा विस्तृत चित्रण है, किन्तु उसका प्रधान चरित्र, रॉबिन्सन क्रूसो एक साहसिक नवयुवक तथा व्यक्ति के रूप मे नही, वरन् किन्ही सामाजिक प्रवृत्तियो के प्रतिनिधि के रूप मे प्रस्तुत किया गया है । किन्तु जेन ऑस्टिन के चरित्रो का अपना अलग २ व्यक्तित्व है उसकी रचनाओ मे चरित्रो की सख्या बहुत अधिक है, फिर भी उनमे से कोई, दूसरे की प्रतिकृति नही है । उसके उपन्यास 'प्राइड ऐंड प्रेज्युडिस' मे, श्रीमती बेनेट की पाचो पुत्रियो के अपने पृथक २ चरित्र है । जेन ऑस्टिन के कुछ चरित्र, अपने सश्लिष्ट चित्रण के कारण, हमारे स्मृति-पट पर अपना स्थान बना सकने मे समर्थ होते है श्रीमती बेनेट, वैवाहिक सबधो को स्थिर करने मे विशेष कौशल से सम्पन्न है, और उनके चरित्र की यह रूपरेखा हमारे मन पटल पर अकित हो जाती है ।

सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यासो के साथ, अंग्रेजी कथा साहित्य बिलकुल एक नयी दिशा ग्रहण करता है । उसके सभी उपन्यासो के कथानक, इतिहास से लिये गये है । प्रारम्भ मे स्कॉट ने, पद्य-रूप मे साहसिक प्रेम कथाए लिखी थी । उसके गद्य आख्यानो मे भी इसी प्रकार की कथाओ को प्रस्तुत किया गया है । अंग्रेजी के इस उपन्यासकार का, इतिहास का अनुशीलन बहुत अच्छा था, इसीलिए, जिस युग की कथा को उसने लिया है, उसकी सास्कृतिक पृष्ठभूमि को भी भली प्रकार उपस्थित कर दिया है । जीवन के सामान्य स्वरूप का भी उसको सम्यक परिज्ञान था, इसीलिए अतीत काल के चरित्रो मे वह सजीवता की अवतारणा मे सफल हुआ है । स्वच्छन्दतावादी कवि के रूप मे प्राकृतिक शोभा के प्रति भी वह विशेष अनुरक्त था, अपने उपन्यासो मे भी उसने स्थान स्थान पर प्रकृति के मर्मस्पर्शी चित्र दिये है ।

चार्ल्स डिकेन्स, अंग्रेजी का सर्वाधिक प्रसिद्ध उपन्यासकार है, किन्तु उसकी रचनाए हिन्दी-प्रदेश मे थोडी ही पढी गई थी । उसके उपन्यासो मे केवल एक, 'ए टेल ऑफ टू सिटीज' ही, जिसमे फ्रास की राज्यक्रान्ति के समय पेरिस और लन्दन के जीवन का चित्रण है, पाठ्य-क्रम मे स्वीकृत रहा था । यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है, और इसमे लेखक की वर्णन क्षमता, तथा चरित्र-चित्रण मे मानवतावादी दृष्टि, पर्याप्त रूप मे प्रकट हुई है । डिकेन्स की उपन्यासकार के रूप मे सबसे बडी विशेषता, किसी न

किसी सामाजिक उद्देश्य का निर्वाह रही है। उनकी इस रचना का भी एक सामाजिक उद्देश्य है, सामन्त वर्ग के नृशसता पूर्ण आचरण के प्रति तीव्र आक्रोश की भावना जगाना।

किसी विशिष्ट सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखने की यह प्रवृत्ति, थैकरे की रचनाओ मे भी है। डिकेन्स का समकालीन होने के कारण, थैकरे की कुछ प्रवृत्तिया उसम मिलती जुलती हैं। किन्तु इन दोनो उपन्यासकारो का अपना अलग २ सामाजिक परिवेश था, इसलिए दोनो की अपना पृथक २ मानसिक दृष्टि भी थी। डिकेन्स का जीवन बडा सघर्षपूर्ण रहा था, इसलिए उसका अनुभव का क्षेत्र बडा व्यापक था। उसने अपने राष्ट्रीय जीवन की दुर्बलताओ को भली प्रकार समझा था, और अपनी सशक्त लेखनी से उन्हे दूर करने का भी प्रयास किया था। थैकरे की जीवन धारा, अपेक्षाकृत शात वातावरण मे प्रवाहित होती रही थी, इसलिए उसने सामाजिक परम्पराओ को ही ग्रहण किया था, और सामाजिक विकृतियो पर कटाक्ष किया था। किन्तु उसका निरीक्षण अधिक गहरा है, इसलिए उसकी रचनाओ मे जीवन का अधिक यथार्थ चित्रण है। यह यथार्थ चित्रण की प्रवृति उसके ऐतिहासिक उपन्यास 'हेनरी एस्मॉन्ड' मे भी दर्शनीय है। डिकेन्स की अपेक्षा थैकरे का कलाकार भी अधिक सजग था, इसीलिए उसने अपनी रचनाओ के शिल्प-विधान मे विशेष रुचि ली है। उसका चरित्र-चित्रण भी, विभिन्न चरित्रो की दुर्बलताओ एव सबलताओ, दोनो के ही, उद्घाटन के कारण, अधिक स्वाभाविक है।

डिकेन्स के एक और समसामयिक, चार्ल्स रीड का भी हिन्दी प्रदेश मे अध्ययन हुआ था। इस लेखक के ऐतिहासिक उपन्यास, 'दि क्लाएस्टर ऐंड दि हर्थ' मे, यूरोप मे सुधार आन्दोलन के दिनो के एक विशिष्ट ऐतिहासिक व्यक्तित्व, इरैसमस के चरित्र निर्माण मे कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावो का वर्णन है। इस उपन्यास की रचना के लिए उसने स्वय इरैसमस की रचनाओ से सामग्री एकत्र की थी। चार्ल्स रीड की यह प्रमुख विशेषता थी, कि वह अपनी रचनाओ के लिए बडे प्रयत्न से सामग्री एकत्र करके, उसके प्रति सत्यनिष्ठ भी रहता था। इसी प्रवृत्ति के कारण चार्ल्स रीड को अभिलेखन के आदर्श का अनुयायी कहा गया है। डिकेन्स और थैकरे की तुलना मे उसने जीवन का अधिक यथार्थ चित्रण किया है। सामाजिक उद्देश्य को भी उसने अधिक स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया है। चार्ल्स रीड वस्तुत उपदेशक था, इस लिए उसने सामाजिक अनाचारो को अनावृत्त मात्र ही नही किया, वरन् उनका उपचार भी बताया है। मानव जीवन का नाटकीय सविधान भी उसकी रचनाओ मे अधिक स्पष्ट है।

अंग्रेजी उपन्यास की इस यथार्थवादी परम्परा मे, जॉर्ज इलियट ने दार्शनिकता की सयोजना की। उसके उपन्यासो 'आदम बेदे' और 'साइलस मार्जर' मे, इग्लैंड के ग्रामीण जीवन का बड़ा स्वाभाविक चित्रण है, किन्तु इन उपन्यासो की रचना इस दृष्टि से नही, वरन् चिन्तनशील चरित्रो की अवतारणा के लिए है। जार्ज इलियट ने इसी उद्देश्य को दृष्टि मे रख कर अपने चरित्रो के जीवन की घटनावली प्रस्तुत करने मे अधिक, उनके मनोविज्ञान को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक उपन्यास 'रोमोला' मे भी विभिन्न चरित्रो के मनोविज्ञान के स्पष्ट करने पर विशेष बल है। अंग्रेजी उपन्यास के विकास मे, जॉर्ज इलियट का योग इस प्रकार मनोवैज्ञानिक कथाओ की अवतारणा एव चिंतनशील चरित्रो की सृष्टि रहा है। जॉर्ज इलियट ने अपने प्रारम्भिक रचना काल मे, स्ट्रॉस के ईसा मसीह के जीवन-वृत्त एव फेवरवाख के 'एसेंस ऑफ क्रिश्चैनिटी' का भी जर्मन भाषा से अनुवाद किया था, इसलिए उसकी रचनाओ मे नैतिकता का स्वर भी बड़ा सशक्त था।

अंग्रेजी के जितने उपन्यासकार हिंदी-प्रदेश मे पढे गये उनमे सामाजिक उद्देश्य का सबसे अधिक स्पष्ट कथन, टॉमस ह्यूजेज के 'टाम ब्राउन्स स्कूल डेज' मे है। उसमे इग्लैंड के तत्कालीन विद्यालयो की जीवन धारा का, उनकी समस्त दुर्बलताओ के साथ चित्रण है, और यह उनके प्रति अधिकारियो एव जनसाधारण का ध्यान आकर्षित करके, उन्हे दूर करने की प्रेरणा प्रदान करने के उद्देश्य से है। अंग्रेजी के प्रचारात्मक उपन्यासो मे इसका विशिष्ट स्थान है, और हिन्दी के उपन्यासकारो ने उससे इस कोटि की रचनाओ के निर्माण का विधान ग्रहण किया होगा।

हिन्दी-प्रदेश मे पढे गये अंग्रेजी के उपन्यासकारो एव उनकी रचनाओ का यह अध्ययन, यह स्पष्ट कर देता है, कि अंग्रेजी मे इस साहित्यिक विधा के सभी प्रकार साहसिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, चरित्र-प्रधान एव प्रचारात्मक उपन्यास, हिन्दी-प्रदेश के लोगो के सामने आ गये थे। अंग्रेजी उपन्यास का एक विशिष्ट प्रकार जासूसी रचनाएं मात्र ही शेष रह गयी थी, और बगला से अनूदित रचनाओ के माध्यम से उनसे भी परिचय हो गया था। अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास विल्की कॉलिन्स के 'दि वमन इन व्हाइट' का भी 'शुक्ल वसना सुन्दरी' (१९१६) के नाम से अनुवाद हुआ था। अंग्रेजी के ऐतिहासिक उपन्यासो से प्रथम परिचय, स्कॉट की रचनाओ के माध्यम से हुआ था, थैकरे, रीड और जॉर्ज इलियट की रचनाओ से वह और घनिष्ठ हो गया था। डैनियल डेफो से लेकर, ह्यूजेज तक अंग्रेजी उपन्यास कला के विकास की रूप-रेखा भी इन रचनाओ के अध्ययन से स्पष्ट

हो गयी थी, अ ग्रेजी उपन्यास के प्रवत्तिगत विकास को भी इस अध्ययन ने भली प्रकार स्पष्ट कर दिया था।

अ ग्रेजो उपन्यासो के अनुवाद

अ ग्रेजी उपन्यासो के हिन्दी अनुवाद का क्रम भी अ ग्रेजो की प्रेरणा से ही आरम्भ हुआ। सर्व प्रथम डैनियल डेफो का 'रॉबिन्सन क्रूसो', 'राबिन्सन क्रूसो का इतिहास' (१८६०) के रूप मे अनुवादित हुआ। डॉ० ई० जे० लाजर्स के आदेश पर काशी पाठशाला के प० बद्रीलाल ने उसका अनुवाद किया था, और जन - शिक्षा समिति के निर्देशक, हेनरी स्टुअर्ट रीड के आदेश से उसका प्रकाशन हुआ था। यह अनुवाद एक बगला रूपान्तर के आधार पर, सरल हिन्दी मे है। कुछ समय बाद, सस्कृत गर्भित हिन्दी मे भी इसके दो रूपान्तर, द्वारका प्रसाद चतुर्वेदी एव जनार्दन झा ने प्रकाशित किये। इन दोनो अनुवादो का प्रकाशन सन् १९१३ मे हुआ था, और इनमे से एक मे 'फ्राइडे' नामक चरित्र का भी हिन्दी रूपातर 'शुक्रवार' कर दिया गया था। इन सभी अनुवादो की मूल प्रेरणा, जैसा कि इनके [1] अनुवादको ने स्वय अपने अपने प्राक्कथनो मे स्वीकार किया है, इस उपन्यास का साहसिक आख्यान है।

अग्रेजी की प्रसिद्ध प्रतीकवादी रचना, जॉन बनियन (१६२८-८८) की 'दि पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' (१६७८) का इसके अनन्तर अनुवाद हुआ। एक ईसाई प्रचारक ने इसका अनुवाद 'यात्रा स्वप्नोदय' (१८६५) के रूप मे प्रस्तुत किया। यह अनुवाद सस्कृत गर्भित हिन्दी मे है, और अनुवादक ने मूल के अक्षरश निर्वाह का प्रयास किया है।

अग्रेजो की प्रेरणा एव स्वय उनके प्रयास द्वारा प्रस्तुत इन दो अनुवादों के अनन्तर, बगला एव अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओ से इस साहित्यिक विधा के रूपान्तर होने लगे। अग्रेजी से अनुवाद का क्रम, १९०१ मे प्रकाशित जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड के 'फाउस्ट' के हरिकृष्ण जौहर द्वारा प्रस्तुत, 'नर पिशाच' रूपान्तर से पुन प्रारम्भ हुआ। 'यात्रा स्वप्नोदय' एव 'नर पिशाच' के प्रकाशन के बीच के काल मे, अग्रेजी के तीन अनुवादो का उल्लेख मिलता है रामकृष्ण वर्मा ने मूल डच के एक अग्रेजी रूपान्तर का 'अकबर' (१८९१) उपस्थित किया।[1] केशव राम भट्ट ने डॉ० जॉनसन के 'रैसलस' का मूल सज्ञा के साथ अनुवाद किया, और अयोध्या सिंह उपाध्याय ने अज्ञात नाम के एक अग्रेजी उपन्यास का अनुवाद 'वेनिस का बाँका' प्रकाशित किया।[2]

१—इस अनुवाद का उल्लेख, 'मिश्र बन्धु विनोद', भाग ४, पृ०१२१५ मे है।

२—यह अनुवाद सर्व प्रथम अरबी, फारसी मिश्रित भाषा मे 'काशी पत्रिका' में प्रकाशित

अग्रेजी से अनुवादित उपन्यासो मे रेनाल्ड की रचनाए सवसे अधिक है। हरि कृष्ण जौहर ने, 'फाउस्ट' के अनुवाद 'नर पिशाच'(१८९१)से, इस क्रम को आरम्भ किया था। रेनाल्ड के तदनन्तर अनुवादित उपन्यास हैं 'राई हाउस प्लॉट' का 'सत्यवीर' (१६२१) तथा 'सच्चा वहादुर' (१६०), 'जोजेफ विलमट' मूल सज्ञा के साथ (१६०५), 'लैला दि स्टार ऑफ मिारेलिआ' का 'प्रवीण पथिक' (१६११), 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट आफ लन्डन' का 'लन्दन रहस्य' (१६१३-१५) तथा 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू' का 'पीतल की मूर्ति (१६७३)। अग्रेजी के इस उपन्यासकार की कुछ और रचनाए भी हिन्दी मे अनुवादित हुई थी 'अनग तरग' (१६०८), 'दुजन' (१६०८), 'दि यग फिशर मैन' का किले की रानी' (?), 'रॉवर्ट मैकेयर' का मूल सज्ञा मे (?) एव 'रहस्य भेद' (१६१३)।

अग्रजी साहित्य के इतिहासो मे रनाल्ड एव उसके उपन्यासो की कोई चर्चा नही है। इस उपेक्षा का कारण सम्भवत यह रहा है कि इस उपन्यासकार ने अपनी 'राई हाउस प्लॉट' एव 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' रचनाओ मे, इग्लैंड के राज परिवार, एव कुछ राजाओ के भी विलास पूर्ण जीवन का उद्घाटन किया है। रेनाल्ड के 'फाउस्ट' एव 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू' मे, धार्मिक सुधार आन्दोलन के पूर्व के इटली और जर्मनी के, ईसाई धर्माधीशो के पापाचारो के वर्णन हैं। अग्रेजी साहित्य के इतिहास-ग्रथो मे, इस उपन्यासकार के अनुल्लेख के कुछ भी कारण रहे हो, हिन्दी-प्रदेश एव वगाल मे[1] तो यह अग्रेजी का सर्वाधिक लोक-प्रिय उपन्यासकार रहा है, और वगला तथा हिन्दी के उपन्यासो पर इसका पर्याप्त प्रभाव भी है।

अग्रेजी से अनुवादित अन्य उपन्यास है, राइडर एच० हैगड (१८५६-१६२७) के 'शी' का 'श्री या 'अवश्य माननीया' (१६०२), विलियम विल्की कॉलिन्स (१८२४-८६) के 'दि वमन इन व्हाइट' का 'शुक्लवसना सुदरी' (१६१६), हेरियट वीचर स्टो के 'अकिल टॉम्स कैविन' का 'टाम काका की कुटिया' (१६१६) और जॉर्ज इलियट के 'साइलस मानर' का 'सुखदास' (१६२६)। राइडर हैगर्ड ने अपने उपन्यास मे साहसिकता के साथ प्रेमाख्यान को जोड दिया है। विल्की कॉलिन्स की रचना जासूसी उपन्यास है। हैरियट वीचर स्टो की रचना प्रचारात्मक है वह अमरीका मे

हुआ था, उपाध्याय जी ने इसके वाद, उसकी भाषा को सस्कृत गर्भित वनाकर पुस्तकाकार प्रकाशित किया।

१—डॉ० प्रियरजन 'सेन वेस्टर्न इन्फ्लुएस इन बेंगाली नॉवेल', जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय १६३२, पृ० ३६

प्रचलित दास-प्रथा के प्रति विरोध की भावना जगाने के लिए लिखी गयी थी। जॉर्ज इलियट ने अपने 'साइलस मार्नर' मे इंग्लैड के ग्रामीण वातावरण मे एक चिन्तनशील चरित्र का शब्द-चित्र प्रस्तुत किया है। प्रेमचन्द्र जी ने इस रचना को पूर्णत भारतीय वातावरण प्रदान करके उपस्थित किया था।

अंग्रेजी के माध्यम से कुछ फ्रासीसी उपन्यास भी हिन्दी मे अनुवादित हुए थे। सर्व प्रथम जैनेन्द्र किशोर ने, पॉल दे कॉक के 'दि वैम्पाएर' को 'चुडैल' (१९०२) के रूप मे प्रस्तुत किया। इसके अनन्तर एलेक्जेन्डर ड्यूमा का 'दि काउन्ट ऑफ मॉन्ट क्रिस्टो' का अनुवाद चुन्नीलाल खत्री ने 'मोतियो का खजाना' (१९१४) प्रकाशित किया। फ्रास के प्रसिद्ध वैज्ञानिक कथाकार जूल वर्न के अनेक काल्पनिक यात्रा-विवरण भी हिन्दी मे अनुवादित हुए। जयराम दास गुप्त ने 'जर्नी टु मून' का एक सक्षिप्त अनुवाद 'चन्द्रलोक की यात्रा' (१९०७) प्रस्तुत किया, और इसके तीन वर्ष बाद, इसका एक पूर्ण रूपान्तर, मराठी के एक अनुवाद का आधार लेकर प्रकाशित हुआ। गिरिजा कुमार घोष ने 'ए जर्नी इन्टू इन्टीरियर ऑफ दि अर्थ' का एक स्वच्छन्द अनुवाद 'रसातल यात्रा' (१९१२) किया। इसी रचना का एक और अनुवाद, कुछ समय बाद 'भूगर्भ की सैर' (१९१८) प्रकाशित हुआ, यह अविकल अनुवाद था। 'ए जर्नी बाई वैलून' का भी अनुवाद 'वैलून विहार' (१९१८) किया गया। फ्रास के इन वैज्ञानिक यात्रा विवरणो के साथ, अंग्रेजी के एक प्रसिद्ध व्यगात्मक यात्रा। विवरण जोनेथन स्विफ्ट के 'गूलिवर्स ट्रेविल्स' का भी एक अनुवाद 'विचित्र भ्रमण'(१९१८) प्रकाशित हुआ।

अंग्रेजी से अनुवादित उपन्यासो के इस अध्ययन के आधार पर, यह कहा जा सकता है, कि अंग्रेजी उपन्यासो के तीन प्रकार—साहसिक आख्यान, रहस्योद्घाटक रचनाए एव प्रचारात्मक कृतिया—हिन्दी-प्रदेश मे विशेष प्रचलित हुए थे, और इनमे रेनाल्ट की रहस्योद्घाटक रचनाए सर्वाधिक लोकप्रिय हुई थी। अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासो मे केवल विल्की कॉलिन्स की एक रचना 'दि वमन इन व्हाइट' का ही अनुवाद हुआ था। गोपाल राम गहमरी ने कुछ और अंग्रेजी जासूसी उपन्यासो के अनुवाद किये थे,[१] किन्तु हिन्दी मे इस कोटि की रचनाए, अंग्रेजी प्रभाव की प्रेरणा के स्थान पर, बगला के अनुकरण मे लिखी गई है। बगला ने इस प्रकार की रचनाओ के लिए, सीधे अंग्रेजी से ही प्रेरणा ग्रहण की है।

१—गोपाल राम गहमरी के अंग्रेजी मे अनुवादित उपन्यासो पर, उनकी मौलिक रचना का अध्ययन करते हुए, विचार किया जायगा।

वगला उपन्यासो के अनुवाद

हिन्दी मे वगला से अनुवादित उपन्यासो की सख्या, अंग्रेजी से अधिक रही है। सर्व प्रथम वकिमचन्द्र की रचनाए अनुवादित हुई, उसके बाद रमेश चन्द्र दत्त तथा पचकौडी दे के उपन्यास रूपातरित हुए। वकिमचन्द्र की रचनाओ मे सबसे पहले 'दुर्गेशनन्दिनी' का अनुवाद सन् १८८२ मे गदाधरसिह ने प्रकाशित किया। उसके बाद तो वगला के इस उपन्यासकार के अनुवादो का क्रम चल पडा 'राधारानी' (१८८३), 'युगुलागुरीय' (१८८६), 'राजसिह' (१८९४) 'कृष्णकान्त का दानपत्र' (१८९८) 'देवी चौधरानी' (१८९९), 'कपाल कुडला' (१९०१), 'चन्द्रशेखर' (१९०५), 'इदिरा' (१९०८) 'विप वृक्ष' (१९१५) और 'मृणालिनी' (१९१८)।[1] रमेश चन्द्र दत्त के हिन्दी अनुवादित उपन्यास हैं 'वग विजेता' (१८९६), 'माधवी ककण' (१९०२) 'समाज' (१९१०), 'समाज' (१९१२) 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' (१९१३) और 'राजपूत जीवन सध्या' (१९१८)। वगला से अनुवादित जासूसी उपन्यास, अधिकाश मे, पचकौडी दे के रहे है। उसकी रचनाओ के अनुवादो का क्रम है 'जीवन मृत रहस्य' (१९०४) 'गोविन्द राम' (१९०५), 'आखो देखी घटना' (१९१२) 'जासूसो चक्कर' (१९१२), 'नीलवसना सुन्दरी' (१९१३), 'मनोरमा' (१९१७) 'भीषण भूल' (१९१७) और 'घटना चक्र' (१९१८)। गोपाल राम गहमरी ने, प्रियनाथ मुकर्जी के 'दारोगा दफ्तर' के आदर्श पर हिन्दी मे 'जासूस' पत्रिका प्रकाशित की थी, किन्तु वगला के इस जासूसी कथाकार की हिन्दी मे अनुवादित सभी रचनाएँ, कहानी विधा की हैं, इसलिए उन पर अगले प्रकरण मे, हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए विचार किया जायगा।

वगला के ये सभी उपन्यासकार, जिनके अनुवाद हिन्दी मे प्रकाशित हुए, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत हैं। वकिमचन्द्र की रचनाओ पर यह प्रभाव सबसे अधिक स्पष्ट है। सन् १८९४ मे ही वगला के एक आलोचक ने, वकिम के विषय मे यह स्वीकार किया था, कि उनके उपन्यास अपनी अभिरुचि कथावस्तु के विधान, चरित्र की सयोजना मे, कभी २ त्रुटि की सीमा तक, अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है।[2] रमेश

१—प्रत्येक रचना के साथ कोष्ठको मे दिया हुआ वर्ष, प्रथम अनुवाद का है, और ये सभी उपन्यास अनेक बार अनुवादित हुए हैं।

२—एन० एन० सेन ने 'इण्डियन मिरर' के १६ अप्रैल, १८९४ के अक मे यह विचार प्रकट किया था। उनके शब्द थे

"His novels are English in taste, in the construction of the plot, in the setting of character, some times to a fault"

चन्द्र दत्त ने, सर वाल्टर स्कॉट की भाति, अपने उपन्यासो के प्रत्येक प्रकरण के आरम्भ मे, शेक्सपियर से लेकर टेनिसन तक, अग्रेजी साहित्यकारो के सूत्र-वाक्य दिये हैं। सर वाल्टर स्कॉट के ऐतिहासिक उपन्यासो का रचना-कौशल भी उन्होने ग्रहण किया है। पचकौडी दे के सबन्ध मे तो बगला आलोचको का कथन है, कि उपने अग्रेजी की जासूसी रचनाओ के अनुवाद या ग्रहण उपस्थित किये है।[1]

इस अध्ययन के आधार पर हम यह कह सकते है, कि बगला के ये सभी उपन्यासकार, जो हिन्दी-प्रदश मे पढे गये, अग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है। प्रियरञ्जन सेन ने अपने, बगला उपन्यास पर पाश्चात्य प्रभाव के अध्ययन मे, बकिमचन्द्र के सभी उपन्यासो पर अग्रेजी प्रभाव स्वीकार किया है। उनका कथन है कि स्कॉट, लिटन और विल्की कॉलिन्स ने बकिम को विशेष रूप से प्रभावित किया है। रेनाल्ड का प्रभाव भी बकिम की रचनाओ मे दर्शनीय है। डॉ० सेन ने, रेनाल्ड को, बकिम के युग मे, अग्रेजी उपन्यासकारो मे सर्वाधिक प्रसिद्ध कहा है,[2] किन्तु स्वय बकिम की रचनाओ पर उसके प्रभाव का विश्लेपण नही किया। बकिम की रचनाओ मे 'दुर्गेश नन्दिनी' 'देवी चौधरानी' और 'कृष्णकान्त का दान-पत्र' पर रेनाल्ड का प्रभाव बहुत है। 'दुर्गेश नन्दिनी' का प्रथम अध्याय तो पूर्णत रेनाल्ड की 'दि ब्रॉन्ज स्टेचू' के प्रारम्भिक अश पर आधारित प्रतीत होता है।

बगला के अन्य उपन्यामकारो ने भी रेनाल्ड के प्रभाव को ग्रहण किणा है, रेनाल्ड को उस दिनो अग्रेजी का सर्वोत्कृष्ट एव सर्वाधिक अनुकरणीय उपन्यासकार स्वीकार किया जाता था।[3] अग्रेजी के अन्य उपन्यासकार भी बगाल मे पढे गये थे, किन्तु रेनाल्ड को उनमे सर्वश्रेष्ठ माना गया था। रेनाल्ड के एक बगला अनुवादक ने लिखा था

"Lord Lytton has written novels to teach psychology, Haggard to show glory of the supernatural, Scott to remove the sorrow that runs through the heart of the country, Marryat to give moral

---

डॉ० प्रियरञ्जन सेन ने, कलकत्ता विश्वविद्यालय के जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, १९३३, मे प्रकाशित अपने निबन्ध 'वेस्टर्न इन्फ्लुएन्स इन बेंगाली नॉवेल' मे पृ० ३३ पर ये पक्तियाँ उद्धृत की हैं।

१—प्रियरजन सेन 'वेस्टर्न इन्फ्लुएन्स इन बेंगाली नॉवेल,' जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३३, पृ० ४०

२—वही, पृ० ४०

३—वही, पृ० ३८

instructions, Zola to bid farewell to the old and make room for the new, Hugo to teach politics, Dumas to give instruction in law, Dickens for purpose of removing poverty, Rozebery for teaching science, and Reynolds to give training in sociology, the logy of all logies without which not one of these sciences can stand "[1]

बगला के इस लेखक ने, रेनाल्ड का महत्व, भाषा के माधुर्य, घटनाओ की विविधता एव चरित्राकन की दृष्टि से भी घोषित किया था।[2]

बगला उपन्यास पर अग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करते हुए, यह कह देना भ आवश्यक प्रतीत होता है, कि बगला के उपन्यासकारो ने, अग्रेजी के उपन्यासकारो का केवल अनुकरण मात्र ही नही किया था। वे स्वय मौलिक प्रतिभा से सम्पन्न थे, और अपनी रचनाओ मे उन्होने उसको पर्याप्त अभिव्यक्ति दी थी। स्वय वकिमचन्द्र, जिन्हे चिन्तन पद्धति और अभिव्यञ्जना प्रणाली, दोनो ही दृष्टियो से आग्ल कहा गया है,[3] अग्रेज उपन्यासकारो के अन्ध अनुकरण-कर्त्ता नही रहे थे। भारतीय साहित्य की आदर्शवादी परपरा का उन्होने सदा अनुसरण किया था, और उनकी यही प्रवृति उन्हे अग्रेजी के उपन्यासकारो से पृथक करती है। उन्होने भारतीय जीवन-धारा का भी सम्यक अनुशीलन किया था, और उसे अपनी रचनाओ मे वडी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया था। फिर भी यह स्वीकार करना पडेगा कि बगला के उपन्यासकारो पर अग्रेजी प्रभाव पर्याप्त है, और उन्होने हिन्दी उपन्यासकारो को अपनी मौलिक प्रवृतियो के साथ, अग्रेजी प्रभाव भी वहुत अधिक प्रदान किया है।

अन्य प्रभाव

सस्कृत मे, गद्य के सविधान मे ऐसे अनेक आख्यान है, जिन्हे उपन्यास कहा जा सकता है। इन गद्य-काव्यो के भी हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुए, और उनके आदर्श पर भी कुछ प्रयोग हुए। सर्व प्रथम वाणभट्ट की 'कादम्बरी' को गदाधरसिंह ने, बगला के एक सस्करण के आधार पर अनुवादित किया। काशीनाथ शर्मा ने सस्कृत की पद्य-बद्ध रचना पूर्वाचार्य की 'चतुर सखी' को गद्य रूप मे अनुवादित किया (१८९०)। विहारीलाल चौवे ने दडी के 'दशकुमार चरित' का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया (१८९२)। प्यारेलाल दीक्षित ने वाणभट्ट के 'हर्ष चरित' का हिन्दी अनुवाद किया

१—प्रियरञ्जन सेन 'वेस्टर्न इन्फ्लुएस इन बेंगाली नॉवेल,' जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९३३, पृ० ३८

२—वही, पृ० ३८

३—वही, पृ० ३३

(१६१४)। संस्कृत से अनुवादित इन रचनाओ के अतिरिक्त, संस्कृत साहित्य का आधार लेकर भी कुछ उपन्यास लिखे गये। इस प्रकार की कुछ रचनाएँ है 'राजा दुष्यन्त और शकुन्तला' (१८६०), 'सावित्री सत्यवान' (१८६७), 'नल चरितामृत' (१८६७) तथा अन्य। संस्कृत के कथा साहित्य के आदर्श पर, हिन्दी मे लिखित सर्व प्रथम रचना, ठाकुर जगमोहनसिंह की 'श्यामा स्वप्न' (१८८८) है। इसके अनन्तर किशोरीलाल गोस्वामी ने 'प्रणयिनी परिणय' (१८६०) मे, संस्कृत के कथा साहित्य के आदर्श पर एक प्रयोग उपस्थित किया।[1] ब्रजनन्दन सहाय के उपन्यास 'राधा कान्त (१६१२) और 'सौन्दर्योपासक' (१६१६) भी संस्कृत के आदर्श पर लिखित है। इस स्थल पर ही यह स्पष्ट कर देना भी आवश्यक है, कि इन रचनाओ मे संस्कृत की औपन्यासिक पद्धति का अनुसरण केवल भाषा-संयोजन एव रचना-विधान तक ही सीमित है। इन सभी रचनाओ की कथाए, आधुनिक जीवन धारा से ग्रहण की गई है। ठाकुर जगमोहन सिंह के 'श्यामा स्वप्न' पर तो कुछ अंग्रेजी प्रभाव भी है, जिसकी यथा स्थान चर्चा की जायगी। संस्कृत के कथा साहित्य की रचना-प्रणाली का अनुसरण, आधुनिक काल मे विशेष नही हुआ, इसके कारण स्वय उस रचना-विधान मे अन्तर्निहित है। संस्कृत के कथा साहित्य मे लोकोत्तर अथवा काल्पनिक चरित्रो की अवतारणा की गई थी। उसके अनेक चरित्र लोकोत्तर शक्तियो से सम्पन्न है, इसलिए आज का सामान्य व्यक्ति, जो मनुष्य को मनुष्य रूप मे ग्रहण करने लगा है, उनके प्रति विशेष रुचि नही अनुभव करता है। संस्कृत की अलंकारिक भाषा एव विशेष प्रयत्न-

---

१—किशोरी लाल गोस्वामी ने अपनी इस रचना 'प्रणयिनी परिणय' (१८६०) के प्राक्कथन के पृष्ठ १-२ मे इस तथ्य को स्वय स्वीकार किया है

"किसी २ महाशय का यह कथन है कि उपन्यास पूर्व समय मे यहा प्रचलित नहीं था वरन् अंग्रेजो की देखा देखी लोगो ने Novel के स्थान मे उपन्यास कल्पना कर लिया है किन्तु उपन्यास उप, नी० उपसर्ग पूर्वक आस धातु इन शब्दो से बना है यथा उप समीप नी न्यास आस रखना अर्थात् इसकी रचना उत्तरोत्तर आश्चर्य जनक एव कुछ छिपी हुई कथा क्रमश समाप्ति मे स्फुटित हो और अमरकोष भी 'उपन्यासस्तु वाङ्मुखम्' अर्थात् वाङ्मुखो वाचा यह अर्थ उपन्यास के तात्पर्य से ही घटता है, इत्यादि प्रमाणो से उपन्यास भी भारतवर्ष मे प्राचीनकाल मे प्रचलित है और 'दशकुमार चरित' 'वासव दत्ता', 'कादम्बरी' आदि उपन्यास इसकी प्राचीनता में जाज्वल्यमान प्रमाण हैं।

" नागरी भाषा मे इसका पूरा अभाव है। सुतरा इस उपन्यास का प्रादुर्भाव भया है।"

साध्य रचना, शैली भी, आधुनिक युग की यथार्थवादी प्रवृत्तियो के कारण ग्राह्य नही रही है।

आधुनिक काल मे सस्कृत के साथ, अरबी और फारसी के कथा साहित्य के प्रति भी जनसाधारण की थोडी बहुत रुचि रही है। फारसी के कथा साहित्य का प्रभाव, कुछ समय तक तो हिन्दी उपन्यासो पर छा गया था किन्तु कालान्तर मे, उसमे यथार्थता के अभाव और लोकोत्तर तत्वो के प्रभुत्व के कारण, उस प्रभाव को छोड दिया गया। फारसी के प्रसिद्ध आख्यान 'हातिमताई' का अनुवाद, सन् १८६८ मे ही हो गया था। अमीर खुसरो का 'चहार दरवेश' भी श्रीधर भट्ट द्वारा सन् १८७४ मे अनुवादित होकर प्रकाशित हुआ। फारसी के कथा साहित्य के आदर्श पर लिखित कुछ उर्दू रचनाओ के भी अनुवाद हुए। मुहम्मद हुसेन आजाद के 'फिसानए अजायब' के दो तीन अनुवाद प्रकाशित हुए।[1] काजी अजीजुद्दीन अहमद की भी कई रचनाएँ, उर्दू से अनुवादित हुई, 'पुलिस वृत्तान्त माला' (१८९०), 'अमला वृत्तान्त माला' (१८९४), 'ठग वृत्तान्त माला' (१८९५), और 'ससार दर्पण' (१८९५)।[2] ये सभी रचनाए यद्यपि यथार्थवादी पद्धति पर लिखित है, तथापि उनमे, एक विस्तृत कथा-सूत्र के स्थान पर, अनेक कथाओ की माला का सयोजन होने के कारण, उन्हे उपन्यास कहना उपयुक्त नही है। इनका प्रभाव हिन्दी उपन्यास पर नही, कहानियो पर, विशेष रूप से जासूसी कथाओ पर है।

फारसी की दो प्रसिद्ध कथात्मक कृतिया 'बोस्तान-ए-ख्याल' और 'दास्तान ए अमीर हमजा', हिन्दी उपन्यास पर अपनी निश्चित छाप छोड गयी है। देवकी नन्दन खत्री की रचनाओ 'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता सन्तति', 'भूतनाथ' आदि पर इनका स्पष्ट प्रभाव है। देवकी नन्दन खत्री के इन प्रयोगो के अनन्तर तो, हिन्दी मे इस प्रकार के कथा साहित्य की बाढ सी आ गई थी। हिन्दी उपन्यास मे तिलिस्म का तत्व, पूर्णत फारसी के इन आख्यानो के प्रभाव से आया हुआ स्वीकार किया जाता है, किन्तु उसका कुछ अश भारतीय कथा-साहित्य की परम्परा से भी गृहीत है। फारसी के तिलिस्मी साहित्य का प्रभाव, सीधे सम्पर्क से आने के साथ साथ, प्रकारान्तर से कुछ अंग्रेजी के माध्यम मे भी आया है। रेनाल्ड की रचनाओ मे तिलिस्म की योजना व्यापक रूप मे है, यद्यपि वह फारसी के कथा साहित्य से ही गृहीत है। फारसी के

१—उर्दू के इन उपन्यासो मे प्रथम का अनुवाद श्रीनाथ लाहा ने सन् १८८२, द्वितीय का रामरत्न वाजपेयी ने सन् १८९२, और तृतीय महादेव शर्मा ने सन् १९०७ मे प्रस्तुत किये।

२—ये सभी अनुवाद रामकृष्ण वर्मा ने प्रस्तुत किये थे।

इस तिलस्मी साहित्य का प्रभाव भी, सीधे सम्पर्क तथा प्रकारान्तर, दो प्रकार से प्रवाहित होते हुए भी, लोकोत्तरता से अनुरागित होने के कारण, संस्कृत कथा कृतियों के प्रभाव की भांति, थोड़े दिनों में ही छोड़ दिया गया।

प्रथम प्रयोग एवं ग्रहण

अंग्रेजी के उपन्यास साहित्य का प्रभाव, प्रारम्भ में, इसी प्रभाव की छाया में पल्लवित हुए, बंगला एवं अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के प्रयोगों के अनुकरण में देखने को मिला। इस साहित्यिक विधा का प्रथम प्रयोग, मराठी की एक रचना पर आधारित, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का 'पूर्णप्रकाश एवं चन्द्रप्रभा' है। कुछ विद्वान इस अनुवाद को स्वयं भारतेन्दु कृत नहीं, वरन् संशोधित मानते हैं। यही उनके, बंकिम चन्द्र के उपन्यास, 'राजसिंह' के अनुवाद के विषय में कहा जाता है। भारतेन्दु जी के परामर्श से बंगला के कुछ और उपन्यास, बंकिमचन्द्र कृत 'दुर्गेश नन्दिनी' (१८८२) और स्वर्ण कुमारी देवी कृत 'दीप निर्वाण' हिन्दी में अनुवादित हुए। किशोरी लाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) एवं गोपाल राम गहमरी (१८५०-१९४२) ने भी, जिन्होंने हिन्दी उपन्यास को अपनी रचनाओं के माध्यम से सबसे अधिक अंग्रेजी प्रभाव प्रदान किया है,[1] बंगला उपन्यासों के ग्रहण में ही अपना साहित्यिक जीवन प्रारम्भ किया था। श्रीनिवास दास (१८५०-८७) ने अपने 'परीक्षा गुरु' (१८८२) में, अंग्रेजी उपन्यासों के आदर्श का प्रथम प्रयोग प्रस्तुत किया। इसके अनन्तर पुरोहित गोपीनाथ का एक अंग्रेजी उपन्यास का ग्रहण 'वीरेन्द्र' (१८९७) प्रकाशित हुआ। पुरुषोत्तम दास टंडन ने भी शेक्सपियर के नाटक 'पेरीक्लीज' को 'भाग्य का फेर या प्यारे कृष्ण की कहानी' (१९००) नाम देकर उपन्यास रूप में प्रस्तुत किया था। यह ग्रहण सर्वप्रथम 'हिन्दी प्रदीप' में प्रकाशित हुआ था। उसमें, जैसा कि उसकी संज्ञा से ही स्पष्ट है चरित्रों, स्थानों आदि का भारतीयकरण कर दिया गया था। शेक्सपियर के प्रसिद्ध दुखान्तकी 'ओथेलो' को बंगला में उपन्यास रूप में ग्रहण किया गया था, गदाधर सिंह ने उस ग्रहण को हिन्दी में अनुवादित किया (१८९४)।

अंग्रेजी के साहसिक उपन्यास डैनियल डेफो के 'रॉबिन्सन क्रूसो' को भी 'समुद्र में गिरीन्द्र' (१८९४) के रूप में ग्रहण किया गया। उसकी कथा है गिरीन्द्र, जिसके पिता ने लन्दन में अपना व्यवसाय स्थापित कर लिया है, एक बार समुद्र के किनारे पहुंच जाता है और कौतूहल वश एक नाव में बैठकर चल देता है, और फिर एक

१—यह कथन प्रस्तुत अध्ययन की कालावधि, सन् १८७० से १९२० तक के हिन्दी उपन्यासकारों को ही दृष्टि में रखकर है।

जहाज मे उठा लिए जाने पर, एक द्वीप मे पहुँच कर, राबिन्सन क्रूसो जैसे अनेक अनुभव प्राप्त करता है। अंग्रेजी तथा हिन्दी के इन साहसिक उपन्यासो की कथाओ मे, अन्तर केवल इतना है, कि रॉबिन्सन क्रूसो तो एक अज्ञात द्वीप मे अकेला छूट गया है, किन्तु गिरीन्द्र के साथ, इसी प्रकार की घटना होने पर, जहाज का कप्तान उसका एक पुत्र और एक पुत्री भी है। इस विभेद के कारण कथाओ का विकास-क्रम भी अलग २ है।

श्रीनिवास दास

अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासकारो मे सर्व प्रथम श्रीनिवास दास (१८५०-८७) का नाम आता है। यद्यपि उन्होने केवल एक ही उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (१८८२) की रचना की थी, तथापि अंग्रेजी की औपन्यासिक शैली मे प्रथम प्रयोग होने के कारण उसका विशेष महत्व है। श्रीनिवास दास जी ने अपनी इस रचना के प्राक्कथन मे भी यह सकेत दिया है कि वे अंग्रेजी से प्रेरणा लेकर हिन्दी मे एक नई कथा शैली का प्रयोग उपस्थित कर रहे है। उनका कथन है कि अब तक हमारे देश मे जो कथाएँ लिखी गई थी, उनमे राजा, रानियो, राजकुमारो तथा राजकुमारियो के वर्णन थे, और कथाकार प्रारम्भ मे ही इनका परिचय देकर अपना आख्यान प्रारम्भ कर देता था। परन्तु वे अपनी कथा को दिल्ली के बाजार की एक अंग्रेजी दूकान के वर्णन मे आरम्भ कर रहे है, विभिन्न चरित्रो का परिचय, सवादो के सहारे, कथा विकसित होने के साथ-साथ मिलता जाएगा।[1] इसके बाद उन्होने यह भी स्वीकार किया है कि इस उपन्यास की रचना मे उन्होने लार्ड बेकन, गोल्डस्मिथ, विलियम काउपर आदि की रचनाओ तथा एडिसन के 'स्पेक्टेटर' से सहायता ली है।[2]

सर वाल्टर स्कॉट की रचनाओ की भांति, श्रीनिवासदास जी ने, अपने इस उपन्यास के प्रत्येक अध्याय के प्रारम्भ मे, सूत्र-वाक्य भी दिये है, और उनमे से कुछ अंग्रेजी साहित्यकारो के भी है। प्रथम अध्याय के प्रारम्भ मे लॉर्ड चेस्टरफील्ड का एक सूत्र-वाक्य है।[3] तेइसवें अध्याय के प्रारम्भ मे एलेक्जेंडर पोप की एक पक्ति उद्धृत की गई

१—श्रीनिवास दास 'परीक्षा गुरु', निवेदन, पृ० १—२

२—वही, पृ० ४

३—लॉर्ड चेस्टरफील्ड के सूत्र-वाक्य का हिन्दी रूपान्तर है "चतुर मनुष्य को जितने खर्च में अच्छी प्रतिष्ठा अथवा धन मिल सकता है, मूर्ख को उसके अधिक खर्च पर भी कुछ नहीं मिलता।" 'परीक्षा गुरु' पृ० १

है ।[१] इस उपन्यास के दो चरित्रो, मदनमोहन और मास्टर शम्भूदयाल ने अनेक स्थलों पर प्रसगानुसार अंग्रेजी के उद्धरण उपस्थित किये है । कुछ अन्य चरित्रों ने भी एक दो स्थलो पर अंग्रेजी साहित्यकारो के सूत्र वाक्यो को अवतरित किया है । प्रथम अध्याय मे ही, अंग्रेजी दुकान के स्वामी मि० ब्राइट ने लॉर्ड बेकन का एक कथन अवतरित किया है ।[२] द्वितीय अध्याय मे मास्टर शम्भूदयाल ने शेक्सपीयर की 'दि मर्चेण्ट ऑफ़ वेनिस' मे, पोर्शिया की करुणा के सम्बन्ध मे कही हुई प्रसिद्ध पंक्तियाँ, उद्धृत की है ।[३] मास्टर शम्भूदयाल इस उपन्यास के नायक मदनमोहन के अध्यापक रहे थे । मदनमोहन के वयस्क हो जानेके बाद भी उन्होने, उसके यहाँ आना जाना जारी रक्खा है । समय समय पर उन्होंने मदनमोहन को शेक्सपियर के कुछ नाटको 'कॉमेडी ऑफ एरर्स', 'ट्वेल्थ नाइट', 'मच एडो एवाउट नथिंग', बेन जॉन्सन कृत 'एव्री मैन इन हिज ह्यमर', स्विफ्ट कृत 'ड्रेपर्स लेटर,' 'गुलीवर्स ट्रेविल्स' टेल्स ऑफ दि टब,' आदि की कथाएँ सुनाई है ।[४]

श्रीनिवास दास जी के इस उपन्यास का दूसरा चरित्र, जिसने अंग्रेजी साहित्यकारो के अनेक उद्धरण उपस्थित किये है, ब्रज किशोर है । इस चरित्र का अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन बहुत गहरा है, इसलिए उसे अनेक स्थलो पर अवसर के अनुकूल उद्धरण प्रस्तुत करते हुए उपस्थित किया गया है । मदनमोहन को चापलूसी से घिरा हुआ देखकर, वह काउपर के 'टेबुल टॉक' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत कर उठा है[५] जब वह चाहता है, कि मदनमोहन हरिकिशोर को क्षमा करदे, तो वह अपने मन्तव्य के समर्थन के लिए पोप का एक वाक्य उद्धृत करता है ।[६] मदनमोहन को चारो ओर से दुर्भाग्य से घिरा हुआ देखकर, उसे बायरन की कुछ पंक्तियाँ स्मरण हो आई है ।[७] विषम परिस्थितियो मे मदनमोहन के मन मे ईश्वर की अनुकम्पा के प्रति विश्वास एव जीवन

१—पोप का सूत्र-वाक्य है "एक प्रामाणिक मनुष्य परमेश्वर की सर्वोत्कृष्ट रचना है ।" वही, पृ०१६६

२—बेकन का वाक्य है "केवल विचार ही विचार मे मकड़ी के जाल मत बनाओ आप परीक्षा करके हर एक पदार्थ का स्वभाव जानो ।" वही, पृ० ३

३—वही, पृ० ८१

४—श्रीनिवास दास 'परीक्षा गुरु,' पृ० ६३

५—वही, पृ० १३६—३७

६—पोप की पंक्ति है "भूल करना मनुष्य का स्वभाव है परन्तु उसको क्षमा करना ईश्वर का गुण है ।" वही, पृ० १२८

७—वही, पृ० १९५—९७

के प्रति आशावादी दृष्टिकोण को जगाने के लिए उसने परनेल के एक कथा-काव्य की कथावस्तु को प्रस्तुत किया है।[१] ब्रजकिशोर बहुत नीति-निष्ठ है, और समय समय पर, अपने सम्पर्क के लोगो मे, नैतिकता की भावना जगाने के लिए, यूनान एवं इग्लैंड के इतिहासो से अनेक प्रसग अवतरित करता है। ब्रजकिशोर को यूरोपीय साहित्य का भी कुछ ज्ञान है, और उसी के आधार पर उसने, इटली के कवि पेट्राक[२] और जर्मनी के साहित्यकार लेसिंग के[३] जीवन के कुछ प्रसग प्रस्तुत किये है।

श्रीनिवासदास जी ने 'परीक्षा गुरु' मे, अपने इन चरित्रो को, अंग्रेजी के साहित्यकारो से उद्धरण देते हुए दिखाने के साथ साथ, अंग्रेजी साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी प्रदर्शित किया है। मदनमोहन ने अपने मित्र हरदयाल से, एक स्थान पर कहा है, कि उसके निकट के कुछ लोग उसके सच्चे मित्र नही, वरन् उसके धन के मित्र है, किन्तु वह उनका विश्वास नही करता, क्योकि वह जानता है कि शेक्सपियर के ऑथलो ने ऐसे ही व्यक्तियो की बातो को सुनकर अपने को पूर्णत विनष्ट कर डाला था।[४] स्वय लेखक ने, अपने एक पात्र चुन्नी लाल के चरित्र का विश्लेषण करते हुए, उसे इयागो का अवतार कहा है।[५]

श्रीनिवास दास का यह उपन्यास इस प्रकार, अपनी अभिव्यजना प्रणाली, सवाद-योजना एव चरित्र-चित्रण के विधान मे अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है। भारतीय कथा साहित्य का नीतिपरक दृष्टिकोण भी इस रचना मे पर्याप्त से कुछ अधिक ही है। अधिकाश मे हम ब्रजकिशोर के नैतिक उपदेश ही देखते, है। उपदेशात्मकता की इस बाढ के लिए, अंग्रेजी के उपन्यासकार गोल्डस्मिथ का कुछ प्रेरणा भी रही है। उन्होने स्वय अपने प्रारम्भिक निवेदन मे अंग्रेजी के इस लेखक का प्रभाव स्वीकार किया है।[६]

किशोरीलाल गोस्वामी

श्रीनिवास दास जी के बाद, अंग्रजी प्रभाव की दृष्टि से, किशोरीलाल गोस्वामी की रचनाएँ आती है। गोस्वामी जी ने पहले, 'प्रणयिनी परिणय' मे सस्कृत कथा

१—श्रीनिवास दास 'परीक्षा गुरु', पृ० २६४—६६
२—वही, पृ० २६८—६६
३—वही, पृ० ६
४—वही, पृ० २२
५—वही, पृ० ६१
६—वही, निवेदन, पृ० ४

साहित्य की शैली का अनुसरण किया। इसके अनन्तर उन्होने वगला उपन्यासो का अनुवाद प्रारम्भ किया। गोस्वामी जी के अनूदित वगला उपन्यास 'प्रेममयी' (१८९०), 'लावण्यमयी' (१८९१), 'मुख शर्वरी' (१८९१), 'हृदय हारिणी' (१८९१) और 'याकूती तरती' या 'यमज सहोदरा' (१९०६) है। ये सभी उपन्यास अपने मूल रूप मे दुखान्तकी थे, किन्तु गोस्वामी जी ने सभी को सुखान्त वना दिया है। गोस्वामी जी ने वकिमचन्द्र के उपन्यासो को भी पढा था, उनके दो उपन्यासो 'पुनर्जन्म' (१९०७) 'अगूठी का नगीना' (१९१८) मे वँगला के इस उपन्यासकार का स्पष्ट प्रभाव है। प्रथम उपन्यास मे वकिमचन्द्र के 'कृष्णकान्त का दान पात्र' की कथा को सुखान्तकी वना दिया गया है। 'अँगूठी का नगीना' की लक्ष्मी का चरित्र, 'देवी चौधरानी' की प्रफुल्ल के चरित्र से, वहुत मिलता जुलता है, केवल वह देवी चौधरानी नही वनी है।

गोस्वामी जी का प्रथम उपन्यास 'प्रणयिनी परिणय' (१८८८), अभी हम जैसा कह आए है, सस्कृत कथा साहित्य के आदर्श पर लिखित है। इसके अनन्तर उन्होने 'त्रिवेणी' (१८८९) की रचना की। उनकी यह कृति वस्तुत भक्ति-भावना पर, उपन्यास के सविधान का अतिक्रमण करते हुए, एक विस्तृत प्रवचन है। इन दो मौलिक प्रयोगो के अनन्तर, उन्होने वगला उपन्यासो से अनुवादो क्रम चलाया। सस्कृत कथा साहित्य का प्रभाव, उनकी एक वात की मौलिक रचना 'लाल कुँवर' या 'शाही रग महल' (१९१३) पर भी है। 'कथा सरित सागर' के दूसरे लम्वक 'कथामुख' की कथा का, इसके ऊपर निश्चित प्रभाव है। इस उपन्यास मे मुगलवश के अन्तिम शासको के विलासपूर्ण जीवन का चित्रण है। गोस्वामी जी ने इस प्रकार के चित्रण के लिए, रेनाल्ड के प्रसिद्ध उपन्यास 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' से भी प्रेरणा ग्रहण की है।

किशोरीलाल गोस्वामी के मौलिक उपन्यासो का क्रम, यदि प्रारम्भिक प्रयोगो को छोड दिया जाय तो, स० १९०१ मे, 'कुसुम कुमारी' के प्रकाशन से आरम्भ होता है। उनकी रचनाओ पर अग्रेजी प्रभाव भी सर्व प्रथम इसी रचना मे देखने को मिलता है। रेनाल्ड की रचनाओ के हिन्दी अनुवाद भी इसी वर्ष प्रारम्भ हुए, और गोस्वामी जी की रचनाओ पर उनका प्रभाव, इसी समय से प्रारम्भ हुआ। गोस्वामी जी की रचनाओ पर रेनाल्ड का प्रभाव थोडा वहुत वगला के माध्यम से भी आया है। वगला के उपन्यासकारो ने भी, रेनाल्ड का उन दिनो अग्रेजी का सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार घोषित किया था, और १८७० मे ही उसकी रचनाओ के अनुवाद प्रारम्भ कर दिये थे। वकिमचन्द्र के उपन्यासो पर भी हम रेनाल्ड का पर्याप्त प्रभाव देखते हैं।

गोस्वामी जी ने भी बगला उपन्यासो के माध्यम से उसका कुछ प्रभाव ग्रहण किया है। रेनाल्ड का प्रभाव उनकी रचनाओ मे उनके अपने अध्ययन से भी आया है।

गोस्वामी जी की मौलिक रचनाओ को हम तीन कोटियो मे विभक्त कर सकते है

१—सामयिक जीवन से सम्बन्धित रचनाएँ 'कुसुम कुमारी' (१९०१), 'लीलावती (१९०१), 'चपला' (१९०३—४), 'माधवी माधव या मदन मोहिनी' (१९०९—१०) और 'अगूठो का नगीना' (१९१८),

२—ऐतिहासिक व्यक्तियो को लेकर लिखित तिलिस्मी उपन्यास, 'राजकुमारी' (१९०२) 'कटे मूड की दो दो बाते' (१९०५), 'मल्लिकादेवी या बग सरोजिनी (१९०५), 'तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी' (१९०६) 'लखनऊ की कब्र' (१९०९), 'सोना और सुगन्ध या पन्ना बाई' (१९१०—१२) और 'रजिया बेगम' (१९१५),

और ३— ऐतिहासिक उपन्यास 'तारा' (१९०२) और 'चित्तौड की राख या महारानी पद्मिनी।'

अंग्रेजी प्रभाव इन तीन कोटियो मे से, प्रथम दो की रचनाओ मे विशेष रूप से दर्शनीय है, और तृतीय कोटि की रचनाओ मे ऐतिहासिक घटनाओ का लोक प्रचलित विवरण मात्र है। मूल रूप से अरबी तथा फारसी साहित्य में विकसित तिलिस्म का तत्व गोस्वामी जी की सभी रचनाओ मे है। उन्होने उसे मूल स्रोत के साथ-साथ रेनाल्ड की रचनाओ के माध्यम से भी ग्रहण किया है।

गोस्वामी जी के सामयिक जीवन से सम्बन्धित उपन्यासो मे, अग्रेजी प्रभाव 'कुसुम कुमारी' (१९०१) से ही मिलने लगता है। इस उपन्यास के कुसुम कुमारी और भैरवसिंह के चरित्रो पर पडा रहस्यमय आवरण, रेनाल्ड के रहस्य मक उपन्यासो की प्रेरणा से है। कुसुम कुमारी का रहस्यमय चरित्र, रेनाल्ड के उपन्यास 'दि ब्रॉंज स्टेच्यू'[1] के सेटिनस के चरित्र से बहुत मिलता जुलता हे। रेनाल्ड ने अपनी इस रचना मे, मध्य युग के यूरोप मे, जो बालिकाये अपने माता-पिता द्वारा गिरिजा-घरो को समर्पित कर दी जाती थी, उनकी दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। गोस्वामी जी ने भी, अपने इस उपन्यास मे, इसी प्रकार का प्रसग लिया है। किन्तु उन्होने देवदासी प्रथा का एक समस्या के रूप मे चित्रण किया है, एक प्रचारक के रूप मे उसके विरुद्ध आवाज उठाई है, और हिन्दू समाज से इस कलक को धोने का अनुरोध

१—रेनाल्ड का यह उपन्यास बगला मे १९ वीं शताब्दी मे ही अनूदित हो गया था, और किशोरीलाल गोस्वामी ने उसे सम्भवत इसी सस्करण मे पढा होगा।

किया है। अमरीका के प्रसिद्ध प्रचारात्मक उपन्यास, 'अंकिल टॉम्स केबिन' की रचना पद्धति का प्रभाव इस उपन्यास पर स्पष्ट है।

रेनाल्ड की रहस्यात्मक रचनाओं का प्रभाव, गोस्वामी जी की 'लीलावती' (१९०२) मे भी है। वसन्ती बीबी, कलावती, जवाहरलाल और विपिन विहारी के चरित्र, रेनाल्ड के चरित्रों से बहुत मिलते जुलते है। इस उपन्यास के एक विशिष्ट चरित्र, ललित किशोर के सम्बन्ध मे अन्त मे इस रहस्य का उद्घाटन होता है, कि वह विजयकृष्ण का पुत्र है। इस प्रकार के रहस्योद्घाटन रेनाल्ड की सभी रचनाओ मे है। इस उपन्यास के तेरहवे परिच्छेद मे, लीलावती के प्रति अनुरक्त बालकृष्ण ने, अपने प्रतिद्वन्द्वी ललितकिशोर को द्वन्द्व-युद्ध (डुएल) के लिए निमन्त्रित किया है। बाइसवे परिच्छेद मे इस द्वन्द्व-युद्ध का विवरण है। किसी रूपसी को लेकर इस प्रकार के द्वन्द्व-युद्धो का वर्णन, अंग्रेजी साहित्य मे अनेक स्थलो पर मिलता है। गोस्वामी जी ने इस प्रकार यह प्रसंग भी अंग्रेजी प्रभाव से लिया है। लीलावती की प्रणय कथा के साथ, उसकी सेविका बिलसिया और गोविन्दचन्द्र के नौकर जगी का प्रेम प्रसंग, रेनाल्ड के उपन्यास 'जोजेफ विलमट' की लिनटन और सार्लेट की प्रणय कथा के बहुत समान है। इसी प्रकार कलावती का चरित्र भी, अंग्रेजी के इसी उपन्यास की लेडी कैलिन्डी के जीवन-वृत्त से मिलता हुआ है।

रेनाल्ड का प्रभाव गोस्वामी जी की 'चपला' (१९०३-४) पर और भी अधिक स्पष्ट है। इस उपन्यास मे एक अभागे भारतीय परिवार की संकट ग्रस्त स्त्रियो की दुःख-गाथा उपस्थित की गई है। साथ ही उसमे अंग्रेजी आचार-व्यवहार के अंधानुकरण से उत्पन्न सामाजिक विकृतियो का चित्रण है। इस उपन्यास का एक चरित्र हरिनाथ रेनाल्ड के उपन्यासो का पाठक है,[१] और पाश्चात्य समाज की स्वच्छन्द प्रणय की पद्धति, सम्भवतः उसने रेनाल्ड की रचनाओ से ही सीखी है। कमल किशोर की विलासी प्रवृत्ति, रेनाल्ड के 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन' के प्रिंस का स्मरण दिलाती है। विलास-लोलुप प्रिंस के चंगुल मे अपने को मुक्त करने के लिए रोज ने जिस असीम साहस का परिचय दिया है, गोस्वामी जी ने सौदामिनी को ठीक उसी प्रकार कमलकिशोर के पाश मे मुक्त होते हुए दिखाया है। चपला और घनश्याम को जिस स्थान पर बन्दी किया गया है, वह रेनाल्ड के 'फाउस्ट' के उस लिन्डॉफ कासिल से मिलता जुलता है, जिसमे सीजर बर्जिया को कैद किया गया था। हरिनाथ का चरित्र, 'फाउस्ट' के एक पात्र आद्व पनिला के आदर्श पर रचित है। आद्व पनिला ने

१— किशोरी लाल गोस्वामी 'चपला' प्रथम भाग, पृ० ८३

जिस प्रकार, सीजर वजिया और स्वय अपने को, उस दुर्ग की कैद मे मुक्त किया है, चपला और घनश्याम की मुक्ति की कथा भी ठीक उसी प्रकार की है। कादम्बिनी को विषम परिस्थितियो की प्रेरणा से, प्रचारिका,के रूप मे कार्य करते हुए, अपने स्वामी के जिन अत्याचारो को सहन करना पडा है, वे रेनाल्ड के मेरी प्राइस की दुख गाथा से बहुत मिलते जुलते है। रेनाल्ड के 'मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्दन' मे रोज ने अपने कैद होने की सूचना बाहरी ससार को तीर के सहारे एक पत्र भेज कर दी है, चपला ने भी अपने वन्दी होने की सूचना इसी प्रकार पहुँचाई है। कमलकिशोर के जन्म से सम्बन्धित रहस्य का उद्घाटन, और चपला तथा घनश्याम के अनेक कोरे कागजो पर हस्ताक्षर करने का प्रसग भी 'फाउस्ट' से ही गृहीत है।

'माधवी माधव' (१९०९) गोस्वामी जी का आत्मकथात्मक शैली मे लिखित उपन्यास है, और उस पर रेनाल्ड की इसी प्रणाली की रचना 'जोजेफ विलमट' का स्पष्ट प्रभाव है। गोस्वामी जी का कहना है, कि उनकी इस रचना की कथा वास्तविक जीवन से ली हुई है, किन्तु उन्होने उसे जिस पद्धति से प्रस्तुत किया है, उसमे रेनाल्ड का प्रभाव प्रकट है। इस उपन्यास का सम्पूर्ण सविधान ठीक 'जोजेफ विलमट' की भाति है। भाग्य की विडम्वना से जोजेफ विलमट को, छोटी अवस्था मे ही, एक अध्यापक के यहा आश्रय लेना पडता है, और जव उनका भी सहसा निधन हो जाता है, तो वह सकटो से छुटकारा पाने के लिए लन्दन की ओर चल देता है। माधव ने भी अपने पिता के देहावसान के अनन्तर, अपने एक अध्यापक के यहा आश्रय लिया है, और वहाँ से वह खिन्न होकर दिल्ली चला जाता है। जोजेफ विलमट को सौभाग्य से देलमर के रूप मे, एक करुणामय आश्रयदाता मिल गया है। माधव को ठीक इसी प्रकार, लाला रामप्रसाद के रूप मे एक करुणाशील स्वामी मिला है। देलमर की भाति रामप्रसाद ने भी अपने आश्रित के विषय मे गुप्त रूप से जाच पडताल की है। विलमट को अनेक सम्भ्रान्त परिवारो मे कार्य करना पडा है, जिससे वह समाज के अभिजात वर्ग की दुर्वलताओ एव ह्रासोन्मुख प्रवृत्तियो को भली प्रकार समझ सका है। माधव को केवल लाला रामप्रसाद के परिवार मे ही रहना पडा है, इसलिए वह केवल इसी परिवार के विभिन्न सदस्यो की दुर्वलताओ से परिचित हो सका है। जीवन की लगभग एक ही प्रकार की कठिनाइयो का अतिक्रमण करने वाले ये दोनो चरित्र सत्यनिष्ठ भी है। इन दोनो ही चरित्रो के सम्मुख, नारी वासना का साकार रूप होकर, अपना मोहजाल फैलाती है। विलमट के आगे उसके स्वामी टिनवर्न की साली लेडी कैलिन्डी ने प्रणय निवेदन किया है, ठीक इसी प्रकार माधव के आगे उसके स्वामी रामप्रसाद की साली सरस्वती का स्नेह सबोधन है। जोजेफ

विलमट तो नारी के मोह जाल मे आबद्ध हो गया है, किन्तु गोस्वामी जी का माधव, केवल अपने चरित्र को ही दृढ नही रख सका है, उसने सरस्वती के चरित्र को भी परिवर्तित कर दिया है। लेकिन गोस्वामी जी की जमुना का भाग्य ठीक लेडी कैलिन्डी जैसा होता है।

गोस्वामी जी का यह उपन्यास 'जोजेफ विलमट' के आदर्श का इतना अनुसरण करते हुए भी पूर्णत उसकी यथानुकृति मात्र ही नही है गोस्वामी जी ने उसमे हिन्दू परिवार का, पूर्णत भारतीय वातावरण मे, बडा यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत किया है। उन्होने अपनी इस रचना मे उन नये विचारो को भी अभिव्यक्त किया है जो अंग्रेजी प्रभाव को लेकर भारतीय समाज मे विकसित हो रहे थे। माधवी के पिता माधव के साथ उसका सम्बन्ध निश्चित करना चाहते है, किन्तु उसके लिए प्रस्ताव उपस्थित करने से पहले, यह जान लेना चाहते है, कि ये दोनो एक दूसरे के प्रति अनुरक्त है या नही।[1] यह निश्चित रूप से अंग्रेजी प्रभाव मे ओत-प्रोत उदार मनोवृति के पिता का दृष्टिकोण है। 'माधवी माधव' के अन्तिम भाग मे, मदन और मोहनी का प्रणय प्रसग, गोस्वामी जी की अपनी मौलिक उपन्यास कला की सृष्टि है। इन उपन्यासो की रचना करते करते, गोस्वामी जी ने अपने निज के कथा कौशल को विकसित कर लिया था, इसीलिए उनके सम सामयिक जीवन को लेकर लिखे गये अन्तिम उपन्यास, 'अगूठी का नगीना' (१९१८) मे, अंग्रेजी प्रभाव विशेष नही है।

गोस्वामी जी के ऐतिहासिक व्यक्तित्वो को लेकर, तिलिस्म के तत्व से ओत-प्रोत उपन्यासो मे, रेनाल्ड का प्रभाव और भी अधिक प्रकट है। उनकी इस कोटि की रचनाओ मे 'राज कुमारी' (१९०२) पर, रेनाल्ड के 'फाउस्ट' और 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू', 'मल्लिका देवी' पर 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू', 'तरुण तपस्विनी' पर 'दि यग फिशरमैन', 'पन्ना बाई' और 'रजिया बेगम' पर 'राई हाउस प्लॉट' आदि के प्रभाव है। 'तरुण तपस्विनी' पर राईडर एच० हेगर्ड के 'शी' तथा गोल्डस्मिथ के कथा-काव्य 'हरमिट' का भी कुछ प्रभाव है। गोस्वामी जी के शेष दो तिलिस्मी उपन्यासो 'कटे मूड की दो दो बातें' तथा 'लखनऊ की कब्र' पर फारसी के तिलिस्मी साहित्य का सीधा प्रभाव प्रतीत होता है, किन्तु इन रहस्यमय क्रिया-कलापो के वर्णन एव विभिन्न चरित्रो मे देवी तथा दानवी प्रवृत्तियो की अवतारणा आदि मे, रेनाल्ड का भी कुछ प्रभाव है। गोस्वामी जी की रचनाओ मे, तिलिस्म का तत्व, इस प्रकार, फारसी साहित्य के सीधे सम्पर्क मे आने के साथ-साथ, प्रकारान्तर से, कुछ रेनाल्ड की रचनाओ के माध्यम से

---

१ — किशोरी लाल गोस्वामी 'माधवी माधव' द्वितीय भाग, पृ० १०१

भी गृहीत है ।

गोस्वामी जी को सबसे अधिक प्रभावित करने वाले अंग्रेजी उपन्यासकार रेनाल्ड की प्रमुख विशेषताए है एक तो उसकी सभी रचनाए एक निश्चित उद्देश्य को लेकर लिखित है, दूसरे, उसके कुछ चरित्रो के जन्म या कुछ अन्य महत्वपूर्ण घटनाओ पर, रहस्य का आवरण पडा रहता है, तीसरे, उसके चरित्रो मे कुछ तो दैवी और कुछ दानवी प्रभाव से कार्य करते हुए दिखाये गये है। रेनाल्ड ने, दानवी प्रभाव या शैतान की प्रेरणा को लेकर काय करने वाले चरित्रो का सदा दु खमय अवसान दिखाया है। रेनाल्ड ने अपने कुछ उपन्यासो मे ऐसे भवनो का भी विवरण दिया है जो तिलिस्म से समन्वित है। यह तिलिस्म का तत्व, अंग्रेजी साहित्य मे, अरबी और फारसी साहित्यो के माध्यम से ही आया हुआ है ।

किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यासो मे भी रेनाल्ड के प्रभाव को लेकर ये सभी प्रवृत्तिया मिलती है । सम-सामयिक जीवन से सम्बन्धित उनके उपन्यासो मे सामाजिक उद्देश्य की बडी स्पष्ट अभिव्यक्ति है। कुछ चरित्रो के जन्म एव विशिष्ट घटनाओ पर रहस्यात्मक आवरण की चर्चा भी, हम एक-दो स्थलो पर कर आए है। गोस्वामी जी के तिलस्मी उपन्यास 'राजकुमारी' मे भी इस पद्धति का प्रयोग है, जिसमे रेनाल्ड के 'फाउस्ट' की भाति, एक व्यक्ति के पुत्र को, दूसरे की पुत्री से, बदल दिया गया है, और इस रहस्य का उद्घाटन बहुत बाद को जाकर होता है। पूर्णत रहस्यमय चरित्र की अवतारणा 'मल्लिका देवी की मालती मे है। उसने 'दि ब्रॉज स्टेच्यू' की एजिला विल्डन की भान्ति, पुरुप का रूप धारण करके इतिहास की ही धारा बदल दी है। रेनाल्ड के उपन्यासो मे दैवी और दानवी प्रेरणा से काय करने वाले जो चरित्र है, गोस्वामी जी ने 'राजकुमारी' और 'मल्लिका देवी' मे, उनके भी प्रतिरूप प्रस्तुत किये हैं,। प्रथम मे ब्रह्मानन्द और वृद्ध तपस्वी तथा द्वितीय मे मालती दैवी प्रेरणा से कार्य करते हुए प्रदर्शित किये गये हैं। दानव या शैतान की प्रेरणा से कार्य करने वाले चरित्र, प्रथम मे राम लोचन और द्वितीय मे रघुनार्थसिह है। इन दोनो चरित्रो ने, स्वय यह स्वीकार किया है, कि शैतानी प्रभाव ने उन्हे पथ भ्रष्ट कर दिया था। रामलोचन की स्वीकारोक्ति है

"मैं सुख की नीद सोता और अपने प्रभु की बढवार ही मनाया करता, मगर अफसोस साक्षात शैतान हुसेनी की शैतानी का असर धीरे-धीरे मेरे रोम-रोम मे ऐसा भीग गया कि मैं खासा शैतान क्या शैतानो को किबलेगाह बन गया और जो कुछ मैंने शैतानी का काम किया अब उसके ख्याल करने से भी रूह काप उठती है।"[१]

१—किशोरी लाल गोस्वामी 'राजकुमारी', पृ० १००

रेनाल्ड ने फाउस्ट को भी इसी प्रकार स्वय शैतान के प्रभाव मे आकर पथभ्रष्ट होते हुए दिखाया है। रघुनाथसिंह ने भी यह स्वीकार किया है कि मूर्तिमान पिशाच तुगरिन वेग ने उसे भ्रमित कर दिया था।[1] 'लखनऊ की कब्र' मे भी शैतान के प्रभाव का विवरण है। रेनाल्ड क शैतान से प्रभावित चरित्रो का सदा दु खमय अवसान हुआ है। गोस्वामी जी के इस प्रकार के चरित्रो का अन्त भी बिल्कुल ऐसा ही है।

रेनाल्ड के उपन्यासो मे अनेक भवनो को तिलिस्म से अनुप्राणित दिखाया गया है। उनकी 'दि ब्रॉज स्टेच्यू' रचना मे, प्राग का दुर्ग ऐसी ही करामातो से भरा हुआ है। उस दुर्ग मे प्रवेश करते ही, ऐजिला विल्डन जब अपने चारो ओर देखती है, तो उसे बडा विचित्र और साथ ही भयकर दृश्य देखने को मिलता है,

"Here a plume appeared to wave There a helmeted head to bow here an arm to beckon menacingly and there a speare to turn towords her "[2]

गोस्वामी जी के उपन्यास 'राजकुमारी' मे, रामलोचन ने अपने स्वामी हीराचन्द को जिस भवन मे कैद किया है, उसमे भी ऐसा ही तिलिस्म है। गोस्वामी जी की अन्य रचनाओ मे भी इस प्रकार के तिलस्मी भवनो की अवतारणा की गई है।

किशोरी लाल गोस्वामी के उपन्यासो के इस विश्लेपण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि उन्होने घटनाओ के चयन, उनके विकासक्रम, चरित्र-चित्रण और देश काल के सविधान मे, रेनाल्ड का निश्चित प्रभाव ग्रहण किया है। इन दोनो उपन्यासकारो का रचना विधान भी बहुत समान है। गोस्वामी जी को इस प्रकार हम हिन्दी का रेनाल्ड कह सकते हैं। गोस्वामी जी मे रेनाल्ड की व्यापक एव सूक्ष्म चित्रण की प्रतिभा नही है। इसका कारण यह है, कि रेनाल्ड के पूर्व, अग्रेजी गद्य तथा उपन्यास के विकास की एक सुदृढ परम्परा रही थी, किन्तु गोस्वामी जी स्वय हिन्दी मे इस साहित्यिक विधा के विभिन्न प्रकारो का प्रारम्भ और गद्य की अभिव्यजना प्रणाली का परिष्कार कर रहे थे। गोस्वामी जी के ऊपर भारतीय साहित्य की परम्परा के आदर्शवाद का भी प्रभाव रहा है, इसीलिए वे, रेनाल्ड की विलासिता तथा कूटनीतिक क्रिया-कलापो के चित्रण मे, आनन्द अनुभव करने वाली, अस्वस्थ भावना से अपनी रक्षा कर सके हैं।

१—रघुनाथसिंह के इस कथन मे पिशाच शब्द का प्रयोग शैतान के ही लिए है, जैसा कि हम रेनाल्ड के उपन्यास 'फाउस्ट' एक अनुवाद मे भी देखते हैं।

२—जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड 'दि ब्रॉन्ज स्टेच्यू', पृ० ११

गोपाल राम गहमरी

अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से, किशोरीलाल गोस्वामी के अनन्तर, गोपालराम गहमरी के जासूसी उपन्यास आते है। गहमरी जी ने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारम्भ, बंगला के सामाजिक उपन्यासो के अनुवाद से किया था। किन्तु इसके बाद उन्होने अंग्रेजी तथा बगला के जासूसी उपन्यासो के अनुवाद मे हाथ लगाया, तथा अपनी मौलिक रचनाओ के लिये भी, यही क्षेत्र निश्चित कर लिया। इस दिशा मे उनका 'गुप्तचर' (१८९९) उपन्यास सर्व प्रथम उल्लेखनीय है। यह एक अंग्रेजी उपन्यास का भारतीय वातावरण देकर रूपान्तर है। इसके बाद इन्होने, अंग्रेजी के एक जासूसी उपन्यास 'स्ट्रेंज मर्डर' का 'अदभुत खून' (१९०३) के रूप मे अक्षरश: अनुवाद किया। इसी प्रकार उनकी बाद को प्रकाशित होने वाली रचनाये 'खून का भेद' (१९०८) 'जाली बीबी' (१९१४) आदि भी अंग्रेजी से गृहीत हैं।

गहमरी जी का बगला से अनुवादित प्रथम जासूसी उपन्यास 'दो बहन' (१९०२) है। इसके बाद उन्होने बगला के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यास लेखक पचकौडी दे की रचनाओ को अनुवादित करना प्रारम्भ किया, तथा प्रियनाथ मुकर्जी की जासूसी उपन्यास माला 'दारोगार दफ्तर' के अनुकरण मे 'दरोगा दफ्तर' का प्रकाशन किया। हिन्दी मे जासूसी साहित्य की अभिवृद्धि के लिए, गहमरी जी ने कुछ समय तक, एक 'जासूस' नामक पत्रिका भी निकाली थी। गहमरी जी ने अपने जासूसी कथा साहित्य के लिए, सबसे अधिक प्रेरणा, पच कौडी दे की रचनाओ से ली है। इस लेखक की रचनाओ पर अंग्रेजी के जासूसी उपन्यास लेखको आर्थर कॉनन डॉयल तथा विल्की कॉलिन्स का प्रभाव है।[1] पचकौडी दे का 'गोविन्दराम' तो डॉयल के 'ए स्टडी इन स्कार्लेट' का रूपान्तर मात्र है, और इसी प्रकार उसके 'जीवन मृत रहस्य' तथा 'नीलवसना सुन्दरी' पर कॉलिन्स के 'दि मून स्टोन' तथा 'दि वमन इन व्हाइट' की छाप स्पष्ट है। आर्थर कॉनन डॉयल के जासूसी उपन्यासो का चमत्कार, उनके द्वारा अवतरित चरित्र, शारलक होम्स की अपराध के मूल कारण तथा अपराधी की सूक्ष्म अन्वेषण पद्धति मे है। विल्की कॉलिन्स अपनी रचनाओ मे, रूप सादृश्य रखने वाले पात्रो की अवतारणा करके, उनके द्वारा गुप्तचरो को भुलावा देने के प्रसगो से, हमारा मनोरजन करता है। पचकौडी दे ने अपने जासूसी उपन्यासो मे इन दोनो लेखको के चमत्कारिक प्रयोगो का उपयोग किया है, और गहमरी जी ने उनसे, इन दोनो प्रवृत्तियो को अपनी रचनाओ मे ग्रहण किया है। अंग्रेजी के जासूसी साहित्य के अपने

१—डॉ० प्रियरजन सेन 'वेस्टर्न इन्फ्लुएस इन बॅगाली नावेल', पृ० ४०

निज के अध्ययन से भी उन्होने ये प्रवृत्तियाँ अपनाई हैं।

गहमरी जी ने अपने मौलिक उपन्यासो 'जासूस की भूल' (१६०१) 'जासूस पर जासूस' (१६०४) तथा 'जासूस की जवानी' (१६१६) मे, विल्की कालिन्स की, सदृश पात्रो की अवतारणा की शैली का प्रयोग किया है, और 'घर का भेदी' (१६०३) 'जासूस की जवामर्दी' आदि मे आँर्थर कॉनन डॉयल की सूक्ष्म अन्वेषण पद्धति का चमत्कार दिखाया है। उनके आत्मकथात्मक शैली मे लिखे गये 'देवीसिंह' उपन्यास पर, रेनाल्ड के जोजेफ विलनट की छाया है। यह प्रभाव कथावस्तु, चरित्र-चित्रण, रचना-शैली आदि सभी पर है। अपने जासूसी उपन्यास 'ठन ठन जासूस' मे गहमरी जी ने, राइडर एच० हैगड के 'शी' का भी कुछ प्रभाव ग्रहण किया है। इस उपन्यास का अनुवाद हिंदी मे 'श्री' (१६०३) के रूप मे हो चुका था। अंग्रेजी की इस रचना मे साहसिकता पूर्ण कृत्यो तथा प्रेमाख्यान का समन्वय है, गहमरी जी ने इससे प्रेरणा लेकर, इन्ही तत्वो का अपनी जासूसी कथा मे समावेश कर दिया है। राइडर हेगर्ड की रचना मे, शी' की खोज करते हुए, लिओ और होरेस को जिस प्रकार के विचित्र अनुभव हुए थे, हरदेवी की खोज करते हुए, गहमरी जी ने, ठनठन को उसी प्रकार के अनुभव कराये है। इस उपन्यास के जासूसी कथा भाग पर, आर्थर कॉनन डॉयल की रचना-पद्धति का प्रभाव है।

प्रेमचन्द

हिन्दी उपन्यास के क्षेत्र मे, प्रेमचन्द के उदय के साथ, इस साहित्यिक विधा मे गुणात्मक परिवर्तन उपस्थित हुआ। प्रेमचन्द जी ने, अंग्रेजी के महान उपन्यासकारो जॉर्ज इलियट, हेरियट स्टो आदि के प्रभाव को, अपनी रचनाओ मे ग्रहण करना प्रारम्भ किया। उनका प्रथम उपन्यास 'प्रेमा' (१६१३) इस, साहित्यिक रूप का प्रयोग मात्र था। उनकी दूसरी रचना 'सेवासदन' (१६१८), अपेक्षाकृत परिपक्व कृति थी, और अंग्रेजी प्रभाव भी उस पर बहुत स्पष्ट है। उसकी कथावस्तु, सवाद योजना, चरित्र-चित्रण, सामाजिक परिवेश, रचना-शैली एव उद्देश्य, सभी औपन्यासिक तत्वो पर अंग्रेजी प्रभाव है। प्रेमचन्द जी के इसके बाद के उपन्यासो पर यह प्रभाव और अधिक घनीभूत हुआ है, थैकरे, हालकेन, गाल्सवर्दी आदि के प्रभाव को भी उन्होने ग्रहण किया है, किन्तु प्रस्तुत अध्ययन मे, कालावधि की दृष्टि से, हमे केवल 'सेवासदन' पर ही अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण करना है।

प्रेमचन्द जी के इस उपन्यास मे, वेश्याओ की समस्या का चित्रण है। उन्होंने प्रारम्भ में उन सामाजिक परिस्थितिओ का विश्लेषण किया है, जिनके कारण वेश्याओ की सृष्टि होती है। अनन्तर उनके जीवन की ऊपरी तडक-भडक, किन्तु भीतर के उत्पीडन एव विषाद का चित्रण है। अन्त मे इस समस्या का निदान, सेवा-सदनो की

स्थापना मे, प्रस्तुत किया गया है। प्रेमचन्द जी ने, इस तर्कशील विधान को प्रस्तुत करने के लिए, समसामयिक जीवन धारा को लिया है। उनका कथानक यथार्थवादी दृष्टिकोण से, कारण-कार्य शृंखला मे आबद्ध घटनाओ का अनुक्रम उपस्थित करता है, और यह भारतीय कथा साहित्य की, कल्पना-प्रधान एव अतिरंजना पूर्ण शैली को छोडकर, अंग्रेजी उपन्यास की स्वाभाविक अभिव्यञ्जना प्रणाली के अनुरूप है।

प्रेमचन्द जी के चरित्र-चित्रण पर अंग्रेजी प्रभाव और भी स्पष्ट है। उन्होने मानव चरित्र को, सद् और असद् वृत्तियो के समन्वय के रूप मे देखा है, और यह भारतीय परंपरा की श्वेत एव श्याम चित्रण की प्रणाली के ठीक विरोध मे है। भारतीय साहित्य मे आदर्शीकृत चित्रण के विधान को लेकर विभिन्न चरित्रो को प्रतीको या प्रतिनिधि रूप मे अवतरित किया जाता था, प्रेमचन्द जी ने प्रत्येक चरित्र के स्वतन्त्र व्यक्तित्व की स्थापना की है। यह भी अंग्रेजी प्रभाव को लेकर है। उन्होने अपने चरित्र-चित्रण मे जन्म-जात संस्कारो या जातिगत वृत्तियो के स्थान पर, परिस्थितियो की प्रेरणा एव संसर्ग के प्रभाव को अधिक महत्व दिया है। प्रेमचन्द जी के 'सेवासदन' उपन्यास के विभिन्न चरित्रो, कृष्णचन्द्र, सुमन, गजाधर, भोली, पद्मसिंह शर्मा आदि मे, अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित इसी चित्रण पद्धति का अनुसरण है। प्रेमचन्द जी की चरित्र-चित्रण की प्रणाली, प्रारम्भ और विकास की अवस्था मे तो, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है, किन्तु अनेक चरित्रो की परिणति अन्त मे उन्होने, भारतीय साहित्य के आदर्शवादी दृष्टिकोण के अनुरूप की है।

प्रेमचन्द जी के 'सेवासदन' की संवाद योजना भी अंग्रेजी उपन्यासो जैसी है। उन्होने जिस प्रकार अपने प्रत्येक चरित्र के व्यक्तित्व का अपना अलग विकास दिखाया है, उसी प्रकार उनकी वार्तालाप की प्रणाली भी पृथक२ है। कुछ चरित्र संस्कृत गर्भित भाषा बोलते है, कुछ सरल हिन्दी का प्रयोग करते है, और कुछ, विशेष रूप से मुसलमान चरित्रो का शीन काफ दुरूस्त होता है। इसी यथार्थवादी प्रणाली मे, सामाजिक परिवेश को उन्होने, अपनी समस्त दुर्बलताओ एव शक्ति के साथ उभारा है। उनकी रचनाशैली मे, स्वाभाविकता पर विशेष बल है, किन्तु जैसे जैसे कथासूत्र आगे बढता जाता है, उसे वे आदर्श की ओर मोडते जाते है।

प्रेमचन्द जी के इस उपन्यास पर हैरियट स्टो की रचना 'अंकिल टॉम्स केबिन' का प्रभाव स्पष्ट है। अंग्रेजी के इस प्रसिद्ध प्रचारात्मक उपन्यास मे, उन्नीसवी शताब्दी मे संयुक्त राज्य अमरीका मे प्रचलित, दास-प्रथा का विश्लेषण किया गया है। इस कथात्मक विश्लेषण मे, यथार्थ के प्रति आग्रह के साथ, आदर्शवाद का स्पर्श है। प्रेमचन्द जी ने ठीक इसी प्रकार, अपने देश की एक प्रधान सामाजिक समस्या

वेश्याओ की व्यवस्था का यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख होता हुआ विश्लेषण उपस्थित किया है । हैरीयट स्टो तथा प्रेमचन्द ने अपनी अपनी समस्याओ के जो समाधान खोजे है, वे भी पर्याप्त मिलते जुलते हं हैरियट स्टो मे दासो की मुक्ति के लिए, टॉम काका की कुटिया को, आश्रय-स्थल के रूप मे प्रस्तुत किया है, प्रेमचन्द जी ने उसी, प्रकार वेश्याओ के उद्धार के लिये सेवा सदन का निमाण कराया है।

अंग्रेजो की प्रसिद्ध उपन्यास लेखिका जॉज इलियट का भी कुछ प्रभाव प्रेमचन्द जी पर है । हम पहले कह आये ह कि उन्होने इस उपन्यासकार की रचना 'साइलस मानर' का एक स्वच्छन्द ग्रहण 'सुखदास' (१९२०) प्रकाशित किया था । जॉर्ज इलियट ने अपनी इस रचना मे इग्लैंड के ग्रामीण जीवन का बडा यथाथ चित्र प्रस्तुत किया है । इस उपन्यासकार की एक अन्य विशेपता, चिन्तनशील चरित्रो की सृष्टि है । प्रेमचन्द जी ने इन दोनो ही प्रवृत्तियो को ग्रहण किया है । उनका 'सेवा सदन' उपन्यास, मूलत तो नागरिक कथानक को लेकर चलता है, पर साथ ही उसमे ग्रामीण जीवन का भी बडा यथार्थ चित्रण है । चिन्तनशील चरित्रो की सृष्टि का विधान भी उन्होने ग्रहण किया है, किन्तु उनके इस कोटि के चरित्र साइलस मनंर और अंकिल टॉम के समन्वय ह, उनका चिन्तन व्यावहारिक है ।

प्रेमचन्द जी के ऊपर, इस प्रकार प्रारम्भ से ही, पर्याप्त अंग्रेजी प्रभाव दर्शनीय है, और समय के विकास के साथ वह बढता भी गया है । किन्तु यह प्रभाव किसी अनुकरण-कर्ता के रूप मे नही, वरन् मौलिक प्रतिभा सम्पन्न कलाकार के रूप मे ग्रहण किया गया है, इसीलिये वह, रचना-विशेष के प्रभाव के रूप मे उतना नही, जितना पद्धतिगत एव सूक्ष्म है । रूस के विश्व प्रसिद्ध साहित्यकार टाल्सटाय का रचनाओ से भी प्रेमचन्द जी, अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही, प्रेरणा ग्रहण करते प्रतीत होते हैं, किन्तु यह प्रभाव भी प्रवृत्तिगत ही अधिक है । टाल्सटाय की लोक मगल के आदर्श को लेकर, साहित्य सृजन की विचारधारा को उन्होने अपनाया है, किन्तु जिस प्रकार टाल्सटाय का आदर्शवाद, ईसाई धर्म की विचारधारा से अनुप्राणित है, उसी प्रकार, प्रेमचन्द जी पर भारतीय साहित्य की आदर्शवादी परम्परा का थोडा-बहुत प्रभाव है ।

अन्य उपन्यासकार

अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से, इस काल के अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकार, ठाकुर जगमोहन सिंह तथा देवकीनन्दन खत्री हैं । ठाकुर जगमोहन सिंह का महत्व, हिंदी उपन्यास पर रेनाल्ड का प्रभाव प्रारम्भ करने की दृष्टि से है । उनका 'श्यामा स्वप्न' (१८९१) उपन्यास, अपनी रचना शैली की दृष्टि से तो सस्कृत के कथा साहित्य की

परम्परा मे है, किन्तु उसके प्रारम्भिक कथा भाग पर, रेनाल्ड के 'फाउस्ट' की छाया है। अंग्रेजी के इस उपन्यास मे, एक बडे घर की लडकी से प्रेम करने के कारण, फाउस्ट, जेल के सीकचो के पीछे बैठा, शोक की मुद्रा मे विचार करता हुआ दिखाया गया है। 'श्यामा-स्वप्न' का प्रारम्भ बिलकुल ऐसे ही प्रसग को लेकर हुआ है। रेनाल्ड का और व्यापक प्रभाव देवकीनदन खत्री के तिलस्मी उपन्यासो मे मिलता है। देवकीनन्दन खत्री की इस प्रकार की रचनाओ की मूल प्रेरणा, फारसी के तिलस्मी आख्यानो से मानी जाती है, किन्तु उनके रचना-काल मे, बगला तथा हिन्दी साहित्य दोनो मे, रेनाल्ड की विशेष ख्याति थी, इसलिए उन पर इस लेखक का भी प्रभाव हो, यह स्वाभाविक है। रेनाल्ड के उपन्यासो मे जिस प्रकार यूरोपीय सामन्तो की विलासिता, उनके दुर्गो, महलो आदि के तिलिस्म, तथा उनके बर्बरता पूर्ण कृत्यो आदि के वर्णन है, देवकीनन्दन खत्री के उपन्यासो मे उसी प्रकार, भारतीय सामन्तो के जीवन की इन्ही प्रवृत्तियो का चित्रण है। हिन्दी के इस उपन्यासकार की रचनाओ के चरित्र-चित्रण मे, जो कुछ पात्रो मे सद्वृत्ति का प्राधान्य तथा कुछ मे असद् वृत्ति का आधिक्य दिखाने की प्रवृत्ति है, उसके लिए भी रेनाल्ड की प्रेरणा सम्भव है। रेनाल्ड के तिलस्मी उपन्यासो मे 'दि ब्रान्ज स्टेच्यू' का प्रभाव, देवकीनन्दन जी के 'चन्द्रकान्ता सतति' तथा 'भूतनाथ' दोनो पर है। एजेला विल्डन, प्राग के राजमहल मे घुसते ही देखती है, कि कोई व्यक्ति शिरस्त्राण पहने हुए उसके प्रति अपना सिर नमित कर रहा है, एक हाथ उसकी ओर बढता हुआ उसे आतंकित कर रहा है, एक दिशा से उसकी ओर भाला बढता चला आ रहा है,[1] चन्द्रकान्ता के ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजीतसिंह ने भी एक जलाशय के बीच खडे महल मे कुछ इसी प्रकार का तिलस्मी दृश्य देखा है। 'भूतनाथ' मे, रोहतास गढ के तहखाने मे, भूतनाथ की मूर्ति के आगे कितने ही स्त्री पुरुषो के बलिदान के जो दृश्य प्रस्तुत किये गये हैं, वे रेनाल्ड के इस उपन्यास के अल्टेनडार्व कासिल के भयकर रहस्यो और उसकी पीतल की मूर्ति का स्मरण दिलाते हैं। देवकीनन्दन खत्री मौलिक प्रतिभा सम्पन्न लेखक थे, इसलिए उनकी रचनाओ मे अंग्रेजी के इस उपन्यासकार का प्रभाव, प्रेरणा के रूप मे है, अनुकरण के रूप मे नही। किशोरीलाल गोस्वामी की भाति, भारतीय आदर्शवाद का प्रभाव, खत्री जी पर भी रहा है, और उसी को लेकर वे रेनाल्ड की अस्वस्थ भावना से अपनी रक्षा कर सके हैं।

निष्कर्ष

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव के इस विश्लेषण के आधार पर, हम यह कह सकते हैं, कि इस साहित्यिक विधा के लिए यह प्रभाव, पर्याप्त उपयोगी सिद्ध

१—जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड . 'दि ब्रान्ज स्टेच्यू', पृ० ११

हुआ है। हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव, सर्व प्रथम बगला उपन्यासो के अनुवादो के माध्यम से आना प्रारम्भ हुआ। उसके बाद अंग्रेजी के उपन्यास अपने मूल रूप मे पढे गये, और उनके अनुवाद, रूपान्तर एव ग्रहण का क्रम चला। अंग्रेजी से अनुवादित आधे से अधिक उपन्यास जार्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड की रचनाएँ है। रेनाल्ड की रचनाओ के अनुवादो से ही सर्व प्रथम हिन्दी मे इस साहित्यिक विधा के विभिन्न रूप सामने आये, विशेष रूप से तिलस्मी, ऐतिहासिक एव सम-सामयिक जीवन से सम्बन्धित उपन्यास। रेनाल्ड के उपन्यासो का प्रभाव, बगला के उपन्यासकारो, स्वय बकिमचन्द्र की रचनाओ पर भी है। हिन्दी मे देवकीनन्दन खत्री के हिन्दी उपन्यासो मे, रेनाल्ड का प्रभाव सर्व प्रथम देखने को मिला। किशोरीलाल गोस्वामी ने, अंग्रेजी के इस उपन्यासकार की सभी प्रकार की कृतियो का व्यापक प्रभाव ग्रहण किया। गोपालराम गहमरी ने, प्रारम्भ मे, अंग्रेजी के जासूसी साहित्य के प्रभाव से ओत-प्रोत पचकौडी दे की बगला रचनाओ के अनुवाद किये। बगला के इस उपन्यासकार पर, विल्की कालिन्स और सर आर्थर कॉनन डॉयल का प्रभाव है। गहमरी जी ने, अंग्रेजी के इन उपन्यासकारो का प्रभाव, प्रारम्भ मे पचकौडी दे की रचनाओ के माध्यम से ही ग्रहण किया। प्रेमचन्द जी की रचनाओ के साथ, अंग्रेजी के स्वस्थ साहित्यिक उपन्यासकारो का प्रभाव आना प्रारम्भ हुआ। उनकी रचनाओ पर प्रारम्भ मे हम जार्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो आदि के प्रभाव देखते हैं।

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव के इस विश्लेषण से, हमे यह निष्कर्ष नही निकालना चाहिए, कि हिन्दी उपन्यासकार ने केवल अंग्रेजी के कथाकारो का अनुकरण मात्र किया है। यह तो सही है, कि हिन्दी उपन्यासकार ने, अंग्रेजी के कथाकारो रेनाल्ड, विल्की कालिन्स, आर्थर कॉनन डॉयल, जॉर्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो आदि का प्रभाव ग्रहण किया है, किन्तु यह प्रभाव प्रेरणागत अधिक रहा है। हिन्दी के उपन्यासकारो ने अपने युग की सामाजिक परिस्थितियो एव अपने देश की साहित्यिक परम्परा के प्रति सजग होकर, इस प्रभाव को आत्मसात किया है। किशोरीलाल गोस्वामी, यद्यपि रेनाल्ड से बहुत अधिक प्रभावित है, किन्तु उन्होने उसकी भाँति मनुष्य की शृगारिक एव षडयन्त्रकारिणी प्रवृत्तियो का रस लेते हुए अवश्य चित्रण नही किया है। उनके साहित्यिक दृष्टिकोण मे समाज परिष्कार की भावना भी रही है, और इसी दृष्टि से उन्होने सामाजिक विकृतियो का चित्रण किया है। प्रेमचन्द जी भी, यद्यपि अपनी औपन्यासिक दृष्टि मे अंग्रेजी प्रभाव से विशेष ओत-प्रोत हैं, किन्तु भारतीय साहित्य की आदर्शवादी परम्परा की छाप उनके ऊपर स्पष्ट है।

१०

हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव

प्राचीन भारतीय साहित्य, विशेष रूप से सस्कृत साहित्य, कहानियो की दृष्टि से बडा सम्पन्न है। सस्कृत मे इस साहित्यिक रूप के अनेक सग्रह है, गुणाढ्य कृत 'विहृद-कथा', क्षेमेन्द्र कृत 'विहृद-कथा-मजरी', सोमदेव कृत 'कथा-सरित-सागर' इत्यादि। इन ग्रथो मे सकलित कथाओ मे, आदशवादी दृष्टिकोण से, जीवन के अनेक मर्मस्पर्शी प्रसग उपस्थित किये गये है। ये कहानिया, एक निश्चित उद्देश्य, नैतिक आदर्शो के प्रचार की दृष्टि से, लिखी गई है, और इनमे मानव एव मानवेतर अन्य प्राणियो की चरित्रो के रूप मे अवतारणा है। आधुनिक हिन्दी कहानी जीवन का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती है, इसलिए उसे इन प्राचीन आदर्शवादी कथाओ से उद्भूत कहना समीचीन नही है। यह साहित्यिक विधा, हिन्दी साहित्य मे, आधुनिक काल मे, विशेष रूप से पाश्चात्य कहानी-कला के प्रभाव को लेकर विकसित हुई है। हिन्दी कहानी का शिल्प-विधान और उसमे अभिव्यक्त जीवन-दृष्टि, विशेष रूप से पाश्चात्य कहानी-कला के प्रभाव से अनुप्राणित है। हिन्दी कहानी ने, पाश्चात्य प्रभाव से प्रेरणा लेकर उद्भूत होने के अनन्तर, अपने विकास मे, सस्कृत के कथा साहित्य और भारतीय जन-कथाओ से भी शक्ति अर्जित की है।

इसलिए हिन्दी के इस साहित्यिक रूप पर, अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन करते हुए, इन प्रभावो का भी हम यथा-स्थान उल्लेख करते रहेगे।

अंग्रेजी कहानियो का अध्ययन

अंग्रेजी प्रभाव ने अन्य साहित्यिक रूपो की भाति, हिन्दी कहानी पर भी सर्व प्रथम, शिक्षा-सस्थाओ के माध्यम से, कार्य करना प्रारम्भ किया। हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजी के अग्रलिखित कहानीकार एव कहानी-सग्रह, विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत रहे नेथैनियल हॉथार्न (१७०४-६४) कृत 'टैगिल उड टेल्स' (१८५३) वाशिगटन इर्विन (१७८३-१८५६) कृत 'स्केच-बुक' (१८१६-२०), चार्ल्स किंग्सले (१८१६-७५) कृत 'दि हीरोज' (१८५५), शार्लट मैरी यग (१८२३-१६०१) कृत 'ए बुक ऑफ गोल्डेन डीड्स' (१८६४) तथा चार्ल्स एव मैरी लैम्ब कृत 'टैल्स फ्रॉम शेक्सपियर' (१८०७) । अंग्रेजी कहानिओ का एक सकलन भी, जिसका प्रकाशन 'वर्ल्ड क्लासिक्स सीरीज' के अन्तर्गत हुआ था, कई वर्षों तक पाठ्यक्रम मे स्वीकृत रहा था। इस सग्रह मे सर वाल्टर स्कॉट (१७७१-१८३२) की 'दि टू ड्रोवस', वाशिगटन इर्विन की 'रिपवैन विकिल', नेथैनियल हॉथार्न की 'दि थ्री फोल्ड रेस्टिग' एडगर एलन पो (१८०४-४६) की 'दि पिट ऐण्ड पैन्डुलम', श्रीमती गैस्किल की 'दि स्क्वायर्स स्टोरी', डॉ० जॉन ब्राउन की 'रैब ऐण्ड हिज फ्रेन्ड्स्', चार्ल्स डिकेन्स (१८१२-७०) की 'दि सेविन पुअर ट्रैवलस, एन्थोनी ट्रोलॉप (१८१५-२२) की 'मालचीज लव', जॉज मेरिडिथ (१८२८-१६०६) की 'दि पनिश्मेट ऑफ शाहपेश', विलियम हेल ह्वाइट की 'मिस्टर ह्विटेकस रिटायरमट', फ्रैंसिस ब्रेट हार्ट की 'दि इलियड ऑफ सैण्डीवार', रॉबर्ट लूई स्टिवेन्सन (८१५०-६४) की 'प्रॉविडैन्स ऐण्ड दि गीटार' कहानियो सकलित थी।

हिन्दी कहानी के विकास को अंग्रेजी, की केवल इन गद्य कथाओ से ही प्रेरणा नही मिली, इस भाषा के कुछ कथा-काव्यो ने भी, इस विकास मे योग दिया है। अंग्रेजी के लघु कथा-काव्य, जो विभिन्न पाठ्यक्रमो मे स्वीकृत रहे, गोल्डस्मिथ (१७३०-७४) कृत 'हरमिट' (१७६४), परनेल (१६७४-१७१८) कृत 'हरमिट', टेनिसन (१८०६-६२) कृत 'दि प्रिसेस' (१८४७) एनॉक आर्डेन' (१८६४), 'एलमर्स फील्ड' (१८६४), 'दि लेडी ऑफ शैलॉट' (१८५२), 'डोरा' (१८३३) तथा अन्य, मेकॉले (१८००-५६) कृत 'लेज ऑफ एन्शेंट रोम' (१८४२), लॉगफेलो (१८०७-८२) कृत 'इवैन्जिलीन' (१८४७) इत्यादि हैं। हिन्दी कहानी के विकास, मे फ्रास के हास्य-नाटककार मोलियर के नाटको के अंग्रेजी सस्करणो का भी कुछ योग रहा है।

अंग्रेजी की गद्य कथाओ मे 'टैंगिल उड टेल्स' मे तो, एक नवयुवक ने कुछ

किशोरियो को, प्राचीन ग्रीक लोक-गाथाओ के कुछ प्रसग सुनाये है। इर्विन कृत 'स्केच बुक' मे कुछ तो निबन्ध है, और कुछ यूरोप की जन-कथाओ के साहित्यिक सस्करण है। पाश्चात्य आलोचको का कहना है, कि ये जर्मनी की लोक-कथाओ के अमरीकी सस्करण है। चार्ल्स किंगसले ने 'दि हिरोज' मे प्राचीन यूरोपीय वीरो के आख्यान उपस्थित किये है। इसी प्रकार 'ए बुक ऑफ गोल्डेन डीडस' मे भी, असीम साहस और महान उद्देश्यो के लिये आत्म-बलिदान के प्रसग सगृहीत है। चार्ल्स एव मेरी लैम्ब ने, शेक्सपियर के सभी प्रकार के नाटको को, कहानी का रूप देकर प्रस्तुत किया है। अंग्रेजी कहानियो के सकलन मे इस साहित्यिक रूप के अनेक प्रकार है, साहसिक आख्यान, मनोवैज्ञानिक प्रसग, काल्पनिक वृत्त एव यथार्थ घटनाओ के विवरण। इस प्रकार उसमे मानव रुचि के व्यापक स्वरूप का दिग्दर्शन है। इन कहानियो का रचना शिल्प भी, कभी तो बडा सरल और कभी बडा कलात्मक है। कथा-काव्यो मे, मेकॉले के 'दि लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम' को छोडकर, जिसमे साहस और आत्म-बलिदान की कथाए सकलित है, सभी मे असफल प्रेम के प्रसग है।

हिन्दी-प्रदेश के विभिन्न पाठ्यक्रमो मे स्वीकृत कहानियो के सकलनो मे, आज के अर्थ मे कहानिया नही है, यद्यपि समष्टि रूप मे, उनमे इस साहित्यिक विधा के विकास की रूप-रेखा अवश्य स्पष्ट हो जाती है। आधुनिक अर्थ मे, कहानी वह साहित्यिक रचना है, जो एक छोटे से कथा-क्रम के सहारे, जीवन के विभिन्न पक्षो मे से किसी एक पर प्रकाश डालती है। अंग्रेजी के इन सभी ग्रथो मे, जिन्होने हिन्दी कहानी के विकास मे योग दिया है, इस सीमित अर्थ की कहानी का स्वरूप नही है। इन ग्रथो मे सकलित रचनाओ के शीर्षको से ही यह स्पष्ट हो जाता है, कि वे लोक-कथाए, रेखा-चित्र, कथा-काव्य आदि है। अंग्रेजी कहानी का विकास, साहित्य की इन्ही विधाओ से हुआ है। अंग्रेजी की लोक-कथा मे, एक शिथिल से और छोटे कथा-सूत्र को लेकर, कभी जीवन का यथार्थवादी और कभी काल्पनिक चित्रण उपस्थित किया जाता था। रेखा-चित्र मे, कथातत्व से अधिक वातावरण, की सृष्टि पर बल दिया जाता है। कथा-काव्य मे भी, कथातत्व के स्थान पर, जीवन के भावात्मक पक्षो की अभिव्यक्ति पर बल होता है।

अंग्रेजी मे जब इन विभिन्न साहित्यिक विधाओ से, कहानी का विकास प्रारम्भ हुआ, तो उसे सर्व प्रथम 'शॉर्ट प्रोज नरेटिव' (लघु गद्य कथानक) कहा गया।[1] एडगर एलन पो का, जिन्होने सर्व प्रथम इस सज्ञा का प्रयोग किया था, कहना है कि

१—जोजेफ टी० शिपले 'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर', १९६ , पृ० ३७३

इस साहित्यिक रूप के अन्तर्गत वे लघु-कथाए आनी चाहिएं, जिनके पढने मे आधे घन्टे से लेकर, दो घन्टे तक का समय लगे। इस सक्षिप्तता मे, इस साहित्यिक रूप के रचना-विधान की ओर भी सकेत है।[१] पो का कहना था, कि कहानी लेखक को प्रभाव की पूर्णता पर दृष्टि रखनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति मे वह घटना-विधान तथा रचना-शैली मे औचित्य तथा सक्षेप का साहरा ले सकता है। अंग्रेजी मे इस साहित्यिक विधा के लिए प्रचलित सज्ञा 'शार्ट स्टोरी' का प्रयोग, सर्व प्रथम अमरीकी आलोचक ब्रैन्डर मैथ्यूज ने, अपने ग्रन्थ 'दि फिलॉसफी ऑफ शॉर्ट स्टोरी' (१८८५) मे किया था।[२] उसका कहना था, कि 'शॉर्ट स्टोरी' वह कथा है जो शॉर्ट' अर्थात् छोटी हो।

हिन्दी कहानी को भी अपने विकास मे, अंग्रेजी कहानी की भाँति, इन विभिन्न अवस्थाओ को पार करना पडा है, किन्तु उसने शताब्दियों के विकासक्रम को कुछ वर्षो मे ही प्राप्त कर लिया है। इस द्रुतगति पूर्ण विकास की प्रक्रिया मे, उसे अंग्रेजी के इस साहित्यिक रूप की रचनाओ के अध्ययन एव अनुवाद से विशेष सहायता मिली है। हिन्दी मे इस साहित्यिक विधा के सर्व प्रथम प्रयोग, अंग्रेजी कहानियो के अनुवाद एव ग्रहण से ही आरम्भ हुए। उसके बाद सस्कृत के कथा साहित्य और जन-भाषा की लोक-कथाओ को ग्रहण किया गया। बगला के कथा साहित्य ने, हिन्दी के पूर्व ही, अंग्रेजी प्रभाव आत्मसात् करना आरम्भ कर दिया था, और उसके अनुशीलन से, हिन्दी मे इस साहित्यिक विधा के विकास को, विशेष बल मिला। इन विभिन्न प्रभावो के फलस्वरूप ही, हिन्दी कहानी का समुचित विकास सम्भव हुआ है।

प्रारम्भिक कथाएँ

अंग्रेजी प्रभाव जिन दिनो आना प्रारम्भ हुआ था, उन्ही दिनो बिना उसकी प्रेरणा के, इशा अल्ला खाँ ने अपनी प्रसिद्ध कृति 'रानी केतकी की कहानी' (१८०२) उपस्थित की। इशा ने सम्भवत हिन्दी-प्रदेश की एक लोक-कथा को, जनसाधारण की भाषा मे, अपनी साहित्यिक प्रतिभा से अनुप्राणित करके, उपस्थित कर दिया था। जब उन्होने यह रचना प्रस्तुत की थी, वे लब्ध-प्रतिष्ठ साहित्यकार थे, इसलिए उनकी इस कृति मे, उनकी मौलिक प्रतिभा का भी पर्याप्त योग है। उनकी इस रचना मे, कहानी के यदि सभी तत्व नही, तो थोड़े-बहुत अवश्य हैं, किन्तु इसे हम इस साहित्यिक रूप का प्रयोग मात्र ही कह सकते हैं। इशा ने स्वय इसके बाद इस

१—जोजेफ टी० शिपले 'डिक्शनरी ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर', पृ० ३७३

२—वही, पृ० ३७३

रूप की कोई रचना नही प्रस्तुत की, और जब अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी साहित्य पर पूर्ण शक्ति के साथ कार्य करना आरम्भ किया, तभी कहानी अपने समस्त रचना-विधान को लेकर हिन्दी मे अवतरित हुई।

अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भिक दिनो मे अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे, किन्तु बिना अंग्रेजी साहित्य के ज्ञान के ही, सदल मिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' (१८१३) के रूप मे एक प्रयोग उपस्थित किया। यह रचना सस्कृत साहित्य से प्रेरणा लेकर लिखी गयी थी। इस प्रयोग के अनन्तर, इस प्रेरणा से भी अन्य कोई रचना नही उपस्थित की गयी। इस प्रकार सदल मिश्र के इस प्रयास से भी, हिन्दी कहानी का प्रारम्भ स्वीकार करना उचित नही है।

हिन्दी मे, गद्य रूप मे लिखित इन कथात्मक रचनाओ को, हिन्दी कहानी के प्रथम उदाहरण तो नही कहा जा सकता, किन्तु इन से उन दो प्रभावो का सकेत अवश्य मिलता है, जिन्होने, अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, हिन्दी कहानी का प्रारम्भ हो जाने के अनन्तर, उसके विकास मे विशेष योग दिया है। उनमे से एक तो सस्कृत कथा साहित्य और दूसरा जन-भाषाओ की लोक-कथाओ का प्रभाव है। हिन्दी कहानी पर अंग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण के पूर्व, हम इन प्रभावो की भी विवेचना करेगे।

प्रारम्भिक प्रयोग

अंग्रेजी कहानी ने, यद्यपि अब उसके मध्य-युगीन और पुनर्जागरण काल के रूप खोज लिये गये हैं, अपना वास्तविक विकास 'दि टेटलर' तथा 'दि स्पेक्टर आदि पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन से प्रारम्भ किया था। हिन्दी कहानी भी, हिन्दी की प्रथम पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३) मे, अपने प्रारम्भिक रूप में प्रकट हुई। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पादित, इस पत्रिका मे प्रकाशित सर्व प्रथम कहानी 'मार्टिन वाल्डेक का भाग्य' थी। यह एक जर्मन लोक-कथा पर आधारित, भूतो की कहानी है, और सम्भवत इसे किसी अंग्रेजी सस्करण से अनुवादित किया गया था। इस अनुवादित रचना के अनन्तर, दो मौलिक प्रयोग 'गुण सिन्धु' तथा 'एक शोक सवाद' प्रकाशित हुए। 'गुण सिन्धु' तो असफल प्रणय की पीडा भरी कहानी है, और 'एक शोक सवाद' मे, किशोरावस्था की एक हिन्दू विधवा की मानसिक व्यथा का वर्णन है। पाश्चात्य साहित्य की दुखान्तकी विधा का प्रभाव, इन दोनो ही प्रयोगो मे है। 'गुण सिन्धु' पर तो अंग्रेजी प्रभाव और भी प्रकट है, उसका नायक अपने अत्यधिक दुख के क्षणो मे, अंग्रेजी कवि टॉमस मूर की कुछ पंक्तियाँ दोहराने लगता है।

इन प्रारम्भिक प्रयोगो के पश्चात् राजा शिव प्रसाद ने, अंग्रेजी की दो कहानियो को, अग्रलिखित शीर्षको 'सैनफोर्ड और मटन की कहानी' (१८७७) और 'राजा

भोज का सपना' (१८७७) मे उपस्थित की। इन दोनो कथाओ के मूल लेखक टुर्नर कहे गये है,[1] किन्तु अंग्रेजी साहित्य मे यह नाम उपलब्ध नही है। 'दि हिस्ट्री ऑफ सैनफार्ड एण्ड मर्टन' (१७८३-८९) टॉमस डे की एक प्रसिद्ध रचना है। उसमे बालको को दृष्टि मे रखकर, यह स्पष्ट किया गया है, कि सद्‌विचारो की शिक्षा देकर, मनुष्य को सत्कार्यो की ओर प्रवृत्त किया जा सकता है।[2] राजा साहब ने, इस कहानी को, स्वच्छन्द रूप में ग्रहण करते हुए भी, मूल चरित्रो के नाम एव वातावरण को बनाये रक्खा है। अपने दूसरे अनुवाद मे उन्होने, चरित्रो के नाम परिवर्तित कर दिये हैं, तथा भारतीय वातावरण भी प्रदान कर दिया है, इसीलिए यह मूल भरातीय कथा जैसी लगती है। इस कहानी मे भी नैतिक आदर्शो की प्रतिष्ठा का प्रयास है।

इन प्रारम्भिक प्रयोगो के अनन्तर, हिन्दी मे कहानी के क्षेत्र मे यदा-कदा और प्रयास भी होते रहे। बालकृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) की 'नूतन ब्रह्मचारी' (१८८६) शीर्षक रचना, यद्यपि उसे लेखक ने उपन्यास कहा है, वस्तुत कहानी है। इसके अनन्तर काशीनाथ खत्री ने, लैम्ब की कृति 'टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर' का अनुवाद दो भागो मे प्रकाशित किया—'शेक्सपियर के परम मनोहर नाटको के आशय' (१८८३-८६)। शेक्स-पियर के नाटको के कथानको ने, इस अनुवाद के अतिरिक्त, अन्य प्रकार से भी, हिन्दी कहानी के विकास मे योग दिया है, यथा स्थान उसका भी उल्लेख होगा।

'सरस्वती'

सन् १९०० मे, प्रयाग से 'सरस्वती' के प्रकाशन के साथ, हिन्दी कहानी का व्यवस्थित विकास प्रारम्भ हुआ। इस विकास मे योग देने वाले सभी स्रोत, इस पत्रिका मे देखने को मिलते है। अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव तो हिन्दी कहानी के लिए आधारभूत महत्व का रहा है, किन्तु उसके साथ ही, सस्कृत के कथा साहित्य एव लोक-कथाओ ने भी, उसमे पर्याप्त योग दिया है, बगला कहानी ने भी, जो अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे ही उद्‌भूत और विकसित हुई थी, हिन्दी कहानी के विकास मे समुचित सहायता दी है। 'सरस्वती' पत्रिका मे प्रकाशित विभिन्न कहानियो मे, इन सभी स्रोतो का योग दर्शनीय है।

हिन्दी कहानी के विकास मे, अंग्रेजी साहित्य का योग, शेक्सपियर के नाटको के कथारूप मे ग्रहण से प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम शेक्सपियर के नाटक 'सिम्बेलीन' को कथा-रूप मे (१९०१) ग्रहण किया गया। इसके अनन्तर 'पेरीक्लीज' का ग्रहण, दो

१—डॉ० माता प्रसाद गुप्त - 'हिन्दी पुस्तक साहित्य', पृ० २५५

२—सर पॉल हर्वे (सं०) 'दि ऑक्सफोर्ड कम्पेनियन टु इगलिश लिट्रेचर' (१९४६), पृ० ६६५

अंकों में प्रकाशित हुआ। फिर 'दि विन्टस टेल' का ग्रहण 'अद्भुत योगायोग' (१९०३) संज्ञा में हुआ। इसके कुछ वर्ष बाद 'हैमलेट' का एक कथारूप में ग्रहण, आलोचनात्मक भूमिका के साथ प्रकाशित हुआ। शेक्सपियर से गृहीत इन सभी गद्य कथाओं में, लैम्ब की कृति 'टल्स फ्रॉम शेक्सपियर' का सहारा नहीं लिया गया है। इनमें से कुछ ग्रहण तो, जैसे सिम्बेलीन', लोक-कथा के रूप में हैं। 'सरस्वती' में प्रकाशित इस साहित्यिक रूप के प्रारम्भिक प्रयोगों में, शेक्सपियर का प्रभाव कितना अधिक है, यह किशोरी लाल गोस्वामी की कहानी 'इन्दुमती' से स्पष्ट है। इस कहानी को, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने, हिन्दी की सबसे पहली कहानी कहा है,[1] इस कहानी का कथासूत्र शेक्सपियर के नाटक 'दि टेम्पेस्ट' से पर्याप्त मिलता जुलता है।

'सरस्वती' में अंग्रेजी से अनुवादित कहानियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है, किन्तु उनका प्रभाव पर्याप्त रहा है। इस पत्रिका में अंग्रेजी से अनुवादित होकर सर्व प्रथम प्रकाशित कहानी, मूलत एक फ्रांसीसी कथा थी, और उसे 'जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' (१९०७) शीर्षक देकर, प्रकाशित किया गया था। इसके अनन्तर स्वामी सत्यदेव का एक अमरीकी कहानी का अनुवाद 'आश्चर्य जनक घन्टी' (१९०८) प्रकाशित हुआ। यह एक वैज्ञानिक आविष्कार की मनोरंजक कथा थी। इसके बाद एक अमरीकी लेखक वाल्टर सवेज लेन्डॉर की रचना 'राजा रानी' शीर्षक देकर (१९१२) अनुवादित हुई। वृंदावनलाल वर्मा ने भी, इंग्लैंड के नारी जागरण की एक कथा 'सफ्रेजिस्ट की पत्नी' (१९१४) शीर्षक देकर अनुवादित की। इंग्लैंड की एक परियों की कहानी भी 'हीरो की रानी' (१९१८) शीर्षक से गृहीत हुई थी। इसके अनन्तर 'स्वप्न' (१९१९) शीर्षक एक रचना, 'द ह्यूमर ऑफ फ्रांस' ग्रन्थ से अनुवादित होकर प्रकाशित हुई।

'सरस्वती' के अतिरिक्त, काशी से प्रकाशित 'इन्दु' पत्रिका ने भी, हिन्दी कहानी के प्रारम्भिक विकास में विशेष योग दिया है। इस पत्रिका में शेक्सपियर के नाटकों के कहानी रूप में, ग्रहण तो नहीं प्रकाशित हुये, किन्तु अंग्रेजी की कुछ कहानियों के अनुवाद अवश्य प्रकाश में आये। फ्रांस के मोलियर से प्रेरणा लेकर, हिन्दी में हास्य रचनाओं की ओर प्रवृत्त जी० पी० श्रीवास्तव ने, इस पत्रिका में अंग्रेजी की एक हास्य रचना को 'झंपू की कथा' (१९१३) शीर्षक देकर प्रकाशित किया। इसके अनन्तर जोजेफ एडिसन की प्रसिद्ध रचना 'दि विजन ऑफ मिर्जा', 'मिर्जा का स्वप्न' (१९१९) शीर्षक

---

१ रामचन्द्र शुक्ल 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', स० १९५८, पृ० ५०३

देकर अनुवादित हुई । इन अनुवादो के अतिरिक्त राइडर हैगर्ड के प्रसिद्ध उपन्यास 'शी' को, एक कहानी का रूप देकर, 'जीवनाग्नि' शीर्षक के साथ प्रकाशित किया गया । प्रसिद्ध अमरीकी कथा 'रिपवैन विंकिल' भी हिन्दी मे अनुवादित हुई ।

हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित इन अनुवादो के साथ, अग्रेजी से गृहीत कुछ रचनाए भी प्रकाश मे आई । किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' का कथा-सूत्र शेक्सपियर के 'दि टेम्पेस्ट' के कथानक से इतना मिलता जुलता है, कि उसे हमे ग्रहण ही कहना चाहिए। 'टेम्पेस्ट' का कथासूत्र है मिलान का शासक प्रॉस्पेरो, अपनी पुत्री मिराडा के साथ, अपने छोटे भाई द्वारा एक निर्जन द्वीप मे निर्वासित किया जाता है । प्रॉस्पेरो को उस द्वीप पर रहते हुए बारह वर्ष व्यतीत हो जाते हैं, तब एक दिन वह इन्द्रजाल के सहारे, अपने द्वीप के पास ही, एक जहाज को दुर्घटना ग्रस्त करा देता है । उस जहाज मे उसका छोटा भाई, उसके सहायक नेपुल्स के सम्राट, और उसका पुत्र फर्डिनेन्ड है, इसलिए इस जहाज के साथ यह इन्द्रजालिक प्रयोग किया गया है । उस जहाज के सभी यात्री, उस द्वीप पर सुरक्षित उतर आते हैं, किन्तु प्रॉस्पेरो अपने मायाजाल से, फर्डिनेन्ड को सबसे अलग करके, अपनी पुत्री मिराडा के पास पहुचा देता है । फर्डिनेन्ड और मिराडा, एक दूसरे को देखकर, स्नेह विह्वल हो उठते हैं । प्रॉस्पेरो यह देखकर, मिराडा के प्रति फर्डिनेन्ड के स्नेह की परीक्षा के लिए, उसे बडे कठोर श्रम का कार्य सौंपता है । फर्डिनेन्ड उस कार्य को बडे स्नेह के साथ सम्पन्न करता है । प्रॉस्पेरो तब, अपने स्वप्न को साकार होते हुए देखकर, जहाज को पुन ठीक अवस्था मे उपस्थित कर देता है, और यह घोषणा करता है कि वह इन्द्रजालिक प्रयोगो को छोड देगा । फर्डिनेन्ड और मिराडा के विवाह का निश्चय हो जाता है, और प्रॉस्पेरो भी अन्य लोगो के साथ स्वदेश लौटने की तय्यारी करने लगता है । गोस्वामी जी की 'इन्दुमति' की कथा भी बहुत कुछ ऐसी ही है । अतर केवल इतना है, कि इन्दुमती का पिता इन्द्रजालिक नही है, और वह नवयुवक जो उसे देख कर स्नेह विह्वल हो उठता है, उसके पिता के शत्रु का पुत्र नही, वरन् उसके पिता के शत्रु का वध करने वाला है । इन्दुमती के पिता ने, यह प्रतिज्ञा की थी, कि वे उसी व्यक्ति को अपनी पुत्री का हाथ देंगे, जो उसके राज्य को हडप कर उसे निर्वासित करने वाले, इब्राहीम लोदी का वध करेगा । इन्दुमती के प्रति आकर्षित राजकुमार ने, इब्राहीम लोदी को पराजित करके उसका वध किया है, और इस प्रकार उसने उसके साथ विवाह का अधिकार प्राप्त कर लिया है । अत मे इन्दुमती के साथ उसका विवाह भी हो गया है । इस प्रकार गोस्वामी जी की यह कहानी, शेक्सपियर के 'टेम्पेस्ट' के कथासूत्र का, एक स्वच्छन्द ग्रहण है ।

अंग्रेजी के कुछ कथा-काव्य भी, हिन्दी कहानी पर अपनी स्पष्ट छाप छोड गए है। गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पति का पावन प्रेम' कहानी, जो 'सरस्वती' (१६०३) मे प्रकाशित हुई थी, टेनिसन् के कथा-काव्य 'एनॉक आर्डन' पर आधारित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय', जो 'सरस्वती' मे सन् १६०३ मे प्रकाशित हुई, लॉगफेलो की रचना 'एवैन्जेलीन' तथा गोल्डस्मिथ की कृति 'हरमिट' के कथासूत्रो को मिलाकर लिखी गई है। किन्तु इस कहानी की रचना-शैली, शुक्ल जी की अपनी है। इसीलिए वह पूर्णतं मौलिक रचना कही जा सकती है। इस कहानी की कथा है सध्या का समय हे, पर्यटन के लिये निकले दो मित्र, कौतुहलवश एक पुराने गाव के खडहर मे प्रविष्ट होते है। कभी नदी की बाढ ने उस गाव को विनष्ट कर दिया था। उसके एक फूटे घर मे, सयोग से उन्हे एक स्त्री मिल जाती है, वे उससे उसका परिचय पूछते है, और इस निर्जन तथा भयानक स्थान मे वह क्यो रह रही है, यह जानना चाहते हैं। वह अपनी कथा सुनाती है उसका विवाह, जब वह छोटी ही थी, इसी गाव मे हुआ था। उसका पति भी विवाह के समय बच्चा ही था, जब बाढ आई और यह गाव खाली होने लगा, तो उसका पति कही खो गया। उसके स्वसुर ने उस समय अपने पुत्र को खोजने का बहुत प्रयत्न किया था, किन्तु वे असफल रहे थे। वह विवाह के अनन्तर अपने पति के घर नही आई थी, और उनके खो जाने के बाद अपने माता पिता के साथ, तथा उनके देहावसान के बाद, अपने भाई के साथ रहती रही। किन्तु उसे वहा आत्मिक शांति का अनुभव नही होता था, इसीलिए वह वर्षो से, इस स्थान को अपने पति का घर समझ कर रह रही है। उस स्त्री की कहानी समाप्त होते ही, उन दो मित्रो मे से एक ने, अपनी जीवन-कथा सुनाना आरम्भ कर दिया, और अन्त मे यह प्रकट हुआ कि वही उस स्त्री का पति है। उसके बाद वे दोनो पति पत्नि के रूप मे रहने लगे। इस कहानी मे, भारतीय जीवन-धारा को दृष्टि मे रखते हुये, अग्रेजी के दोनो कथा-काव्यो के कथानको को एक साथ जोडकर थोडा-बहुत परिवर्तित कर लिया गया है।

अग्रेजी साहित्य से गृहीत इन रचनाओ के अतिरिक्त पोप की 'टेम्पिल ऑफ फेम' रचना को लक्ष्मीधर वाजपेयी ने 'विधारण्य' (१६०७) शीर्षक देकर ग्रहण किया। यह वस्तुत एक प्रतीकवादी काल्पनिक कथा है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने भी बेल्जियम के प्रसिद्ध नाटककार मॉरिस मेंतरलिंक के काव्य-नाटक 'दि प्रिंमेस' के कथा सूत्र को लेकर 'अन्नपूर्णा का मदिर' शीर्षक एक कहानी लिखी थी।

अन्य प्रभाव

सस्कृत कथा साहित्य के प्रभाव ने, अग्रेजी प्रभाव के साथ ही कार्य करना प्रारम्भ

कर दिया था। शेक्सपियर के नाटको की कथाए जब, कहानी के रूप मे, हिन्दी मे उपस्थित की जाने लगी, तो सस्कृत साहित्य के पडितो ने, सस्कृत नाटको के कथा सूत्रो का आधार लेकर, कहानियाँ लिखना आरम्भ किया। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) ने 'सरस्वती' मे सस्कृत नाटको पर आधारित अनेक कहानिया प्रकाशित की। सर्व प्रथम श्रीहर्ष की 'रत्नावली' 'सरस्वती' (१९०१) मे कहानी रूप मे प्रकट हुई। उसके अनन्तर कालिदास कृत 'मालविकाग्नि मित्र' (१९०४) मे प्रकाशित हुई। सन् १९१४ मे चन्द्रमौलि शुक्ल ने, हर्ष के 'नागानन्द' नाटक को कहानी का रूप दिया। इसके अनन्तर उन्होने 'नाट्य कथामृत' मे सस्कृत के और भी कई नाटको के कथा सूत्रो को लेकर उन्हे कहानी रूप मे उपस्थित किया।

आचार्य द्विवेदी ने सस्कृत कथा साहित्य के कुछ ग्रहण भी अपनी 'सरस्वती' मे प्रकाशित किये। उन्होंने स्वय 'कथा सरित सागर' का आधार लेकर कई कहानिया लिखी थी। सन् १९०२ मे उनकी एक इसी प्रकार की रचना 'काकतालीय घटना' प्रकाश मे आयी। वह भी सस्कृत नाटको के कथानको की भाति, राज परिवार की प्रणय-कथा थी। इसके अनन्तर उन्होने, 'तीन देवता' शीर्षक 'कथा सरित सागर' से गृहीत एक कहानी प्रकाशित की। इसमे उन्होने 'कथा सरित सागर' से कथानक मात्र ग्रहण कर के उसे अग्रेजी प्रभाव से गृहीत आत्मकथात्मक शैली मे उपस्थित किया था। इस कहानी मे वररुचि ने, अपनी पत्नी उपकोशा द्वारा राज्य के वरिष्ठ अधिकारियो से अपनी सम्मान रक्षा का प्रसग उपस्थित किया था। सन् १९०६ मे जेमिनी पुराण से गृहीत 'चन्द्रहास का उपाख्यान' 'सरस्वती' मे प्रकाशित हुआ। काशी की 'इन्दु' पत्रिका ने भी सस्कृत से गृहीत 'ब्रह्मर्षि' और 'पचायत' शीर्षक दो कहानिया प्रकाशित की। ये दोनो ग्रहण जयशकर प्रसाद (१८८९-१९३७) ने प्रस्तुत किये थे। प्रसाद जी ने इसके अनन्तर स्वच्छन्दतावादी भावना से ओत-प्रोत अनेक मौलिक कहानिया भी लिखी।

सस्कृत कथा साहित्य के प्रभाव के साथ-साथ भारतीय लोक-कथाओ ने भी, हिन्दी कहानियो के विकास को गति दी है। अग्रेजी की प्रसिद्ध पत्रिका 'मॉडर्न रिव्यू' मे उन दिनो 'शेखचिल्ली' के उपनाम से कोई सज्जन, अनेक भारतीय लोक-कथाओ को कहानी रूप मे प्रकाशित कर रहे थे। इन लोक-कथाओ के भी 'सरस्वती' मे, कई अनुवाद प्रकाशित हुए। यह वास्तव मे वडा विचित्र योग रहा, कि भारतीय लोक कथाए अग्रेजी से अनुवादित होकर हिन्दी मे आई।

बगला से अनुवाद

हिन्दी मे बगला से अनुवादित कहानियो की सख्या भी बहुत अधिक है। बगला

कथाकारो मे सर्वप्रथम, रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानियो के अनुवाद हुये। सबसे पहले उनकी कहानी 'मुक्ति का उपाय (१६०१) अनुवादित हुई। उसके बाद 'दान प्रति दान' (१६०६), 'पक्का गठव धन' (१६०७) 'दलिया' (१६०८) 'एक रात्रि' (१६११) 'प्रायश्चित' (१६१३) 'नीचता और उदारता' (१६१५), 'पडोसिन' (१६१-), 'तोते की शिक्षा' (१६१८) प्रकाशित हुई। इनमे से अधिकाश अनुवाद 'वग महिला' के द्वारा प्रस्तुत किये गये थे। एक दो अनुवाद विश्वनाथ शर्मा ने भी किये, और आगे चलकर उन्होने मौलिक कहानिया भी लिखी। रवीन्द्रनाथ के अतिरिक्त 'वग महिला' ने वगला के कुछ अन्य कहानीकारो की रचनाए भी अनुवादित की। इन सभी कहानियो मे, पाश्चात्य कथा-शिल्प को लेकर, भारतीय जीवनधारा के वडे यथार्थवादी चित्र उपस्थित किये गये थे। इन अनुवादो के प्रकाशन के साथ-साथ 'सरस्वती' के प्रकाशक, इडियन प्रेस के प्रवन्धक, गिरिजा कुमार घोष ने 'लाला पार्वती नदन' के नाम से, हिन्दी मे कई कहानिया लिखी। उनकी पहली कहानी 'भूतो की हवेली' (१६०३) थी, यह 'सरस्वती' म तीन अको मे प्रकाशित हुई थी। 'लाला पार्वती नदन' की अन्य कहानिया, 'रामलोचन झा' (१६०४), 'मेरा पुनर्जन्म' (१६०६) और 'एक एक के दो दो' (१६०६) थी। वगला की 'विज्ञान दर्पण' पत्रिका से एक वैज्ञानिक कथा 'अज्ञान और विज्ञान' (१६०४) भी हिन्दी मे रूपान्तरित हुई। यह कहानी दो भागो मे प्रकाशित हुई थी, और उसमे प्राचीन सस्कारो से ग्रस्त एक भारतीय सज्जन के, वैमानिक यत्रो से सुसज्जित एक अग्रेज मित्र के घर जाने पर विचित्र अनुभवो का वर्णन था। 'इन्दु' मे भी वगला से अनुवादित कई कहानिया 'कनकलता' (१६१३), 'लज्जा' (१६१३),'मान और समाज एक दृश्य' (१६१३), 'सग्राम' (१६१५), 'किरन' (१६१५) आदि प्रकाशित हुई थी। इन कहानियो मे भी 'सरस्वती' मे प्रकाशित कहानियो की भाति, भारतीय जीवन धारा के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये थे।

हिन्दी कहानी के विकास मे सहायक इन विभिन्न प्रभावो मे, अग्रेजी प्रभाव सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा है। अग्रेजी कथा साहित्य के सम्पर्क से ही, हिन्दी कहानी की वाह्य रूपरेखा और अन्तर्धारा का निर्माण हुआ था। इस निर्माण की प्रक्रिया मे, अग्रेजी की भूलो से सबधित लोक कथाओ से लेकर, वैज्ञानिक कहानी तक का योग रहा है। सस्कृत कथा साहित्य के फलस्वरूप तो, हिन्दी को स्वच्छन्दतावादी प्रेमाख्यान और नैतिकतापूर्ण कथाए ही मिली थी। सस्कृत साहित्य के कथानको को लेकर भी महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने, अभिव्यञ्जना प्रणाली अग्रेजी की ही अपनाई। भारतीय लोक-कथाए भी, हम अभी कह आए है, अग्रेजी से अनुवादित

होकर ही, हिन्दी मे आई । इस प्रकार उनके साथ भी थोडा-बहुत अंग्रेजी प्रभाव आया । बगला कहानियो के माध्यम से भी अंग्रेजी प्रभाव हिन्दी मे आया है। बगला का कथा साहित्य, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे ही विकसित हुआ था। इस प्रकार उसके माध्यम से आया हुआ प्रभाव प्रकारान्तर से अंग्रेजी प्रभाव ही रहा है। बगला कथाओ के अनुवाद से, कहानी का रचना-विभाग हिन्दी लेखको को और भी स्पष्ट हो गया। बगला से अनुवादित कथाए भी भूतो की कहानियो से लेकर, वैज्ञानिक प्रसग तक हैं। इस प्रकार अंग्रेजी प्रभाव की भाति, बगला कहानियो ने भी, हिन्दी कहानी को विशेष बल दिया है। बगला कहानी ने, अंग्रेजी प्रभाव प्रदान करने के साथ-साथ, कुछ अपना मौलिक प्रभाव भी दिया है, किन्तु यहा हमे केवल अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना करनी है।

किशोरीलाल गोस्वामी एव अन्य प्रारम्भिक कथाकार

हिन्दी कहानी का व्यवस्थित विकास किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५-१९३२) की रचनाओ 'इन्दुमती' (१९००) और 'गुलवहार' (१९०२) से प्रारम्भ होता है। प्रथम कहानी के सम्बन्ध मे हम पहले ही कह आये है, कि उस पर शेक्सपियरके नाटक 'टेम्पेस्ट' का बडा स्पष्ट प्रभाव है। किन्तु दूसरी कहानी 'गुलवहार' मौलिक रचना है, और उसमे एक ऐतिहासिक प्रसग, मीर कासिम के दो बच्चो की, अपने पिता की प्राण रक्षा के लिये आत्म बलिदान की कथा है। इन प्रारम्भिक प्रयोगो के अनन्तर, महावीरप्रसाद द्विवेदी की दो कहानिया 'काकनालीय घटना' (१९०२) और 'तीन देवता' (१९०३) प्रकाश मे आई। ये कहानिया, 'कथा सरित सागर' की दो कथाओ पर आधारित हैं, किन्तु उनकी अभिव्यञ्जना प्रणाली अंग्रेजी कहानियों जैसी है।

अंग्रेजी मे अनुवादित सर्व प्रथम कहानी 'मार्टिन वाल्डेक का भाग्य' (१८७२) भूतो की कथा थी, और बगला से रूपान्तरित प्रारम्भिक कहानियो मे 'भूतो वाली हवेली' (१९०३) मे भी इसी प्रकार का एक आख्यान लिया गया था। 'सरस्वती' मे अंग्रेजी से अनुवादित पहली कहानी 'मेरी चम्पा' (१९०५) भी भूतो की ही कथा थी। यह कार्लाइल की एक रचना का ग्रहण थी। इन कहानियो से प्रेरणा लेकर भगवानदास ने, 'प्लेग की चुड़ैल' (१९०२) शीर्षक एक कहानी लिखी। यह कहानी प्रारम्भ मे तो भूतो की कथा लगती है, किन्तु अन्त मे वह भूत, एक जीवित मनुष्य प्रकट होता है। मधु मगल मिश्र ने इसी प्रकार का प्रयोग 'भुतही कोठरी' (१९०८) उपस्थित किया।

अंग्रेजी तथा बगला कहानियों के सम्पर्क मे, हिन्दी के कहानी लेखको ने सर्व प्रथम यह ग्रहण किया कि प्रतिदिन के जीवन की सामान्य घटना को लेकर, यथार्थ-

वादी पद्धति से उसका वर्णन करते हुये, कहानी लिखी जा सकती है। गिरिजादत्त वाजपेयी ने, टेनिसन के 'एनॉक आर्डेन' को कहानी का रूप देने के अनन्तर 'पण्डित और पण्डितानी' शीर्षक एक मौलिक कहानी लिखी। उनकी इस कहानी मे एक मध्य वर्गीय भारतीय परिवार की जीवन धारा का चित्रण है। रामचन्द्र शुक्ल की कहानी 'ग्यारह वर्ष का समय' (१६०३), अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत होते हुये भी, वस्तुत एक मौलिक रचना है, और भारतीय जीवन धारा की एक झलक उपस्थित करती है।

इन प्रारम्भिक प्रयोगो के बाद, कई वर्षो तक, 'सरस्वती' मे अंग्रेजी तथा बंगला कहानियो के अनुवाद प्रकाशित होते रहे। वृन्दावनलाल वर्मा ने अवश्य 'तातार और एक वीर राजपूत' (१६१०) शीर्षक एक मौलिक कहानी लिखी। उसका कथासूत्र लोक-कथा पर आधारित प्रतीत होता है। सन् १८१५ मे चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' की प्रसिद्ध रचना 'उसने कहा था', प्रकाशित हुई। इसके अनन्तर हिन्दी के तीन मौलिक कथाकारो प्रेमचन्द, ज्वालादत्त शर्मा, विशम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की रचनाए प्रकाशित होने लगी। हिन्दी मे इस समय तक अंग्रेजी प्रभाव को लेकर जासूसी कहानियो का लेखन भी प्रारम्भ हो चुका था। गोपालराम गहमरी अपनी 'जासूस' पत्रिका मे अंग्रेजी और उससे प्रभावित बंगला की जासूसी कथाओ के अनुवाद एव मौलिक कृतिया भी प्रकाशित करने लगे थे। गहमरी जी का रचना-काल प्रेमचन्द जी के पूर्व ही आता है, इसलिये पहले हम उन्ही की कहानियो पर विचार कर रहे है।

गोपालराम गहमरी

हिन्दी उपन्यास पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना करते हुए, हम कह आये हैं, कि गहमरी जी ने अंग्रेजी के जासूसी उपन्यासो से प्रेरणा लेकर, हिन्दी मे इसी प्रकार का कथा साहित्य प्रारम्भ किया था। बंगला का जासूसी साहित्य भी, उनके लिए प्रेरणा का स्रोत रहा था। गहमरी जी की अधिकाश जासूसी कहानिया बंगला से ही अनुदित थी। उन्होने बंगला के दो जासूसी कथाकारो, पचकौडी दे और प्रियनाथ मुकर्जी की रचनाए अनुवादित की थी डॉ० प्रिय रजन सेन ने, बंगला कथा साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव का अध्ययन करते हुये लिखा है कि पचकौडी दे ने तो अंग्रेजी के जासूसी कथा साहित्य से प्रेरणा लेकर अपनी रचनाए प्रस्तुत की थी, किन्तु प्रियनाथ मुकर्जी ने जासूसी विभाग मे अपने निज के अनुभवो के आधार पर अपने साहित्य का निर्माण किया था।[१] अंग्रेजी के प्रसिद्ध जासूसी कथाकार आर्थर कॉनन

१—डॉ० प्रियरजन सेन 'वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली नावेल', पृ० ४०

डॉयल की रचनाओं का, इन दोनो ही लेखको पर, विशेष प्रभाव है। इस प्रकार गहमरी जी ने, अंग्रेजी के जासूसी साहित्य से सीधा प्रभाव ग्रहण करने के साथ-साथ, इन लेखको के माध्यम से भी अंग्रेजी प्रभाव ग्रहण किया है।

गहमरी जी ने अंग्रेजी से भी कुछ जासूसी कहानिया अनुवादित की थी। 'खूनी कौन है' (१६००), जो कालान्तर मे 'किले मे खून' सज्ञा से प्रकाशित हुई, अंग्रेजी से ही अनूदित थी। इसी प्रकार 'जाली काका' (१६०२) शीर्षक कहानी भी, अंग्रेजी से गृहीत थी। गहमरी जी ने इसके अनन्तर मौलिक जासूसी कहानियाँ भी लिखी, और उनमे उन्होने, अंग्रेजी प्रभाव को विशेष रूप से आर्थर कॉनन डॉयल की रचना पद्धति को, ग्रहण किया। अंग्रेजी के इस जासूसी कथाकार से उन्होने अपराधी के अन्वेषण की रीति ग्रहण की है। आर्थर कॉनन डॉयल ने अपनी एक रचना 'ए स्टडी इन स्कार्लेट' मे, अपने जासूस शार्लक होम्स के शब्दो मे अपनी अन्वेषण पद्धति का इस प्रकार विश्लेषण उपस्थित किया है।

"In solving a problem the grand thing is to be able to reason backwards "[1]

इस पूर्व की ओर तर्क करने की प्रवृत्ति का उन्होने स्पष्टीकरण किया है कि अन्त चेतना से, किन कारणो से यह परिणाम सम्भव हुआ है,[2] यह खोजने का प्रयास है। इस मनोवैज्ञानिक अन्वेषण पद्धति को उन्होने विश्लेषणात्मक तर्क प्रणाली की सज्ञा दी है।[3] इस पद्धति के आधार पर सफल जासूस के लिए, बिना किसी पूर्वाग्रह के स्वतत्र मन के साथ अन्वेषण के पथ पर अग्रसर होने का निर्देश है।[4] गहमरी जी ने अपनी कहानियो 'मालगोदाम मे चोरी' (१६०२) आदि मे इन निर्देशो का समुचित उपयोग किया है।

जयशकर 'प्रसाद'

प्रसाद जी की पहली कहानी 'ब्रह्मर्षि' (१६०६) 'इन्दु' मे प्रकाशित हुई थी। इसके बाद उनकी अन्य कहानिया 'पचायत', 'ग्राम', 'चन्दा' 'गुलाम' आदि भी इसी पत्रिका मे मुद्रित हुई। हम कह आए हैं, कि प्रसाद जी की प्रारम्भिक कहानियो 'ब्रह्मर्षि' और 'पचायत' पर सस्कृत के कथा साहित्य का प्रभाव है। उनका कथा

१—आर्थर कॉनन डॉयल 'ए स्टडी इन स्कार्लेट' (१६११), पृ० २१५
२—वही, पृ० २१५
३—वही, पृ० २१५
४—वही, पृ० २१५

सूत्र संस्कृत साहित्य से ही गृहीत है, किन्तु उनकी रचना शैली पर अंग्रेजी प्रभाव प्रकट है। अंग्रेजी के उपन्यासकारो रेनाल्ड, जॉर्ज इलियट आदि का प्रभाव हिन्दी और बगला दोनो ही भाषाओ के कथा साहित्य पर मिलता है। बगला के प्रसिद्ध उपन्यासकार बकिम चन्द्र तक अंग्रेजी उपन्यास से प्रभावित है। अंग्रेजी के अनेक उपन्यासो मे, प्रारम्भ मे प्राकृतिक पृष्ठभूमि का वर्णन है, उसके अनन्तर मुख्य चरित्रो की रूप रेखाए स्पष्ट की गई है, और तब कहानी सवादो के माध्यम से विकसित हुई है। प्रसाद जी ने अपनी प्रारम्भिक कहानियो मे यही रचना-विधान अपनाया है।

प्रसाद जी की पहली कहानी 'ब्रह्मर्षि' मे, विश्वामित्र को वशिष्ठ की समकक्षता प्राप्त करने के लिये सघर्षशील दिखाया गया है। प्रारम्भ मे तपोभूमि के शात वातावरण का चित्र है। वशिष्ठ ध्यान-मग्न बैठे हुए है। उसके अनन्तर सवादो के माध्यम से कथासूत्र का विकास हुआ है। इसी प्रकार उनकी दूसरी कहानी 'पचायत' मे भी, महादेव के दो पुत्रो कार्तिकेय और गणेश के बीच एक दूसरे से अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के तर्क-वितर्क का विवरण है। इन दोनो कहानियो के कथानक इस प्रकार भारत के प्राचीन साहित्य से गृहीत हैं, किन्तु उनके रचना-शिल्प पर अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट है।

प्रसाद जी की शेष कहानियो पर अंग्रेजी प्रभाव और भी अधिक प्रकट है, किन्तु उनमे प्रथम प्रयोग जैसी अनगढता नही है। इसीलिए ऐसा प्रतीत होता है, कि उन पर अंग्रेजी प्रभाव बगला के माध्यम से आया हुआ है। उनकी 'ग्राम' शीर्षक कहानी का प्रारम्भ, बडी यथार्थवादी पद्धति के साथ, स्टेशन पर बजती हुई घटियो के स्वर से होता है। किन्तु उसके बाद उन्होने अपनी पहले की कहानियो की रचना शैली ही अपनायी है। इस कहानी मे एक जमीदार के, अपनी रियाया, एक निर्धन विधवा और उसकी पुत्री पर, अत्याचारो का वर्णन है। इस कहानी मे जमीदार के पुत्र के रूप मे, हिन्दी साहित्य को एक नए प्रकार के चरित्र, दार्शनिक मनोवृत्ति का चिन्तनशील नवयुवक प्रदान किया गया है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार जॉर्ज इलियट की रचनाओ मे इस प्रकार के चरित्र अनेक है। इस उपन्यासकार की रचनाए हिन्दी प्रदेश मे उन दिनो पढी जाती थी, इसलिये यह सम्भव है कि इस चरित्र के निर्माण मे, उसकी कुछ प्रेरणा रही हो। प्रेमचन्द जी ने आगे चलकर जॉर्ज इलियट की एक रचना 'साइलिस मार्नर' को 'सुखदास' नाम देकर ग्रहण किया था। इसलिये यह सम्भव है कि प्रसाद जी ने भी अपने उस चरित्र के निर्माण मे, जॉर्ज इलियट से कुछ प्रेरणा ग्रहण की हो। अंग्रेजी शासन ने हमारी जीवन-दृष्टि मे जो भौतिकता, और साहित्य-दर्शन मे जिस यथार्थवाद की सृष्टि कर दी थी, उसका भी प्रभाव इस रचना

मे है ।

प्रसाद जी की 'चन्दा' शीर्षक कहानी मे, एक ही लडकी को प्रेम करने वाले, दो कोल नवयुवको की स्पर्धा का वर्णन है। अंग्रेजी मे उन दिनो इस प्रकार की कहानिया बहुत लिखी जा रही थी। यूरोप के लोग उन दिनो अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदि असभ्य या अर्ध-सभ्य देशो मे जाने लगे थे। इस प्रकार की यात्राओ मे जो अनुभव उन्हे प्राप्त हो रहे थे, उन्हे लेकर अनेक उपन्यास और कहानिया भी लिखी जा रही थी। 'सरस्वती' मे भी एक ऐसी हा कहानी का अनुवाद प्रकाशित हुआ था, जिसमे एक लडकी के लिये पारस्परिक स्पर्धा का परिणाम वडी नृशस-हत्या के रूप मे दिखाया गया था। 'चन्दा' का कथा-सूत्र भी ऐसा ही है, इसलिये सम्भव है कि उसके पीछे उस कहानी की प्रेरणा रही हो। इस कहानी का रचना-विधान भी प्रसाद की अन्य कहानियो की भाति अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत है। इसी प्रकार उनकी 'गुलामी' शीर्षक कहानी मे प्रतिशोध की भावना का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है। उसका रचना-शिल्प भी अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है।

प्रेम चन्द

प्रेमचन्द की कहानियो का प्रकाशन १६१६ से 'सरस्वती' मे प्रारम्भ हो गया था, और सन् १६२० तक उनके तीन सग्रह 'सप्त सरोज' (१६१७), 'नवनिधि' (१६१८) और 'प्रेम पूर्णिमा' (१६१८) प्रकाशित हो गये थे। अंग्रेजी कथा साहित्य का प्रभाव प्रेम चन्द की इन कहानियो पर पर्याप्त रूप मे है। किन्तु वह इतना उनकी मौलिक प्रतिभा मे घुलमिल गया है, कि उसका निश्चित संकेत नही किया जा सकता। प्रेमचन्द के उपन्यासो पर, अंग्रेजी प्रभाव का विवेचन करते हुए, हम यह कह आये है, कि उन्होने अंग्रेजी उपन्यासकारो जॉर्ज इलियट, मेरी स्टो, विलियम मेकपीस थैकरे आदि से विशेष प्रेरणा ग्रहण की थी। रूस के प्रसिद्ध उपन्यासकार टाल्सटाय से भी वे प्रभावित थे। उनकी कहानियो पर भी पश्चिम के इन कथाकारो का प्रभाव है। प्रेमचन्द जी के मन मे ग्रामीण जीवन के प्रति स्नेह-भाव तो स्वभावत था। जॉर्ज इलियट के अध्ययन ने उसे और बद्धमूल कर दिया, तथा साथ ही साथ चिन्तनशील पात्रो को चित्रित करने की भी प्रेरणा प्रदान की। थैकरे के अध्ययन से उन्हे जीवन के यथा तथ्य चित्रण की प्रवृत्ति मिली थी। मेरी स्टो, टाल्सटाय आदि की रचनाओ के अनुशीलन ने उन्हे, लोक-मगल की भावना से साहित्य-निर्माण की ओर तत्पर किया। लोक-कल्याण का भाव तो भारतीय साहित्य मे परपरा से चला आ रहा था, कि तु व्यक्ति-परिष्कार और समाज-सशोधन की नवीन प्रवृत्तिया हिंदी साहित्य मे पाश्चात्य प्रभाव से आई। प्रेमचन्द की कहानियो का जीवन-दर्शन

ही नही उनका रचना-शिल्प भी पाश्चात्य प्रभाव से ओत-प्रोत है। उन्होने एक स्थान पर यह स्वय स्वीकार किया है, कि फ्रासीसी कथाकार वाल्जेक से वे विशेष प्रभावित हैं। वाल्जेक की रचनाओ मे लोक-मगल के अन्तर्निहित भाव को लेकर यथार्थ जीवन के सश्लिष्ट चित्रण और मानव मनोभाव की जो मनोवृत्तिया मिलती है, प्रेमचन्द जी ने उन्हे अपनी कहानियो मे प्रकट किया है, जिनमे उन्होने भारतीय लोक कथाओ को लिपिवद्ध किया है। इन कहानियो का रचना-शिल्प विलकुल पाश्चात्य कहानियो जैसा है।

जी० पी० श्रीवास्तव

हिन्दी नाटक पर अग्रेजी प्रभाव की विवेचना करते हुये हम यह कह आये हैं कि फ्रास के हास्य नाटककार मोलियर का प्रभाव श्रीवास्तव जी की रचनाओ पर विशेष है। उनकी कहानियो पर भी यह प्रभाव प्राप्त होता है। प्रसाद जी की कहानियो की भाति श्रीवास्तव जी की कहानिया भी काशी की 'इन्दु' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। सर्व प्रथम उनकी कहानी 'झेपू की कथा' छपी, जो अग्रेजी की एक कहानी 'कन्फेशन ऑफ ए वैशफुल मैन' का रूपान्तर थी। इसके अनन्तर उन्होने इसी भावधारा की एक अन्य कहानी को रूपान्तरित किया। इन दो अनुवादो के साथ उन्होने यह समझ लिया कि अग्रेजी की हास्य कथाओ को उनके सम्पूर्ण प्रभाव के साथ, अग्रेजी और भारतीय सामाजिक जीवन मे वहुत अधिक विभेद होने के कारण, भली प्रकार रूपान्तरित नही किया जा सकता। इसीलिये उन्होने आगे चलकर 'मास्टर साहब' और 'लतखोरी लाल' शीर्षक मौलिक कहानिया लिखी। अग्रेजी की हास्य कथाओ का प्रभाव इन दोनो की रचनाओ पर स्पष्ट है। उनकी दूसरी कहानी तो 'कन्फेशन ऑफ ए वैशफुल मैन' की ही पद्धति पर स्वीकारोक्ति के रूप मे लिखी गई है।

अन्य कथाकार

अन्य कथाकारो मे विश्वम्भर नाथ शर्मा 'कौशिक, ज्वालादत्त शर्मा, चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' के नाम उल्लेखनीय है। इन कहानीकारो की रचनाओ पर अग्रेजी का प्रभाव कथासूत्र और रचना-कौशल दोनो पर ही दर्शनीय है, किन्तु वह पूर्णत आत्मसात् होकर प्रकट हुआ है। इन कथाकारो के साथ हिन्दी कहानी ने अपना रूप, वहुत कुछ निर्धारित कर दिया था, फिर भी अग्रेजी और उसमे अधिक फ्रासीसी तथा रूसी कथाकारो का प्रभाव उसकी प्रगति मे योग देता रहा।

निष्कर्ष

हिन्दी कहानी पर अग्रेजी प्रभाव के इस अध्ययन को समाप्त करते हुये, हम कह सकते है, कि यद्यपि सस्कृत कथा साहित्य और भारतीय लोक कथाओ ने इस

प्रगति मे सहायता दी है, तथापि हिन्दी कहानी अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि है। हिन्दी कहानी का विकास अंग्रेजी प्रभाव से प्रसूत पत्र-पत्रिकाओ मे ही हुआ था, और उनकी कथावस्तु, रूप-विधान, अभिव्यञ्जना प्रणाली आदि पर अंग्रेजी कहानी की स्पष्ट छाया है। हिन्दी कहानी पर अँगेजी के आधार-भूत प्रभाव को स्वीकार करते हुये, हिन्दी कहानीकारो के सम्बन्ध मे हमे यह स्वीकार करना होगा, कि उन्होने अंग्रेजी कथाकारो का अन्धानुकरण नही किया है। एक बार अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से कहानी का रचना-विधान ग्रहण कर लेने के अनन्तर उन्होने अपनी मौलिक प्रतिभा को विकास का उन्मुक्त मार्ग दिया। मौलिक प्रतिभा के इस अभ्युदय का मूल कारण इस साहित्यिक रूप की अपनी निज की क्षमता रही है। बगला कहानी ने भी, हिन्दी कथाकारो को मौलिक प्रयोगो की ओर ही प्रेरित किया है। अंग्रेजी प्रभाव तो इस साहित्यिक रूप के विकास मे, अधिकांश मे, प्रेरणात्मक ही रहा है।

११

हिन्दी निबन्ध, आलोचना आदि पर अंग्रेजी प्रभाव

हिंदी के बड़े साहित्यिक रूपो—कविता, नाटक, उपन्यास और कहानी—पर अंग्रेजी प्रभाव का अध्ययन हो चुका, अब छोटे साहित्यिक रूपो—निबंध, आलोचना, जीवन-चरित्र आदि—पर ही इस प्रभाव का विश्लेषण करना है। यहाँ, इन छोटे साहित्यिक रूपो को ही अलग २ लेकर, उन पर अंग्रेजी प्रभाव की विवेचना होगी। एक बात और यहाँ प्रारम्भ मे ही स्पष्ट कर दी जाय निबन्ध, आलोचना आदि, प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से ही, छोटे साहित्यिक रूप है। कारण, इनका विकास, इस अध्ययन की सीमा मे विशेष नही हुआ था। इन शेष रहे साहित्यिक रूपो मे निबन्ध का विकास ही सर्व प्रथम हुआ तथा अंग्रेजी प्रभाव ने भी सबसे पहले निबन्ध पर ही कार्य करना आरम्भ किया, इसीलिए निबन्ध पर ही अंग्रेजी प्रभाव के विश्लेषण से, यह प्रकरण प्रारम्भ हो रहा है।

निबन्ध

निबन्ध को, अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक डॉ॰ जॉनसन ने, मन का एक ऐसा शिथिल, असबद्ध और अपरिपक्व विचार - प्रवाह कहा है, जिसमे न तो व्यवस्था हो और न सयोजन। किन्तु आज, इस साहित्यिक रूप से, उस रचना का बोध होता है, जो एक निश्चित विषय पर, साधारण विस्तार मे और सामान्यत गद्य मे लिखित हो।

निबन्धकार के लिए, यह भी आवश्यक समझा जाता है, कि वह पाठक को अपना अन्तरग बना ले, तथा उसके आगे आत्मोद्घाटन कर दे। ए० जी० गार्डनर ने एक स्थान पर कहा है, कि निबन्ध लेखक की एक विशिष्ट मानसिक स्थिति होती है, और उसके जाग्रत हो जाने पर, किसी भी विषय को लेकर, निबन्ध लिखा जा सकता है। अंग्रेजी निबन्ध ने अपने विकास-क्रम मे, इन परिवर्तित होती हुई परिभाषाओ के अनुरूप, रूप ग्रहण किया है, और उसका आधुनिक स्वरूप, बहुत कुछ ए० जी० गार्डनर की विचारधारा के अनुसार है। हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप के सूत्रपात मे, अंग्रेजी निबन्ध के अध्ययन का योग रहा है।

हिन्दी-प्रदेश मे अंग्रेजी के विशेष रूप से पठित निबन्धकार और उनकी रचनाएँ हैं फ्रासिस बेकन (१५६१-१६२६) कृत 'एसेज', तथा 'दि एडवांसमेट ऑफ लर्निंग', जोजेफ एडिसन (१६७२-१७१६) की 'स्पेक्टेटर' से सकलित रचनाएँ, सर रिचर्ड स्टील (१६७७-१७२६) की जोजेफ एडिसन के साथ लिखित रचना 'सर रोजर दे कॉवरले', ऑलिवर गोल्डस्मिथ (१७३०-१७७४) कृत 'बी', चार्ल्स लैम्ब (१७७५-१८३४) रचित 'एसेज ऑफ एलिया,' विलियम हैजलिट (१७७८-१८३०) की कृति 'एसेज' तथा रॉबर्ट लूई स्टिवेन्सन (१८५०-६४) कृत 'वर्जीनिबस प्यूरस्के' अंग्रेजी का एक प्रेरणात्मक निबन्ध सग्रह, हेल्प्स कृत 'एसेज रिटेन इन द इन्टर्वल्स ऑफ बिजनेस' भी हिन्दी-प्रदेश के कई पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत रहा था।

अंग्रेजी के इन निबन्धकारो के विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत होने के कारण, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त हिन्दी लेखको का, बेकन की कृतियो से लेकर स्टिवेन्सन तक की रचनाओ से परिचय हो गया था। फ्रासिस बेकन ने, जिन्हे अंग्रेजी निबन्ध का जनक कहा जाता है, अपनी इस साहित्यिक रूप की रचनाओ को, 'अपनी विचार परम्परा के खड', 'चिन्तन के प्रक्षेपण' तथा 'मानसिक प्रवाह' के कौतूहल से नही वरन् महत्व प्रदर्शन की दृष्टि से सक्षिप्त विवरण' कहा है। बेकन के सम्बन्ध मे यह कहा जाता है, कि वे अपनी अथवा जनसाधारण की रुचि के किसी विषय पर चिन्तन करके, अपने निष्कर्षो को इतने सक्षेप मे लिपिबद्ध कर देते थे, कि उनके निबन्ध, लोकोक्तियो एव आदर्श वाक्यो की शृ खला से लगते हैं। अंग्रेजी निबन्ध का इसी रूप में प्रारम्भ हुआ था, और आगे चल कर एडिसन और स्टील ने अपने, सामयिक-पत्रो मे उसे लोक, ग्राह्य-रूप प्रदान किया। इन निबन्धकारो की रचनाओ में, सभी प्रकार के विषयो, प्रवृत्तियो, आचारो, नैतिक आदर्शों, कथा-वार्ताओ, साहित्यिक वृत्तियो आदि को अभिव्यक्ति मिली। अपने सामयिक-पत्रो 'दि टैटलर' तथा 'दि स्पेक्टेटर' में, वे अधिकाश मे, मध्य-वर्गीय रुचि की रचनाए प्रकाशित किया करते थे उनके

निवन्ध भी इसी वर्ग को दृष्टि मे रखकर लिखित है । मध्य-वर्ग के पाठको मे, अपनी रचनाओ को और लोकप्रिय वनाने के लिए, इन्होने जल्दी पहचाने जा सकने वाले कुछ चरित्रो, सर रोजर दे कॉवरले तथा 'स्पेक्टेटर कल्व' के अन्य सदस्यो की सृष्टि की थी, और अग्रेजा मे निवन्ध के एक नये प्रकार, चरित्र-अध्ययन का सूत्रपात किया था । ऑलिवर गोल्डस्मिथ ने भी, अपने निवन्धो मे यही शैली अपनायी, किन्तु पाठको तक उनकी पहुँच, अभिव्यञ्जना के विधान मे प्रदर्शन रहित और अधिक मानवीय थी । चार्ल्स लैम्ब ने अग्रेजी निबन्ध को एक पूर्णत नया स्वर दिया उन्होने अपनी रचनाओ मे अपने मानसिक उद्वेग को वाणी दी है, इसीलिए यह कहा जाता है कि उनके निवन्ध, गद्य मे लिखित सवोधन-गीत (ओड) है । उन्हे सम्भवत कीट्स के इस मन्तव्य —'मन की सृजनात्मिका शक्ति को निरन्तर विचरने दो'—पर अधिक विश्वास था । फिर भी उन्होने इस उक्ति के मूल भाव को चरम-सीमा तक नही ग्रहण किया था, इसीलिए वे शेली के उस भाग्य-विधान से मुक्त रहे, जिसके सवन्ध मे मेथ्यू आर्नल्ड ने कहा है, कि 'वे एक सुन्दर, किन्तु प्रभाव-हीन दिव्य-शक्ति हैं, जो शून्य मे अपने चमकीले पखो को फड-फडाती रहती है ।' लैम्ब ने अपने मन के स्वच्छन्द प्रवाह और मानसिक उद्वेग को नियन्त्रित कर के, उन्हे प्रगति और विकास की पद्धति मे ग्रथित कर लिया था । लैम्ब का समसामयिक हैजलिट, वडा अध्ययन शील था, और उसके निवन्धो पर उसके इस अध्ययन की छाप है । स्टिवेन्सन ने अपने निवन्धो मे, वाह्य-जगत एव मनोलोक की अपनी अनुभूतियो को चित्रित किया है, तथा उनमे यौवन के उल्लास और उत्फुल्लता को भी अभिव्यक्ति मिली है । हेल्प के निवन्ध, जैसा कि उनके सग्रह के नाम से ही स्पष्ट है, व्यवसाय के वीच के अवकाश के क्षण मे लिखित है, और उनके कुछ शीर्षक हैं 'व्यावहारिक ज्ञान', 'सन्तोष के सहायक', 'दलगत भावना' आदि । कुछ निवन्धो के विषय, जैसे 'व्यावसायिक व्यक्ति की शिक्षा' तथा 'व्यवसाय की प्रक्रिया', व्यवसाय से भी सम्बन्धित है ।

अग्रेजी के इन निवन्धकारो को, हिन्दी लेखको ने पढा तो अवश्य, किन्तु उनकी रचनाओ को, अपनी भाषा मे, अन्य साहित्यिक रूपो की भाति, वहुत अधिक अनुवादित और ग्रहण नही किया । आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) ने, अग्रेजी प्रभाव के वहुत वर्षो तक कार्य कर लेने के वाद, सन् १९०० मे, वेकन के निवन्धो का एक अनुवाद 'वेकन विचार-रत्नावली' के रूप मे प्रस्तुत किया । इसके वाद सन् १९१८ मे एडिसन का निवन्ध 'दि विजन ऑफ मिर्जा', 'इन्दु' पत्रिका मे, 'मिर्जा का स्वप्न' शीर्षक से प्रकाशित हुआ । रोम के प्रसिद्ध साहित्यकार, सिसेरो की एक निवन्ध रचना को भी, 'मित्रता' शीर्षक से अनुवादित किया गया । श्याम सुन्दर दास

जी ने भी, हेल्प के निवन्ध 'सतोष के सहायक' का एक ग्रहण, 'सतोष' सज्ञा देकर सन् १८९४ मे, वाकीपुर की एक पत्रिका मे, प्रकाशित कराया था। 'मिश्रवधु का 'अध्ययन' शीर्षक निवन्ध, वेकन के इसी विषय के निवन्ध से प्रेरणा लेकर लिखित है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने भी, अपना निवन्ध 'ज्ञान', वेकन की रचना 'दि ऐडवासमेट ऑफ लर्निङ्ग', से प्रेरित होकर लिखा था।

अग्रेजी निवन्ध का प्रारम्भ तो फ्रांसिस वेकन की रचनाओ से ही हो गया था, किन्तु उसका समुचित विकास, मुद्रण-कला के प्रचार और पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन के अनन्तर ही आरम्भ हुआ। हिन्दी मे इस साहित्यिक रूप के प्रथम प्रयोग, मुद्रण-कला के प्रचलन और पत्र-पत्रिकाओ के प्रकाशन के अनन्तर ही देखने को मिले। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने, अपनी पत्रिका 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' के प्रथम अक (१८७३) मे ही, इस साहित्यिक रूप के दो प्रयोग 'कलिराज की सभा' और 'अदभुत अपूर्व स्वप्न' प्रकाशित किये थे। ये दोनो निवन्ध के रूप की रचनाए, सामान्यत स्वय भारतेन्दु जी की लिखित माना जाती हैं, किन्तु ब्रजरत्न दास के अनुसार, जिन्होने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन एव कृतियो का विस्तृत अध्ययन किया है, ये कार्तिक प्रसाद खत्री की लिखी हुई है। इन निवन्धो का लेखक चाहे कोई भी रहा हो, इतना निश्चित है कि उसने अग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया था। मिल्टन के 'पैरेडाइज लॉस्ट' का प्रभाव दोनो निवन्धो पर स्पष्ट है। 'कलिराज की सभा' मे कलिराज को, अपने मुसाहिवो और दरवारियो से जिस प्रकार घिरा हुआ दिखाया गया है, उसी प्रकार मिल्टन ने भी, अपने महाकाव्य की प्रथम पुस्तक मे, शैतान को, विद्रोह करने के कारण, स्वर्ग से निकाले जाने के वाद, अपने मित्रो, प्रशसको और अनुचरो से घिरा चित्रित किया है। शैतान अपने प्रधान सहायको से परामर्श कर रहा है, कि स्वर्ग से निष्कासित होने के कारण, विपत्ति के जिस चक्र मे वह फस गया है, उससे अपने को तथा अपने अनुयायियो को किस प्रकार मुक्त करे। उसने उन्हे यह भी आदेश दिया है, कि वे उसके लिए तथा अपने लिए भी, एक नये जगत की रचना करे। हिन्दी निवन्ध मे भी इसी प्रकार, कलिराज को अपने दरवारियो से यह सलाह करते हुए दिखाया गया है, कि किस प्रकार हिन्दी-प्रदेश मे उसका प्रभाव वढे, और उसके स्वप्न की सपूर्ति मे वे कैसे सहायक हो सकते है। इतना ही नही, शैतान ने अपने मुख्य सहायको से जो वार्ता की है, वह भी, कलिराज की अपने दरवारियो से हुई वातचीत मे वहुत मिलती जुलती है। इतना साम्य अनायास ही नही आ गया है यह निश्चित रूप से मिल्टन की महान कृति के अध्ययन के कारण है। किन्तु इन दोनो परस्पर पर्याप्त साम्य रखने वाले शब्द-चित्रो

की, अपनी अलग २ रचना प्रणालियाँ है। मिल्टन का शैतान और उसके अनुयायियो का चित्र, हमारे मन मे आतक एव भय के भाव जगाता है, परन्तु कलिराज की सभा का दृश्य, जिसमे हिन्दी-प्रदेश के धार्मिक, सामाजिक और सास्कृतिक जीवन मे, फूट और विद्वेष के बीज बोने का षडयन्त्र हो रहा है, हमारे मन मे तीव्र घृणा की वृत्ति उत्पन्न करता है। 'अद्भुत अपूर्व स्वप्न' की दृश्य-योजना भी, बहुत कुछ ऐसी ही है। व्यग का स्वर, इन दोनो ही निबन्धो मे, बडा प्रखर है युग के कई महापुरुषो केशव चन्द्र सेन, राजा शिवप्रसाद आदि—पर बडी गहरी चोटें की गयी है। यह व्यगात्मक शैली भी, अन्य किसी प्रेरणा से प्रसूत न होकर, अंग्रेजी के लेखको डॉ० जॉनसन, जोनेथन स्विफट आदि की रचनाओ से ग्रहण की गयी प्रतीत होती हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सपादित पत्र-पत्रिकाओ मे, कुछ और निबन्ध भी प्रकाशित हुए थे। उनकी हरिश्चन्द्र मैगजीन' मे ही 'स्वप्न' और 'पब्लिक ओपीनियन' शीर्षक निबन्ध मिलते हैं, किन्तु ये सभी प्रयोग मात्र थे, और उनमे इस साहित्यिक रूप की आवश्यक वृत्तियो का अभाव था। भारतेन्दु जी के अपने प्रयोगो 'मूसा पैगम्बर', 'आलसियो का कोडा', 'खुशी' आदि मे भी, यह कमी है। इन प्रारम्भिक प्रयोगो की भाषा एव रचना-शैली भी बडी शिथिल और अव्यवस्थित है। बाल कृष्ण भट्ट (१८४४-१९१४) और प्रताप नारायण मिश्र (१८५६-१८९४) ने, सर्व प्रथम स्व-सपादित पत्रिकाओ 'हिन्दी प्रदीप'(१८७७)और 'ब्राह्मण' (१८८३)मे, इस साहित्यिक रूप के, उनकी समस्त आवश्यक वृत्तियो से सम्पन्न, उदाहरण उपस्थित किये।

अंग्रेजी निबन्ध के विकास मे, एडिसन और स्टील, लेम्ब और हैजलिट के जिस प्रकार साथ-साथ नाम लिये जाते है, उसी प्रकार हिन्दी निबन्ध के इतिहास मे, बालकृष्ण भट्ट और प्रताप नारायण मिश्र के नाम एक साथ आते है, यद्यपि इन दोनो लेखको मे बडी विपरीत वृत्तिया देखने को मिलती है। भट्ट जी बडे विचारशील और गभीर प्रकृति के लेखक थे, और यद्यपि उनके निबन्धो मे थोडी-सी हास्य की भी वृत्ति है, पर वह बडी सूक्ष्म और सयत है। मिश्र जी बडे वाक्पटु और विनोदी प्रकृति के लेखक थे, और उनके निबन्ध कभी २ हमे बडी जोर से हसा देते है।

हिन्दी के इन दोनो निबन्धकारो की रचनाओ पर पाश्चात्य प्रभाव विशेष नही है। प० बालकृष्ण भट्ट ने ईसाइयो के एक विद्यालय मे दसवी कक्षा तक शिक्षा ग्रहण की थी, इसीलिए उनके निबन्धो मे कही २ 'बाइबिल' के उद्धरण हैं। अंग्रेजी के कुछ साहित्यकारो को भी सम्भवत उन्होने थोडा-बहुत पढा था, और कभी २ उन्हे भी उद्धृत किया है। पोप, गोल्डस्मिथ, टेनिसन, जॉन स्टुअर्ट मिल आदि के उद्धरण उनके निबन्धो मे हैं। उनका 'पुरुष अहेरी की स्त्रिया है अहेर' शीर्षक निबन्ध,

टेनिसन की कुछ पक्तियो को आदर्श-वाक्य के रूप मे रखकर प्रारम्भ होता है। अंग्रेजी शब्दो के यदा-कदा प्रयोग का भी उन्हे शौक था, और उनके प्रत्येक निबन्ध मे कुछ न कुछ अंग्रेजी शब्द है। अंग्रेजी शब्दो का प्रयोग करते हुए, उनके उपयुक्त हिन्दी पर्याय भी उन्होने कोष्ठको मे दे दिये हैं। भट्ट जी ने अपने निबन्ध, अधिकाश मे, पर्याप्त विचार विमर्ष के बाद लिखे है, इसलिये उनमे बेकन के निबन्धो जैसा विचारात्मक गाभीर्य मिलता है। बेकन के निबन्धो की भाति, कभी २ भट्ट जी के निबन्ध भी किसी सवमान्य सत्य के सूत्रबद्ध कथन से प्रारम्भ होते है। किन्तु यह साम्य, अभिव्यजनागत समानता के कारण है, अंग्रेजी के इस निबन्धकार के प्रभाव को लेकर नही।

प्रताप नारायण मिश्र के निबन्धो मे, इतना भी अंग्रेजी प्रभाव नही है। उनकी केवल एक रचना 'कलिकोप', जिसमे कई हिन्दी शब्दो के व्यगात्मक अर्थ किये गये हैं, डॉ० जॉनसन की अंग्रेजी शब्दो की व्यगपूर्ण व्याख्या से मिलती जुलती है। डॉ० जॉनसन की रचनाए, मिश्र जी के जीवन काल मे, हिन्दी-प्रदेश मे पर्याप्त रूप मे पढी जाती थी, इसलिए सभव है यह साम्य अंग्रेजी प्रभाव के कारण हो। यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता, कि मिश्र जी ने डॉक्टर जॉनसन के अंग्रेजी शब्दो के उस कोप को स्वय पढा था, जिसमे अनेक स्थलो पर इस प्रकार के अर्थ किये गये है। यह सम्भव है कि उन्होने, अपने अंग्रेजी पढे लिखे किसी मित्र से, डॉक्टर जॉनसन की इस प्रकार अर्थ करने की प्रवृत्ति के विषय मे सुना हो, और स्वय भी उसी प्रकार एक छोटा सा प्रयोग कर डाला हो।

मिश्र जी के बाद हिन्दी निबन्धकारो मे बालमुकुन्द गुप्त का नाम आता है, और इनके निबन्धो पर अंग्रेजी प्रभाव बडा स्पष्ट मिलता है। गुप्त जी ने भी, एडिसन और स्टील की भाति, पाठको के साथ आत्मीयता पूर्ण सबन्ध स्थापित करने के लिए, सर रोजर दे कॉवरले की भाति के एक चरित्र 'शिव शम्भु' का निर्माण किया था। किन्तु गुप्त जी का यह चरित्र सर, रोजर दे कॉवरले की अनुकृति नही है, मनमौजी, भग-प्रिय, भावुक प्रकृति, अलमस्त, स्वप्न-दर्शन की वृत्ति से अनुप्राणित शिव शम्भु, एक विशेप प्रकार के पूर्णत भारतीय चरित्र है। किन्तु इन दोनो चरित्रो के निर्माण की मूल प्रेरणा एक ही है लेखक पाठको के आगे स्वय अपने को उपस्थित नही करना चाहते, इसीलिए उन्होने, अपने अनुभवो और विचारो को प्रस्तुत करने के लिए, विशेप चरित्रो का निर्माण कर लिया है। सामान्य पाठको के लिए यह निबन्ध शैली रोचक और मर्मस्पर्शी भी अधिक है। ए० जी० गार्डनर ने निबन्ध रचना के लिए, जिस विशेप प्रकार की मानसिक स्थिति को आवश्यक माना है, वह इन निबन्धो मे कार्य करती हुई दृष्टिगत होती है। गुप्त जी ने अपनी इन चरित्रात्मक

निबन्धों का एक सामान्य शीर्षक 'शिव शम्भु का चिट्ठा' दिया था, और वे उनके स्वसंपादित पत्र, 'भारत मित्र' में समय समय पर प्रकाशित होते रहे। कालांतर में उनके दो संग्रह 'शिव शम्भु के चिट्ठे' (१९०) और 'चिट्ठे और खत' (१९०८) प्रकाशित हुए। प्रथम संग्रह में उनके ऐसे निबन्ध हैं, जिनमें सामान्य रुचि के विषयों पर विचार किया गया है, और दूसरे में बंगाल के विभाजन को लेकर लिखे गये, राजनीतिक निबन्ध हैं। ये राजनीतिक निबन्ध, तत्कालीन वाइसरॉय लार्ड कर्जन को सम्बोधित करके लिखे गये हैं, और बड़ी तीखी व्यंगात्मक शैली में हैं।

अंग्रेजी प्रभाव, हिन्दी के निबन्धकारों में, सरदार पूर्णसिंह की रचनाओं में सब से अधिक है। पूर्णसिंह जी ने इंग्लैंड और अमरीका के शांतिवादी लेखकों एवं विद्रोही प्रकृति के प्रसिद्ध कवि वाल्ट ह्विटमैन की रचनाओं का गहरा अध्ययन किया था। पश्चिम के शान्तिवादी लेखकों की रचनाओं में गृहीत अहिंसा का दर्शन, हिन्दी साहित्य में, सामान्यतः, महात्मा गांधी के भारतीय राजनीति में प्रवेश के बाद आया हुआ माना जाता है। किन्तु सरदार पूर्णसिंह जी ने अपने निबन्धों में उसे उसी समय उपस्थित करना प्रारम्भ कर दिया था जब गांधी जी का कार्य-क्षेत्र दक्षिणी अफ्रीका तक ही सीमित था। सरदार जी ने केवल पांच निबन्ध—'आचरण की सभ्यता' (१९१२), 'मजदूरी और प्रेम' (१९१२), 'अमरीका का मस्त योगी वाल्ट ह्विटमैन' (१९१३) 'सच्ची वीरता' (१९१४) तथा 'नयनों की गंगा' (१९१६)—ही लिखे, और ये सभी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुए थे। हिन्दी निबन्धकारों में, इन थोड़ी सी रचनाओं के आधार पर ही उनका विशिष्ट स्थान है निबन्ध कला अपने उत्कृष्ट रूप में उनकी इन कृतियों में प्रकट हुई है। अंग्रेजी साहित्य में, आज निबन्ध से उस रचना का बोध होता है, जो एक सीमित विषय को लेकर, सामान्य विस्तार में, गद्य में लिखित हो, और जिसमें लेखक ने अपने विचारों की प्रामाणिकता सिद्ध करने के लिये अपने अनुभवों का उल्लेख और अध्ययन को उद्धृत किया हो।[1] सरदार जी के निबन्ध ठीक इस परिभाषा के अनुरूप हैं। इस प्रकार पूर्णसिंह जी के निबन्धों की अन्तर्धारा और बाह्य स्वरूप, दोनों पर ही अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट है।

हिन्दी के इन निबन्धकारों के अतिरिक्त बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन' (१८५५-१९२३), गोविन्द नारायण मिश्र, माधव प्रसाद मिश्र (१८७१-१९०७) चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (१८८३-१९२०), महावीर प्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) आदि ने भी प्रस्तुत अध्ययन की अवधि में निबन्ध रचना की थी, किन्तु इन पर अंग्रेजी प्रभाव

१—डब्ल्यू० ई० विलियम्स 'ए बुक ऑफ इंग्लिश एसेज' १९५४, पृ० ११

विशेष नही है। द्विवेदी जी ने अग्रेजी साहित्य का गहरा अध्ययन किया था, और इस अध्ययन का उपयोग, उन्होने, विशेप रूप से हिन्दी भाषा एव साहित्य को, समृद्धिवान बनाने के लिए किया। उनकी जिन रचनाओ को सामान्यत निबन्ध कह दिया गया है, उनमे से अधिकाश, पत्र-पत्रिकाओ के लिए लिखे गये लेख मात्र है। इन लेखो का सामयिक महत्व था, स्थायी साहित्य की वस्तु वे नही बन पाये। द्विवेदी जी ने इन लेखो की सामग्री, कभी २ अग्रेजी ग्रन्थो एव पत्र-पत्रिकाओ से भी ली है, किन्तु उसका उपयोग उन्होने बिलकुल अपने ढग से किया है। उनके स्थायी महत्त्व के लेखो की भी, जो वास्तव मे निबन्ध है, यही स्थिति है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध भी इस काल की अवधि मे प्रकाशित होने लगे थे, किन्तु उन पर अग्रेजी प्रभाव बहुत स्पष्ट नही है।

आलोचना

आलोचना का जो रूप हिंदी साहित्य मे विकसित हुआ है, वह बहुत कुछ अग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित है। साहित्य के क्षेत्र मे आलोचना शब्द का प्रयोग, आलोचक की व्यक्तिगत रुचि अथवा किसी स्वीकृत साहित्यिक मानदण्ड के आधार पर कृति-विशेप के मूल्याकन अथवा रोचक अध्ययन के लिए होता है। आलोचनात्मक अध्ययन के प्रकार अनेक है, और उनमे से विशेप महत्वपूर्ण, किसी साहित्यकार की कृतियो का व्यवस्थित अध्ययन, उसकी अलग अलग कृतियो का अनुशीलन, एक साहित्यिक वृत्ति अथवा धारा का विश्लेपण, ऐतिहासिक आलोचना, सैद्धान्तिक विवेचना आदि है। अग्रेजी प्रभाव से पूर्व हिन्दी मे आलोचना का केवल एक रूप, सैद्धान्तिक विवेचन ही विकसित हुआ था। इन सैद्धान्तिक अनुशीलन के ग्रन्थो मे, साहित्यालोचन के विभिन्न सिद्धान्तो की परिभाषाए और उदाहरण है। यह अध्ययन भी अधिकाश मे कविता के विवेचन तक ही सीमित है, और इस प्रकार इन्हे साहित्यालोचन के स्थान पर काव्य-शास्त्र का ग्रन्थ ही कहना चाहिये। हिन्दी मे कविता के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक रूपो का सैद्धान्तिक अध्ययन और आलोचना के व्यावहारिक रूप का विकास, अग्रेजी के आलोचनात्मक साहित्य के अनुशीलन एव प्रेरणा मे ही देखने को मिला।

अग्रेजी की हिन्दी-प्रदेश मे पठित आलोचनात्मक रचनाए एलेक्जन्डर पोप की, 'एसे आन क्रिटिसिज्म', सर वाल्टर रेले कृत 'शेक्सपियर', सेन्ट्सबरी लिखित 'एलीज़ाबेथन लिट्रेचर' तथा 'नाइनटीन्थ सेंचुरी लिट्रेचर', सिडनी ली का ग्रन्थ 'शेक्सपियर-लाइफ एण्ड वर्क्स', मार्क पेटिसन का 'मिल्टन', डॉ० जॉनसन की कृति 'लाइव्ज आफ पोप', 'ड्राइडन ऐण्ड स्विफ्ट', मेकाले की रचना 'लाइव्ज ऑफ बनियन, गोल्डस्मिथ एण्ड

जॉन्सन', निकल कृत 'बायरन', मेथ्यू आर्नल्ड कृत 'लिट्रेचर ऐण्ड डॉगमा', टेन कृत 'हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर', लेस्ली स्टीफेन की रचनाएं 'आवर्स इन ए लाइब्रेरी', 'दि मास्टर्स ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर' आदि हैं। इन ग्रन्थो मे आलोचना के लगभग सभी प्रकार आ गये हैं।

अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित हिंदी आलोचना, सर्व प्रथम पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित, पुस्तक परिचय के रूप मे देखने को मिली। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ने, सबसे पहले स्व-संपादित 'आनन्द कादम्बिनी' पत्रिका मे श्री निवास दास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' की आलोचना उपस्थित की। प्रेमघन जी ने इस नाटकीय रचना की आलोचना करते हुए, उस पर शेक्सपियर के नाटक 'दि मर्चेंट आफ वेनिस' के प्रभाव का भी उल्लेख किया है। किन्तु इस पुस्तक परिचय मे, इस रचना के दोष तो दिखाये गये है, अच्छाइयो की चर्चा नही है। उन्नीसवी शताब्दी की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ म अधिकाश मे, इसी प्रकार के पुस्तक परिचय प्रकाशित हुए। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की पहली आलोचनात्मक रचना 'हिंदी कालिदास की आलोचना' (१९०१) का स्तर भी ऐसा ही है उसमे भी लाला सीताराम कृत कालिदास की रचनाओ के हिंदी अनुवादो की त्रुटियो की ही चर्चा है, गुण नही बताये गये।

हिंदी मे इस प्रकार, अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, प्रारम्भ मे खंडनात्मक आलोचना का ही निर्माण हुआ। उन्नीसवी शताब्दी की पत्र-पत्रिकाओ मे, मौलिक लेखको तथा अनुवादको के विकास मे सहायक सिद्ध होने वाले पुस्तक परिचय नही मिलते। श्रीधर पाठक द्वारा प्रस्तुत गोल्डस्मिथ के 'दि डेजर्टेड विलेज' के अनुवाद 'ऊजड़ ग्राम' (१८८९) का, 'सुदर्शन' पत्रिका के सन् (१९००) के फरवरी मास के अंक मे प्रकाशित आलोचनात्मक परिचय, अनुवादक तथा पाठक दोनो के लिये उत्साह-प्रद था। उसमे यह भी स्पष्ट किया गया था, कि मौलिक रचनाए प्रस्तुत करने वाले कवि इस अनुवाद, तथा अंग्रेजी के गोल्डस्मिथ जैसे कवियो से, कितनी प्रेरणा ग्रहण कर सकते थे। यह आलोचनात्मक अध्ययन, लन्दन के 'ऐलेन्स इंडियन मेल' म, प्रकाशित इस अनुवाद की आलोचना से पर्याप्त मिलता जुलता है। अंग्रेजी का यह पुस्तक परिचय, सन् १८९० मे ही प्रकाशित हो गया था,[2] इसलिए संभव है, हिन्दी आलोचक ने, उससे प्रभावित होकर लिखा हो।

१—श्रीधर पाठक 'मनोविनोद', तृतीय भाग, 'ओपीनिअन्स ऐण्ड रिव्यूज' मे संकलित है।

२—वही, पृ० ५७ मे उद्धृत है।

सन् १८९७ मे, काशी से 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के प्रकाशन के साथ, हिंदी आलोचना के विकास को विशेष गति मिली। इस पत्रिका के प्रथम अंक मे, गगा प्रसाद अग्निहोत्री का 'समालोचना' शीर्षक एक लेख था, उसमे हिन्दी आलोचना के विकास-क्रम पर, अंग्रेजी प्रभाव के उसमे योग के साथ, विचार किया गया था। अंग्रेजी पढे-लिखे लोग इस विकास मे और क्या योग दे सकते है, इसकी भी विवेचना की गई थी, और साथ ही यह भी बताया गया था, कि किन सिद्धान्तो के आधार पर आलोचनात्मक साहित्य का निर्माण होना चाहिये। यह लेख एक वर्ष पूर्व, एक स्वतन्त्र पुस्तक के रूप मे भी प्रकाशित हुआ था, और उसमे यह स्पष्ट किया गया था, कि भारतीय साहित्य मे प्राचीन और मध्ययुग मे, आलोचना का समुचित विकास नही हुआ था, तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार एव अंग्रेजी के आलोचनात्मक साहित्य के अध्ययन के बाद ही, व्यवस्थित रूप से यह साहित्यिक विधा आगे बढ रही है। हिन्दी आलोचना का यह नया रूप, उन दिनो पत्र-पत्रिकाओ के पुस्तक परिचय मे प्रकट हो रहा था। अग्निहोत्री जी की धारणा थी, कि पत्र-पत्रिकाओ के सम्पादक इन पुस्तक परिचयो से बचना चाहते है, इसलिए अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त नवयुवको को जिनमे इस कार्य के लिये अपेक्षित योग्यता है, इस दिशा मे अग्रसर होना चाहिये। इन आलोचनात्मक अध्ययनो को, उपस्थित करने के लिए किन सिद्धान्तो का अनुसरण होना चाहिये, यह भी उन्होने स्पष्ट किया था। आलोचक को सर्व प्रथम उस ग्रन्थ अथवा रचना का सम्यक अनुशीलन करना चाहिये, जिस पर उसे आलोचना लिखनी हो। सत्य के प्रति उसमे पूर्ण निष्ठा होनी चाहिये। उसे शान्त प्रकृति का भी होना चाहिए, साथ ही उसमे अन्य लोगो की अनुभूतियो को, उनके पूर्ण उत्ताप के साथ ग्रहण करने की समुचित योग्यता भी अपेक्षित है। इन सिद्धान्तो पर आधारित पुस्तक परिचयो की उपयोगिता, उन्होने यह कह स्वीकार की थी, कि बुरी पुस्तको का जनता के बीच प्रचार बाधित हो, तथा अच्छी पुस्तकें शीघ्र लोक-प्रिय हो जाय। आज भी पुस्तक परिचयो से इन्ही उद्देश्यो की सिद्धि होती है।

साहित्यालोचन के आधारभूत सिद्धान्तों का विवेचन करने वाली एक और रचना पोप के 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म' का जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' कृत अनुवाद, 'समालोचनादर्श' भी, 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के इस अक मे प्रकाशित हुआ था। इस रचना मे उपस्थित किये गये आलोचना के सिद्धात, अग्निहोत्री जी द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो से, पर्याप्त भिन्न है। पोप ने किसी साहित्यकार की समस्त कृतियो के आलोचनात्मक अध्ययन की रूप-रेखा स्पष्ट की है। उसका कहना है, कि आलोचक उचित नीति से सही निर्णय पर पहुँच सके, इस दृष्टि से उसके लिए यह अपेक्षित है

"Know well each ancient's proper character
His fable, subject, scope in every page,
Religion, country, genious of his age"[1]

अध्ययन की इस प्रणाली से प्राप्त ज्ञान का समुचित उपयोग समझने के लिए, इस पद्धति पर लिखे गये आलोचनात्मक ग्रन्थो का अनुशीलन करना चाहिए। 'रत्नाकर' जी ने अपने अनुवाद द्वारा, हिन्दी आलोचको से, इसी आलोचनादर्श को ग्रहण करने का आग्रह किया है।

किन्तु आलोचना पद्धति के इस विस्तृत स्पष्टीकरण के वाद भी, हिंदी आलोचना पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित पुस्तक परिचयो और यदा-कदा लिखित लेखो तथा निवन्धो तक ही सीमित रही। आलोचना सम्बन्धी ये प्रयोग 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' और 'सरस्वती' मे ही प्रकाशित होते रहे। प्रथम मे तो श्यामसुन्दर दास, और द्वितीय मे महावीर प्रसाद द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, वद्रीनाथ भट्ट आदि के लेख प्रकाशित हुए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का, कार्डिनल न्यूमन की रचना 'आइडिया ऑफ ए यूनिवर्सिटी' पर आधारित, 'साहित्य' शीर्षक निवन्ध भी, 'सरस्वती' मे सन् १९१६ मे प्रकाशित हुआ। इसी प्रकार काशी की 'इन्दु' पत्रिका के सन् १९१४ के एक अक मे, मार्क पेटिसन के कविता सवन्धी विचारो पर आधारित, चन्द्र मोहन मिश्र का 'कविता का मर्म' निवन्व छपा था। इस लेख मे, काव्य-भाषा के स्वरूप पर विचार करते हुए, नेस्फील्ड के अंग्रेजी भाषा के व्याकरण से भी कुछ सामग्री ली गई थी। आलोचना के क्षेत्र म, इस काल मे सबसे महत्व पूर्ण प्रयोग 'मिश्र वन्धु' के 'हिन्दी नवरत्न' (१९११) और 'मिश्र वन्धु विनोद' (१९१३) थे।

किन्तु मिश्र वन्धुओ की ये प्रारम्भिक आलोचनात्मक कृतिया नही थी। उन्होने सर्व प्रथम सन् १९०० मे, 'सरस्वती' मे 'हम्मीर हठ' का साहित्यिक मूल्याकन प्रकाशित किया था, आगे चलकर 'हिन्दी नवरत्न' की भूमिका मे उन्होने यह स्वय स्वीकार किया था, कि यह प्रथम प्रयास, विशेष साहित्यिक महत्व का नही था। सन् १९०४ मे उन्होने, तुलसीदास की कृतियो के आलोचनात्मक अध्ययन के लिए, सामग्री एकत्र करना प्रारम्भ किया। सन् १९०५ मे उनका, भूषण की रचनाओ का एक मूल्याकन, जयपुर के 'समालोचक' मे प्रकाशित हुआ। इस रचना से मिश्र वन्धुओ को आलोचक रूप मे स्वीकृति मिली, और 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने भूषण की

१—एलेकजेन्डर पोप 'ऐन एसे ऑन क्रिटिसिज्म', प० ११९-१२१

रचनाओ के एक प्रामाणिक सस्करण के सपादन का भार उन्हे सौपा। 'हिन्दी नवरत्न' के प्रकाशन के अनन्तर सन् १९१३ मे यह कार्य प्रकाश मे आया। 'हिन्दी नवरत्न' मे हिंदी के नौ प्रधान कवियो—तुलसीदास, सूरदास, देव, बिहारी, भूषण, केशवदास, मतिराम, चन्द्र और हरिश्चन्द्र के आलोचनात्मक अध्ययन थे। इस ग्रन्थ मे प्रारम्भ मे प्राप्त सामग्री के आधार पर, कवियो के प्रामाणिक जीवन-वृत्त, उपस्थित किये गये है, फिर रचनाओ की प्रामाणिकता पर विचार-विमर्श है, और अन्त मे भारतीय तथा अगेजी आलोचना सिद्धान्तो के आधार पर उनका साहित्यिक मूल्याकन है। प्रत्येक आलोचनात्मक अध्ययन के बाद कवि विशेष की कुछ रचनाए भी दी गई है। अंग्रेजी प्रभाव से अनुप्राणित आलोचना का यह पहला व्यावहारिक रूप था, और उसका साहित्यिक महत्व, उस समय की सर्व श्रेष्ठ पत्रिका 'सरस्वती' द्वारा तत्काल स्वीकार कर लिया गया था

"नवरत्न' मे की गई समाचोचना ठीक वैसी ही समालोचना है जैसी अंग्रेजी समालोचको के द्वारा की गई शेक्सपियर, मिल्टन और इतर कवियो के काव्य की समालोचना है।"[१]

इस टिप्पणी मे 'नवरत्न' की आलोचना पद्धति पर अंग्रेजी प्रभाव का भी उल्लेख है।

मिश्रबन्धुओ ने, सन् १९०१ मे 'सरस्वती' मे प्रकाशित, श्रीधर पाठक की रचनाओ पर एक लेख मे, हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखने का विचार प्रकट किया था। 'नागरी प्रचारिणी सभा' ने भी उनसे इस सबध मे आग्रह किया था। 'हिन्दी नवरत्न' की भूमिका मे उन्होने, हिन्दी साहित्य के विकास की एक रूप-रेखा उपस्थित भी की थी। सन् १९१३ मे उनका इस क्षेत्र मे व्यापक प्रयास, 'मिश्रबन्धु विनोद' तीन भागो मे प्रकाशित हुआ। 'हिन्दी नवरत्न' मिश्रबन्धुओ का, हिन्दी आलोचना के क्षेत्र मे, अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, पहला प्रयास था, उसी प्रकार यह रचना हिंदी साहित्य का प्रथम ऐतिहासिक अनुशीलन थी। इस ग्रन्थ की भूमिका मे, अध्ययन की प्रणाली का विवेचन है, और उसके बाद कोई सौ पृष्ठो मे, हिन्दी साहित्य के विकास का सक्षिप्त विवरण। हिन्दी साहित्य का विकास-क्रम, प्रारम्भ से वर्तमान युग तक आठ कालो मे विभक्त किया गया है पूर्व प्रारम्भिक हिन्दी (स० ७०० १३४७), उत्तर प्रारम्भिक हिन्दी (१३४८-१४४४), पूर्व माध्यमिक हिन्दी (१ ४५-१५६०), प्रौढ माध्यमिक हिन्दी (१५६१-१६८०), पूर्वालकृत हिन्दी (१६८१-१७९०), उत्तरालकृत हिन्दी (१७९१-१८८९), परिवर्तन कालिक हिन्दी (१८९०-१९२५)

१—'सरस्वती १९१२, पृ० १३०

तथा वर्तमान हिन्दी (१९२६-१९७०)। इस प्रयास के अनन्तर, हिन्दी साहित्य के सभी ऐतिहासिक अनुशीलनो मे, थोडे-बहुत परिवर्तन के साथ, यही काल विभाजन स्वीकार किया गया है कालो का नामकरण अवश्य, युग विशेष की साहित्यिक प्रवृत्तियो के आधार पर हुआ है। हिन्दी साहित्य के इस संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण के अनन्तर, कालानुक्रम मे गद्य और पद्य के उदाहरण हैं। इसके बाद मूल ग्रंथ प्रारम्भ होता है, और उसके तीन खण्डो मे कोई ४८८ लेखको पर विचार विमर्श है। विशेष महत्व के लेखको पर विस्तार के साथ विचार है उनके प्रामाणिक जीवन-वृत्त देने का प्रयास है, रचनाओ की प्रामाणिकता का अनुशीलन है, उनकी साहित्यिक विशेषताओ का निर्देश किया गया है और अन्त मे उनकी रचनाओ के कुछ उदाहरण है। सामान्य लेखको के विषय मे, मिश्रबन्धुओ ने, उनके रचना-काल और कृतियो के नाम मात्र दे दिये है। अपने इस संविधान मे 'मिश्र बन्धु विनोद', हिन्दी साहित्य का इतिहास न रह कर, 'कवि-कीर्तन' बन गया है, और यह इसके लेखको ने स्वयं भी स्वीकार किया है। किन्तु इस प्रकार इस महानग्रंथ का महत्व घटता नही। जब इसका प्रकाशन हुआ था, तब तो यह अपने ढग की अकेली कृति थी, और आज भी हिन्दी साहित्य संबधी कोई अनुसंधान कार्य बिना इसके अवलोकन के संभव नही है।

मिश्रबन्धु के समकालीन आलोचको मे श्यामसुन्दर दास (१८७५-१९४५), रामचन्द्र शुक्ल (१८८४-१९४१) और कृष्णविहारी मिश्र (१८९०-१९५९) के नाम उल्लेखनीय है। श्यामसुन्दर दास जी ने अपने आलोचनात्मक निबन्धो 'साहित्य और समाज' (१९११), 'चन्द्रबरदाइ' (१९१६) आदि मे, अग्रेजी के आलोचना सिद्धान्तो का अनुसरण किया था। 'पृथ्वीराज रासो' पर विचार करते हुए, उसमे चित्रित पृथ्वीराज का अपने सामन्तो के साथ चरित्र, उन्हे इगलैण्ड के राजा आर्थर और उसकी गोल मेज के सामन्तो की भाति प्रतीत हुआ है।[1] रामचन्द्र शुक्ल ने, प्रस्तुत अध्ययन की अवधि मे, यद्यपि थोडे से ही आलोचनात्मक निबन्ध लिखे थे, तथापि उन पर भी पश्चिम की सामाजिक आलोचना पद्धति का प्रभाव प्रकट है। कृष्ण विहारी मिश्र ने 'चन्द्रावली चमत्कार' (१९१३) तथा इसी प्रकार की अन्य कृतियो मे अग्रेजी की, पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत कृतियो की भूमिकाओ मे प्राप्त आलोचना प्रक्रिया का अनुसरण किया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'चन्द्रावली' की आलोचना करते हुये, उसी पद्धति पर उन्होने, प्रारम्भ मे उसका कथानक दिया है, उसके बाद

१—डॉ० हीरालाल (स०) 'गद्य कुसुमावली', पृ० १९६

उसके विभिन्न चरित्रो का चित्रण है, और तदुपरान्त उसके गुण दोषो का विवेचन है। इस युग के अन्य आलोचको एव उनकी कृतियो पर भी अंग्रेजी प्रभाव इसी रूप मे दर्शनीय है।

जीवनी

साहित्य की विभिन्न विधाओ मे अब हमे जीवनी, इतिहास एव प्रेरणात्मक कृतियो पर और विचार करना है। कुछ साहित्यिक रूपो के प्रयोग पत्र-पत्रिकाओ मे ही देखने को मिले थे, उन पर अंग्रेजी प्रभाव का विश्लेषण, पत्र-पत्रिकाओ पर विचार करते हुए ही किया जायगा।

हिन्दी मे, अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व भी, जीवनी तथा आत्म कथा लिखने के कुछ प्रयोग हुये थे जीवन-वृत लिखने के प्रयासो मे 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता', 'दो सौ बावन वैष्णवन की वार्ता', 'भक्त माल' आदि उल्लेखनीय हैं। बनारसीदास की 'अध कथा' आत्मकथा का प्रथम प्रयोग थी। इन सभी प्रयोगो मे, जीवन-वृत, यथार्थवादी दृष्टिकोण मे नही, वरन् लोकोत्तरता से ओत प्रोत प्रस्तुत किये गये है, और उनका रूप-विधान भी बडा अनगढ है। इसीलिए आधुनिक काल के प्रारम्भ मे जब इन साहित्यिक रूपो को प्रस्तुत करने के प्रयास किये जाने लगे, तो हिन्दी के पुराने प्रयोगो को नही, वरन् अंग्रेजी की कृतियो को आदर्श माना गया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सर्व प्रथम, अंग्रेजी प्रभाव से ओत-प्रोत होकर, तथ्य-परक जीवनिया प्रस्तुत की। उन्होने ऐतिहासिक महापुरुषो मे विक्रमादित्य, नैपोलियन, जार, लार्ड मेयो और लॉर्ड लारेन्स, साहित्यकारो मे कालिदास, जयदेव और सूरदास, दार्शनिको मे शकराचार्य, रामानुज स्वामी और वल्लभाचार्य, तथा अपने समकालीन प्रसिद्ध व्यक्तियो मे द्वारकानाथ मैत्र, राजाराम शास्त्री आदि की जीवनियाँ लिखी। इस्लाम धर्म के सस्थापको मोहम्मद, अली, बीबी फातिमा, इमाम हसन और इमाम हुसैन की भी सक्षिप्त जीवनिया उन्होने उपस्थित की। यूनान के प्रसिद्ध विचारक सुकरात का भी एक सक्षिप्त जीवन-वृत उन्होने लिखा था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद राधाकृष्ण दास ने, जीवनी लिखने का कार्य अपने हाथो मे लिया। उन्होने इस क्षेत्र मे सर्व प्रथम, बगला से अनुवाद प्रस्तुत किये जो सभी 'विद्या विनोद' मे प्रकाशित हुए। उसके बाद उन्होने 'बाप्पा रावल' (१८८८), 'नागरीदास' (१८९४), 'बिहारीलाल' (१८९५), 'ईश्वरचन्द्र विद्यासागर' (१८९८), 'सूरदास' (१८९०), और 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' की मौलिक जीवनिया लिखी। इन सभी कृतियो मे, अंग्रेजी के जीवनी साहित्य के आदर्श पर प्रामाणिक जीवन-वृत उपस्थित किये गये है। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने प्रमाणिक जीवनियाँ प्रस्तुत करने के साथ-साथ, चरित्र निर्माण के

आदर्श का भी समन्वय किया उनके लिखे हुये जीवन-वृत्त स्व-संपादित 'सरस्वती' पत्रिका मे समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। द्विवेदी जी के समकालीन लेखको में मुंशी देवीप्रसाद ने राजस्थान के अनेक ऐतिहासिक महापुरुषो की जीवनिया लिखीं। हिन्दी के इन सभी जीवनीकारो ने, जैसा हम पहले कह आये है, इस साहित्यिक विधा के अंग्रेजी आदर्शो को ग्रहण कर, लोकोत्तरता का परित्याग करके तथ्य-परक रचनाये प्रस्तुत की है। इस साहित्यिक रूप का विशिष्ट आदर्श, चरित्र-निर्माण, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की ही रचनाओ मे पर्याप्त निखरा है।

इतिहास

हिन्दी मे इतिहास लेखन के प्रयास भी, आधुनिक काल मे, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे प्रारम्भ हुए। इस प्रभाव के पूर्व, इतिहास को हम,पुरा वृत्त का भावना और कल्पना से अनुरजित चित्रण, पुराण समझते थे। अंग्रेजी के इतिहास ग्रन्थो के अनुशीलन के अनन्तर, इतिहास का तात्पर्य, पहले की घटनाओ—विशेष रूप से राजनीतिक घटनाओ—का कालानुक्रम विवरण समझा जाने लगा। इसी नवीन इतिहास-दर्शन को लेकर राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' ने, सन् १८७३ मे 'इतिहास तिमिर नाशक' ग्रन्थ प्रकाशित किया। इस ग्रन्थ की रचना, उसकी सज्ञा के अनुरूप, भारतीय इतिहास के महान व्यक्तियों एव विशिष्ट घटनाओ को आवृत करने वाले अधकार के विनाश के लिये की गई थी। इस प्रथम प्रयास के अनन्तर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'काश्मीर कुसुम', 'महाराष्ट्र देश का इतिहास', 'बूदी का राजवश', 'बादशाह दर्पण या मुसलमान राजत्व का सक्षिप्त इतिहास','उदय पुरोदय' और 'कालचक्र' रचनाएँ प्रकाशित की। इन सभी ग्रन्थो मे अंग्रेजी के इतिहास ग्रन्थो की वैज्ञानिक, कालानुक्रमिक एव तथ्य-परक पद्धति का अनुसरण है। इसके अनन्तर, मुन्शी देवीप्रसाद इस दिशा मे अग्रसर हुए उन्होने राजस्थान के अनेक ऐतिहासिक पुरुषो की प्रामाणिक जीवनिया प्रस्तुत की 'मानसिंह' (१८८९), 'उदयसिंह' (१८९८), 'प्रतापसिंह' (१९०३) आदि, और उसके बाद 'आमेर के राजे' (१८९३),'हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाह' (१९०९), 'पडिहार वश प्रकाश' (१९११) और 'मुगल वश' (१९११); 'मिश्र बन्धु' ने 'रूस का इतिहास' (१९०९) और 'जापान का इतिहास' (१९११) प्रस्तुत किये।

प्रेरणात्मक साहित्य

अंग्रेजी की कुछ प्रेरणात्मक रचनाओ ने भी हिन्दी के साहित्यकारो को आकर्षित किया। सैमुएल स्माइल की 'सेल्फ हेल्प', और जॉन स्टुअर्ट ब्लैकी की 'सेल्फ कल्चर' जैसी कृतिया तो विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत भी रही थी। काशीनाथ ने ब्लैकी

के 'सेल्फ कल्चर' का 'हितोपदेश' नाम देकर अनुवाद भी किया था। लॉर्ड चेस्टरफिल्ड की प्रेरणात्मक रचना 'लेटर्स टु दि सन' को भी 'काव्य शिक्षा' (१६११) नाम से अनुवादित किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी, अपने प्रारम्भिक साहित्यिक जीवन मे अंग्रेजी की एक रचना को 'आदर्श जीवन' (१६ २) नाम देकर अनुवादित किया था। इस काल के अनेक निबन्धो, जैसे बालकृष्ण भट्ट कृत 'आत्म निर्भरता' पूर्णसिंह कृत 'सच्ची वीरता', 'आचरण की सभ्यता' आदि पर अंग्रेजी की इन प्रेरणात्मक कृतियो का प्रभाव है।

पत्र एव पत्रिकाए

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की 'हरिश्चन्द्र मेगजीन' (१८७३) से लेकर, महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती' (१६००) तक, जिसका प्रकाशन अभी तक चल रहा है, विभिन्न पत्र एव पत्रिकाओ मे प्रकाशित सामग्री का अगर अवलोकन किया जाय, तो उनमे सभी प्रकार के विषयो पर रचनाए मिल जाती हैं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपनी पत्रिका के मुख्य पृष्ठ पर प्रकाशित सूचना के अनुरूप, उसमे अनेक, प्राचीन तथा नवीन साहित्यिक विधाओ की कृतियो को स्थान दिया था, तथा सामान्य रुचि एव वैज्ञानिक विषयो के भी अनेक लेख प्रकाशित किये थे 'सरस्वती' पत्रिका ने भी अपने प्रथम अक की प्रस्तावना मे इतनी ही विस्तृत योजना की घोषणा की थी

"इसके जीवन धारणा करने का केवल यही उद्देश्य है कि हिन्दी रसिको के मनोरजन के साथ ही साथ भाषा के सरस्वती भडार की अगपुष्टि, वृद्धि, यथावत पूर्ति हो, तथा भाषा सुलेखको की ललित लेखनी उत्साहित और उत्तेजित होकर विविध भाव भरित ग्रथ-राशि को प्रसव करे। और इस पत्रिका मे कौन कौन से

विषय

रहेगे यह केवल इसी से अनुमान करना चाहिए कि इसका नाम सरस्वती है। इसमे गद्य, पद्य काव्य, नाटक, उपन्यास, चम्पू, इतिहास, जीवन चरित, पत्र, हास्य, परिहास कौतुक, पुरावृत्त, विज्ञान, शिल्प, कला-कौशल आदि साहित्य के भावतीय विषयो का यथावकाश समावेश रहेगा और आगत ग्रथादिको की यथोचित समालोचना की जायगी। इससे

लाभ

केवल यह सोचा गया है कि सुलेखको की लेखनी स्फुरित हो जिससे हिन्दी की अग पुष्टि और उन्नति हो।"

इस घोषणा के अनन्तर 'सरस्वती' के विभिन्न अको मे, इस योजना का अक्षरश कार्य्यान्विय मिलता है। इस पत्रिका मे इस प्रस्तावना मे निर्देशित विषयो के अतिरिक्त, यात्रा-विवरण, डायरी के उद्धरण, अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान की विभिन्न शाखाओ, ज्ञान की प्राय सभी धाराओ पर लेख प्रकाशित हुए थे। इन लेखो के प्राय सभी लेखक, अग्रेजी शिक्षा से सम्पन्न थ, इसीलिए अग्रेजी प्रभाव से भी ओत-प्रोत थे। इन लेखको मे महावीर प्रसाद द्विवेदी, कामता प्रसाद गुरु, 'मिश्रवन्धु' आदि उल्लेखनीय ह। डॉ० गगानाथ झा ने भी दार्शनिक विषयो पर अनेक लेख लिखे थे। इस काल की दूसरी महत्वपूर्ण पत्रिका 'इन्दु' (१९०९-१४) थी, और उसने भी 'सरस्वती' की भाति ही, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव के प्रसार मे योग दिया था। उस काल के दैनिक पत्र, अग्रेजी दैनिको से कितने अधिक प्रभावित थे, यह महावीर प्रसाद द्विवेदी की निम्नलिखित पक्तियो से स्पष्ट है

"जितने समाचार पत्र हिन्दी मे निकलते है, उनमे से प्राय सभी के सम्पादकीय लेखो और समाचारो के लिए अनेक अश मे पायनियर, वगाली, अमृत वाजार पत्रिका और एडवोकेट ऑफ इ डिया आदि अग्रेजी पत्र उत्तमण का काम देते है मासिक पुस्तको का भी यही हाल है।"[1]

द्विवेदी जी का विचार था, कि हिन्दी के पत्र एव पत्रिकाए तभी उन्नति कर सकती है, जव अग्रेजी शिक्षा सम्पन्न नवयुवक उनके प्रकाशन मे विशेष रुचि ले

"कुछ लोग अग्रेजी भाषा और उसके जानने वालो से द्वेष करते है। × × × उनको जानना चाहिए कि हिन्दी मे समाचार पत्रो का निकालना हमने अग्रेजी जानने वालो की ही वदौलत सीखा है। यह अग्रेजी शासन का ही प्रसाद है। अग्रेजी के समाचार-पत्र-साहित्य को अनेक वातो मे आदर्श माने विना हिन्दी के साहित्य को हम कभी उन्नत नही कर सकेंगे। मेरी जड वुद्धि मे तो सम्पादको के लिए अग्रेजी जानना आवश्यक नही, अपरिहार्य है। मैं तो यहाँ तक कहने का साहस कर सकता हू कि हमारे साहित्य की इस शाखा की जो इतनी दीन दशा है उसका एक कारण यह भी है कि हम हिन्दी लेखक अग्रेजी नही जानते और जानते भी ह तो वहुत कम।"[2] द्विवेदी जी के इस आह्वान के फल स्वरूप, अग्रेजी शिक्षित नवयुवक, जैसे जैसे हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र मे आते रहे, उनकी रचनाओ के माध्यम से, अग्रेजी प्रभाव भी, हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे अभिवर्धित होता गया।

१—'सरस्वती', अक्टूवर, १९११, पृ० ४६३
२—वही, पृ० ४६६—७,

निष्कर्ष

इस अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि छोटे साहित्यिक रूपो निबन्ध, आलोचना, जीवन-चरित्र, इतिहास, प्रेरणात्मक रचनाओ आदि पर भी अंग्रेजी प्रभाव पर्याप्त रहा है। हिन्दी निबन्ध तो विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि है। हिन्दी आलोचना भी, अंग्रेजी के आलोचना ग्रन्थो के सम्पर्क से, सदृढ हुई है। हिन्दी मे जीवन-चरित्र और इतिहास ग्रन्थो के निर्माण मे भी अंग्रेजी की कृतिया, आदर्श रूप रही हैं। हिन्दी की पत्रकारिता भी, अपने विभिन्न स्वरूपो मे अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे, प्रगतिशील रही है।

: १२

निष्कर्ष : अंग्रेजी प्रभाव की मुख्य प्रवृत्तियां

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव का यह अध्ययन, हमारी योजना के अनुसार, अब पूरा हो चुका है, केवल उसके अन्तिम निष्कर्ष देना ही शेष रह गया है। इस अन्तिम अध्याय मे हम, सर्व प्रथम, हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर इस प्रभाव की मुख्य प्रवृत्तियो को स्पष्ट कर रहे है, उसके बाद, हिन्दी भाषा एव साहित्य पर कार्य करने वाले विभिन्न प्रभावो का तुलनात्मक विश्लेषण होगा, और फिर अन्त मे अन्य प्रभावो की तुलना मे, अंग्रेजी प्रभाव के महत्व की विवेचना होगी। प्रारम्भ मे हम, इसी सयोजना के अनुरूप, हिन्दी भाषा एव साहित्य के विकास मे, अ ग्रेजी प्रभाव के योग तथा अनुदान की प्रमुख प्रवृतियो का स्पष्टीकरण उपस्थित कर रहे है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य के विकास मे, अ ग्रेजी प्रभाव का सबसे बडा योग, उसके अवरोधो को समाप्त करके, द्रुतगतिक परिवर्तन के क्रम का सूत्रपात रहा है। इस प्रभाव के आगमन के पूर्व, हम जैसा कह आये हैं, हिन्दी भाषा और साहित्य, 'प्रतिवद्ध समाज' की अभिव्यक्ति रहे थे, इसलिए उनमे प्रगति के तत्वो का अभाव रहा था। किन्तु अ ग्रेजी प्रभाव की झझावात ने, भारतीय समाज के मूलाधारो को ही हिला दिया था, और उसे अपने प्रवल आघातो से झकझोर कर, विकास की ओर, द्रुतगतिशील परिवर्तन की दिशा मे, अग्रसर कर दिया था। इस द्रुतगतिक सामाजिक

विकास के फलस्वरूप, उसकी अभिव्यञ्जना के स्वरूपो, हिन्दी भाषा और साहित्य मे भी, प्रगतिशीलता के अनुक्रम का समावेश हुआ ।

अंग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा एव साहित्य मे, इस गतिशीलता के क्रम के सूत्र-पात के अतिरिक्त, अंग्रेजी भाषा और साहित्य के सम्पर्क के माध्यम से, अपनी धाराओ को अधिक निश्चित एव घनीभूत किया । हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव के अध्ययन मे हमने, उसके इसी निश्चित एव घनीभूत रूप, अंग्रेजी भाषा और साहित्य के प्रभाव का विश्लेषण किया है । हिन्दी भाषा ने, अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क से, अपने ध्वनि-विन्यास, शब्द-भडार, वाक्य-विधान, अभिव्यञ्जना प्रणाली आदि मे बहुत कुछ ग्रहण किया है, और इसी प्रकार हिन्दी साहित्य ने, अंग्रेजी साहित्य के अनुशीलन से अपने को पर्याप्त परिवर्तित कर लिया है ।

अंग्रेजी भाषा, ससार की अत्यधिक उन्नत आधुनिक भाषाओ मे से है, और अंग्रेजी साहित्य भी आधुनिकता की वृत्तियो से विशेष रूप से ओत-प्रोत है । हिन्दी भाषा और साहित्य ने भी इनके सम्पर्क से आधुनिक प्रवृत्तियो को आत्मसात एव प्रगतिशील तत्वो को विकसित किया है । अंग्रेजी भाषा एव साहित्य के माध्यम से, उनकी अपनी तथा कुछ आधुनिक प्रवृत्तियो का ग्रहण, निश्चित अनुक्रम से, किन्तु बडा द्रुतगति पूर्ण हुआ है । अंग्रेजी भाषा और साहित्य ने, शताब्दियो के विकास-क्रम मे जिन प्रवृत्तियो को विकसित किया था, अंग्रेजी प्रभाव की छाया मे, हिन्दी भाषा और साहित्य ने, उन्हे कुछ दशको, और कभी तो कुछ वर्षो मे ही, विकसित किया है । अंग्रेजी प्रभाव से प्रेरणा लेकर, हिन्दी भाषा एव साहित्य के निर्माण मे तत्पर, लेखको एव साहित्यकारो के विषय मे, यह कहना आवश्यक है, कि उन्होने कभी अन्धानुकरण नही किया, वरन् स्वय अपनी प्रतिभा, तथा अपने देश की साहित्यिक परपरा के प्रति सजग होकर, अंग्रेजी भाषा एव साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियो को आत्मसात किया है । उन्होने इस विदेशी प्रभाव से जो कुछ ग्रहण किया है, उसे अपनी मौलिक प्रतिभा से अनुप्राणित करके, अपना बनाकर, उपस्थित किया है ।

हिन्दी भाषा ने, अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क मे, अपने शब्द-भडार की पर्याप्त अभिवृद्धि की है अंग्रेजी के बहुत से शब्द अपने मूल रूप मे ग्रहण किये गये है, और अनुवादित करके ग्रहण किये गये शब्दो की सख्या तो और भी अधिक है । अंग्रेजी मे अनुवादित रूप मे गृहीत शब्दावलियो, प्रयोगो और लोकोक्तियो की सख्या भी पर्याप्त है । अंग्रेजी प्रभाव को लेकर तथा अंग्रेजी व्याकरण के आदर्श पर ही, हिन्दी के व्याकरणिक सिद्धान्तो का विश्लेषण एव विवेचन हुआ । हिन्दी का वाक्य-विधान भी अंग्रेजी प्रभाव से समन्वित है । विराम-चिन्हो का प्रयोग हिन्दी मे अंग्रेजी मे ही आया।

है। इसी प्रकार रचना शैली के कुछ विशिष्ट प्रकार भी अंग्रेजी भाषा से ग्रहण किये गये है। अंग्रेजी भाषा के सम्पर्क के फलस्वरूप, हिन्दी भाषा की अभिव्यञ्जना शक्ति विशेष अभिवर्धित हुई है। हिन्दी गद्य का समुचित विकास तो इसी प्रभाव को लेकर सम्भव हुआ है, और छन्दमयी अभिव्यञ्जना प्रणाली मे भी, बडे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए है।

अंग्रेजी प्रभाव को लेकर, हिन्दी मे अनेक नवीन साहित्यिक विधाओ का सूत्रपात हुआ है। हिन्दी नाटक का समुचित विकास तो इसी प्रभाव की प्रेरणा से सम्भव हुआ है। हिन्दी मे उपन्यासो की रचना, अंग्रेजी के इस साहित्य-विधा के ग्रन्थों के अनुशीलन के अनन्तर ही, प्रारम्भ हुई। हिन्दी कहानी और निबन्ध तो पूर्णत अंग्रेजी प्रभाव की ही सृष्टि है। हिन्दी कविता ने भी इस सम्पर्क के फलस्वरूप अपने अन्तर और बाह्य दोनो को परिवर्तित कर दिया है। हिन्दी मे पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन भी, अंग्रेजी पत्रकारिता से प्रेरणा लेकर ही हुआ है। अंग्रेजी प्रभाव, ने हिन्दी साहित्य मे, नवीन जीवन मूल्यो की सृष्टि मे भी योग दिया है।

हिन्दी कविता मे नवीन जीवन मूल्यो का उपयोग, सर्व प्रथम बाह्य कलात्मकता के स्थान पर, आन्तरिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति एव प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण मे, देखने को मिला। आन्तरिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति का क्रम, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की काव्य-रचनाओ से प्रारम्भ हुआ, और बद्री नारायण चौधरी 'प्रेमघन', श्रीधर पाठक, लोचन प्रसाद पाडेय, जयशंकर प्रसाद आदि मे वह बढता ही गया। प्रकृति के प्रति परिवर्तित दृष्टिकोण, यथार्थ चित्रण की वृत्ति का उपयोग भी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की रचनाओ से ही आरम्भ हुआ। श्रीधर पाठक और लोचन प्रसाद पाडेय ने प्राकृतिक शोभा का, उसके समस्त आकर्षण और सम्मोहन के साथ वर्णन किया। प्रसाद जी की रचनाओ मे प्रकृति मानव जीवन पर एक विशिष्ट प्रभाव के रूप मे भी, अवतरित हुई। प्रकृति के प्रति इस परिवर्तित दृष्टिकोण के विकास मे, अंग्रेजी के कवियो टॉमसन और वर्ड्सवर्थ की रचनाओ के अध्ययन का विशेष योग रहा है। हिन्दी कवियो ने, अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क मे—ओड, सॉनेट, शोक-काव्य, समाधि-लेख आदि—कुछ नवीन विधाए भी ग्रहण की है।

हिन्दी नाटक मे, इस परिवर्तित जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति, भारतीय नाट्य परपरा के रस तत्व के स्थान पर, सघर्ष के मूलात्मा के रूप मे ग्रहण मे हुई। सघर्ष को मूल तत्व के रूप मे स्वीकार करके, हिन्दी नाटक ने, सस्कृत के आदर्शवादी साहित्य-दर्शन से अपने को विच्छिन्न करके, यथार्थवाद को ग्रहण कर लिया। इसी यथार्थवादी साहित्य-दर्शन के ग्रहण के फलस्वरूप, हिन्दी नाटक मे सुखान्तकी के

साथ दुखान्तकी रचनाओ को भी प्रश्रय मिला। इस परिवर्तन साहित्यिक दृष्टि के साथ अंग्रेजी के नाटककारो—शेक्सपियर एडिसन, शेरिडन आदि की रचनाओ ने भी हिन्दी नाटक को प्रभावित किया। फ्रासीसी हास्य नाटककार मोलियर का भी कुछ प्रभाव, हिन्दी नाटक, विशेष रूप से, जी० पी० श्रीवास्तव की रचनाओ पर है।

अंग्रेजी प्रभाव से उत्पन्न नवीन जीवन मूल्यो एव साहित्यिक आदर्शो की अभिव्यक्ति, हिन्दी कथा साहित्य, उपन्यास और कहानी दोनो मे ही, और अधिक हुई है। जीवन के प्रति यथार्थवादी दृष्टि ने, जो इन दोनो ही साहित्यक विधाओ मे व्यापक रूप से प्रकट हुई है, अब तक जो कुछ अर्थहीन और क्षण-भगुर समझा जाता था, उसे महत्वपूर्ण एव मूल्यवान बना दिया। साहित्य के इन दोनो ही रूपो मे, जीवन के मौलिक सत्यो को उनकी समस्त यथार्थता के साथ अभिव्यक्ति मिली उपन्यास मे यह अभिव्यक्ति व्यापक विन्यास मे देखने को मिलती है, और कहानी मे, जीवन की सामान्य और महत्वहीन प्रतीत होने वाली घटनाओ को भी, कलात्मक सौंदर्य एव साहित्यिक मूल्य से ओत-प्रोत कर दिया गया है। अंग्रेजी उपन्यासकारो मे, प्रस्तुत अध्ययन की सीमा मे, सबसे अधिक प्रभाव तो जॉर्ज डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड का है, किन्तु उसके साथ-साथ जॉर्ज इलियट, हैरियट बीचर स्टो, आर्थर कॉनन डॉयल, विल्की कालिन्स आदि ने भी हिन्दी उपन्यासकारो को प्रभावित किया है। हिन्दी कहानी के विकास मे, अंग्रेजी प्रभाव, किसी कथाकार विशेष अथवा विशिष्ट रचना का नही वरन् शिल्पगत अधिक रहा है।

अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी मे कुछ नवीन साहित्यिक रूपो—निबन्ध, जीवन-चरित, इतिहास आदि—का भी विकास हुआ है। इन नवीन साहित्यिक रूपो के प्रारम्भिक प्रयोगो मे, अंग्रेजी प्रभाव अन्तर्धारा मे भी देखने को मिलता है। अंग्रेजी के साथ आई हुई नई विचारधारा की अभिव्यक्ति, विशेष रूप से, निबन्धो मे है। हिन्दी मे प्रारम्भ मे जो जीवन-चरित और इतिहास ग्रन्थो की रचना हुई, उनमे अंग्रेजी की इन साहित्यिक रूपो की कृत्तियो के आदर्शो का अनुसरण किया गया। हिन्दी मे व्यावहारिक आलोचना का अभ्युदय भी, अंग्रेजी के आलोचनादर्शो के अनुशीलन तथा उनके व्यवहारिक स्वरूप के अनुशीलन के फलस्वरूप हुआ। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओ का प्रकाशन भी, इसी प्रकार, अंग्रेजी पत्रकारिता से प्रेरणा लेकर प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजी प्रभाव ने इस प्रकार, हिन्दी साहित्य के सभी रूपो पर, अपनी स्पष्ट छाप छोडी है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर, अंग्रेजी प्रभाव के अनुशीलन के अनन्तर, अन्य प्रभावों के साथ उसका तुलनात्मक अध्ययन भी यहा अपेक्षित है। अंग्रेजी प्रभाव के

पूर्व, सस्कृत और अपभ्र श प्रभावो ने, हिन्दी भाषा एव साहित्य के विकास मे योग दिया था। इन दोनो प्रभावो के पूर्णत भारतीय होने के कारण, इन्हे प्रभाव के स्थान पर, परम्परा का अनुदान कहना उपयुक्त होगा। फारसी भाषा और साहित्य का प्रभाव, विदेश से आया हुआ होने के कारण, निश्चित रूप से प्रभाव कहा जा सकता है। हिन्दी भाषा और साहित्य ने, यद्यपि पर्याप्त फारसी प्रभाव ग्रहण किया है, तथापि उसका योग अग्रेजी प्रभाव की तुलना मे, थोडा प्रतीत होता है। फारसी प्रभाव के फलस्वरूप, हिन्दी के भाषा सम्बन्धी तथा साहित्यिक आदर्शो मे, कोई आधारभूत परिवर्तन नही हुआ था। फारसी भाषा के बहुत से शब्द और पर्याप्त सख्या मे मुहावरे तथा कहावतें हिन्दी मे गृहीत हुई। हिन्दी साहित्य मे फारसी की प्रेरणा से, 'पद्मावत,' 'मधुमालती', आदि प्रेमाख्यानक काव्यो की रचना हुई। अग्रेजी प्रभाव ने फारसी प्रभाव की तुलना मे, हिन्दी भाषा तथा साहित्य को, मध्ययुगीन प्रवृत्तियो से विच्छिन्न कर के पूर्णत आधुनिक बना दिया। हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे, अग्रेजी प्रभाव के बिना भी, आधुनिक प्रवृत्तियो का सूत्रपात हो गया होता, किन्तु जो वस्तु-स्थिति है, उसमे हमे, अग्रेजी प्रभाव का योग स्वीकार करना होगा। अग्रेजी प्रभाव इस प्रकार हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर पडने वाले विभिन्न प्रभावो मे, सबसे अधिक सशक्त कहा जा सकता है।

हिन्दी भाषा तथा साहित्य पर अग्रेजी प्रभाव का यह अध्ययन समाप्त करते हुए, यह कहना भी आवश्यक है, कि प्रस्तुत अध्ययन की अवधि सन् १९२० के बाद भी वह चलता रहा है। अग्रेजी प्रभाव को आज भी हम, कार्यशील देख रहे हैं, किन्तु अब उसने यूरोपीय देशो और उससे भी अधिक सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत, जिसके अन्तर्गत अमरीका भी आ जाता है, के प्रभाव का व्यापक रूप ग्रहण कर लिया है। अग्रेजी प्रभाव के माध्यम से हम, केवल पाश्चात्य जगत ही नही एशिया के अनेक देशो के साहित्यो के सम्पर्क में आये है। अग्रेजी भाषा तथा साहित्य के सम्पर्क के फलस्वरूप ही आज हम, विश्व के अनेक देशो की साहित्यिक प्रगति और भाषागत विकास से परिचय प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि अग्रेजी प्रभाव ने, हिन्दी भाषा तथा साहित्य मे, जिस द्रुतगति पूर्ण परिवर्तन का सूत्रपात किया, अग्रेजी राज्य की समाप्ति के बाद, आज भी वह उसी चेतना को जगा रहा है।

परिशिष्ट 'क'

अयोध्याप्रसाद खत्री द्वारा, 'अवध अखबार' मे, 'खडी बोली का पद्य' (१८८९) मे अ तरित निम्नलिखित प्रसग, यह स्पष्ट करता है, कि अ ग्रेजी शब्द उन्नीसवी शताब्दी मे ही, भारतीय जीवन धारा मे इतने अधिक घुल-मिल गये थे कि उनके प्रयोग के बिना प्रति दिन का कार्य चलना भी दूभर हो गया था

चार बजे शाम का वक्त है। हम दिनभर की रियाजत और दरमगी के बाद अपने कमरे मे एक कोच पर लेटे हुये आराम कर रहे है, और चुरट पीते जाते हैं। [illegible] और एक [illegible] मेहमान जी जो करा सुबह रोग त होन जाते है, 'अवध [illegible]' की एक [illegible] किताब पर जिसका उनवान "उर्दू-जबान मे अ ग्रेजी अल्फाज" है, बहस करके दिमाग चाटे जाते है। हम कहते हैं उर्दू जबान मे अ ग्रेजी अल्फाज जरूर शामिल होते जायेगे। इस वास्ते उनके समझने की कोशिश करनी चाहिये। वह कहते हैं कि अ गरेजी का एक लफज उर्दू के साथ इस्तेमाल न करना चाहिये। मैं कहता हूँ [illegible] अ गरेजी अल्फाज के बोले हुये इस जबान मे चारा नही है। वह कहते है कि हमने अहद कर लिया है कि कभी अगरेजी न बोलेंगे। मैं कहता [illegible] कि बहुत बेहतर, आपके अहद मे मैं भी शरीक हूँ और इन्शाह अल्लाह [illegible] कब मुँह मे एक लफज अगरेजी का उर्दू मे न मिलाऊगा। अब हम

वहस में ग्यारह वज गये और हम लोग आव व गिज़ा से फरागत हासिल करने के वाद यह अहद करके सो रहने हैं कि कल सुवह से अगरेजी का कोई लफ्ज उर्दू तहरीर और न तकरीर मे इस्तेमाल करेंगे और जो शख्श ऐसा करेगा उसका मु ह वन्द कर देंगे या उसके हाथ से कलम लेकर तोड डालेंगे। दो-एक घटे सो कर सात वजे के करीव वेदार हुये।

हम— कोई है!

आदमी— जी।

हम— क्या वजा है?

आदमी— हुजूर अधेरे मे मुझे न मालूम होगा, कहिये घडी उठा लाऊ।

हम— अच्छा।

आदमी— कौन सी घडी लाऊ, टाइम पीस या क्लाक?

हम— महज़ वक्त वताने वाली।

आदमी— उसका हाल मुझको मालूम नही है।

हम— अभी दो घडियो का नाम लिया है। उसमे से वह ला जिसका पहले नाम लिया था।

आदमी— अव मुझे क्या याद है कि किसका नाम पहले और किसका नाम वाद मे लिया था?

हम— अच्छा फिर नाम ले।

आदमी— आप मुझमे जिस घडी को कहिए ले आऊ।

हम— अच्छा जाने दो। एक वह ले आओ, तम्वाकू लपेटा हुआ पत्ता जो हम पीते है।

आदमी— तम्वाकू का पत्ता इस वक्त कहा से आवे दुकान खुलने दीजिये।

हम— अवे वह जो वकस (अरे तोवा!) सन्दूकचा मे रक्खे हुये ह।

आदमी— हुजूर सन्दूकचा न छुऊगा। उसमे अौवल तो कुलुफ लगा होगा। दूसरे अगर खुला हो तो उसमे रुपया पैसा रक्खा होगा।

हल— भाई, वह सन्दूकचा नही, दूसरा लकडी का खाना जिसमे तम्वाकू की भिन्डिया रक्खी हुई है। जिनको हम हुक्के के वदले पीते हैं और तुम लाते हो।

आदमी— हमको पहेली वूझना नही आता, साफ-साफ कहिये।

हम— अच्छा मु ह धोने को पानी और मिस्वाक ले आओ।

आदमी— (नीम का मिस्वाक और पानी रख कर लीजिये।

हम— यह नही, अगरेजी मिस्वाक जिसमे वाल ऐसे लगे होते है।

आदमी— पल्लू की मिस्वाक अव कहा है। यह नीम को मिस्वाक भी अपने लिये लाया था वर्ना यह भी इस वक्त न मिलती।

हम— नाश्ता के लिये विलायती टिकिया और मुर्फाना ले आओ।

आदमी— दूसरी क्या चीज आपने वताई ?

हम— वह पानी जो हम पीते है, छना हुआ।

आदमी— फिल्टर का पानी।

हम— हा! हा!! भाई।

आदमी— (डेवढी पर जाकर) आया! विलायती टिकिया नाश्ते के लिये दे जाव।

आया— कह देना टिकियो के लिये आज आदमी लन्दन भेजा जाएगा।

आदमी— हुजूर आया ने कहा है कि विलायती टिकिया नही है।

हम— कहना वही मामूली नाश्ता जो आता था, भेज दो।

आदमी— (थोडी देर के वाद आकर) हुजूर विस्कुट दिये हे।

हम— हा, यही तो मागने थे।

आदमी— (आपस मे) आज मिया की तवियत कुछ वहक गई है। अजव अजव वाते करते है। अभी कहा था कि विलायती टिकिया ले आओ और जब कई मरतवे चक्कर काटकर मे विस्कुट ले आया तो कहने लगे कि यही तो।

हम— (वाहर आकर) यहाँ आव।

आदमी— जी।

हम— गाडीवान् को वुला लाव।

आदमी— गाडीवान आज छकडा लेकर वाहर चला गया है।

हम— यह नही दूसरा गाडीवान जो घोडो की गाडी हाँकता है।

आदमी— क्या कोचवान को वुला लाऊ।

हम— हा।

आदमी— (अस्तवल मे जाकर) अरे भाई गाडीवान! चलो तुमको मिया वुलाते है।

कोचवान— गाडीवान् तुम और तुम्हारे वाप! हम शरीफ आदमी है। वग्घी हाकने से गाडीवान थोडा हो जाऊगा।

आदमी— अरे खफा न हो आज यह खिताव मिया ने तुमको दिया है। वहा चल कर देखो तो कैसी वहकी-वहकी वातें करते है।

कोचवान—कहिये हुजूर।

हम— एक छोटी गाडी दो पहियो वाली ले आओ।

मेहमान—हजरत ! नौ बजा चाहते हे । रेन का वक्त आ गया । अब स्टेशन जाने की जल्दी कीजिए।

हम— लाहौल विला कूवत ! तुमने तो आज आफियत तग कर दी और आखिर वही किया जो हम कहते थे।

मेहमान—क्यो ? क्या ?

हम — कोई अहद किया था।

मेहमान— हा ! तो फिर।

हम— मैं आज सुवह से हैरान वो परेशान हू न तो अभी तक मु ह धोया है न नाश्ता किया न कघी । न कपडे वदले । जो काम करना चाहता हू यह अहद सामने होता है।

मेहमान — हा ।

हम— भाई जान ! मेरी आदत थी सुवह को उठकर एक चुरुट पीता या ब्रुश से दात साफ करता था । वाद उसके दो एक विस्कुट खाकर नाश्ता करता था । पानी मैं हमेशा फिल्टर का पिया करता हू । इन सब चीजो को अजब अजब तरकीबो से मैने बताया और तबियत पर निहायत जोर देकर तरजु मा करना चाहा पर कुछ न हुआ । आदमी अपने दिल मे कहता होगा कि मिया को आज खुदा जाने क्या हो गया है । बिस्कुट के बदले मैंने बिलायती टिकिया तलब की । तब आया ने जवाब दिया कि लदन को आदमी भेजा गया हे ।

मेहमान — (कह कहे लगा कर) ऐ ! लाहौल विला कूवत ! तोवा ! ! वोवा ! !

हम— तुमने सारी कैफियत तो सुनी ही नही, यार हसते हसते लोट जाते ।

परिशिष्ट 'ख'

हिन्दी-प्रदेश मे सन् १८७० से १९२० तक विभिन्न पाठ्य-क्रमो मे स्वीकृत अंग्रेजी साहित्यकार और उनकी रचनाओ की साहित्य-विधा और कालानुक्रम मे सूची

कविता

जॉन मिल्टन 'पैराडाइज लॉस्ट', 'लिसीडस', 'ल' एलेग्रो', 'इल पेन्सोरोजो'

एलेक्जेन्डर पोप 'दि टेम्पिल ऑफ फेम', 'ऐन एसे ऑन क्रिटीसिज्म', 'एसे ऑन मैन'

सैमुएल जॉनसन 'दि वैनिटी ऑफ ह्यमन विशेज' 'लन्डन'

ऑलिवर गोल्डस्मिथ . 'दि हरमिट', 'दि डेजर्टेड विलेज', 'दि ट्रैवलर'

जेम्स टॉमसन 'दि सीजन्स'

विलियम काउपर 'दि टास्क'

टॉमस ग्रे 'एलेजी रिटेन इन ए कन्ट्री चर्चयार्ड'

विलियम वर्ड्सवर्थ 'एक्सकर्शन'

सर वाल्टर स्कॉट 'ले ऑफ दि लास्ट मिन्सट्रेल', 'मॅरमियन', दि लेडी ऑफ दि लेक'

जॉर्ज गॉर्डन बायरन 'चाइल्ड हेरॉल्ड्स पिलग्रिमेज'

पर्सी बिशे शैली 'एडोनेस'

जॉन कीट्स 'हाइपरियन', 'स्लीप एन्ड ब्यूटी'
एल्फ्रेड टेनिसन 'एलमम फल्ट', 'दि प्रिन्सेस', 'एनॉक आर्डेन', 'मॉरटेड आर्थर', 'डोरा' 'यूलिसीज', 'दि लोटस ईटर्स'
मैथ्यू अर्नॉल्ड 'मोहराब एन्ड रुस्तम
टॉमस बेबिंगटन मेकॉले 'लेज ऑफ एन्शेन्ट रोम'
हेनरी लॉगफेलो 'इवेन्जेलीन'
ए० सी वार्ड (स०) 'इंगलिश पोएट्स्' खण्ड ३ और ४

नाटक

क्रिस्टफर मार्लो 'डॉक्टर् फास्टस'
विलियम शेक्सपियर 'जूलियस सीजर', 'कैरोलिनस', 'ए मिडसमर नाइट्स ड्रीम', 'मच एडो एबाउट नथिंग', 'हैमलेट', 'ओथैलो', 'मैकबेथ', 'किंग लियर', 'दि टेम्पेस्ट','दि मरचेन्ट ऑफ वेनिस', 'ट्वेल्थ नाइट', 'किंग जॉन', रिचर्ड सेकेन्ड', 'हेनरी फोर्थ', 'हेनरी फिफ्थ', 'दि टेमिंग ऑफ दि श्र्यू'
बेन्जमिन जॉन्सन 'एवरी मैन इन हिज ह्यूमर', 'दि एल्केमिस्ट'
जॉन मिल्टन 'कामस', 'सैमसन एगोनिस्टिस'
जोजेफ एडिसन 'कैटो'
ऑलिवर गोल्डस्मिथ 'शी स्टूप्स टु कॉन्कर'
रिचर्ड बी० शेरिडन 'दि राइवल्स', 'दि स्कूल फॉर स्कैन्डल'

उपन्यास

जॉन बनियन 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस'
डैनियल डेफो 'राबिन्सन क्रूसो'
सर वाल्टर स्कॉट 'आईवन हो', 'केनिलवर्थ'
जेन आस्टीन 'प्राइड एण्ड प्रेजुडिस'
चार्ल्स डिकेन्स 'ए टेल ऑफ टू सिटीज'
विलियम एम थैकेरे 'हेनरी एस्मण्ड', 'बैनिटी फेयर', 'दि न्यूकम्स'
चार्ल्स रीड 'दि क्लायस्टर एण्ड दि हर्थ'
जॉर्ज इलियट 'साइलस मानर', 'एडम बेडे', 'रोमोला', 'मिडिलमार्च'
टॉमस ह्यूजेज 'टॉम ब्राउनस् स्कूल डेज'

कहानी

चार्ल्स एण्ड मेरी लेम्ब 'टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर'
वाशिंगटन इरविंग 'दि स्केच-बुक'
नैथेनियल हॉथार्न 'दि टैंगिलउड टेल्स'
शार्लेट मेरी मग 'ए बुक ऑफ गोल्डेन डीड्स'
सेलेक्टेड इंग्लिश शार्टस्टोरीज (फर्स्ट सीरीज एव्री मैन्स लाइब्रेरी)

निबन्ध :

फ्राँसिस बेकन 'ऐसेज', 'दि एडवान्समेन्ट ऑफ लर्निंग'
जोजफ एडिसन 'एसेजज'
जोजेफ एडिसन तथा रिचर्ड स्टील 'सर रोजर दे कॉवर्ले'
ऑलिवर गोल्डस्मिथ 'सेलेक्शन फ्रॉम दि बी'
चार्ल्स लैम्ब 'एसेज ऑफ इलिया'
विलियम हैजलिट 'एसेज'
राबर्ट लुई स्टीवेन्सन वर्जीनिवस प्यूरस्के'

आलोचना

जॉन ड्राएडन 'एसे ऑन ड्रामेटिक पाएसी'
एलेक्जेन्डर पोप 'एन एसे ऑन क्रिटिसिज्म'
सैमुअल जॉन्सन लाइवज ऑफ पोप एण्ड ड्राएडन'
सैमुअल टी० कालरिज 'लिटरेरी क्रिटिसिज्म'
टॉमस बी० मैकॉले 'लाइवज ऑफ बनियन, गोल्डस्मिथ एण्ड जॉन्सन'
जॉर्ज सेन्ट्सबरी 'एलिजाबीथन लिट्रेचर', 'नाइन्टीन्थ सेन्चुरी इंग्लिश लिटरेचर'
मेथ्यू आनल्ड • 'लिट्रेचर एण्ड डाग्मा'
एडमाड गॉस 'ऐटीन्थ सेन्चुरी लिट्रेचर'
मार्क पेटिसन 'मिल्टन'
सिडनी ली 'दि मास्टर्स ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर'
सर वाल्टर रैले 'शेक्सपियर'
लेस्ली स्टीफेन : 'आवर्स इन ए लायब्रेरी'

प्रेरणात्मक साहित्य

जॉन स्टुअर्ट ब्लैकी सेल्फ कल्चर'
सैमुअल स्माइल्स 'सेल्फ हेल्प'

(१८७६)

गी' (१८८६)

(१८८६)

(१६०२)

(१८८६)

(१८६५)

ार लिखित

(१८६७)

(१६१५)

(१६०३)

(१६११)

(१६१२)

नाटक :

शेक्सपियर की रचनाएँ

'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स'	मुंशी इमदाद अली	'भ्रम जालक'	(१८७९)
'दि मर्चेंट आफ वेनिस'	हरिश्चन्द्र	'दुर्लभ बन्धु'	(१८८०)
'दि कॉमेडी ऑफ एरर्स'	लाला सीताराम	'भूल भुलैय्याँ'	
'मच एडो एबाउट नथिंग'	,, ,,	'मनमोहन का जाल'	
'दि टेम्पेस्ट'	,, ,,	'जंगल में मंगल'	
'रोमियो एण्ड जूलियट'	,, ,	'प्रेम परिणय'	
'ऐज यू लाइक इट'	, ,,	'अपनी अपनी रुचि'	
'हेनरी फिफ्थ'	,, ,,	'हेनरी पंचम'	
'दि विन्टर्स टेल'	,, ,,	'शरद ऋतु की कहानी'	
'हैमलेट'	,, ,,	'हैमलेट'	
किंग लियर'	,, ,,	'राजा लियर'	
'ओथेलो'	,, ,,	'ओथेलो'	
'जूलियस सीजर'	,, ,,	'जूलियस सीजर'	
'सिम्बेलीन'	,, ,,	'सिम्बेलीन'	
'रिचर्ड सेकेन्ड'	,, ,,	'रिचर्ड द्वितीय'	(१९१५)
'मैकबेथ'	,, ,,	'मैकबेथ'	(१९१५)
'रोमियो एण्ड जुलियट'	पुरोहित गोपीनाथ	'प्रेम लीला'	(१८९९)
'दि मर्चेंट ऑफ वनिस'	(?)	'वेनिस का व्यापारी'	(१८८१)
,, ,, ,,	गोकुलचंद शर्मा	'वेनिस का बांका'	(१८८६)
'ओथेलो'	गदाधर सिंह	'ओथेलो'	(१८९४)
'एज यू लाइक इट'	(?)	'ऐज यू लाइक इट'	(१८९७)
,, ,, ,, ,,	पुरोहित गोपीनाथ	'मनभाव'	(१८९६)
'दि विन्टर्स टेल'	(?)	'शरद ऋतु की कहानी'	(१८८१)
'जूलियस सीजर'	गणपति कृष्ण गुर्जर	'जयन्त'	(१९१२)
'रोमियो एण्ड जूलियट'	चतुर्भुज औदीच्य	'रोमियो जूलियट'	(१९११)
'ओथेलो'	(?)	'ओथेलो'	(१९१५)
,,	गोविन्दप्रसाद घिल्डियाल	,,	(१९१८)
जोजेफ एडिसन कृत 'केटो' 'ए ट्रेजेडी'	तोताराम	'केटो कृतान्त'	(१८७९)

अंग्रेजी से अनुवादित फ्रांसीसी नाटक

मोलियर की रचनाएँ

'मॉक डाक्टर'	जी० पी० श्रीवास्तव	'मार मार कर हकीम'	(१६११)
" "	लल्लीप्रसाद	'ठोक पीटकर वैद्यराज'	(१६१२)
'ला' मार मेडोमॉ'	जी० पी० श्रीवास्तव	'आँखो मे धूल'	(१६१२)
'ला मेडिसी वोलां'	" " "	'हवाई डाक्टर'	(१६१४)
'ला मैरीज फोर्स'	" " "	'नाक मे दम'	(१६१८)
'जॉर्ज डान्डा एण्ड लाजेलुसी टु वार्वानिली'		'जवानी वनाम बुढापा'	(१६१८)

पारसी नाटक कम्पनियों द्वारा उपस्थित अंग्रेजी नाटको के रंगमंचीय रूपान्तर

शेक्सपियर के सुखान्तकी

'दि विन्टर्स टेल'	'मुरादे शक'	(१८६५)
'सिम्बेलीन'	'जुल्मे नाहक'	(१८६५)
"	'मीठा जहर'	(१६००)
'दि मर्चेंट ऑफ वेनिस'	'दिल फरोश'	(१६००)
'मेजर फॉर मेजर'	'हुस्नारा'	(१६००)
" " "	'शहीदे नाज'	(१६०५)
'ट्वेल्फ्थ नाइट'	'भूल भुलैया'	(१६०५)
'ए कॉमेडी ऑफ एरर्स'	'गोरख धन्धा'	(१६१२)

शेक्सपीयर के दुखान्तकी

'रोमियो एण्ड जूलियट'	'बज्मे फानी'	(१८६६)
'हैमलेट'	'खूने नाहक'	(१८६६)
'ओथेलो'	'शहीद वफा'	(१८८६)
'टाइटस एण्ड्रोनियस'	'जुनूने वफा'	(१६००)
'किंग लियर'	'हार जीत'	(१६०५)
" "	'सफेद खून'	(१६०६)
'रिचार्ड थर्ड' एण्ड 'किंग जॉन'	'सैदे हवस'	(१६०६)
'एन्टनी एण्ड क्लियोपेट्रा'	'काली नागिन'	(१६०६)
" " "	'आन मुरीद'	(१६०६)

अन्य लेखकों के नाटक

डब्ल्यू० टी० मोन्क्रीफ 'दि ज्यूएम' — 'करिश्माई कुदरत' या 'अपनी या पराई'

डब्ल्यू० टी० मौन्क्रीफ		'यहूदी की लडकी'
लार्ड लिटन	'लेडी ऑफलियान'	'धूप छाया'
एच० ए० जोन्स	'दि सिल्वर किंग'	'सिल्वर किंग'
मेसेन्जम एण्ड डेकर्स	'दि वर्जिन मार्टयर'	'हूरे अरब'
शेरिडन	'पिजारो'	'असीरे हिर्स'
एलेक्जेन्डर ड्यूमा	'दि टावर ऑफ नाइल,	'खूने जिगर'

उपन्यास

डैनियल डेफो	'राविन्सन क्रूसो'	प० बद्रीलाल	'राविन्सन क्रूसो का इतिहास'	(१८६०)
जॉन बनियन	'दि पिलिग्रम्स प्रोग्रेस'		'यात्रा स्वप्नोदय'	(१८६७)
जॉर्ज डब्ल्यू०एम० रनाल्ड	'फाउस्ट'	चुन्नीलाल खत्री	'नरपिशाच'	(१६०१)

जार्ज० डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड की अन्य रचनाएँ

'राई हाउस प्लाट'	कन्हैयालाल शर्मा	'सत्य वीर'	(१६०२)
,, ,, ,,	चुन्नीलाल खत्री	'सच्चा बहादुर'	(१६०४)
'जोजेफ विल्मट'	यशोदानन्दन औदीच्य	'जोजफ विल्मट'	(१६०५)
'दि यँग फिशरमैन'	गगा प्रसाद गुप्ता	'किले की रानी'	(?)
'वर्जीनिया'	रूपनारायण शर्मा	'गुप्त रहस्य'	(?)
'लायला, दि स्टार ऑफ मिग्रेलिया'	देवीप्रसाद खजाची	'प्रवीण पाठिका'	(१६११)
'दि ब्रान्ज स्टेच्यू'	(?)	'पीतल की मूर्ति'	(१६१७)
मिस्ट्रीज ऑफ दि कोर्ट ऑफ लन्डन'	सदानन्द शुक्ल	'लन्दन रहस्य'	(१६१३–१५)
,, ,,	ठाकुर प्रसाद खत्री	,, ,,	(?)
रावर्ट मेकायर	(?)	'राबर्ट मेकायर'	(?)

जी० डब्ल्यू० एम० रेनाल्ड की अन्य रचनाएँ

(?)	चुन्नीलाल खत्री	'अनग तरग'	(१६०८)
(?)	जैनेन्द्र किशोर	'दुर्जन'	(१६०८)
(?)	चन्द्र शेखर पाठक	'रहस्य भेद'	(१६१८)
'फाउस्ट'	(?)	'शैतान'	(?)
राइडर हैगार्ड 'शी'	कन्हैयालाल	'श्री या अवध्य माननीय'	(१६०२)

डैनियल डेफो 'राबिन्सन् क्रूसो' जनार्दन झा 'रॉबिन्सन क्रूसो' (१६१३)
" " द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी , " (१६१३)
पॉल डे काक 'दि वैम्पायर' (फ्रान्सीसी) जैनेन्द्रकिशोर 'चुड़ैन' (१६१०)
एलेक्जेन्डर ड्यूमा 'दि काउन्ट चुन्नीलाल खत्री 'मोतियो का खजाना' (१६१४)
ऑफ मान्टीक्रिस्टो' (फ्रांसीसी)
विल्की कॉलिन्स 'दि वमन इन ह्वाइट' 'ईश्वरी प्रसाद शर्मा 'शुक्ल वसना सुन्दरी' (१६६१)
हैरियट बीचर स्टो 'अंकल टॉम्स केबिन' महावीर प्रसाद पोद्दार 'टाम काकाकी कुटिया' (१६१६)
जोनेथन स्विफ्ट 'गुलिवर्स ट्रैवल्स जगन्नाथ प्रसाद 'विचित्र भ्रमण' (१६१८)
जॉर्ज इलियट 'साइलस मार्नर' प्रेमचन्द 'सुखदास' (१६१८)
जुल वर्न की रचनाएँ
'ए जर्नी इन टु इन्टीरियर ऑफ दि अर्थ' गिरिजाकुमार घोष 'रसातल यात्रा' (१६१२)
'ए जर्नी टु मून' जयराम दास गुप्त चन्द्रलोक की यात्रा' (१६०७)
" " " (?) " " (१६०७)
'ए जर्नी बाइ बैलून' , 'बैलून विहार' (")

कहानी

टक्कर (?) राजा शिव प्रसाद 'राजा भोज का सपना'
" (?) " " " सैन्ड फोर्ड और मार्टन की कहानी' (१८७७)
वाशिंगटन इर्विंग , द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी 'रिपवान विकल' (१६१२)
'चार्ल्स एण्ड मेरी लैम्ब टेल्स फ्रॉम शेक्सपियर' काशीनाथ खत्री 'शेक्सपियर के परम मनोहर नाटको के आशय' (१८८३-८६)

निबन्ध, आलोचना और अन्य विधाएँ

फ्रांसिस बेकन एसेज महावीर प्रसाद द्विवेदी 'बेकन विचार रत्नावली' (१६००)

सिसेरो	'फ्रेन्डशिप'	'मित्रता' (१६००)
एलेक्जेन्डर पोप	'एन एसे ऑन क्रिटिसिज्म'	जगन्नाथ दास रत्नाकर 'आलोचनादर्श' (१८६७)
सैमुअल स्माइल्स	'सेल्फ हेल्प'	नाथुराम प्रेमी 'स्वावलम्बन' (१६१६)
" "	'थिपर्ट'	" " 'मितव्ययिता' (१६१४)
" "	"	रामचन्द्र वर्मा 'मितव्ययिता' (१६१६)
लॉर्ड चेस्टर फील्ड	'एडवाइस टु हिज सन'	ऋपीश्वरनाथ भट्ट 'कर्तव्य शिक्षा'

परिशिष्ट 'घ'

बंगला से अनुवादित रचनाएँ

काव्य रचनाएँ

माइकेल मधुसूदन दत्त	मैथिलीशरण गुप्त	'विरहिणी व्रजांगना'	(१९१५)
" "	" "	'मेघनाथ वध'	(१९१६)
नवीनचन्द्र सेन	" "	'पलासी का युद्ध'	(१९२०)

नाटक

यतीन्द्रमोहन ठाकुर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'विद्या सुन्दर'	(१८६८)
माइकेल मधुसूदन दत्त	(?)	'पद्मावती'	(१८८८)
" " "	(?)	'वीर नारी'	(१८८६)
" " "	(?)	'कृष्णा कुमारी'	(१९२०)
रामगोपाल विद्यान्त	(?)	'रामाभिषेक'	

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ

रवीन्द्रनाथ ठाकुर	गोपालराम गहमरी	'चित्रांगदा'	(१८९५)
"	" "	'राजर्षि'	(१९१०)
"	" "	'डाकघर'	(१९२०)

द्विजेन्द्रलाल राय की रचनाएँ

द्विजेन्द्रलाल राय	नाथूराम प्रेमी	'दुर्गादास'	(१९१६)
,, ,,	,,	'मेवाड़ पतन'	(१९१७)
,, ,,	,,	'शाहजहां'	(१९१७)
,, ,,	,,	'उस पार'	(१९१७)
,, ,,	,,	'नूरजहां'	(१९१८)
,, ,,	,,	'ताराबाई'	(१९१८)
,, ,,	,,	'भी म'	(१९१८)
,, ,,	,,	'चन्द्र गुप्त'	(१९१८)
,, ,,	,,	'सीता'	(१९१८)
,, ,,	,,	'मूर्ख मण्डली'	(१९१८)
,, ,,	,,	'भारत रमणी'	(१९१९)
,, ,,	,,	'पाषाणी'	(१९२०)
,, ,,	,,	'सिंहल विजय'	(१९२०)
क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद	उदयलाल कासलीवल	'चाँद बीबी'	(१९२०)

उपन्यास

बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	गदाधरसिंह	'दुर्गेश नन्दिनी'	(१८८२)
,, ,,	हरीश्चन्द्र	'राधा रानी'	(१८८३)
,, ,,	प्रतापनारायण मिश्र	'युगलांगुलीय'	(१८९४)
,, ,,	,,	'राजसिंह'	(१८९४)
,, ,,	,,	'कपाल कुण्डला'	(१९०१)
,, ,,	अयोध्यासिंह	कृष्णकान्त का दान पत्र	(१८९८)
,, ,,	गुलजारी लाल	'कृष्णकान्त का विल'	(१९१६)
,, ,,	बालेश्वरप्रसाद मिश्र	'देवी'	(१८९९)
,, ,,	व्रजनन्दन सहाय	'चन्द्रशेखर'	(१९०१)
,, ,,	किशोरिलाल गोस्वामी	'इन्दिरा'	(१९०८)
,, ,,	रामेश्वर पाण्डे	,,	(१९१६)
,, ,,	गिरिजा कुमार घोष	,,	(१९१९)
,, ,,	गुलजारीलाल चतुर्वेदी	'विष वृक्ष'	(१९१५)
,, ,,	जयरामदास गुप्ता	'मृणालिनी'	(१९१८)

रमेशचन्द्र पन्त	गदाधरसिंह	'वग विजेता'	(१८८६)
" "	गोपालराम गहमरी	'माधवी ककण'	(१९०८)
" "	जनार्दन भा	" "	(१९१२)
" "	वेनीप्रसाद	'ससार'	(१९०१)
" "	जनार्दन भा	'समाज'	(१९१३)
" "	" "	'राजपूत जीवन स-्या'	(१९१३)
" "	रुद्रनारायण	'महाराष्ट्र जीवन प्रभात'	(१९१३)

पच कौडी दे की रचनाएँ

पञ्चकौडी दे	गोपालराम गहमरी	'जीवन मृत रहस्य'	(१९०४)
	" "	'माखो देखो घटना'	(१९१०)
	" "	'गोविन्दराम'	(१९०५)
	" ,	'जासूसी चक्कर'	(१९१२)
	" "	'मनोरमा'	(१९१३)
	" "	'नीलवसना सुन्दरी'	(१९१३)
	रामलाल वर्मा	'भीषण भूल'	(१९१७)
	" "	'घटना चक्र'	(१९१८)

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाएँ

" "		'मुकुट'	(१९१०)
, "		'आश्चर्य घटना'	(१९१३)
" "		'आख की किरकिरी'	(१९१३)

अन्य रूप

वकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय	नाथूराम प्रेमी	वकिम निवन्धाली	(१९१६)
ईश्वरचन्द्र विद्यासागर		'विधवा विवाह'	(१८८८)

परिशिष्ट

विशेष सहायक ग्रन्थ

१ हिन्दी

	काव्य रचनाए
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'भारतेन्दु ग्रन्थावली', तृतीय खण्ड
बद्री नारायण चौधरी	'प्रेमघन सर्वस्व', प्रथम भाग (१६३६)
श्रीधर पाठक	'मनोविनोद', प्रथम भाग (१८८२)
,, ,,	,, ,, द्वितीय भाग (१६०५)
,, ,,	,, ,, तृतीय भाग (१६१२)
,, ,,	'जगत सचाई सार', (१८८७)
,, ,,	'घन विनय', (१६००)
,, ,,	'गुणवन्त हेमन्त', (१६००)
,, ,,	'काश्मीर सुषमा', (१६०४)
,, ,,	'वनाष्टक', (१६१२)
,, ,,	'देहरादून', (१६१५)

,, ,,	'भारत गीता', १९१८)
लोचन प्रसाद पाण्डेय	'प्रवासी', (१९०७)
,, ,,	'कविता कुसुम माला', (१९१०)
,, ,,	'मेवाड़ गाथा', (१९१४)
,, ,,	'माधव मजरी, (१९१५)
,, ,,	'पद्य पुष्पाञ्जली', (१९१५)
'श्रीधर'	'चारण', (१९१६)
जयशकर प्रसाद	'प्रेम राज्य', (१९१०)
,, ,,	'कानन कुसुम', (१९१२)
,, ,,	'प्रेम पथिक' (१९१३)
,, ,,	'म ागणा का महत्व' (१९१३)
, ,,	'चित्राधार' (१९१८)
,, ,,	'झरना' (१९१८)
बाल मुकुन्द गुप्त	'स्फुट कविता' (१९१०)
मैथिली शरण गुप्त	'रग मे भँग' (१९१०)
,, ,,	'जयद्रथ वध' (१९१०)
,, ,,	'भारत भारती' (१९१२)
,, ,,	'पद्य प्रबन्ध' (१९१२)
,, ,,	'किसान' (१९१७)
,, ,,	'वैतालिक' (१९१९)
सियाराम शरण गुप्त	'मौर्य विजय'
अयोध्या सिंह उपाध्याय	'प्रिय प्रवास' (१९१४)

नाटक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'भारतेन्दु नाटकावली' (स०, ब्रज रत्न दास) खण्ड १ एव २
श्रीनिवास दास	'रणधीर प्रेममोहिनी' (१८८०, द्वितीय सस्करण)
,, ,,	'तप्ता सम्वरण' (१८८३)
,, ,,	'सयोगिता स्वयवर' (१८८६)
,, ,,	'प्रह्लाद चरित्र' (१८८८)
प्रताप नारायण मिश्र	'कलि कौतुक' (१८८६)

केशव राम भट्ट	'सज्जाद सुम्बुल' (१८७३)
,, ,,	'समशाद सौसन' (१८८०)
जी०पी० श्रीवास्तव	'उलट फेर' (१९१८)।
,, ,,	'दुमदार आदमी' (१९१९)
,, ,,	'मर्दानी औरत' (१९२०)
राधाकृष्ण दास	'राधाकृष्ण ग्रन्थावली' (स० श्यामसुन्दर दास)
बद्रीनाथ भट्ट	'कुरुवन दहन' (१९१२)
,, ,,	'चुंगी की उम्मेदवारी' (१९१४)
,, ,,	'चन्द्रगुप्त' (१९१५)
जयशंकर प्रसाद	'करुणालय' (१९१२)
,, ,,	'प्रायश्चित' (१९१४)
,, ,,	'राज्यश्री' (१९१५)

उपन्यास

श्रीनिवास दास	'परीक्षा गुरु' (१८७८)
किशोरी लाल गोस्वामी	'प्रणयिनी परिणय' (१८८८)
,, ,,	'त्रिवेणी' (१८८९)
,, ,,	'स्वर्गीय कुसुम' (१८८९)
,, ,,	'हृदय हारिणी' (१८९०)
,, ,,	'लवंग लता' (१८९०)
,, ,,	'प्रेममयी' (१८९१)
,, ,,	'लावण्यमयी' (१८९१)
,, ,,	'सुख शर्वरी' (१९०१)
,, ,,	'कुसुम कुमारी' (१९०१)
,, ,,	'राज कुमारी' (१९०२)
,, ,,	'तारा' भाग १ एवं २ (१९०२)
,, ,,	'कानन कुसुम' (१९०३)
,, ,,	'चपला' भाग १-४ (१९०३-१९०४)
,, ,,	'चन्द्रावती' (१९०५)
,, ,,	'कटे मूड की दो-दो बातें' (१९०५)

किशोरी लाल गोस्वामी	'मल्लिका देवी'	(१९०५)
" "	'तरुण तपस्विनी या कुटीर वासिनी'	(१९०६)
" "	'याकूती तख्ती या यमज सहोदरा'	(१९०६)
" "	'लखनऊ की कब्र या शाहीमहल' भाग १-३	(१९०६-७)
" "	'पुनर्जन्म या सौतियाडाह'	(१९०७)
" "	'माधवी माधव या मदन मोहिनी', भाग १-२	(१९०९-१०)
" "	'सोना और सुगन्ध या पन्ना बाई', भाग १-२	(१९१०-१२)
" "	'लाल कुँअर या शाही रंगमहल'	(१९१२)
" "	'रज़िया बेगम'	(१९१५)
" "	'अँगूठी का नगीना'	(१९१८)
गोपालराम गहमरी	'नये बाबू'	(१८९४)
" "	'बड़ा भाई'	(१८९८)
" "	'सास पतोहू'	(१८९८)
" "	'देवी सिंह'	(१९०१)
" "	'देवरानी जेठानी'	(१९०१)
" "	'तीन पतोहू'	(१९०४)
" "	'गुप्तचर'	(१८९९)
" "	'अद्भुत खून'	(१९०२)
" "	'खूनी का भेद'	(१९०९)
" "	'जासूस की भूल'	(१९०१)
" "	'जासूस पर जासूस'	(१९०४)
" "	'घर का भेदी'	(१९०३)
" "	'ठन ठन जासूस'	(१९१२)
" "	'जाली बीबी या डाकू साहब'	
" "	'जासूस की जवाँमर्दी'	
ठाकुर जगमोहन सिंह	'श्यामा स्वप्न'	
देवकी नन्दन खत्री	'चन्द्रकान्ता'	(१८९२)
" "	'नरेन्द्र मोहिनी'	(१८९३-९५)

,, ,,	'वीरेन्द्र वीर'	(१८६५)
,, ,,	'चन्द्रकान्ता सन्तति'	(१८६६)
, ,,	'कुसुम कुमारी', भाग १-४	(१८६६)
,, ,,	'नौलखा हार'	(१८६६)
,, ,,	'गुप्त गोदना', भाग १-२	(१६०२-१६०६)
,, ,,	'काजर की कोठरी'	(१६०२)
,, ,,	'अनूठी बेगम'	(१६०५)
,, ,,	'भूतनाथ', भाग १-६ (अपूर्ण)	
प्रेमचंद	'प्रेमा'	(१६०५)
,,	'सेवासदन'	(१६१८)

कहानी

बालकृष्ण भट्ट	'नूतन ब्रह्मचारी'	(१६११)
किशोरी लाल गोस्वामी	'इन्दुमती या वन विहंगिनी'	(१६०२)
,, ,,	'हीराबाई'	(१६०४)
गोपालराम गहमरी	'बेगुनाह का खून'	(१६००)
,, ,,	'सरकती लाश'	(१६००)
, ,,	'खूनी कौन है'	(१६००)
, ,,	'जमुना का खून'	(१६०१)
,, ,,	'अयराज'	(१६०२)
,, ,,	'मालगोदाम मे चोरी'	(१६०२)
,, ,,	'गश्नी काका'	(१६०२)
,, ,,	'जासूस की चोरी'	(१६०२)
,, ,,	'अंधे की आंख'	(१६०२)
,, ,,	'किले मे खून'	(१६०२)
जयशंकर प्रसाद	'छाया'	(१६१२)
जी० पी० श्रीवास्तव	'लम्बी दाढ़ी'	(१६१४)
,, ,,	'नोक झोक'	(१६१६)
,, ,,	'लतखोरी लाल'	(१६३०)
प्रेमचन्द	'सप्त सरोज'	(१६१७)
,,	'नव निधि'	(१६१८)
,,	'प्रेम पूर्णिमा'	(१६२०)

विश्वम्भरनाथ शर्मा	'गल्प मन्दिर'	(१९१९)

निबन्ध

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'खुशी'	(१८१७)
बालमुकुन्द गुप्त	'शिवशभु के चिट्ठे'	(१९०६)
"	चिट्ठे और खत'	(१९०८)
"	'गुप्त निबन्धावली'	(१९१२)
मिश्रबन्धु	'पुष्पाञ्जली' (१९१६)	
प्रताप नारायण मिश्र	'निबन्ध नवनीत' (१९१९)	
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'रसज्ञ रजन' (१९२०)	
" "	'अद्भुत आलाप' (१९२४)	
बालकृष्ण भट्ट	'साहित्य सुमन' (१९२२, द्वि० स०)	
श्यामसुदर दास (सम्पादक)	'हिन्दी निबन्ध माला', भाग १-२ (१९३२)	
गोविन्द नारायण मिश्र	'गोविन्द निबन्धावली' (१९२५)	
माधव प्रसाद मिश्र	'माधव मिश्र निबन्ध माला (१९३६)	

आलोचनात्मक अध्ययन

गगा प्रसाद अग्निहोत्री	'समालोचना' (१८९६)
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'हिन्दी कालिदास की समालोचना' (१९०१)
मिश्रबन्धु	देव ग्रन्थावली (१९१०)
"	'हिन्दी नवरत्न' (१९१०)
"	'भूषण ग्रथावली' (१९१२)
"	'मिश्रबन्धु विनोद' भाग १-३ (१९१३)
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'नाट्य शास्त्र' (१९१२)
श्याम सुदर दास	'मध्य कुसुमावली' (१९२४) (स० हीरालाल)

जीवनी

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	हरिश्चन्द्र कला' (राम दहिनसिंह बाकीपुर)
राधाकृष्ण दास	राधाकृष्ण ग्रथावली' (१९३०) (स० श्याम सुन्दर दास)
महावीर प्रसाद द्विवेदी	'चरित्र चित्रण'
"	'चरित्र चर्चा' (१९३०)

इतिहास

राजा शिव प्रसाद	'इतिहास तिमिर नाशक' (८६८-७३)
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'हरिश्चंद्र कला' (राम दीनसिंह, बाकीपुर)
देवी प्रसाद	'मानसिंह' (१८८६)
,,	'उदयसिंह' (१८९२)
,,	'प्रतापसिंह' (१९०३)
,,	'आमेर के राजे' (८१९३)
,,	'हिन्दुस्तान के मुसलमान बादशाह' (१९०६)
,,	'पडिहार वंश प्रकाश' (१९१०)
,,	'मुगल वंश' (१९१०)
मिश्रबन्धु	'रूस का इतिहास' (१९१०)
,,	'जापान का इतिहास' (१९१०)

पत्र-पत्रिकाएँ

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	'हरिश्चन्द्र मैगजीन' (१८७३)
,, ,,	'कवि-वचन-सुधा (१८६८)
,, ,,	'हरिश्चन्द्र चंद्रिका' (१८७२)
बालकृष्ण भट्ट	'हिंदी प्रदीप' (१८७७)
प्रताप नारायण मिश्र	'ब्राह्मण' (१८८३)
नागरी प्रचारिणी सभा (प्र०)	'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (१८१७)
किशोरी लाल गोस्वामी	उपन्यास' (१८१८)
गोपाल राम गहमरी	'जासूस'
इंडियन प्रेस	'सरस्वती' (१ ००-१९२०)
अम्बिका प्रसाद गुप्त	'इन्दु' (१९०१-१९२०)

सन्दर्भ ग्रन्थ

रामचन्द्र शुक्ल	'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
डॉ० राम कुमार वर्मा	'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास'
मिश्रबन्धु	'हिन्दी साहित्य का इतिहास'
डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी	'हिन्दी साहित्य की भूमिका'
श्यामसुन्दर दास	'हिन्दी भाषा और साहित्य'
,, ,,	'मेरी आत्म कहानी'

डॉ० अमर नाथ झा	'विचार धारा'
डॉ० धीरेन्द्र वर्मा	'विचारधारा'
डॉ० केशरी नारायण शुक्ल	'आधुनिक काव्य धारा'
डॉ० एल० एस० वार्ष्णेय	'आधुनिक हिन्दी साहित्य'
कृष्ण शंकर शुक्ल	'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास'
डॉ० श्रीकृष्ण लाल	'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास'
ब्रजरत्न दास	'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'
,, ,,	'हिन्दी नाट्य साहित्य'
शिव नारायण	'हिन्दी उपन्यास'
डॉ० रामरतन भटनागर	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र'
,, ,,	'जयशंकर प्रसाद'

२—अंग्रेजी

तुलनात्मक साहित्य

डॉ सय्यद अब्दुल लतीफ पी-एच डी०	'दि इन्फ्लुएंस ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर आन उर्दू लिट्रेचर
डॉ० प्रिय रंजन सेन	वेस्टर्न इन्फ्लुएंस इन बेंगाली लिट्रेचर'
एच० एम० दासगुप्त	'स्टडीज इन वेस्टर्न इन्फ्लुएंस आन नाईन्टीन्थ सेन्चुरी बेंगाली पोयट्री'
एल्फ्रेड होरेशियो उपहम	'फ्रेंच इन्फ्लुयेंस इन इंग्लिश लिट्रेचर'
टी० जी० टक्कर, लिट० डी०	'दि फारेन डेट ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर'
डडले एच० माइल्स	'फ्रेन्च इन्फ्लुएंस, ऑन रेस्टोरेशन ड्रामा'
ताराचन्द, पी एच० डी०	'इन्फ्लूएंस आफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर'
आर० के० यज्ञिक	'दि इन्डियन थियेटर'

तुलनात्मक भाषा-विज्ञान

मेरी एस० सर्जेन्टसन	'ए हिस्ट्री आफ फारिन वर्डस इन इंग्लिश'
मलिक हरदेव बाहरी, डी० लिट०	'पर्शियन इन्फ्लुएंस ऑन हिन्दी'
जॉन बीम्स	'ए कम्पेरेटिव ग्रामर ऑफ इन्डोआर्यन लैंगवेजेज ऑफ इंडिया'
ए० एफ० रुडोल्फ हार्नली	'ए कम्पेरेटिव ग्रामर, ऑफ गौडियन लैंगवेजेज विद स्पेशल रिफरेन्स टु ईस्टन हिन्दी'

अन्य

ओटो जेस्पर्सन	'लैंग्वेज'
,, ,,	'एशेन्सल्स ऑफ इंग्लिश ग्रामर'
एस० एच० केलाग	'हिन्दी ग्रामर'
रेवरेन्ड इ० ग्रीव्ज	'ग्रामर ऑफ मॉडर्न हिन्दी'
,, ,, ,,	'नोट्स ऑन दि ग्रामर ऑफ तुलसीदास रामायण'
सुनीति कुमार चैटर्जी	'दि ओरिजिन एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ बेंगाली लेंग्वेज'
सी० एल्फान्जो स्मिथ	'स्टडीज इन इंग्लिश सिन्टेक्स'
हर्बर्ट रीड	'इंग्लिश प्रोज स्टाइल'

आलोचनात्मक अध्ययन

ए० आर० एन्ट् विसिल	'ए स्टडी आफ पोएट्री'
क्रिस्टोफर काडवेल	'इल्यूजन एण्ड रियलिटी'
कोर्ट होप	'हिस्ट्री आफ इंग्लिश पोएट्री'
स्टेफोर्ड ए० ब्रुक	'नेचुरलिजम इन इंग्लिश पोएट्री'
एलाडइस निकल	'मिभरी आफ ड्रामा'
,, ,,	'ब्रिटिश ड्रामा
एडविन म्यूर	'दि स्ट्रक्चर ऑफ दि नावेल'
ई० एम० फॉस्टर	'एस्पेक्ट्स ऑफ दि नावेल'
ए० इ० वर्स्सफोर्ड	'दि जजमेंट इन लिट्रेचर'
सैमुएल जॉन्सन	'लाइव्ज ऑफ पोएट्स'
मैथ्यू आर्नल्ड	'एसेज इन क्रिटिसिज्म'
आइफर इ० ईवान्स	'ट्रेडीशन एन्ड रोमैन्टीसिज्म'
डब्ल्यू० एच० हडसन	इन्ट्रोडक्शन टु दि स्टडी आफ लिट्रेचर
(एवी मैन्स लाइब्रेरी)	इंग्लिश क्रिटिकल स्टडीज (अठारहवीं सदी)
,,	,, (उन्नीसवीं सदी)

अन्य साहित्यिक

आइफर इ० ईवान्स	'ए शार्ट हिस्ट्री ऑफ इंगलिश लिट्रेचर'
एमिलो लिग्विज एन्ड लुई कैजमिओ	'ए हिस्ट्री ऑफ इंग्लिश लिट्रेचर'

	'आक्सफोर्ड कम्पेनियन टु इंगलिश लिट्रेचर'
	'दि डिक्शनरी 'ऑफ वर्ल्ड लिट्रेचर'
एस० के दे	'सस्कृत पोयटिक्स'
जय कान्त मिश्र	'ए' हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर'

ऐतिहासिक और सास्कृतिक

कार्टने लाक	'दि फर्स्ट इंगलिश मैन इन इंडिया'
सर एल्फ्रेड लायल	'दि राइज एन्ड एक्सपैन्शन ऑफ दि ब्रिटिश डोमिनियन इन इण्डिया'
	'कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इन्डिया', भाग पाचवा
	'कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया', भाग छ
सरकार एण्ड दत्त	'टेक्स्ट बुक ऑफ इन्डियन हिस्ट्री' भाग द्वितीय
प्रमथ नाथ बोस	'हिन्दू सिविलाइजेशन अन्डर दि ब्रिटिश रूल'
नूरुल्ला एण्ड नायक	'हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इन्डिया'
टामस रोएबक	'एनल्स ऑफ दि कालेज ऑफ फोर्ट विलियम'
विलियम हन्टर	'रिपोर्ट आफ दि एजुकेशन कमिशन (१८८ -८२)'
	'रिपोर्ट आफ दि जनरल एजुकेशन कान्फ्रेन्स एलाहाबाद (१८७१-७२)'
	'सेंट जान्स कालेज आगरा' (१८४०-१९४०)
जॉन क्लार्क मार्शमैन	'दि लाइफ एन्ड टाइम्स ऑफ कैरे मार्शमैन एण्ड वार्ड'
जॉन क्लाक मार्शमैन	'दि स्टोरी, ऑफ कैरे मार्शमैन एण्ड वार्ड'
की	'लाइफ ऑफ सर चार्ल्स मेटकाफ'
	'इकोज फ्रॉम ओल्ड कैलकटा'

थीसीस

एल० एस० वार्ष्णेय, डी० लिट्०	'दि ग्रोथ एण्ड डेवलपमेन्ट ऑफ हिन्दी लिटरेचर (१८५०-१९००)
डी० एन० शुक्ल, डी० फिल्०	'इण्डियन एजुकेशन पालिसी (१ ५१-१९०४)

पत्र-पत्रिकाएं

एलाहाबाद यूनिवर्सिटी स्टडीज १९३३, १९४६ और १९४७
जर्नल ऑफ दि डेवलपमेंट ऑफ लेटर्स, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलकटा, १९३३
'कैलकटा रिव्यू' (१९२६ से १९३३)